

भूमिका

‘स्कन्द पुराण’ अठारहो पुराणों में सबसे बड़ा है और छः बड़े-बड़े खण्डों में बँटा है—(१) महेश्वर खण्ड (२) वैष्णव खण्ड (३) ब्रह्म खण्ड (४) काशी खण्ड (५) अवन्तिका खण्ड (६) देवा खण्ड । ये खण्ड भी अनेक विभागों में बँटे हुए हैं । कुछ अन्य विद्वानों ने इन पुराण के सात खण्ड माने हैं । उन्होंने अवन्तिका खण्ड को न रख कर ‘नापी खण्ड’ और ‘प्रभास खण्ड’ दो पृथक् नाम सम्मिलित किए हैं । एक और ‘स्कन्द पुराण’ भी पाया जाता है जो ‘मनशुमार सहिता’ ‘सून सहिता’ आदि छः सहिताओं में बँटा है । उसका विषय महेश्वर और इतना ही विस्तारयुक्त होने पर भी इन ‘स्कन्द पुराण’ में भिन्न है और सोच करने वाली ने उसे एक ‘उप पुराण’ माना है ।

“जैसे शिव है वैसे ही विष्णु है और जैसे विष्णु है वैसे ही शिव है । इन दोनों में तनिक भी अन्तर नहीं है ।”

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेया यः शिवा विष्णुरेव सः ।

(महेश्वर-खण्ड)

“वो विष्णु है उन्ही को शिव जानना चाहिए और जो शिव है उनको विष्णु मानना चाहिए ।”

इस सद्भावना का परिणाम यह हुआ है कि इस प्रमुख शैव-पुराण में कहीं कटुता अथवा निन्दा-कुत्सा की झलक दिखाई नहीं पड़ती है । इसमें हजारों छोटे-बड़े तीर्थों का पण्डित दिया गया है और उन्हीं में जोड़कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गन्धर्व, ऋषि-मुनि, दानव-दैत्य, राक्षस आदि की अगणित कथाओं का समावेश किया है । इन कथाओं में सभी देवताओं की समान रूप से महिमा वर्णन की गई है । ‘महेश्वर खण्ड’ के अन्तर्गत ‘कीमारिका खण्ड’ में तो एक ऐसी कथा दी गई है, जिससे सम्प्रदायों के नाम पर संकीर्णता के भाव रखने वालों का पूरी तरह खण्डन और भस्मना हो जाती है । राजा करन्धम ने भेद-भाव करने वाले उपदेशकों की बातों से अभिमत हो कर महाकाल से प्रश्न किया था—

केचिच्छिवमाश्रित्य विष्णुमाश्रित्य वेदसम् ।

वर्णयन्ति परमोक्ष त्वन्तु कस्मात्तु मयसे ॥

“हे भगवन् ! मोक्ष की प्राप्ति के लिए कोई शिव का, कोई विष्णु भगवान का और कोई ब्रह्माजी का आश्रय ग्रहण करने पर बल देते हैं । इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ?” इस पर महाकाल ने बतलाया—

पुराकिल्वं मुनयो नैमिपारण्य वासिनः ।

सन्दिह्यान्तः श्रेष्ठतायां ब्रह्मलोकमुपागमन ॥

तस्मिन्क्षणे विरञ्चोऽपि श्लोक प्रह्वोऽब्रवीत्किल ।
 अनन्ताय नमस्तस्मै पस्याऽन्तो नोपलभ्यते ।
 महेशाय च भक्ते द्वौ कृपायेतां सदा मयि ।
 ततः श्रेष्ठ च त मत्वाक्षीरोद मुनयोययुः ॥
 तत्र योगेश्वरः श्लोक प्रबुध्यन्तमुमव्रतीत ।
 ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम् ॥
 सदाशिवं च वन्दे तौ भवेतां मंगलाय मे ।
 ततस्ते विस्मिता विप्रा अपमृत्यययु पुनः ॥
 कलासे ददृशुः स्थाणुं वदत गिरिजां प्रति ।
 एकादश्यां प्रनृत्यानिजागरे विष्णु सद्मनि ॥
 सदा तपस्या चरामि प्रीत्यर्थं हरिवेधसोः ।

‘ प्राचीन काल में एक समय नैमिषारण्य में निवास करने वाले ऋषि-मुनियों को यह जानने की जिज्ञासा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश— इन तीनों देवताओं में सर्वश्रेष्ठ कौन है ? वे इसका निर्णय करने के विचार में ब्रह्मलोक को गये । वहाँ उन्होंने ब्रह्माजी को यह कहते सुना ‘मनन्त भगवान् (विष्णु) को नमस्कार है, जिनका कहीं अन्त नहीं मिल सकता और महादेव जी को भी नमस्कार है । ये दोनों मुझ भक्त पर कृपा दृष्टि रखें ।’ तब वे ऋषि विष्णु को महान समझ कर क्षीर सागर पहुँचे तो उस समय विष्णु भगवान् स्वयं ही कह रहे थे— ‘मैं परमब्रह्म स्वरूप, सर्वव्यापक ब्रह्मा और भगवान् महाशिव की वन्दना करता हूँ । ये दोनों मेरे लिए मंगलकारी हों ।’ यह सुन कर ऋषिगण बड़ा आश्चर्य करने लगे और चुपचाप क्षीर सागर में चले आकर कैलाश पर गये । वहाँ शङ्कर जी पार्वती से कह रहे थे— ‘मैं भगवान् विष्णु और ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिए एकादशी की रात्रि को विष्णु-मन्दिर में जागरण करते नृत्य रिया करता हूँ और इसी हेतु तपस्या भी करता हूँ ।’

“जैसे शिव है वैसे ही विष्णु है और जैसे विष्णु है वैसे ही शिव है । इन दोनों में कृत्तिक भी अन्तर नहीं है ।”

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेया यः शिवा विष्णुरेव सः ।

(महेश्वर-खण्ड)

“जो विष्णु है वही जो शिव जानना चाहिए और जो शिव है उनको विष्णु मानना चाहिए ।”

इस सद्भावना का परिणाम यह हुआ है कि इस प्रमुख शैव-पुराण में कहीं कटुता अथवा निन्दा-कुत्सा की झलक दिखाई नहीं पड़ती है । इसमें हजारों छोटे-बड़े तीर्थों का परिचय दिया गया है और वही से जोड़कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गन्धर्व, ऋषि-मुनि, दानव-दैत्य, राक्षस आदि की प्रगणित कथाओं का समावेश किया है । इन कथाओं में सभी देवताओं की समान रूप से महिमा वर्णन की गई है । ‘महेश्वर खण्ड’ के अन्तर्गत ‘कीमारिका खण्ड’ में तो एक ऐसी कथा दी गई है, जिससे सम्प्रदायों के नाम पर सकीर्णता के भाव रखने वालों का पूरी तरह खण्डन और भर्त्सना हो जाती है । राजा करन्धम ने भेद-भाव करने वाले उपदेशकों की बातों से अभिमत हो कर महाकाल में प्रश्न किया था—

केचिच्छिवं समाश्रित्य विष्णुमाश्रित्य वेधसम् ।

वर्णयन्ति परंभोक्ष त्वन्तु कस्मात्तु मन्यसे ॥

“हे भगवन् ! मोक्ष की प्राप्ति के लिए कोई शिव का, कोई विष्णु भगवान का और कोई ब्रह्माजी का आश्रय ग्रहण करने पर बल देते हैं । इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ?” इस पर महाकाल ने बतलाया—

पुराकिलेव मुनयो नैमिषारण्य वासिनः ।

सन्दिह्यान्तः श्रेष्ठताया ब्रह्मलोकमुपागमन ॥

तस्मिन्क्षणे विरञ्चोऽपि श्लोक प्रह्लोऽन्नवीतिकल ।
 अनन्ताय नमस्तस्मै पस्याऽन्तो नोपलभ्यते ।
 महेशाय च भक्ते द्वौ कृपायेतां सदा मयि ।
 ततः श्रेष्ठ च त मत्वाक्षीरोद मुनयोमयुः ॥
 तत्र योगेश्वरः श्लोक प्रबुध्यन्मुमुक्षतीत ।
 ब्रह्माण सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम् ॥
 सदाशिव च वन्दे तौ भवेतां मंगलाय मे ।
 ततस्ते विस्मिता विप्रा अपसृत्यययु पुनः ॥
 कंलासे ददृशुः स्याणुं वदत गिरिजां प्रति ।
 एकादश्यां प्रनृत्यानिजागरे विष्णु सद्मनि ॥
 सदा तपस्मा चरामि प्रीत्यर्थं हरिवेषणीः ।

'प्राचीन काल में एक समय नैमिषारण्य में निवास करने वाले
 ऋषि-मुनियों को यह जानने की जिज्ञासा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश—
 इन तीनों देवताओं में सर्वश्रेष्ठ कौन है ? वे इसका निर्णय करने के
 विचार में ब्रह्मलोक को गये । वहाँ उन्होंने ब्रह्माजी को यह कहते सुना
 'मनस्त भगवान् (विष्णु) को नमस्कार है, जिनका कहीं श्रेष्ठ नहीं मिल
 सकता और महादेव जी को भी नमस्कार है । ये दोनों मुझ भक्त पर
 कृपा दृष्टि रखें ।' तब वे ऋषि विष्णु को महान समझ कर क्षीर सागर
 पहुँचे तो उस समय विष्णु भगवान् स्वयं ही कह रहे थे— 'मैं परमब्रह्म
 स्वरूप, सर्वव्यापक ब्रह्मा और भगवान् महाशिव की वन्दना करता हूँ ।
 ये दोनों मेरे लिए मंगलकारी हैं ।' यह सुन कर ऋषिगण बड़ा आश्चर्य
 करने लगे और चुपचाप क्षीर सागर से चले आकर कैलाश पर गये ।
 वहाँ शङ्कर जी पार्वती से कह रहे थे— 'मैं भगवान् विष्णु और ब्रह्मा
 की प्रमदता के लिए एकादशी की रात्रि को विष्णु-मन्दिर में जागरण
 करने नृत्य किया करता हूँ और इसी हेतु तपस्या भी करता हूँ ।'"

यह सुन कर श्रुतिपियों का समस्त मशय स्वयं दूर हो गया और वे परस्पर कहने लगे कि हम लोग अभी तक कंसी मूढ़ता में पड़े हुए थे ? जब ये तीनों प्रमुख देव ही यह नहीं जानते कि उनमें से कौन बड़ा है—सभी दूसरों को अपने से बड़ा समझ रहे हैं, तब हम लोग हमका निर्णय कैसे कर सकते हैं ? वास्तव में ये तीनों एक ही परम शक्ति के तीन रूप हैं जो तीन प्रकार के कार्यों की दृष्टि से विभाजित किये जाते हैं और जब वह कार्य समाप्त हो जाता है, तब तीनों फिर एक रूप में समाविष्ट हो जाते हैं। वे लोग अज्ञानी हैं जो इनके छोटे बड़े होने का प्रश्न उठा कर सांप्रदायिक झगड़े और भेद-भाव उत्पन्न करते हैं। अपनी प्रकृति, रुचि, और ज्ञान-सामर्थ्य के अनुसार उपासना-विधि में कुछ अन्तर हो सकता है पर उसके कारण पारस्परिक मनभेद अथवा वैमनस्य की वृद्धि करना कहीं की बुद्धिमत्ता है ?

वास्तव में पुराणकार ने इस कथा द्वारा जो सद्भावना व्यक्त की है वह स्तुत्य है। यद्यपि सिद्धान्त रूप से इस तथ्य को सभी पुराणों ने स्वीकार किया है पर अपने इष्टदेव की महिमा-वर्णन करते हुये अनेक स्थानों पर ये बहक गये हैं, और उत्साह के प्रतिरेक अथवा मनोवृत्ति की सञ्जीवता व कारण दूसरी देव-शक्तियों को हीन बतलाने लगे हैं। 'स्कन्द पुराण' ने यहाँ बड़ी उदार-भावना में काम लिया है और तीनों दलों की समता को इनन यत्पूर्वक प्रकट किया है कि किसी तरह के सम्भेद की गुंजायश रह ही नहीं जाती। इतना ही नहीं इसी प्रकरण ने कहोने बलिपुत्र वर्णन करते हुए बुद्ध-प्रवतार के विषय में जो भाव प्रकट किये हैं वे भी उनकी कृपण मनोवृत्ति के परिचायक हैं। उसके 'कीमार्गिका खण्ड' (अध्याय ४०) के 'वर-धम महाकाल सम्वादे चतुर्गुण व्यग्रस्था वर्णनम्' प्रकरण में लिखा है—

ततस्त्रिपु सहस्रेषु पट् शतैरधिकेषु च ।

मागवे हेममदनादञ्जया प्रभविष्यति ॥२५६॥

विष्णोर्लक्षो धर्मपाता बुधः साक्षात्स्वयं प्रभुः ।
 तस्य कर्माणि भूरीणि भविष्यन्ति महात्मनः । १२५७।
 भवतेभ्यः स्वयंशो भुवत्वादिबन्धं पञ्चदशमिष्यति ।
 सर्वपाचावताराणो गुणो समधिकोयतः । १२५८।
 ततोवक्ष्यन्ति त भक्त्या सर्वपापहर बुधम् । १२५९।

“कलियुग के तीन हजार छः सौ वर्ष बीतने पर मगध देश के ह्येनमदन में भ्रजनी ने गर्भ में भगवान बुद्ध प्रकट होये जो साक्षात् विष्णु के अवतार होंगे । वे धर्म का पालन करने वाले होंगे । उनके बहुत से उत्तम गुण और चरित्र श्रमणीय होंगे । अपने भक्तों के लिए अपनी यशगाथा छोड़ कर वे मुक्त हो जायेंगे और लोग उनको सर्व पापहारी बुद्ध कहेंगे ।

अधिकांश पुराणों ने बुद्ध अवतार का नाम देने के प्रतिरिक्त उनकी कुछ भी चर्चा नहीं की है । कुछ पुराणकारों ने उनका ‘माया-मोह’ के नाम से वर्णन किया है । भागवतकार ने अवश्य इतना कहा है कि जब हिंसा की अनुचित रूप में बहुत अधिक प्रबलता हो गई तो भगवान बुद्ध रूप में प्रकट हुए । पर ‘स्कन्द पुराण’ ने उनकी चर्चा जैसे उत्कृष्ट रूप में की है वह उसकी न्याय-बुद्धि को प्रमाणित करता है । कर्मकाण्ड के दोषगुक्त हो जाने पर उन्होंने जनता को अहिंसा और मेवा का मार्ग दिखलाया उसकी प्रशंसा आज तक समस्त सत्तार करता है, और उनके कारण भारत की महानता की वृद्धि हुई है इससे कोई इनकार नहीं कर सकता । इस प्रकार का युग-परिवर्तनकारी कार्य भगवत्-शक्ति से सम्पन्न महामानवों के प्रतिरिक्त कोई नहीं कर सकता ।

भगवान के सच्चे भक्तों के लक्षण—

रामानुज एक वैष्णव सम्प्रदाय के प्राचार्य थे । यह भी कहा जा

सकता है कि वे वर्तमान वैष्णव श्रम के प्रथम माध्यापक हैं, क्योंकि अन्य तीनों वैष्णव सम्प्रदाय उनके लक्ष्यात् के हैं। रामानुज के पहलेभी विष्णु स्वामी आदि ने इन सिद्धान्तों का प्रचार किया था, पर इसको एक स्थायी और देशभारी रूप देने का श्रेय श्री रामानुजाचार्य को ही प्राप्त है। उनके इस महत्त्व को समझ कर एक द पुगलुत्तार ने उनका उन्नेय बड़ी प्रशंसा के साथ किया है। यद्यपि उनका जा चरित्त इसमें दिया गया है वह पुराणों की शैली के अनुसार चम-कारपूर्ण बना दिया गया है, पर उनके तथा विष्णु भगवान के कथोरूपन में भगवान के सच्चे भक्तों को लक्षण दिये गये हैं, वे अवश्य अव्यक्त महत्त्वपूर्ण हैं। जिन लोगों ने भगवान की उपासना और भक्ति का लक्षण एकान्त में बैठ कर भजन करना पूजा-भोग आदि ही समझ रखा है वे कुछ भ्रम में। यद्यपि भगवत्-भक्ति में इनका भी स्थान है, पर इतना विस्तृत बहुत बाद में किया गया है जबकि सबसे पहला स्थान कष्ट पीड़ितों की सेवा और परोपकार को ही मिला है। श्री रामानुजाचार्य ने जब भगवान से भक्तों के लक्षण पूछे तो उन्होंने कहा —

“जो ममत्त्व प्राणिया की भलाई करने वाले तथा हिन-चित्तक होवे हैं, जिनके हृदय में ईर्ष्या-द्वेष का खेत भी नहीं होना जो मात्सर्य से सर्वथा रहित होते हैं पूर्णतया निस्पृह होते हैं, जो ज्ञानी और परम शांत हैं, वे ही उत्तम कोटि के भक्त हूँगा करते हैं। भगवद् भक्त मन, कर्म, वचन द्वारा किसी भी प्रकार से दूसरों को पीड़ा नष्ट दिया करते हैं। वे परिग्रह के स्वभाव वाले नहीं हात। जो अपने गुरुओं, श्रेष्ठ पुरुषों और सच्चे माधुसूयों की सेवा में लगे रहते हैं वे सच्चे भक्त हैं। जो सज्जन पुरुष सभी के हित की बात कहते हैं और दूसरों के गुणों की प्रशंसा करते हैं वे उत्तम भक्त 'हूँगा करते हैं। जो सबको अपने ही समान देखते हैं, जो शत्रु और मित्र में समान भाव रखते हैं वे भगवान के भक्त होने के अधिकारी माने जा सकते हैं। जो दूसरों का सम्बुद्ध

देख कर हादिक प्रसन्नता अनुभव करते रहते हैं, वे भक्त कहे जाने योग्य होते हैं । जो दूसरों के लाभ के लिये बाग-बगीचा लगाते हैं, तालाब, कुआ, बावड़ी बनवा कर तृपार्नों की रक्षा करते हैं और ऐसे ही अन्य लोकोपकारी कार्यों में लगे रहते हैं वे भगवत् भक्त होने हैं । जो अपने जाने हुए शास्त्रों (ज्ञान) को उन लोगों को प्रदान करते रहते हैं, और उत्तम गुणों के प्रसार में सचेष्ट रहते हैं, वे उत्तम भगवत् पुरुष हुमा करते हैं जो अपने समस्त कर्मों को मुझे (भगवान्) की ही अर्पण करके निष्काम भावना रखते हैं, भगवान् के ध्यान के अनिरिक्त अन्य सब सासारिक विषयों में अनोलुप रहते हैं, वे ही सच्चे भक्त हैं ।”

वर्तमान समय में भक्ति-भाग को किस प्रकार बिगाड़ रखा है, और कितने ही ता उसके नाम पर जिस प्रकार दुराचार और भ्रष्टाचार में भी संशोच नहीं करते, उसे देखते हुए, उपरान्त उपदेश एक बलना की तरह ही जान पड़ता है । पर इनमें दो भक्ति-विद्वान् भयवा ‘भागवत-धर्म’ का नहीं है, यह तो निम्न स्वार्थी लोगों का कानून है, जो अपनी दुःखित-विषयों के कारण अन्धे से अन्धे मार्ग का भी पत्ता बना देते हैं, जैसा स्कन्द पुराणकार ने कहा है उसी विद्वान् की घोषणा अभी तक महात्मा गान्धी के प्राश्न में निम्नलिखित को जाती थी ।

वैष्णवजन तो तेने कहिये जे पार पराई जाने रे ।

पर दुखे उपकार करे ताए मन अभिमान न आत रे ॥

ज्ञान योग और निष्काम कर्म—

निश्चय ही धर्म का मुखा लक्षण दूसरों की पीडा, कष्ट को समझ कर उसे यथाशक्ति कम करने का प्रयत्न करना ही है । अगर कोई इन यथा-यम को रक्षण कर कवन बाह्य कर्मकाण्ड भयवा जल-तप आदि के द्वारा ही अस्व-कल्याण की प्राप्ति करता है—निश्चय ही लोगों की दान शर या मालमुए विनागर चैकुण्ड में ‘सीट रिजर्व’ हो

जाने की बात सोचता है, तो वह भ्रम में पतित भ्रमवा होगी ही है । मनुष्य की भावनाएँ दया-धर्म और परोपकार से ही बढ़ास्त होती हैं और उन्हीं के बल पर मनुष्य परमात्मा के निकट पहुँच सकता है । बिना इस प्रकार के सहस्रों के मनुष्य त्रिकाल में भी सद्गति और उच्च पदवी का अधिकारी नहीं बन सकता । समस्त ज्ञान का सार यही है कि मनुष्य इस प्रसार के सेश-धर्म का पालन कर्तव्य समझ कर करे और उसमें किसी प्रकार की कामना न रखते हुए उसके फल को ईश्वरार्पण कर दे । ऐसा करने पर ही वह स्वयमेव उस परम फल को प्राप्त होता है, जिसके लिए समस्त योग, ध्यान, उपासना और व्रतकाण्ड शिथिल होते हैं । जैसा भगवद् गीता^३ कहा गया है, जो कर्म पुरुष और सद्गति की कामना रख कर शिथिल होते हैं, उनसे कुछ समय के लिए स्वर्ग प्रादि का सुख प्राप्त हो सकता है, पर फिर इसी संसार-चक्र में पड़ना और उसके भले बुरे परिणामों को सहन करना पड़ता है । पर जो व्यक्ति इस सार को—समस्त प्राणियों को विष्णु या शिव (परमात्म सत्ता) का स्थापक रूप समझ कर उनका हित-साधन करता है वह निर्वाण भ्रमवा जीवन-मुक्त अवस्था को प्राप्त करता है, जिसमें पुनः भय-बन्धन की भावना नहीं रहती । इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए 'स्कन्द-पुराण' में कहा गया है—

“जब मनुष्य समता का त्याग कर देता है और उसका चित्त प्रत्यन्त निर्मल हो जाता है, जब भगवान के चरनों में भक्तियोग दृढ़ हो जाता है, तब कर्म का बन्धन नहीं होता । जब कर्म करते हुए भी मनुष्य का मन सदा शान्त रहे तो समझना चाहिये कि योग की सच्ची सिद्धि प्राप्त हो गई । भगवान को सब का स्वामी मान कर और उनको ही समस्त कर्मों का उपरपण करके मनुष्य संसार-बन्धन में छूट जाता है । वही उत्तम ज्ञान है, वही उत्तम तप है, और वही उत्तम श्रेय है । इसी को 'निर्मल योग' कहते हैं । इसी को निर्गुण-मार्ग कहा गया है । संसार

तीर्थों का वर्णन है कि उन सबको सहज में ध्यान में भी नहीं लाया जा सकता । हमारा अनुमान है कि इनमें से बहुमंखक तीर्थ तो भव काल प्रभाव से टूट पूट कर नष्ट हो चुके होंगे । हम अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि प्रयाग और मथुरा में पुराने समय में अनेक कुण्ड थे, पर आज उनका नाम ही शेष है । प्रयाग में सूरज कुण्ड के स्थान पर आज बल चित्रलीघर बना है । मथुरा में अधिकांश कुण्ड टूट पूट कर केवल गडढे रह गए हैं और कुछ तो बिल्कुल टीले के रूप में परिवर्तित हो गए हैं । फिर भी स्कन्द पुराणकार ने जिन प्रमुख तीर्थों का वर्णन किया है और उनका माहात्म्य, पूजा-विधि, स्तुतियाँ आदि लिखी हैं, उनमें 'नवीं ही बातों की जानकारी होती है । "बदरिकाश्रम का सब तीर्थों से अधिक महत्त्व" शीर्षक अध्याय में भूमिका स्वरूप भारत के अधिकांश प्रमुख तीर्थों का उल्लेख किया गया है । उसमें शिवजी द्वारा स्वयं से कहा गया है—

“हे पट्टानम । परमार्थ पथ के पथिक मनुष्यों को भगवान् के वैकुण्ठ धाम का निवास प्रदान करने वाले बहुत-से तीर्थ और क्षेत्र हैं । उनमें से कोई कामना के अनुसार फल देने वाले हैं और कोई मोक्षदायक हैं । गङ्गा, यमुना, मादावरी, नर्मदा, तपती, सिन्धु, गोमती, कोशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, वेतवती, सायू, जतङ्ग, पमस्विनी, गण्डकी, बाहुदा, सिन्धु सरस्वती—ये सब पवित्र नदियाँ हैं और बार-बार सेवन करने पर भोग और मोक्ष का प्रदान करने वाली हैं । अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन) कुटुम्भेश्वर, रामतीर्थ, काशी, पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ), पुष्कर क्षेत्र, दक्षुर क्षेत्र, बाराह क्षेत्र, तथा बदरी नामक महापुण्यमय क्षेत्र सब मनोरथों के साधक उत्तम तीर्थ हैं । एक अयोध्याएँ के दर्शन से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करते हैं ।”

“द्वारका में साक्षात् श्रीहरि विराजमान हैं और वे अपने स्थान

को कभी नहीं छोड़ते । गोमती में स्नान करके भगवान् कृष्ण का दर्शन करने से बिना ज्ञान के भी मुक्ति हो जाती है । चाराणसां क्षेत्र में मणि-कणिका, ज्ञान बापी, विष्णु पादोदक, पन गङ्गा में स्नान करके मनुष्य को पुनः माता के स्तनों का दूध नहीं पीना पड़ता । मथुरा में भगवान् कृष्ण के जन्म स्थान पर जाकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । वज्रंश में वैशाख घाते पर कोटि तीर्थ में गोत्र लगाने और महाकालेश्वर शिव का दर्शन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । कुरुक्षेत्र तथा राम तीर्थ में सूर्य ग्रहण पर यथाशक्ति दान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । हृषिकेश में पादोदक तीर्थ का स्नान मुक्तिदाता है । विष्णुकाशी में साक्षात् विष्णु और शिवकाशी में भगवान् शिव निवास करते हैं । पुरुषोत्तम क्षेत्र के मार्कण्डेय-सरोवर में स्नान करके अगमनाश्व देश का दर्शन करने से मनुष्य पुनः इस नश्वर जगत में नहीं आता । कानिक पूर्णिमा की पृथ्वी क्षेत्र में स्नान करने से मृत्यु उपरान्त ब्रह्मलोक में स्थान मिलता है । माघ भाग में अतिपूर्वक प्रयाग के त्रिवेणी सगम का स्नान अनन्त पुण्यफल का प्रदाता होता है ।”

‘भगवान् विष्णु के बदरी क्षेत्र की महिमा ममस्त तीर्थों से अधिक है । तप, योग, समाधि तथा सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, वह बदरी क्षेत्र में भली भाँति दर्शन करने से ही प्राप्त हो जाता है ।”

हमें यह स्वीकार करने में कोई विरोध नहीं कि हमारे पूर्वजों ने अनेक तीर्थों की स्थापना जन्म-कल्याण की भावना तथा सामान्य जनता में आध्यात्मिक रुचि की वृद्धि के उद्देश्य से की थी । सैकड़ों वर्ष तक ये तीर्थ वास्तव में सद्विचारों तथा पुण्य-परम्पराओं का बीज बपन करने के स्रोत बन रहे । इनमें एक ओर जहाँ मनुष्यों को घर के सकीर्ण दायरे से निकल कर विस्तृत क्षेत्र में देश और समाज की स्थिति को समझने का अवसर मिलना था, वहाँ इनमें त्याग और परमार्थ की प्रवृत्तियों को

प्रभुद्वितीय होने की सम्भावना भी नीची। पर आज स्थिति उल्टी होती जा रही है। हमारे तीर्थ सद्प्रेरणा के बजाय दोषों और दुर्गुणों के गढ़ बनते जाते हैं। जहाँ किसी समय तीर्थ-यात्रियों के सम्मुख स्वाध्याय-रामायण और परोपकारकारी ऋषि-मुनि पुण्य परमार्थ का आदर्श उत्थित करते रहते थे, वहाँ आज पण्डे, पुरोहित तथा साधु वैगंधारी धून लोग बचकना और ठगों का नग्न दिखवाते रहते हैं। परिणाम यह हुआ कि सर्व साधारण की झट्टी तीर्थों पर स क्रमशः हटती जाती है और सम्भ्रमण तथा शिलिन् शीघ्र तो उनके नाम से नाक भी सिकाड़न लगते हैं। बास्नव ने यह हिन्दू-ममाज का बड़ा दुर्भाग्य है कि उसको एक उपयोगी संस्था का स्वरूप ऐसा विकृत हो गया और वह कल्याण के राज व मन्त्रालय का साधन बन गई।

ऋषियों की नामावली—

‘अरुणाचल ऋषय स्थान वर्णन’ शीघ्र अष्टाध्याय (पृष्ठ २४६) में मार्कण्डेय ऋषि द्वारा नन्दि से प्रश्न किया गया कि ‘मनवान शिव की उपासना की दृष्टि से ऐसा स्थान कौन-सा है जहाँ पर सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति हो सक। उन्होंने कहा कि यह जिज्ञासा केवल मेरी ही नहीं है वरन् सभी ऋषि-मुनियों की है।’ इसके बाद उन्होंने सब ऋषियों के नाम गिनाये हैं, जो लगभग १४० होंगे। इनमें सृष्टि के बाद में प्रकट होने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, मरीचि, पुनह, पुनस्त्य, वशिष्ठ भृगु अग्नि आदि से लेकर पाराशर, व्यास, भारद्वाज याज्ञवल्क्य, चरक, सुश्रुत आदि तरु के नाम दिये गये। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि समस्त पुराणों की विविध व्याख्या से जितने नाम ऋषियों के पाये हैं वे सभी एक जगह इकट्ठे कर दिए गये हैं। इनमें से सनक सनन्दन, मरीचि आदि नाम सृष्टि प्रारम्भ होने के समय के हैं, पाराशर, व्यास आदि द्वापर के अन्तिम भाग

के हैं और चरक, सुश्रुत आदि दो-चार हजार वर्ष पुराने आयुर्वेद शस्त्र के आचार्यों के हैं ।

इस उदाहरण से प्रतीत होता है कि लेखक को सभी प्रसिद्ध ऋषियों की नामावली देनी थी, इसलिए जिनने नाम उसे मिल मके वे सभी लिख डाले, यद्यपि पुराणों की ही वर्ष-संख्या के हिसाब में इनके समय में लाखों वर्ष का अंतर है । यह उदाहरण हमने इस उद्देश्य से दिया है कि जो लोग इन प्राचीन ग्रन्थों में लिखे प्रत्येक श्लोक को एक अकाट्य तथ्य मान लेते हैं, वे वास्तविक स्थिति को समझ सकें । जैसा हम अनेक बार बनला चुके हैं पुराणों की कथाएँ 'उपाख्यान' के रूप में लिखी गई हैं, जिसका आशय यह होता है कि उनके मूल में कुछ सच्चाई है पर कथा का पूरा ढाँचा रचयिता ने अपनी कल्पना और कवित्व-शक्ति से तैयार किया है । ऐसे कवि इस बात की चिन्ता नहीं करते कि वे दो विभिन्न कालों की घटनाओं या व्यक्तियों का वस्तु एक साथ मिला दे रहे हैं । अथवा अलग-अलग दूरवर्ती स्थानों में होने वाली कई घटनाओं को किसी एक नये स्थान से सम्बद्ध किये दे रहे हैं । उनका ध्यान तो मुख्यतः काव्य के रस का परिपाक होने तथा छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन करने में लगा रहता है, जिससे उनकी रचना प्रभाव-शाली और आनर्पक बन सके । यदि हम इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लें और तदनुसार ही उनका स्वाध्याय करें तो उन व्यर्थ की शङ्काओं में बच सकते हैं, जो प्रायः ऐसे प्राचीन कथा-ग्रन्थों के सम्बन्ध में पैदा हुआ करती हैं ।

अहिंसा-धर्म की महत्ता—

आपस्तम्ब नाम के महर्षि एक समय साधना करने के निमित्त नर्मदा और मत्स्या नदियों के संगम पर जल के भीतर जा कर बैठ गए । वहाँ कितने ही मत्स्या मछली पकड़ रहे थे, संयोगवश वे मुक्ति भी

मछलियों के साथ उनके जाल में फँस कर बाहर निकल आये । उनकी इस प्रकार निरुत्था देख कर मत्स्य बहुत डरे और समा-प्रार्थना करने लगे । पर मुनि उस समय मछलियों का महार होना देख कर कुछ और ही सोच रहे थे । उन्होंने मत्स्यों से कहा—

“मेघ-दृष्टि रखने वाले जीवों द्वारा दुःख में डाले हुए प्राणियों की ओर जो लोग ध्यान नहीं देते उनसे बच कर कूर ससार में और कौन होगा ? यही ! जोन जाने प्राणियों के प्रति यह निर्दयतापूर्ण तथा स्वार्थ के लिए उनका धर्म में वनिदान—यह कैसा माधव्य का विषय है ? जानियों में भी जो केवल धर्म ही हीन म तत्पर है, वह श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि यदि जानी पुरुष भी धर्म स्वार्थ का दृष्टिकोण रख कर ज्ञान-ध्यान में लगे रहते हैं, तो इस जगत् के दुःखी प्राणी किमकी कारण जायेंगे ? जो मनुष्य धर्म ही सुख भोगना चाहता है उसे मुमुक्षु पुरुष महापापी वचनात है । मेरे लिए यह बौद्धता उपाय है जिससे मैं दुःखित धित्त वाले मत्स्यों जीवों के भीतर प्रवेश करके धर्म ही सच के कष्टों को भोगना चाहूँ । मेरे पास जो कुछ भी पुरा है, वह सभी दीन-दुःखियों के पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया है वह मेरे पास आ जाय । इन दृष्टि, विकृताय तथा रोगी प्राणियों के कष्टों को दृष्ट कर जिसके हृदय में दया उत्पन्न नहीं होती वह मेरे विचार में मनुष्य नहीं राक्षस है । जो समर्थ होकर भी प्राण-मरुट में पड़े हुए, भय विह्वल प्राणियों की रक्षा नहीं करता, वह उनके पापों को ही भोगता है । धर्म में इन दोन दुःखी मछलियों को दुःख से मुक्त करने का कार्य छोड़ कर मुक्ति को भी वरण नहीं करना चाहता, फिर स्वर्ग-लोक को तो बात ही क्या है ।”

मत्स्यों ने धारणम्भ श्रुति की सब बातें जानकर महाराज नाभाय को मननायी । अब वे धर्मात्म्य पर आये तो श्रुति ने कहा कि

के हैं और चरक, सुश्रुत आदि दो-चार हजार वर्ष पुराने आयुर्वेद शस्त्र के आचार्यों के हैं ।

इन उदाहरण से प्रतीत होता है कि लेखक को सभी प्रसिद्ध ग्रन्थों की नामावली देनी थी, इसलिए जिनने नाम उसे मिल मकें व सभी लिग हाते, यद्यपि पुराणों की ही बर्ण-सरया के हिताय म इनक समय में लाखों वर्ष का अन्तर है । यह उदाहरण हमने इस उद्देश्य से दिया है कि जो लोग इन प्राचीन ग्रन्थों में लिखे प्रत्येक श्लोक की एक प्रकाट्य तथ्य मान लेते हैं, वे वास्तविक स्थिति को समझ सकें । जैसा हम घनक बार मनना शुद्ध है पुराणों की कथाएँ 'उपासमान' के रूप में लिखी गई हैं, जिनका अन्तय यह होता है कि उनके मूल में कुछ सच्चाई है पर क्या है। पुराणों का रचयिता म अपनी कल्पना और कथित-कथा में तैयार किया है । ऐसे कवि इस बात की चिन्ता नहीं करते कि वे ही विभिन्न बालों की घटनाओं या व्यक्तियों का चलन एक साथ मिला दे रहे हैं । यद्यपि अलग अलग दूरदर्शी स्थानों में ज्ञान वाली कई घटनाओं की किसी एक नये स्थान में सम्मिलित कर दे रहे हैं । उनका स्थान तो मुख्यतः काव्य के रूप का परिचाय होने तथा एक-दूसरे के निगमों का साधन बनने में लगा रहता है, जिससे उनकी रचना प्रभाव-शाली और आकर्षक बन गई । यदि हम इस तथ्य की सच्ची समझ प्राप्त करें और मनुष्यगत ही उनका अन्वेषण करें तो उन व्यक्तियों के रूपों में बहस बन है, जो प्रायः ऐसे प्राचीन कथकों के अन्तर्गत में पैदा हुई जाती है ।

मछलियों के साथ उनके बाल में फँस कर बाहर निकल पाये । उनको इस प्रकार निकाला देख कर मल्हाह बहुत डरे और क्षमा-प्रार्थना करने लगे । पर मुनि उस समय मछलियों का महार होना देख कर कुछ और ही सोच रहे थे । उन्होंने मल्हाहों से कहा—

“मेश-हृष्टि रखने वाले जीवों द्वारा दुःख में डाले हुए प्राणियों की ओर जो लोग ध्यान नहीं देते उनसे बच कर क्रूर ससार में और कौन होगा ? अहो ! जीने जागते प्राणियों के प्रति यह निर्वचनापूर्ण तथा स्वार्थ के लिए उनका धर्म में वञ्चिदान—यह कैसा आश्चर्य का विषय है ? जानियो मेरी जो केवल धरने ही हिम में तटपर है, वह श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि यदि जानी पुष्ट भोजन स्वार्थ का दृष्टिगोचर रख कर ज्ञान-ध्यान में लगे रहते हैं, तो इस जगत् के दुःखी प्राणी किसकी शरण आयेंगे ? जो मनुष्य भक्त हो तुल्य भोगता चला है उसे मुमुक्षु पुष्ट महापापी बनाना है । मेरे लिए यह लोग-सा उपाय है जिससे मैं दुःखिन चित्त वाले मनुष्यों जीवों के भीतर प्रवेश करके भक्त हो सब के कष्टों को भोगता रहूँ । मेरे पास जो कुछ भी पुष्ट है, वह सभी दीन-दुःखियों के पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया है वह मेरे पास आ जाय । इन बन्धु, बिरादर तथा रोगी प्राणियों के कष्टों को दूर कर जिसके हृदय में दया उत्पन्न नहीं होती वह मेरे विचार से मनुष्य नहीं राक्षस है । जो समर्थ होकर भी प्राण-मरुद में पड़े हुए, भय विह्वल प्राणियों की रक्षा नहीं करता, वह उनके पापों को ही भोगता है । अतः मैं इन दीन दुःखी मछलियों को दुःख से मुक्त करने का कार्य छोड़ कर मुक्ति को भी वरण नहीं करता चाहता, फिर स्वर्ग-लोक की तो बात ही क्या है ।”

मल्हाहों ने धापसम्बद्ध श्रुति की सब बातें जाकर महाराज नाभाग को बतलायीं । जब वे घटनास्थल पर आये तो श्रुति ने कहा कि

‘इन मत्नाहों ने मुझे जल से निवालेने मे बड़ा परिश्रम किया है । इस लिए मेरा जो कुछ मूल्य तुम उचित समझो वह इनको दे दो ।’

राजा नाभाय आपस्तम्ब के मूल्य के रूप में मत्नाहों को एक लाख से लगा कर अपना राज्य तक देने को तैयार हो गए, पर आपस्तम्ब ने उसे पर्याप्त न समझा । इस पर राजा बहुत क्रोधित हुआ । उसी समय लोमश ऋषि वहाँ पर आये और उन्होंने कहा कि महान ज्ञानी द्विज का मूल्य रूपया और राज्य नहीं हो सकता, वरन् उसका मूल्य तो गौयें हैं जो उसी की तरह जगत की हितकारिणी होती हैं । गौषो की महिमा में सत्य ही बढ़ा गया है—

गावः प्रदक्षिणा कार्या वन्दनीया हि नित्यशः ।
मगला पतन दिव्या सृष्टास्त्वेताः स्वयम्भुवा ॥
अप्यागाराणि विभ्राणो देवतायतनानि च ।
यद्गोमतेन शुद्ध्यन्ति किं ब्रूमो ह्यधिक ततः ॥
गोमूत्रं गोमय क्षीर दधि सपिस्तथैव च ।
गवां पञ्च पवित्राणि पुनान्त सकलं जगत् ॥

“ब्रह्मा जी ने गौश्यों को दिव्य गुणों से युक्त बनाया है । वे अत्यन्त मंगलकारिणी हैं । अतः सदैव उनकी पक्रिया और वन्दना करनी चाहिए । जिन गौषो के गोबर से ब्राह्मणों के घर तथा देव-मन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं, उनसे बढ़ कर और किसे कहा जा सकता है ? गौषो के मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी—ये पाँचों सम्पूर्ण पवित्र मानी गई हैं और ये सम्पूर्ण जगत को पवित्र करने वाली हैं ।”

इस प्रकार आपस्तम्ब ऋषि ने प्राणियों की उपयोगिता और उनकी रक्षा तथा पालन करने का प्रतिपादन किया । निस्तन्देह किसी भी दुःखी प्राणी पर दया करके उसकी सहायता करना परम धर्म है । इससे उससे दुःखों का पाहें पूर्णतया अन्त न होता हो, पर इस प्रकार

की भावना से मनुष्य का अपना हृदय अवश्य सज्ज और अधिक पवित्र बनता है। इस प्रकार जीव-ज्या और अधिष्ठा का व्यवहार ही मनुष्य को साधारण सासारिक धरातल से उठा कर देवत्व की भूमिका में पहुँचा देता है। अपने लिए तो सभी जीते, पवित्र और कष्ट सहन करते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की घटना बहुत बड़े महत्व की बात नहीं है। आत्म-रक्षा और आत्म-विकास प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक कर्तव्य है, जिसे वह अपने स्वार्थ की दृष्टि से करता ही रहता है। प्रकृति तो सभी की है जो अपने स्वार्थ का ख्याल न करके दूसरे के दुःखों को अनुभव करता और उन्हें दूर करने के लिए प्रयत्न करता है।

सदाचा महिमा—

यद्यपि पौराणिक धर्म में तीर्थ स्नान, देव-दर्शन आदि की महिमा ही विशेष बड़ी गई है और इन्हीं को पापों से छुटकारा दिलाने का साधन बतलाया गया है, तो भी बीच-बीच में यह सनेन पाया जाता है कि इन मय धर्म कार्यों में सदाचार वा आचार अवश्य होना चाहिए। दुराचार से मनुष्य निरन्तर पाप-पशु में डूबता जाता है और सदाचार के सहारे वह सज्ज धरातल पर प्रतिष्ठित होता है। इसलिए धर्म की कामना रखने वालों को सदाचार वा पानन अवश्य करणीय है। इसके प्रतिपादन में 'ब्रह्म संहिता' का निम्न उद्धरण महत्वपूर्ण है—

“आचार ही एक महान वस्तु है। आचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्ति बिना करता है और उत्ती से सुफल प्राप्त करता है, आचार से श्री (पदवी) की प्राप्ति होती है। इसका विवेचन करते हुए क्यात देव ने कहा है कि आचार, बुद्धि, धन, पत्नी, पशु और मानव—ये क्रम में 'धार्मिक' होते हैं। इनमें विद्वान् धार्मिक गुरु दृष्टा करते हैं। जो प्राणी पाप में छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं वे सब 'महाभाग' बने जाते हैं। उनमें प्रथम वे हैं जो बुद्धिपूर्वक आचरण करते हैं। समस्त बुद्धि वाले

प्राणियों में मानव श्रेष्ठ होता है। मनुष्यों में विप्र श्रेष्ठ होते हैं, विप्रों से विद्वान् श्रेष्ठ हैं, उनमें श्रेष्ठ 'कृष्ण-बुद्धि' होते हैं। 'कृष्ण बुद्धि' से श्रेष्ठ 'कर्ता' और कर्ताओं से श्रेष्ठ 'ब्रह्मा तत्पर' हात है। तप और विद्या की दृष्टि से ये एक दूसरे के पूजनयोग्य माने जाते हैं। ब्रह्मा के द्वारा ही 'ब्राह्मण' की सृष्टि की गई है इसलिए वह सब प्राणियों में श्रेष्ठ और पूज्य है। पर समस्त श्रेष्ठताओं का आधार सदाचार ही है। जो आचार से रहित है वह सब कुछ भी नहीं है। इसलिए ब्राह्मण को सदा आचारवान होना चाहिए। वह राग द्वेष स भी परे हाता है और सभी बुद्धिमान उसका सम्मान करते हैं। उनके मतानुसार ऐसा सदाचार ही धर्म का मूल है। जो व्यक्ति अन्य प्रकार से श्रेष्ठताओं के लक्षणों से युक्त न जान पड़े पर जो पूरा सदान्वित हो और किसी से ईर्ष्या द्वेष न रखता हो, वही ससार में सौ खप भोविन रहने योग्य है, जिससे उसके द्वारा प्राणियों का हिन साधन जाना रहूँ।"

"इसलिए मनुष्यों को सदैव साधन होकर सदाचार-धर्म का पालन करना चाहिए। जिसका भ्रूताव दुराचार की आर होना है वह लोक में महान् निन्दा का पात्र होता है। दुराचारों द्वारा जनक प्रकार की व्याधियों—रोगों से घिरा रहता है और इस कारण उसका जीवन भी अल्प हो जाता है और वह हमेशा दुःख ही भोगा करता है। इसलिए मनुष्य को वही कर्म करना चाहिए, जिसके करने से अंतरात्मा प्रसन्न हो इसके विपरीत कर्म कभी नहीं करना चाहिए।"

'परलोक' में तो एकमात्र धर्म ही मङ्गी होता है। इसलिए सर्वदा इस बात को ध्यान में रखें कि अपने से पर पीड़ा रूप पाप कम कभी न हो। रिता, माना, पुत्र, भ्राता, स्त्री और बन्धु बान्धव ता केवल छोटे समय तक अपने जान पड़ते हैं, अन्त में वह जीव अज्ञान ही आया है और अज्ञान ही आवगा। अपने पुत्र अथवा पशुपुत्र कर्मों का फल भी उसको स्वयं भोगना पड़ता है। इनके लिए अपनी भलाई बुराई समझन

पाले व्यक्ति को मदैव उत्तम पुण्यो की ही सगति करनी चाहिए, जिससे श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा मिलती रहे । जिन लोगों के विचार अधमना के हो, उनका मदैव परित्याग करना चाहिए । इसी मार्ग पर चलने से 'श्रद्धा' सच्ची श्रेष्ठता और पूज्य पद प्राप्त किया जाता है और इसके विपरीत चलने से वह नीचता को प्राप्त हो जाता है ।"

राम-नाम की महिमा—

यद्यपि तीनों देवों—ब्रह्मा, विष्णु, महेश की एकता का प्रतिपादन अनेक पुराणों में किया गया है और हम इस भूमिका के आरम्भ में ही हम वषा को उद्धृत कर चुके हैं, जिसमें प्रकट होना है कि ये महान देवगण परस्पर एक दूसरे को बढ़ कर मानते हैं । पर आगे चल कर 'ब्रह्म संहिता' में राम नाम की महिमा का जिन रूप में वर्णन किया गया है, वह भी अद्भुतपूर्ण है । तुलसी दासजी की 'रामायण' वर्तमान समय में 'राम' की महिमा का सबसे अधिक प्रचार करने वाला ग्रन्थ माना जाता है । उसके आरम्भ में ही निम्न-पायनों के मन्वाट के रूप में राम नाम की महिमा का वर्णन दिया गया है । 'स्कन्द पुराण' के अथर्वशतक नाम पर बना चलना है कि गोस्वामी जी ने उसका भाव इन पुराण में ही ग्रहण किया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं । 'रामायण' में पावती जी ने निम्नोक्त से कहा है—

जा मोपर प्रसन्न सुखरामी,

जानिअ मत्प मोहि निज दासी ।

तो प्रभु हरहु मोर अग्याना,

बहि अघुनाय बचा विधि नाना ।

संस सारदा वेद पुराणा,

सरन करहि रक्षयनि गुन गाना ।

तुम्हें पुनि राम-राम दिन राती,
सादर जपहुँ अनन्य आराती ।
जदपि जोषिता नहि आधिकारी,
दासो मन कम वचन तुम्हारी ।

‘भक्त्य पुराण’ में भी कहा गया है कि जब शिव-पार्वती एकान्त स्थान में बैठे थे तो पार्वती जी ने उनसे कहा—

सतः सा विश्वजननो पार्वती प्राह शङ्करम् ।
इयं ते करुणा निरुपमलला महेश्वर ॥
त्वया किं जप्यते दश सन्देहयनि मे मनः ।
त्वमेकः सर्वभूतानाम् कृत्स्नरुलेश्वरः ॥
त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्वं व्यायसिचेजसा ।
तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ॥

“उन अवसर पर जगत जननी पार्वती जी ने शङ्कर भगवान से कहा कि आप जी सदैव अपने हाथ में माला लेकर जप करते रहते हैं, वह क्या बात है ? मेरे मन में यही सन्देह बारम्बार उठता रहता है । आप तो समस्त प्राणियों के एकमात्र ईश्वर हैं । क्या आपके ऊपर भी कोई श्रम तत्व है, जिसका आप चिन्तन तथा ध्यान करते रहते हैं ? हमारा जी कुछ रहस्य ही वह आप मुझे अवश्य बतायें क्योंकि मैं आपके प्राण-प्रिया हूँ ।”

श्री शिवजी ने उत्तर दिया — ‘मैं जिस नाम का जप और ध्यान करता हूँ वह भगवान के समस्त नामों का सार रूप है । मैं ‘राम’ नाम वाले सर्वश्रेष्ठ अवतार का ध्यान करता हूँ । बिन भगवान के सभी तः २४ अवतार हो चुके हैं, मैं उन्हीं का जप करता रहना हूँ । इन सब का सार का भी सार है वह ‘शिव’ नाम वाला है और वह सनातन दाद

अक्षरो से समुक्त ब्रह्म का हो रहा है । इस प्रकार के सहित जो द्वादश अक्षरो का बीजक है, उसका जाप करने वाले के लिए तो यह इतना प्रभावशाली सिद्ध होता है कि समस्त पापों को दावाग्नि के समान तनिक देर में भस्म कर देता है । यह सब से अधिक महान् और तेजस्वी है । यह इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है और सीने लोको का यह भूषण है यह शुभाशुभ का विनाश करने वाला करोड़ों जन्मों में प्राप्ति होता है । द्वादश अक्षर का चिन्तन करना ही परम ज्ञान है ।”

पर विधि-विधानों के कारण सब लोगों के लिए पूरा द्वादश अक्षर मन्त्र का जाप भी आवश्यक नहीं है । कबल ‘राम’ का नाम लेकर ही ये अपना उद्धार कर सकते हैं । इस सम्बन्ध में शिवजी ने बतलाया—

रामेति द्व्यक्षर जपः सर्वं पापापनोदकः ।
 गच्छस्तिच्छदानो वा मनुजो राम कीर्तनात् ॥
 इहनिवृत्तिमायाति प्रान्तेहरिगणो भवेत् ।
 रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्र कोटिशताधिकः ॥
 न रामादधिक किञ्चित्पठनं जगती तले ।
 रामनामाश्रया ये वै न तेषां यम यातनाः ।
 ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्च ये ।
 रामनाम्नैव विलययान्ति नात्र विचारणाः ॥
 रमते सर्वं भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
 अन्तरात्म स्वरूपेण यच्च रामोऽत कथ्यते ॥
 रामेति मन्त्र राजोऽयं भय व्याधि विपूदकः ।
 रणे विजयदश्चापि सर्वं कार्यार्थं साधकः ॥
 सर्वतोऽर्थं फल प्रोक्तो विप्राणामपि कामदः ।
 रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ।

तस्मात् त्वमपि देवेशि राम नाम सदा वद ।

रा नाम जपेद्यौ व मुच्यते सर्वं किल्बिषं ॥

“ ‘राम’ इन दो अक्षरों का जप समाप्त पापों को नष्ट करने वाला है । चलते-फिरते, बैठे हुए, लेटे हुए राम का जप करते रहने से मनुष्य-निश्चय ही भल-ब-चनो से छुटकारा पा कर भगवान का सांनिध्य प्राप्त कर लेता है । यह दो अक्षरों का ‘राम’ नाम मन्त्र करोड़ों मन्त्रों की अपेक्षा शक्तिशाली है । यह सभी प्रकृति वालों के लिए पाप नाशक कहा गया है । इस संसार में राम-नाम से बढ़ कर पढ़ने लायक और कोई वस्तु नहीं है । जो केवल इस नाम का अवलम्बन लेता है उसको यम-यातना कदापि सहन नहीं करनी पड़ती । सभी प्रकार के दोष, विघ्न, विग्रह, विनाश करने वाले कारण राम-नाम के प्रभाव में दूर हो जाते हैं । समाप्त प्राणिमो में जाहे वे म्थावर हो या अजन्म, श्रीराम ही अन्तरात्मा के रूप में उपस्थित रहने हैं ‘श्रीराम’ का नाम तो मन्थराज है, जिससे संसार का प्रत्येक भय और व्याधि नष्ट हो सकती है । यह मन्थराज सब तरह के संपत्तियों में विजय प्राप्त कराने वाला और समाप्त कार्यों में निष्ठा प्रदान करने वाला है । इसे समस्त तीर्थों का फल प्रदान करने वाला कहा गया है । यह बिशेष के लिए भी समस्त कामनाओं का पूरा करने वाला होता है । किम समय मूल से ‘श्रीरामचन्द्र’ ‘श्रीराम’ इन शब्दों का उच्चारण किया जाता है, तो तत्काल सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं । इसलिए हे देवी (पार्वतीजी) आप भी ‘श्रीराम’ के शुभ नाम का उच्चारण किया करो, इससे समस्त पाप, दोष निश्चय ही दूर हो जाते हैं । ”

‘शिव’ नाम की महिमा—

राम-नाम की महिमा सुन कर नमिपारह्य के मुनिपों ने शिव नाम की महिमा वर्णन करने की प्रार्थना की तो मूतजी कहने लगे —

"श्री शिवाय नमः — मन्त्र का जप करने का फल महान कल्याणकारी होता है । यह पचासवीं मन्त्र अपने उपासक को निश्चय ही शक्ति प्रदान करने वाला है । इसलिए मुक्ति की आकांक्षा रखने वाले सभी मुनि-ऋषियों द्वारा इसका सेवन किया जाता है । इस मन्त्र का माहात्म्य चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा भी नहीं कहा जा सकता । समस्त श्रुतिग्रन्थों, उपनिषदों तथा धर्म-शास्त्रों का सार इस शिव-मन्त्र में समझना चाहिए । सर्व चित् और आनन्द के लक्षण वाले भगवान् शिव स्वयं इसमें रमण किया करते हैं । इसी मन्त्रराज का आश्रय लेकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने परम ब्रह्म की प्राप्ति किया था । भगवान् शिव को इस प्रकार नमस्कार करने से जीव, ब्रह्म-ऐवम् प्राप्त कर लेता है ।"

"भक्त-व-धर्मों में अन्तःश्रुति के उद्धार के लिये ही भगवान् शिव ने स्वयं इस 'श्री नमः, शिवाय' मन्त्र को कहा था । यह मन्त्र जिस मनुष्य के हृदय बस जाना है फिर उस बहुत-से अर्थ जप तप, कष्ट महत्तम तथा प्रयोजन है ? ये बह्वचारी सभी तक घनेक दुःखों की भोगने हुए इन दास्य जगत में भ्रमण किया करते हैं, जब तक इन महामन्त्र का उच्चारण नहीं करते । यह पचासवीं मन्त्र अनेक मन्त्रराजों का भी राजा है । यह सम्पूर्ण वेदान्तों में शिरोमणि है, सम्पूर्ण ज्ञान का निधान है, मोक्ष-मार्ग का दीपक है और अविद्या-समुद्र का बहवन्त है । यह महान पातकों को नष्ट करने के लिए वायव्य के सुभ्य है । मुक्ति की इच्छा रखने वाला व्यक्ति, चाहे वह दूध, स्त्री भयवा निम्न सभी प्राणियों की जाति का क्यों न हो, इसको बिना बाधा के पारण कर सकता है । इस मन्त्रराज में न कोई दोषा हाती है, न हीन होता है, न कोई सम्भार-वर्णन आदि करना पड़ता है । इस मन्त्र का कोई विशेष बान भी नहीं है, न कोई विशेष उपदेश होना है । यह मन्त्र भी मर्यादा ही मुक्ति देता है । इसीलिए कहा गया है—

महापातक विच्छिन्नं शिवइत्यक्षरं द्वयम् ।

अल नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ॥
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रेच पावने ।
सद्योपथेप्सितांसिद्धि ददातीतिकिमद्भुतम् ॥

‘महापातको को दूर करने के लिये ‘जिब’ में दो छद्म ही पर्याप्त होते हैं । जब इन दो छद्मों में नमः’ किया जाकर जोड़ दिया जाता है तो वह ‘नम शिवाय’ महामन्त्र मुक्ति प्रदाता बन जाता है । यदि इसका उपदेश किसी सद्गुरु ने लेकर किसी पुराण क्षेत्र में इसका जप किया जाय तो वह तुरन्त ही इच्छित मनोरथ की पूर्ति करने वाली होना है, हममें कुछ भी आश्चर्य नहीं है ।’

इसी प्रकार ‘कृष्ण नाम’ की महिमा भी उन्मुक्त भाव में बयन की गई है । भगवान् विष्णु ने स्वयं ब्रह्माजी को बतलाया कि जो प्रति-दिन ‘कृष्ण कृष्ण’ का उच्चारण किया करता है वह कभी नकगामी नहीं हो सकता—

कृष्ण कृष्णोति कृष्णोति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जल भित्त्वा यथा पद्म नरकादुद्धराम्यहम् ॥

पाठक कदाचित् एकही साथ राम, कृष्ण, शिव तीनों का एक-सा माहात्म्य और एक सा प्रभाव सुन कर इस असमञ्जस में पड़ जायें कि इन तीनों में से कौन ज्यादा ठीक है, अथवा विद्वेष फल देने वाला है ? अनेक तर्क वितर्कवादी इस प्रकार भिन्नतायुक्त कथनों को देख कर ही पुराणों की विपरीत आलोचना करने लगते हैं कि उनमें तो तरह तरह की परस्पर विरोधी बातें भरी हुई हैं । उनको जानना चाहिए कि इस प्रकार की भ्रान्ति रखने वालों को समझाने के लिए ही इन तीनों का यहाँ एक साथ किया गया है । हम ऐसे संशयग्रस्त या सम्प्रदायवादी सज्जनों को बतलाना चाहते हैं कि सभी मन्त्र, जप, अनुष्ठान उत्तम हैं,

यदि उनको शुद्ध मन और सच्चे भाव से किया जाय । समस्त शक्ति और सिद्धियाँ आपके हृदय के भीतर हैं । हमको तो इसमें कोई बुराई नहीं जान पड़ती कि यदि एक व्यक्ति राम का नाम लेता, है, दूसरा शिव का जप करता है और तीसरा देवी की उपासना करता है । करोंडों के जन-समूह में यदि सम्कार-भेद, देशभेद आदि के कारण दो-चार तरह की उपासना पद्धतियाँ—माधना मार्ग नाम से लाये जायें तो इसमें कोई हानिकारक बात नहीं जान पड़ती ।

राम, शिव अथवा कृष्ण आदि नाम केवल एक सामान्य साधन मात्र हैं । आप हठ श्रद्धा और सच्चे हृदय से जिन ध्येयों के लिये और नियम-समय पूर्वक उमका ध्यान करेंगे तो थोड़े फल का प्राप्त होना निश्चित है । हममें किसी प्रकार के प्रमाण, तर्क या विवाद की गुँजा-यश नहीं । हमारे मन की शक्ति और हठ धारणा इतनी अधिक प्रभाव-शाली है कि यदि उसको समझ लिया जाय और उचित रीति से प्रयोग किया जाय, तो उसके लिए कोई कार्य असंभव अथवा असम्भव नहीं है । विभिन्न दृष्टि-देवों अथवा विशिष्ट विधि-विधानों की अपेक्षा अथवा प्रश्न के ही लगे उठाया करते हैं, जिनकी अन्तरात्मा हमें सोयी पड़ी है और जिन्हें हमें पहिचाना नहीं है । अथवा यदि उन्हें जागृत करें तो वो क्या एक ही अक्षर का मन्त्र हमारा चेहरा पार कर सकता है ।

पर इस विवरण से जो मुख्य बात प्रकट होती है, वह स्कन्द-पुराणकार की निम्नलिखित साम्प्रदायिक भावना है । किसी एक दृष्टि-देव की माधना में कोई बुराई की बात नहीं है, पर यदि अपने दृष्टि की प्रशंसा के लिए दूसरे की निन्दा-बुरमा की जाय तो यह निश्चय ही एक गदित मानव-रक्षण है ।

स्कन्द पुराण' को एक प्रकार से तीर्थों की मार्गदर्शिका (गाइड) कहें तो अनुचित न होगा । इसमें सेतुबन्ध रामेश्वर से बद्रीनारायण तक

घोर जगन्नाथ पुरी से लेकर उज्जैन तक के हजारों तीर्थों का दर्शन है, घोर उन्हीं के सन्दर्भ में हजारों कथाएँ भी दी गई हैं । दक्षिण भारत (मद्रास) के गरुडाचल और वेङ्कटाचल, उडुपी के पुरी, उत्तर प्रदेश के काशी और मालवा के उज्जैन से सम्बन्धित समस्त छोटे-बड़े मन्दिरों, देवालयों, शिवालयों का तो इसमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । प्रयोध्या का भी वर्णन बहुत अधिक है और व्रज का भी परिचय ठीक तरह से दिया गया है । द्वारिका-वर्णन इसमें नहीं पाया जाता, जिसका कारण सम्भवतः यह हो कि उसका महत्त्व तीन-चार सौ वर्ष से ही घटने लगा है ।

जैसा हम लिख चुके हैं समस्त पुराणों में 'स्कन्द पुराण' अधिक हलक सस्तरा वाला है । यह ग्रन्थ पचास वर्ष पहले जब छपा था तब १०० १५० रु० में मिलता था और अब तो अगर एकाध प्रति मिल भी सकती है तो कीमत दस गुनी मानी जाती है । यही कारण है कि जननाधारण 'सत्यनारायण की कथा' में इसका नाम 'इति श्रीस्कन्द पुराणे देवा खडे'सुन लेने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते । हमने इसके छोटी खंडों की उपयोगी सामग्री को बड़े परिश्रम से संग्रहित किया है । हमें आशा है कि हमारा यह सुलभ और सजोधित, सस्तरण पाठकों को अवश्य लाभकारी प्रतीत होगा ।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

भूमिका

३

✽ महेश्वर-खण्ड ✽

१. दक्ष वृत्तान्त वर्णन	३३
२. दक्ष-यज्ञ वर्णन	४२
३. सती का दक्ष यज्ञदाला में प्रवेश	५३
४. देवताओं और शिष्यगणों में युद्ध	६५
५. वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरच्छेदन	७८
६. लिंग प्रतिष्ठा वर्णन	८६
७. देवों द्वारा लिंग को स्तुति	९८
८. गायत्रीपाठान	१०८
९. गुप्त की अचक्षा से द्रुम्भ का राज्य भग	१२६
१०. तदमी देवों का आविर्भाव	१३८
११. अमृत विभाजन वर्णन	१४३
१२. त्रिवलिन माहात्म्य वर्णन	१५५
१३. राशि नक्षत्र निर्माण	१७४
१४. दाग भेद प्रशङ्गा वर्णन	१८१
१५. सुतनु और नारद सम्वाद	१९८
१६. शिव-पूजन माहात्म्य वर्णन	२२३
१७. विषय शिव-छेपों का चरित्र सहित वर्णन	२३५
१८. सरलावन रहस्य वर्णन	२४६
१९. सरलावन स्थान माहात्म्य	२५३

॥ स्कन्दपुराण ॥

॥ माहेश्वर खंड ॥

१—दक्ष वृत्तान्त वर्णन

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम् ।
 देवीं सरस्वतींचैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
 यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरिञ्चिः पालको हरिः ।
 संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने ॥२॥
 तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।
 तत्रैव नैमिषारण्येक्षी न काद्यास्तपोधनाः ॥
 दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तः सत्रिणः कर्मचेतसः ॥३॥
 तेषां सद्दर्शनोत्सुक्या दागतो हि महातपाः ।
 व्यासशिष्यो महाप्राज्ञो लोमशो नामनामतः ॥४॥
 तत्रागतं ते ददृशुर्मुनयो दीर्घसत्रिणः ।
 उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे साध्यं हस्ताः समुत्सुकाः ॥५॥
 दत्त्वाऽऽध्यपाद्य सत्कृत्य मुनयो वीतकल्मषाः ।
 तं पप्रच्छुर्महाभागाः शिवधर्मं सविस्तरम् ॥६॥

भगवान् श्री नारायण की सेवा में नमस्कार समर्पित करके नरों में उत्तम नर को प्रणाम करके तथा देवी सरस्वती की वन्दना करके इसके पश्चात् जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए ॥१॥ जिसकी आज्ञा से विरञ्चि इस जगत् का सृजन करने वाला है—हरि (श्री विष्णु) इस जगत् के पालक हैं और काल रुद्राख्य संहार 'किया' करते हैं उन

भगवान् पिनाकी के लिए नमस्कार है । २। यहीं पर जैमिपारण्य में जो समस्त तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ उत्तम तीर्थ है तथा सम्पूर्ण क्षेत्रों में सर्वोत्तम क्षेत्र है शोनरु आदि तपोधन जो कर्म करने में चित्त वाले थे तथा सत्र करने वाले थे दीर्घ सत्र कर रहे थे । ३। उन समस्त तपस्वियों के दर्शन करने की उत्सुकता से महान् तपस्वी, महान् मनीषी, व्यासजी के शिष्य लोमश नामधारी आ गये थे । ४। उन दीर्घ सत्र करने वाले महामुनियों ने वहाँ पर समागत हुए उनका दर्शन किया था । ज्यों ही उन्होंने लोमश मुनि को देखा था वे सबके सब बड़े ही समुत्सुक होते हुये मध्यं पात्र हाथों में ग्रहण करके एक साथ उठकर खड़े हो गये थे । उन मुनियों ने लोमश महर्षि का मध्यं-पात्र समर्पित करके तथा सत्कार करके अपने समस्त कल्मषों को नष्ट करते हुए महान् भाग वाले उन मुनियों ने उन लोमश ऋषि से भगवान् शिव के धर्म की विस्तार के रहित पूछा था । ५। ६।

कथयस्व महाप्राज्ञ ! देवदेवस्य शूलिनः ।

महिमानं महाभागध्यानाचनसमन्वितम् । ७।

सम्मार्जने किं फलं स्यात्तथारङ्गावलीपु च ।

प्रदाने दर्पणस्याऽथतथा वै चामरस्य च । ८।

प्रदानं च वितानस्य तथा धारागृहस्य च ।

दीपदाने किं फलं स्यात्पूजायां किं फलं भवेत् । ९।

कानि कानि च पुण्यानि कथ्यतां शिवपूजने ।

इतिहासपुराणानि वेदाध्ययनमेव च । १०।

शिवस्याग्रे प्रकुर्वन्तिकारयन्त्यथवानराः ।

किं फलं च नृणां तेषां कथ्यतां विस्तरेण हि ।

शिवार्चयानपरो लोके त्वत्तो नान्योऽस्ति वै मुने ! । ११।

ज्ञातं च त्वा वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।

उवाच व्यासशिष्योऽसौ शिवमाहात्म्यमुत्तमम् । १२।

श्रुतिगण ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! अब आप कृपाकर शूली देवों के देव की महाभाग ध्यान और अर्चन से संपुक्त महिमा का वर्णन कीजिए । ७। संमार्जन करने में क्या पुण्य फल होता है—तथा रंगावली आदि करने में क्या फल होता है और दर्पण के प्रदान में एवं चामर के प्रदान में क्या पुण्य-फल हुआ करता है ? वितान के तथा धारा-ग्रह के समर्पण करने में क्या पुण्य होता है और दीपदान करने में एवं पूजा करने में क्या पुण्य फल हुआ करता है । हे भगवान ! यह बतलाइये कि भगवान शिव के पूजन में कौन-कौन से पुण्य हुआ करते हैं ? जो कोई मनुष्य भगवान शिव के आगे इतिहास पुराणों का पाठ-जाप तथा वेदों का अध्ययन किया करते हैं अथवा विप्रों से कराते हैं उन मनुष्यों को क्या पुण्य-फल होता है—इस सम्पूर्ण विषयों का आप हमारे सामने प्रति विस्तार के सहित वर्णन कीजिये । ७। ८। ९। १०। हे मुनिवर ! लोक में भगवान शिव के आख्यान करने में आपके सिवाय अन्य कोई भी महा-पुरुष नहीं है । ११। उन आवित आरमाओं वाले मुनिवों के इस वचन का श्रवण करके व्यासजी के शिष्य लोमश महामुनि ने उत्तम शिव के माहात्म्य को कहा था । १२।

अष्टादशपुराणेपुगीयते वै परः शिवः ।
तस्माच्छिवस्यमाहात्म्यवक्तुंकोऽपि न पार्यते । १२।
शिवेति षडक्षरनामव्याहरिष्यन्ति ये जनाः ।
ते पांस्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यति न चाप्यथा । १४।
उदारो हि महादेवो देवानां पतिरोत्तरः ।
येन सर्वं प्रदत्तं हि तस्मात्सर्वं इति स्मृतः । १५।
ते धन्यास्ते महात्मानो ये भजन्ति सदाशिवम् । १६।
विना सदाशिवं यो हि संसारं तनुमिच्छति ।
स मूढो हि महापापः शिवद्वेषो न संशयः । १७।
मक्षितं हि गरं येन दक्षयज्ञो विनाशितः ।
कालस्य दहनं येन कृतं राज्ञः प्रमोचनम् । १८।

‘यथागरं भक्षितं च यथायज्ञो विनाशितः ।

दशस्य च तथा श्रूहि परं कौतूह्यं हि नः ॥१६॥

दाक्षायणी पुरादत्ता शङ्कराय महात्मने ।

वचनाद्ब्रह्मणो विप्रा दक्षेण परमेष्ठिना ॥२०॥

महर्षि सोमदा ने कहा—भठारह पुराणों में भगवान शिव को पर बताया जाता है । इस कारण से भगवान शिव के माहात्म्य को बतलाने में कोई भी समय नहीं है । “शिव”—इस दो प्रकारो वाले नाम को जो मनुष्य कहेंगे उनको निश्चय ही स्वर्गलोक और मोक्ष होगा—इसमें शिव भी अन्यथा अर्थात् असत्य नहीं है ॥१३॥१४॥ समस्त देवगण का स्वामी ईश्वर महादेव परम उदार है जिसने सभी कुछ दे दिया है इसीलिए तो वे ‘सर्व’ इस नाम से कहे गए हैं । वे महान् आत्मा वाले पुरुष परम धन्य एवं भाग्यशाली हैं जो भगवान सदाशिव का भजन किया करते हैं ॥१५॥१६॥ जो कोई भी पुरुष सदाशिव धनु की कृपा के बिना ही इस घोर ससार से पार होना चाहता है अर्थात् शिव की आराधन न करके ही सासारिक बन्धन से छुटकारा पाकर परम गति को प्राप्त होना चाहता है वह महान् मूर्ख है, महान पापी है और भगवान शिव का द्वेषी है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है जिसने गरल का भक्षण किया था और दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विनाश किया था । जिसने काल का दहन किया था और राजा का प्रमोचन किया था । ॥१७॥१८॥ ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! जिस प्रकार से गरल का भक्षण किया था और जिस तरह यज्ञ का विनाश किया था जोकि प्रजापति दक्ष ने आरम्भ किया यह सभी आप हमको बतलाइये । हमारे हृदय में इसका बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥१९॥ सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! पहिले ब्रह्माजी के वचन से परमेष्ठी दक्ष ने महात्मा शङ्कर के लिये दाक्षायणी को प्रदान किया था ॥२०॥

एकदाहिं स दक्षो वै नैमिषारण्यमागतः ।

यद्वच्छावशमापन्न ऋषिभिः परिपूजित ॥२१॥

स्तुतिभिः प्रणिपातैश्चतयासर्वैः 'सुरासुरैः' ।

तत्र स्थितो महादेवो नाम्युत्थानाभिवादाने ।

चकाराऽऽस्य ततः क्रुद्धो दक्षो वचनमब्रवीत् । २२।

सर्वत्र सर्वे हि सुरासुरा भृशं नमन्ति मां विप्रवराः समुत्सुकाः

कथं ह्यसौ दुर्जनवग्महात्मा भूतादिभिः प्रेतपिशाचयुक्तः ॥

इमं शानवासी निरपन्नपो ह्ययं कथं प्रणामं न करोति

मेऽघुना । २३।

पाण्डिडनो दुर्जनाः पापशीला विप्रं दृष्ट्वा चोद्धता उन्मदाश्च ।

बध्यास्त्याज्याः सद्भिर्भरेवंविधा हि तस्मादेनं शापितुं बोधतो-

ऽस्मि । २४।

इत्येवमुक्त्वा स महातपा स्तदा द्वाग्वितो रुद्रमिदं वभाषे । २५।

भृष्वस्त्वमी विप्रतमा ! इदानीं वचो हि मे कर्तुमिर्हार्हये-

त्तत् ।

रुद्रो ह्ययं यज्ञबाह्यो वृत्तो मे वर्ण्यतीतो पर्णपरो यतश्च । २६।

मन्वीनिशम्यतद्वाक्यं शैलादोहिरुपान्वितः ।

अब्रवीत्स्वरितो दक्षः शापदत्तं महाप्रभम् । २७।

यह इच्छा से बसीभूत होकर एक बार वही प्रजापति दक्ष नेमिप
अरण्य में आ गया था और वहाँ पर श्रुतियों के द्वारा पूजा की गई थी
सभी ने जिनमें सुर एवं असुर भी थे उनकी स्तुति की थी एवं मली-
भाति दृष्टिपाठ भी किया था । वही पर महादेव भी संस्थित थे किन्तु
उन्होंने दक्ष को न तो गात्रोत्था न ही किया और न अभिवादन किया
था । इसे देखकर प्रजापति दक्ष को बहुत ही क्रुद्धा हुए थे और यह
वचन बोले थे—१२१।२२। मुझको सभी जगह पर सभी सुर-असुर और
विप्र वर बड़े ही उत्सुक होकर अत्यधिक नमन किया करते हैं फिर
यह महान भात्मा वाला भूत भादि से युक्त और प्रेत तथा पिशाचों के
सहित रहने वाला एक दुर्जन की भाँति मुझे देखकर भी बैठा रहा है ।

यह समझान में निवास करने जाता निर्गुण मुझे इस समय में प्रणाम क्यों नहीं करता है । १२३। जो पाषण्डी हैं, दुर्जन हैं, पापों के करने के स्वभाव वाले हैं, विष को देखकर उड़न रहते हैं तथा उन्मत्त हैं उन्हें सत्पुरुषों को श्वाग देना चाहिए और वे तो वध करने के योग्य हैं । इस-लिए मैं तो इसको ब्रह्म क्षाप देने को उद्यत हो रहा हूँ । १२४। इस प्रकार से इतना कहकर वह महान तपधारी उस समय में क्रोध से समुक्त होकर भगवान् रुद्र से बोला—१२५। हे प्रियतमो ! भाप जो यहाँ हैं ये सब मुन लेगे । इस समय में जो भी मेरा वचन है उसे भाप सब उसी भाँति करने के योग्य होते हैं । यह रुद्र यज्ञों से बहिष्कृत किया गया है ऐसा मुझे सम्मत है क्योंकि यह वर्णातीत और वर्ण पर एवं यत है । १२६। नन्दी ने दक्ष के इस वाक्य का श्रवण करके वह क्षोलाद बहुत ही क्रोधित हुआ और बड़ी क्षोभता के पंश गत होकर उस क्षाप देने वाले महा प्रभा सम्पन्न दक्ष से बोला । १२७।

यज्ञबाह्यो हि मे स्वामोमहेशोऽयंकृतः कथम् ।
 यस्य स्मरणमात्रेण भृशोऽसफ नाह्यमो । १२ ।
 यज्ञो दानं तपश्च व तीर्थानि विविधानि च ।
 यस्य नाम्ना पवित्राणि सोऽयं क्षतोऽधुना कथम् । १२६।
 वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छतोऽयंदक्ष दुर्मते ।
 येनेदं पालितं विश्वं सर्वेण च महात्मना ।
 क्षतोऽयं स कथं पाप ! रुद्रोऽयं ब्राह्मणाधम ! । १३०।
 एवं निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः ।
 नन्दिनश्च शशापाथ दक्षोरोपसमन्वितः । १३१।
 यूय सर्वे द्रुवरुवा वेदबाह्याश्च वं भृशम् ।
 क्षप्ता हि वेदमार्गैश्च तथात्यक्ता महर्षिभिः । १३२।
 पाषण्डवादसंयुक्ताः शिष्टाचारबहिष्कृताः ।
 कपालिनः पानरतास्तथा कालमुखाह्यमो । १३३।

इतिशप्तास्तदातेन दक्षेण शिवकिंकराः ।

तदा प्रकुपितो नन्दी दक्षं शप्तुं प्रचक्रमे ।३४।

नन्दी ने कहा—मेरे स्वामी भगवान् महेश को यज्ञों से बहिष्कृत कैसे या क्यों किया है । जिस महात्मा सर्व ने इस सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है । महेश का तो वह प्रभाव है कि जिसके केवल स्मरण भर कर लेने से ही ये समस्त यज्ञ सफल हुआ करते हैं । २८। यज्ञ, दान, तप, तीर्थ जो कि अनेक हैं ये सभी जिसके नाम से ही पवित्र हुआ करते है उसी महाप्रभु को इस समय में क्यों शाप दिया गया है ? । २९। हे दुष्ट बुद्धि वाले दक्ष ! आपने ब्रह्म की चपलता से वृथा ही इनको शाप दे दिया है । जिसने इस सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है । हे ब्राह्मणों में नीच ! हे महापापी ! यह भगवान् रुद्र हैं उनको क्यों शाप दिया गया है ? । ३०। उस नन्दी ने इस प्रकार से उस प्रजापति को फटकारा और रोप में भरकर दक्ष ने नन्दी को शाप दिया था । ३१। तुम सभी रुद्र वर अत्यन्त ही वेद बाह्य हो और वेदों के मार्ग वाले मूर्खों के द्वारा परित्यक्त एवं शत हैं । शाप सभी पापण्डित में रति रखने वाले, शिष्टों के आचार से बहिष्कृत, कपालधारी, पान करने में निरत तथा काल मुल हैं । इसी कारण उस समय में उस दक्ष ने वे शिव के सब किंकरो को शाप दिया था उसी समय में प्रकुपित होते हुए नन्दी ने दक्ष को शाप देने की तैयारी की थी । ३२। ३३। ३४।

शप्ता दयं दव्या विप्र साधवः शिवकिंकराः ।

वृथैव ब्रह्मचापल्यादहं शापं ददामिते ।३५।

वेदवादरता यूयं नान्यदस्तीति चादिनः ।

कामात्मनः स्वर्गपरा लोभमोहसमन्विताः । ३६।

वैदिकश्च पुरस्कृत्य ब्राह्मणाः सूद्रयाजकाः ।

दरिद्रिणो भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा । ३७।

दक्ष ! केचिद् भविष्यन्ति ब्राह्मणाः ब्रह्मराक्षसाः ।

विप्रास्ते शापितास्तेन नन्दिना कोपिना भृशम् । ३८।

अथाकर्ण्येश्वरो वाक्य नन्दिनः प्रहसन्निव ।

उवाच वाक्यं मधुरं बोधयुक्तं सदाशिवः ॥३६॥

कोप नाहंसि वं कर्त्तुं ब्राह्मणाप्रिन्त वं सदा ।

ब्राह्मणाः गुरुबोह्येते वेदवादरताः सदा ॥४०॥

वैदोमन्त्रमयः साक्षात्तथासूक्तमयो भृशम् ।

सूयते प्रतिष्ठितो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥४१॥

तस्मान्नात्मविदो निन्द्या आत्मवाह नचेतर ।

कोऽप्य कस्तं नव चाह वै कस्माच्छ्रिता हि वै द्विजाः ॥४२॥

हे विप्र ! हम परम साधु स्वभाव वाले शिव के सेवको को आपने शाप दे दिया है । यह वृथा ही ब्रह्म चापल्य के होने के कारण से ही दिया है । भण्डा, अब मैं तुमको भी शाप देता हूँ ॥३५॥ आप लोग वेदों के बाद करने में रति रखने वाले हैं और दूसरा कोई नहीं है—ऐसा कहने वाले हैं । आप लोग कामात्मा और स्वर्ग परायण हैं तथा लोभ और मोह से समन्वित रहते हैं । ब्राह्मण लोग किसी एक वैदिक को आगे करके दूसरों को यजन कराने वाले तथा सदा प्रतिग्रह ग्रहण करने में ही रति रखने वाले दरिद्री हो जायेंगे ॥३६॥ हे वक्ष ! कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्म राजस होंगे । लोमश मुनि ने कहा—इस प्रकार मैं कोप करने वाले नन्दी ने अत्यन्त ही अधिक उन ब्राह्मणों को शाप दे दिया था । इसके अनन्तर सदाशिव ने जो ईश्वर हैं इस नन्दी के वाक्य को सुनकर हँसते हुये बोध से युक्त परम मधुर वाक्य कहा— ॥३७॥३८॥३९॥ श्री महादेव ने कहा—हे नन्दी ! इन ब्राह्मणों के प्रति कोप करने के योग्य तुम नहीं होते हैं । ये ब्राह्मण तो सदा ही गुरु हैं और वेदवाद में अनुरत रहा करने हैं । वेद साक्षात् मन्त्रमय है और अत्यन्त अधिक सूक्तमय होता है । सूक्त में आत्मा प्रतिष्ठित है जो कि सभी देहधारियों का होता है । इसलिये आत्मा के ज्ञाताओं के ज्ञातागण निन्दा करने के योग्य नहीं होते हैं क्योंकि मैं आत्मा ही हूँ अन्य नहीं

हूँ । यह कौन है, कौन उसको ओर कहा मैं हूँ । कैसे ब्राह्मणों को क्षाप दिया है । ४०।४१।४२।

प्रपञ्चरचनां हित्वा वृद्धो भव महामते ! ।

तत्त्वज्ञानेन निर्वर्त्यस्वस्थः क्रोधादि वर्जितः । ४३।

एवं प्रबोधितस्तेन शम्भुना परमेष्ठिना ।

विवेकपरमो भूत्वा क्षीलादो हि महातपाः ।

शिवेन सह संगम्य परमानन्दसम्प्लुतः । ४४।

दक्षोऽपि हि रूपाविष्टऋषिभिः परिवारितः ।

ययौ स्थानस्वकं तत्र प्रविवेश रूपाग्वितः । ४५।

श्रद्धां विहाय परमां शिवपूजकानां ।

निन्दापरः स हि बभूव नराधमश्च । ४६।

सर्वे महर्षिभिरुपेत्य स तत्र शर्वम् देव ।

निनिन्द य बभूव कदापि शान्तः । ४७।

इस प्रपञ्च की रचना का त्याग करके हे महामति वाले ! तुमको प्रवृद्ध हो जाना चाहिये । तत्त्वज्ञान से निर्वृति प्राप्त कर स्वस्थ एवं क्रोधादि से रहित हो जाइये । इस प्रकार से उन परमेष्ठी शम्भु के द्वारा प्रबोध दिये गये क्षीलाद जो कि महान तपस्वी थे विवेक परम होकर भगवान् शिव के साथ जाकर परमानन्द से सम्प्लुत हो गये थे । ४३।४४। प्रजापति दक्ष भी रोष के आगेश में भरे हुये महर्षियों से चारों ओर घिरे हुए अपने स्थान को चले गये थे और यहाँ पर क्रोध से मुक्त रहते हुए ही उनसे प्रवेश किया था । ४५। उस प्रजापति दक्ष ने अपनी परम श्रद्धा का एकदम त्याग कर दिया था और वह मनुष्यों में महान अधम शत्रु की पूजा करने वाली की निरन्तर निन्दा करने में ही तत्पर हो गया था सब महर्षियों के साथ वह उपस्थित होकर भगवान् तपस्वी की निन्दा किया करता था और उसे कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं हुई । ४६।४७।

२—दक्षयज्ञवर्णन

एकदा तु तदा तेनयज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
 तत्राऽऽहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेनतपस्विना ।१।
 ऋषयोविविधास्तत्रवसिष्ठाद्याः समागताः ।
 अग त्यः कश्यपोऽत्रिश्चावामदेवस्तथाभृगुः ।२।
 दधीचो भगवान्ध्यासो भरद्वाजोऽथ गीतमः ।
 एते चान्ये च बहवः समाजग्मुर्महर्षयः ।३।
 तथा सर्वे सुरगणालोकपालास्तथाऽपरे ।
 विद्याधराश्चगन्धर्वाः किनराप्सरसागणाः ।४।
 सप्तलोकात्समानीतो ब्रह्मालोकपितामहः ।
 वैकुण्ठाच्च तथाविष्णुः समानीतोमखम्प्रति ।५।
 देवेन्द्रो हि समानीतइन्द्राण्यासह सुप्रभः ।
 तथा चन्द्रो हि राहिण्यावरुणः प्रिययासह ।६।
 कुबेरः पुष्पक.रुद्धो मृगारुद्धोऽथ मारुतः ।
 वस्तारुद्धः पावकश्च प्रेतारुद्धोऽथ निश्चैतिः ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा—एक समय में उस महान् तपस्वी
 दक्ष ने एक महान् यज्ञ का आरम्भ किया उस समय में उस दक्ष ने सभी
 को समाहूत किया था । उस यज्ञ में अनेक ऋषिगण वसिष्ठ आदि वहाँ
 पर समागत हुए थे । उन समागत हुए ऋषियों में अगस्त्य, कश्यप,
 अत्रि, वामदेव तथा भृगु थे । दधीच, भगवान् ध्यास, भरद्वाज, गीतम
 ये सब और अन्य भी बहुत महर्षिगण वहाँ पर आये थे ।१।२।३। समस्त
 सुरगण, सभी लोकपाल, विद्याधरगण, क्षिप्र, अप्सरागण वहाँ पर
 सभागत हुये थे ।४। सप्तलोक से ब्रह्मालोक के पितामह ब्रह्माजी को लाया
 गया था—वैकुण्ठ से भगवान् विष्णु को उस महायज्ञ में बुलाया गया था
 और उस महान् मण्ड में उसको सम्मिलित किया गया था । देवों के इंद्र
 के भी इन्द्राणी के साथ वहाँ पर लाया गया था । रोहिणी के सहित

सुन्दर प्रभा से सम्पन्न मन्द्रदेय तथा अपनी प्रिया के साथ वरुण देव वहाँ पर बुलाये गये थे । ११६। पुष्पक विमान पर सवारोहण करने वाले कुबेर, मृग पर आरुढ़ मोहन देव, वस्तारुद्ध अग्निदेव और श्रेत पर सवारी करने वाले निश्रुति देव वहाँ पर उभ महान यज्ञ में समागत एवं समाहूत हुये थे । १७।

एते सर्वे समायातायज्ञवाटे द्विजन्मनः ।
 ते सर्वे सत्कृतास्तेन दक्षेण च दुरात्मना । १८।
 भवनानिमहार्हाणि सुप्रभाणिमहान्तिच ।
 त्वष्ट्राकृतानिदिव्यानि कौशल्येन महात्मना । १९।
 तेषु सर्वेषु घिष्ण्येषु यथाजोषं समास्थिताः । २०।
 वर्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तथा ।
 ऋत्विजश्च कृतास्तेनभृग्वाद्याश्चतपोधनाः । २१।
 दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः ।
 भार्यासहितोविप्रैः कृतस्वस्त्ययनोभृशम् । २२।
 रेजे महत्त्वेन तदा मुहूर्दिभः परितः सदा ।
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् । २३।

ये सब द्विजम्मा उस यज्ञ बार में आये थे । उस दुरात्मा दक्ष ने उन सब समागत महानुभावों को भक्तकृति किया था । वहाँ पर सुन्दर प्रभा से सम्पन्न, परम विशाल और बहुमूल्य वाले भवन थे जिनको अपने बड़े ही कौशल से त्वष्टा ने निर्मित किया था और जो अत्यन्त दिव्य एवं उत्तम थे । उन सबमें जो बहुत ही उत्तम थे उन सबको बहुत ही दान्ति पूर्वक समास्थित किया था । १८। १९। २०। उसकनखले तीर्थ में जो वर्तमान महान् यज्ञ हो रहा था उसमें ऋषि आदि तपोधनों को उन प्रजापति दक्ष ने ऋत्विज नियुक्त किया था । २१। उस समय में दक्ष ने उस यज्ञ का मन्त्रादन करने के लिये दीक्षा ली थी और कौतुक मगन किया था । विप्रों के सहित उसने अपनी भार्या को साथ में लेकर बहुत ही अधिक स्वहाय्यम किया था । २२। उस अवसर पर वह महा मुहूर्तों

विराजमान हैं । लोकों के पितामह ब्रह्माजी सत्यचोक से यहाँ पर घाये हुए हैं जिनके साथ सब वेद, उपनिषद् और आगम भी घाये हुये हैं । १२२।२३। उसी समस्त सुरु के समुदाय के साथ सुरुओं को राज भी स्वयं यहाँ पर घाये हुए हैं । और आप कल्मषों से रहित ऋषिगण भी यहाँ पधारे हुए हैं । जो भी यज्ञ में आने के लिये समुचित पात्र हैं तथा परम दान्त हैं वे-वे सभी यहाँ पर समागत हो गये हैं । आप लोग सभी वेद और वेदार्थ के तत्त्वों के ज्ञाता और दृढ़ व्रत वाले हैं । १२८।२५। यहाँ पर हमको रुद्र से भी बड़ा प्रयोजन रह गया है । हे विप्रगण ! ब्रह्मा के कथन से ही मैंने उसको अपनी कन्या का प्रदान किया है । हे विप्रगण ! यह सदा प्रियों की नष्ट करने वाला, नष्ट और भङ्गनीता है तथा भूत, प्रेत और पिशाचों के पति हैं एवं दुरत्यय है । १२६।२७।

आत्मसम्भावितो मूढः स्तब्धो मौनी समत्सरः ।

कर्मण्यस्मिन्नयोभ्योऽसी नानीतो हि मयाऽधुना । २८।

तस्मात्त्वया न वक्तव्यं पुनरेवंवचोद्विज ! ।

सर्वेभ्योऽदिभः कर्तव्यो यज्ञो मे सफलो महान् । २९।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् । ३०।

सर्वेषामृषिवर्याणां सुराणां भावितात्मनाम् ।

अनयोऽयं महाज्ञातो विना तेन महात्मना । ३१।

विनाशोऽपि महान्सद्यो ह्यत्रत्यानां भविष्यति ।

एवमुक्तवा दधीचोऽसावेक एव विनिर्गतः । ३२।

यज्ञवाटाश्च दक्षस्य त्वरितः स्वाश्रमययौ ।

मुनौ विनिर्गते दक्षः प्रहसन्निदमब्रवीत् । ३३।

गक्षः शिवप्रियो वीरो दधीचिर्नामिनामतः ।

आविष्टचित्तामन्दाश्च मिथ्यावादरताः खलाः । ३४।

वेदबाह्या दुराचारास्त्याज्यास्ते ह्यत्र कर्मणि ।

वेदवादरता यूयं सर्वे विष्णुपुरोगमाः । ३५।

यज्ञं मे सफलं विप्राः कुर्वन्तु ह्यचिरादिव ।

तदा ते देवयजनं चक्रः सर्वे महर्षयः ।३६।

यह रुद्र आत्म सम्भावित, मूढ, स्तब्ध, मोनी और मात्सर्य से संयुत है। ऐसा यह इस हमारे कर्म में अयोग्य है इसीलिये मैंने उसे यहाँ पर नहीं बुलाया है ।३५। हे द्विज ! इस कारण से फिर इस प्रकार से आपको नहीं बोलना चाहिये आप सबके द्वारा ही मेरे इस महान यज्ञ को सफल बनाना चाहिये ।३६। इस दक्ष के द्वारा कहे हुये वचन को सुनकर महर्षि दधीचि ने यह वाक्य कहा था — ।३०। दधीचि ने कहा— समस्त ऋषिर्षी का और भावितात्मा सूरों का एक उस महात्मा के बिना महान अन्त्य (अन्याय) उत्पन्न हो गया है। दधीचि ने कहा कि यहाँ पर रहने वालों का तुरन्त ही महान् विनाश भी हो जायगा। ऐसा कहकर वह दधीचि अकेले ही वहाँ से निकल गये थे। ऐसा कहकर वह उस दक्ष के मतवाद से शीघ्रता से समन्वित होकर अपने आश्रम को चले गये थे। उस मुनि के विनिर्गत हो जाने पर प्रजापति दक्ष हँसते हुये यह बोले— ।३१।३२।३३। शिव का प्यारा वीर दधीचि नाम वाला चला गया। जो भी आग्नेय से भरे हुये बिना वाले, मन्द, मिथ्यावाद में अनुराग रखने वाले हैं, खल हैं, गेद से बहिष्कृत और बुरे आचार वाले हैं वे सब इस कर्म में त्याज्य ही हैं। आप लोग सब गेद-वाद में रत विष्णु पुसङ्गामी हैं। हे विप्रगण ! शीघ्र ही मेरे इस यज्ञ को सफल बनायें। उसी समय मैं उन सब महर्षियों ने देवी का यजन किया था ।३४।३५।३६।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पर्वतेगन्धमादने ।

धारागृहे विमानेन सखीभिः परिवारिता ।३७।

दाक्षायणीमहादेवीचकारविविधास्तदा ।

क्रीडाविमानमव्यस्याकन्दुकाद्याः सहस्रशः ।३८।

क्रीडासक्ता तदा देवीददर्शाऽयमहासती ।

यज्ञं प्रयान्तं सोमञ्च रोहिण्यासहितं प्रभुम् ।३९।

कगमिष्यतिचन्द्रोऽयंविजये पृच्छसत्त्वरम् ।
 तयोक्ताविजयादेवीतंप्रचक्ष्यथोचितम् ॥४०॥
 कथितं तेनतत्सर्वदक्षस्यवमखादिकम् ।
 तच्छ्रुत्वा त्वरिता देवीविजया जातसम्भ्रमा ।
 कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना भृशम् ॥४१॥
 विमृश्य कारणं देवी किमाह्वानं करोमि न ।
 दक्षः पिता मे माता च विस्मृता मा कुतोऽधुना ॥४२॥

इसी बीच में वहाँ गन्ध मादन पर्वत पर धारा गृह में विमान
 के द्वारा सखियों से परिचारित होती हुई उस समय में महादेवी 'दाक्षा-
 यणी विमान के मध्य में स्थित होकर 'कन्दुक्त आदि सहस्रो अनेक
 क्रीडार्यें कर रही थीं । उस समय में वह क्रीड़ा में समासक्त रहने वाली
 देवी जोकि महा सती थी देखा था कि सोम देव प्रभु अपनी परनी
 रोहिणी के साथ यक्ष में प्रमाण कर रहे थे । यह चन्द्र देव कहाँ
 जायेंगे—हे विजये ! यह शीघ्र पूछो ऐसा महा सती ने विजया से कहा
 था । इस तरह कहने पर विजया देवी ने उससे यथोचित पूछा था । उसने
 दक्ष के यज्ञ आदि के विषय में सभी कुछ कह दिया था । यह सुनकर
 वह विजया देवी सम्भ्रम उत्पन्न हो जाने वाली होकर बहुत ही शीघ्रता
 से वापिस आई थी और उसने वह सभी कुछ कह सुनाया था जो चन्द्र-
 देव ने बारम्बार कहा था । उस समय में देवी ने कारण को विचार कर
 सोचा था क्या हमारा आह्वान नहीं किया गया है ? दक्ष तो मेरे पिता
 हैं—मेरी माता ने भी मुझे इस समय में क्यों भुला दिया है । ३७-४२।

पृच्छामि शङ्कर चाऽद्य कारणं कृतनिश्चया ।
 स्थापयित्वा सखीस्तत्र आगता शङ्करमप्रति ॥४३॥
 ददर्श तं सभामध्येत्रिलोचनमवस्थितम् ।
 गणैः परिवृत सर्वैश्चण्डमुण्डादिभिस्तदा ॥४४॥

गणोभृङ्गिस्तथानन्दोशैलादोहिमातपाः ।
 महाकालो महाचण्डोमहामुण्डो महाशिराः ।४५।
 धूम्राक्षो धूम्रवेतुश्च धूम्रपादस्तथैव च ।
 एतेचान्ये च बहवो गणा रुद्रानुवर्तिनः ।४६।
 केचिद् भयानका रौद्राः कब्रन्घ्राश्च तथा परे ।
 विलोचनाश्च केचिच्च वक्षोहीनास्तथा परे ।४७।
 एवं भूताश्च शतशः सर्वे ते कृत्तिवाससः ।
 जटाकलावसम्भूताः सर्वे रुद्राक्षभूषणाः ।४८।
 जितेन्द्रिया वीतरागाः सर्वे विषयवैरिणः ।
 एभिः सर्वैः परिवृतः शङ्करो लोकशङ्करः ।
 दृष्टस्तथा उपाविष्ट आसने परमाद्भुते ।४९।

निम्नय करने वाली होती हुई पात्र भगवान् शङ्कर से इसका कारण पूछें—यह विचार कर अपनी सत्तियों को वहीं पर स्थापित करके वह सती देवी शङ्कर के समीप में आ गई थी ।४३। उस समय में उसने भगवान् त्रिलोचन को समा के मध्य में समस्त चण्ड मुण्ड आदि गणों से परिवृत होकर समवस्थित हुए देखा था । वहाँ पर उस समय में शूद्र देव के अनुवर्ती बहुत से गण उपस्थित थे । उनसे नाम ये हैं—भृङ्गिगण, महात् तपस्वी शैलाद मन्दी, महाकान, महाचण्ड, महामुण्ड, महाशिरा, धूम्राक्ष, धूम्रवेतु, धूम्रपाद, ये सब तथा अन्य भी अनेक गण थे ।४४।४५।४६। उन गणों में कुछ तो बहुत ही भयानक थे—कुछ बड़े रौद्र रूप वाले थे, कुछ वेदव शब्दों से स्वल्प वाले थे, कुछ तीन नेत्रों वाले और बलाः त्यक्त थे रहित थे ।४७। इस प्रकार के वे सब संशयो के जो कि यति (वर्ग) का वसन धारण करने वाले थे । सभी जटा कलाप से युक्त और रुद्राक्ष के भूषणों वाले थे । सब इन्द्रियों को जीतने वाले, राग को त्याग देने वाले और विषयों से वैर रखने वाले थे । इन सबमें लोक के बह्मण करने वाले भगवान् शङ्कर पिरे हुए

ये । इस भाँति से परम भद्रभुन प्राप्तन पर विराजमान भगवान् शङ्कर को देखा था । ४८।४६।

आक्षिप्तचित्ता सहसा जगाम शिवसन्निधिम् ।
 शिवेन स्थापिता स्वांके प्रीतियुवतेन वत्सभा । ५०।
 प्रेम्णोदिता वचोभिः सा बहुमानपुरः सरम् ।
 किमागमनकार्यं मे वद शीघ्रं सुमध्यमे । ५१।
 एवमुक्ता तदा तेन उवाचासितलोचना । ५२।
 पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते ।
 गमन देवदेवेश ! तत्तमर्वं कथय प्रभो । ५३।
 सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सह सङ्गतिम् ।
 कुर्वन्ति यन्महादेवसुहृदा प्रीतिवर्धिनीम् । ५४।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अनाहूतोऽपि गच्छ भोः ।
 यज्ञवाट पितुर्मध्य वचनान्मे सदाशिव । ५५।
 तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा वभाषे सूनृत वचः ।
 त्वया भद्रे न गतव्यं दक्षस्य यजन प्रति । ५६।

महासती उस समय में समाक्षिप्त चित्त वाली होती हुई सहसा शिव के समीप में चली गई थी । प्रीति से समन्वित भगवान् शिव ने अपनी प्रिया को अपनी मोह में स्थापित कर लिया था । शिव ने सती से बहुमान पूर्वक प्रेम के साथ वचनों के द्वारा पूछा था—हे सुमध्यमे ! इस समय मैं यहाँ पर आपके आगमन का क्या कारण है ? मुझे शीघ्र बतलाओ । जब इस प्रकार से सती से कहा गया था तो वह पसित लोचनो वाली बोली । ५०।५१।५२। सती ने कहा—हे प्रभो ! आप तो देवों के देव के भी ईश हैं । मेरे पिता के इस महा यज्ञ में किस कारण से आपको अच्छा नहीं लगता है ? यह सभी मुझे आप बतलाइये । ५३। सुहृदों का यह धर्म है कि सुहृदों के साथ सङ्गति की जावे । जो महादेव सुहृदों की प्रीति के बढ़ाने वाली सङ्गति

को क्रिया करते हैं । इस लिये हे प्रभो ! सभी प्रयत्नों के द्वारा बिना बुलाये हुए भी घाप वहाँ पर जाइये । हे सदा शिव ! आज तो मेरे पिता के यत्र ग्रह मे अवश्य हो जाइये । उस सती के इस वचन का ध्वरण करके भगवान् शिव परम सूतृत वचन बोले—हे भद्रे ! तुमको इस दक्ष के भजन अर्थात् यज्ञ की ओर नहीं जाना चाहिए । ५४।५५।५६।

तस्य ये मानिनः सर्वे ससुरासुरकिनराः ।

ते सर्वे यजनं प्राप्ताः पितुस्तव न संशयः । ५७।

अनाहूताश्च ये सुभ्रू गच्छन्ति परमन्दिरम् ।

अपमानं प्राप्नुयन्ति मरणादधिकं ततः । ५८।

परेषां मन्दिरं प्राप्त इन्द्रोऽपिलघुतां व्रजेत् ।

तस्मात्त्वया न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं शुभे । ५९।

एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना ।

उवाच रोपसंयुक्तं वाक्यं वाक्यविदां वरा । ६०।

यज्ञो हि सत्यलोकेस्त्वं स त्वं देववेश्वर ! ।

अनाहूतोऽसितेनाज्यं पित्रामेदुष्टचारिणा ।

तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि तस्य भावं दुरात्मनः । ६१।

तस्माच्चाज्यं यं गच्छामि यज्ञवाटं पितुर्मम ।

अनुज्ञा देहि मे नाथ देवदेव ! जगत्सते ! । ६२।

इत्युक्तो भगवा प्रद्वस्तया देव्या शिवः स्वयम् ।

विज्ञाताम्लिहृद्रष्टा भगवान्भूतभावनः । ६३।

उगते जो भी मानी गए हैं वे सब सुर-असुर और किन्नर वगैरे यज्ञ में पहुँच गए हैं जो कि तेरे पिता ने यज्ञ का समारम्भ किया है—द्वयमें सेक मान भी गन्देह नहीं है । हे सुभ्रू ! किन्तु जो लोग बिना बुलाये के पराये मन्दिर में चले जाया करने हैं वे मृत्यु से भी अधिक अपमान की प्राप्ति किया करने हैं । दूसरों के मन्दिर में बिना बुलाये हुए चले जाने वाला इन्द्र भी मनुष्य की प्राप्ति हो जाया

करता है अन्य की तो बात ही क्या है । हे शुभे ! इसीलिए इस दक्ष के यज्ञ में तुमको नहीं जाना चाहिए । इस प्रकार से उन महान् आत्मा वाले महेश के द्वारा कही गयी सती ने रोप से भरा हुआ वचन कहा क्योंकि वचनों के ज्ञान रखने वालों में वह परम श्रेष्ठ थी । यज्ञ सत्य स्वरूप है और आप वही हैं जो कि लोक में देवों में श्रेष्ठों के भी स्वामी हैं । इस समय में दुष्ट आचरण वाले मेरे पिता ने आपको नहीं बुलाया है तो उस दुष्ट आत्मा वाले की समस्त इस दुर्भावना को जानना चाहती हूँ । ॥५७॥५८॥५९॥६०॥६१॥ इसी में आज ही मेरे पिता ने उस यज्ञ वाट जाने की इच्छा रखती हूँ । हे देवों के भी देव ! हे नाथ ! हे जगद् के स्वामिन ! आप मुझे अपनी प्राज्ञा प्रदान कर दीजिए । इस प्रकार से उस देवी सती के द्वारा कहे गये क्षुद्र शिव स्वयं विज्ञात थे क्योंकि सम्पूर्ण होने वाली बात के देखने वाले एवं ज्ञाता थे । भूतों पर दया करने वाले भगवान् शिव परम दयालु हैं । ॥६२॥६३॥

स तामुवाच देवेशो महेशः सर्वसिद्धिदः ।

गच्छ देवि ! त्वरामुक्तावचनाग्ममसुव्रते । ॥६४॥

एवं नन्दिनमारुह्य नानाविषगुणान्विता ।

गणाः पण्डितसहस्राणि जगमू रीद्राः शिवाज्ञया । ॥६५॥

तैर्गणैः संवृता देवी जगाम पितृमन्दिरम् ।

निरीक्ष्य तदवलंसर्वमहादेवोऽतिविस्मितः । ॥६६॥

भूषणानि महार्हाणि तेभ्यो देव्यै परन्तपः ।

प्रेषयामास चाव्यग्रो महादेवोऽनुपृष्ठतः । ॥६७॥

देव्या गतं यं स्वपितुर्गृहं तदा विमृश्य सर्वं भगवान् महेशः ।

दाक्षायणीं पित्रवमानिता सती न यास्यतीति स्वपुरं पुनर्जगौ । ॥६८॥

सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदान करने वाले देवों के ईश महेश उस सती से बोले—हे देवि ! हे सुव्रते ! मेरी आज्ञा है अब आप बहुत ही धीमता से मुक्त होकर जाइये । इस तरह से नन्दी भद्र समारोह

करके अनेक गणों से समन्वित होकर जाइये । शिव की आज्ञा है । उससे साठ सहस्र रौद्र गण जायें । उन समस्त गणों से सवृत हुई देवी अपने पिता के मन्दिर में चली गयी थी । उसके बल को देख कर महादेव स्वयं अत्यन्त ही विस्मित हो गये थे । फिर परन्तप महादेव ने पीछे से अव्यग्र होकर उन सबके लिये धीरे देवी के लिए महा मूल्य वाले भूषण भेजे थे । ६४।६५।६६।६७। उस समय में देवी ने अपने पिता के घर में गमन किया था । उसी समय में भगवान् महेश ने सब कुछ होने वाली घटना का विचार करके पिता के द्वारा अपमानित हुई दाक्षायणी सती पुनः अपने पुर में नहीं जायगी—यह ज्ञान दिया था । ६८।

३—सती का दक्ष-यज्ञशाला में प्रवेश

दाक्षायणी गतातत्र यत्र यज्ञो महानभूत् ।
तत्पितुः सदनं गत्वा नानाश्रयं समन्वितम् । १।
द्वारिस्थिता तदा देवी अवतीर्य निजासनात् ।
नन्दिनो हि महाभागा देवलोकं निरीक्ष्य च । २।
मातरं पितरं दृष्ट्वा सुहृत्सवन्धिवान्धवान् ।
अभिवाद्या पितरं मातरं च मुदान्विता । ३।
यभाषे वचनं देवी प्रस्तावसदृशं तदा ।
अनादृतस्तथा कस्माच्छम्भुः परमशोभनः । ४।
येन पूतमिदं सर्वं समग्रं सचराचरम् ।
यज्ञो यज्ञविदां योष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः । ५।
द्रव्यं मन्त्रादिकं सर्वं हव्यं कर्ष्यं च यन्मयम् ।
विना तेन कृतं सर्वमपवित्रं भविष्यति । ६।
सांभृता हि विना तात कर्ष्यं यज्ञः प्रवर्तते ।
एते यथं समायाता ग्रहाणा महिताः पितः । ७।

हे भृगो ! त्वं न जानासि हे कश्यप महामते ।

अत्रेवसिष्ठ एकस्त्वं शक्र किं कृतमद्यते ।८।

हे विष्णो त्वं महादेवं जानासि परमेश्वरम् ।

ब्रह्मन् किं त्वघ्न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ।९।

महर्षि लोमश ने ब्रह्मा-दाक्षायणी वहाँ पर पहुँच गयी थी जहाँ पर यह महान् यज्ञ हो रहा था । फिर वह अपने पिता के गृह में गयी थी जो अनेक आश्चर्य युक्त वस्तुओं से समन्वित था । उस समय में देवी ने द्वार पर स्थित होकर अपने भासव से प्रवतरण किया था जो कि नन्दी पर समावृद्ध हो रही थीं । फिर उस महान् भाग वाली ने सम्पूर्ण देव लोक का निरीक्षण किया था । सती ने अपने माता-पिता-सुहृत् सम्बन्धी और सम्पूर्ण वस्तुओं को देखा था । फिर बहुत ही आनन्द से संयुक्त होकर उसने अपने माता और पिता का अभिवादन किया था । प्रणाम करने के ही अनन्तर उस देवी ने उसी समय में प्रस्ताव के अनु-रूप बचन बोला था—उसने परम शोभा सम्पन्न भगवान् शम्भु का कदो अनादर किया है । वे तो स्वयं ही यज्ञ स्वरूप हैं, यज्ञों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं, यज्ञ के अङ्ग हैं और यज्ञ की रक्षणा वाले हैं । यह सम्पूर्ण द्रव्य मन्त्रादिक और सभी हृद्य-व्यवस्था शिवमय हैं । उसके बिना किया हुआ यह सभी अपवित्र हो जायगा । ११।२।३।४।५।६। हे ताद ! भगवान् शम्भु के बिना यह यज्ञ आपने कैसे प्रवृत्त कर दिया है ? हे पिता जी ! ब्रह्माजी के साथ सभी लोग कैसे यहाँ पर समीकृत हो गये हैं ? हे भृगो ! क्या आप नहीं जानते हैं ? हे महान् मति वाले कश्यप ! हे अत्रे ! हे वसिष्ठ ! क्या आप यह नहीं जानते हैं ? हे शक्र ! आप अकेले ही इस यज्ञ के भाग का कैसे ग्रहण कर रहे हैं । हे विष्णो ! आप तो स्वयं परमेश्वर महादेव को मनी भीति जानते हैं हे ब्रह्मन् ! क्या आप महादेव के विक्रम को नहीं समझते हैं । ७।८।९।

पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गवितोऽसिसदाशिवम् ।
 कृतश्चतुर्मुखस्तेनविस्मृतोऽसितदद्भुतम् ॥१०॥
 भिक्षाटनं कृतयेन पुरा दाहवने विभुः ।
 शतोऽयं भिक्षुको रुद्रो भवद्भिः सखिभिस्तदा ॥११॥
 शप्तेनाऽपि च रुद्रेण भवद्भिर्विस्मृतं कथम् ।
 यस्यावयवमात्रेण पूरितं सचराचरम् ॥१२॥
 लिङ्गभूतं जगत्सर्वं जातं तत्क्षणमेवहि ।
 लयनाल्लिङ्गमित्याहुः सर्वे देवाः सवासवाः ॥१३॥
 सर्वे देवाश्च सम्भूता यतो देवस्य शलिनः ।
 सोऽसीवेदान्तगोदेवस्त्वयाज्ञातुं नपार्यते ॥१४॥

पहिले आप स्वयं पाँच मुख वाले होकर सदा शिव से भी अधिक गर्व करने वाले हो गये थे फिर उन्हीं भगवान सदाशिव ने आपको चार मुखों वाला बना दिया था । क्या उस परम अद्भुत घटना को आप अब भूल गये हैं ? ॥१०॥ पहिले प्राचीन समय में जिसने दाहवन में भिक्षाटन किया था । उस समय में आप सखा लोगों ने यह रुद्र भिक्षुक हैं—ऐसा आप दिया था और रुद्र के द्वारा भी जो शप्त थे, उन भगवान रुद्रदेव को आप लोग इस समय में कैसे भूल गये हैं जिसके अवयव मात्र से यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् पूरित हो रहा है । उसी क्षण में यह समस्त जगत् लिङ्गभूत हो गया था । सब देवगण और इन्द्र लयन होने में ही लिंग—ऐसा कहते थे । जिस शूलधारी देव से ये सभी देवगण समुत्पन्न हुए हैं वही वेदान्तगामी देव आपके द्वारा नहीं जाना जा सकता है ॥११-१४॥

तस्यावचनमाकर्ण्य दक्ष कुब्जोऽब्रवीद्वचः ।
 किं वया बहूनास्तेन कार्यनास्तीह साम्प्रतम् ॥१५॥
 गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे ! कस्मात्स्व हि समागता ।
 अमंगलो हि भर्ता ते अश्विनोऽसौ मुमह्यमे ॥१६॥

हे भृगो ! त्वं न जानासि हे कश्यप महामते ।

अथेवशिष्ट एकस्त्वं शक्र किं कृतमद्यते । ८।

हे विष्णो त्वं महादेवं जानासि परमेश्वरम् ।

ब्रह्मन् किं त्वन्न जानासि महादेवस्य विक्रमम् । ९।

महर्षि लोमश ने कहा—दाक्षायणी वहाँ पर पहुँच गयी थी जहाँ पर यह महान् यज्ञ हो रहा था । फिर वह अपने पिता के गृह में गयी थी जो अनेक आश्चर्य युक्त वस्तुओं से समन्वित था । उस समय मैं देवी ने द्वार पर स्थित होकर अपने भासन से अवतरण किया था जो कि नन्दी पर समावृत्त हो रही थी । फिर उस महान् भाग वाली ने सम्पूर्ण देव लोक का निरीक्षण किया था । सती ने अपने माता-पिता-सुहृत् सम्बन्धी और सम्पूर्ण वस्तुओं को देखा था । फिर बहुत ही आनन्द से समुक्त होकर उसने अपने माता और पिता का अभिवादन किया था । प्रणाम करने के ही अनन्तर उस देवी ने उसी समय में प्रस्ताव के अनु-कूल वचन बोला था—उसने परम शोभा सम्पन्न भगवान् शम्भु का कपो अनादर किया है । वे तो स्वयं ही यज्ञ स्वरूप हैं, यज्ञों के शाताओं में परम श्रेष्ठ हैं, यज्ञ के प्रज्ज हैं और यज्ञ की रक्षणा वाले हैं । यह सम्पूर्ण द्रव्य मन्त्रादिक और सभी हृदय-कव्य शिवमय हैं । उसके बिना किया हुआ यह सभी अपवित्र हो जायगा । १।२।३।४।५।६। हे ताद ! भगवान् शम्भु के बिना यह यज्ञ आपने कैसे प्रवृत्त कर दिया है ? हे पिता जी ! ब्रह्माजी के साथ सभी लोग कैसे यहाँ पर समीकृत हो गये हैं ? हे भृगो ! क्या आप नहीं जानते हैं ? हे महान् मति वाले कश्यप ! हे भगवन् ! हे वसिष्ठ ! क्या आप यह नहीं जानते हैं ? हे शक्र ! आप अकेले ही इस यज्ञ के भाग का कैसे ग्रहण कर रहे हैं । हे विष्णो ! आप तो स्वयं परमेश्वर महादेव को मनी मति जानते हैं हे ब्रह्मन् ! क्या आप महादेव के विक्रम को नहीं समझते हैं । ७।८।९।

पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गर्वितोऽसिसदाशिवम् ।
 कृतञ्चतुर्मुखस्तेनविस्मृतोऽसितदद्भुतम् ॥१०॥
 भिक्षाटनं कृतयेन पुरा दारुवने विभुः ।
 क्षप्तोऽयं मिथुको रुद्रो भवद्भिः सखिभिस्तदा ॥११॥
 क्षप्तेनार्जप च रुद्रेण भवद्भिर्विस्मृतं कथम् ।
 यस्यावयवमात्रेण पूरितं सचराचरम् ॥१२॥
 लिङ्गभूतं जगत्सर्वं जातं तत्क्षणमेवहि ।
 लयनात्लिङ्गमित्याहुः सर्वे देवाः सवासवाः ॥१३॥
 सर्वे देवाश्च सम्भूता यतो देवस्य शलिनः ।
 सोऽसीवेदान्तगोदेवस्त्वयाज्ञातु नपार्यते ॥१४॥

पहिले आप स्वयं पाँच मुख वाले होकर सदा शिव से भी अधिक गर्व करने वाले हो गये थे फिर उन्हीं भगवान सदाशिव ने आपको चार मुखों वाला बना दिया था । क्या उस परम अद्भुत घटना को आप अब भूल गये हैं ? ॥१०॥ पहिले प्राचीन समय में जिसने दारुवन में भिक्षाटन किया था । उस समय में आप सखा लोगों ने यह रुद्र भिक्षुक है—ऐसा क्षाप दिया था और रुद्र के द्वारा भी जो क्षप्त थे, उन भगवान रुद्रदेव को आप लोग इस समय में कैसे भूल गये हैं जिसके अवयव मात्र से यह सम्पूर्ण चर और अचर अष्ट पूरित हो रहा है । उसी क्षण में यह समस्त जगत् लिङ्गभूत हो गया था । सब देवगण और इन्द्र लयन होने से ही लिङ्ग—ऐसा कहते थे । जिस शूलधारी देव से ये सभी देवगण समुत्पन्न हुए हैं वही वेदान्तगामी देव आपके द्वारा नहीं जाना जा सकता है ॥११-१४॥

तस्यावचनमाकर्ण्यदक्ष कृद्धोऽब्रवीद्वचः ।
 किंत्वयाबहुनोक्तेनकार्यनास्तीहसाम्प्रतम् ॥१५॥
 गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे ! कस्मात्त्वहि समागता ।
 अमंगलो हि भर्ता ते अशिवोऽसी सुमध्यमे ॥१६॥

अकुलीनो वेदबाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् ।
 तस्मान्नाकारितो भद्रो यज्ञार्थं चारुभाषिणी । १७।
 मया दत्ताऽसिसुश्रोणिपापिनामन्दबुद्धिना ।
 रुद्रायाविदितार्थाय उद्धताय दुरात्मने । १८।
 तस्मात्कार्यं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
 दक्षेणोक्ता तदा पुत्री सा सती लोकपूजिता । १९।
 निदायुक्तं स्वपितरं विलोक्य रुषिताभृशम् ।
 चितयन्तीतदा देवी कथयास्यामि मन्दिरे । २०।
 शङ्करद्रष्टुकामाऽहं किं वक्ष्येतेनपृच्छिता ।
 योनिर्दत्तमहादेवनिचमानं शृणोतियः ।
 तावुभोनरके यातो यावच्चन्द्रदिवाकरो । २१।

सती देवी के इस वचन का श्रवण करके प्रजापति दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह वचन बोला—इस समय पर यहाँ पर बहुत अधिक तुम्हारे द्वारा कहने का क्या प्रयोजन है । यहाँ इस कथन का कुछ भी काम नहीं है । हे भद्र ! तुम जाओ भयवा रही तुम यहाँ पर क्यों समागत हो गई हो ? हे सुमध्यमे ! तुम्हारी जो स्वामी है वह शिव नहीं अशिव स्वरूप और भ्रमज्जल है । १५। १६। वह अकुलीन, वेदों से बहिष्कृत और भूत प्रेत तथा पिशाचों का राजा है । हे भद्र ! तुम तो बहुत सुन्दर भाषण करने वाली हो । मैंने अपने इस महान् यज्ञ में इन्हीं कारण से उनकी नहीं बुलाया है । हे सुश्रोणि ! मन्द बुद्धि वाले पापी मैंने पूरा सभाचरण न जानने के कारण ही उस उद्धत दुरात्मा रुद्र के लिए तुमको उस समय मे दे दिया था । इस कारण से कार्य का परित्याग करके हे शुचिस्मित वाली ! तुम अब स्वस्थ एवं शान्त हो जाओ । इस समय में दक्ष के द्वारा कही गई उस पुत्री सती ने जो सम्पूर्ण लोको की परम पूजित थी बहुत ही अनुचित समझा था । और शिव की निन्दा से युक्त अपने पिता को देखकर उसको अत्यन्त अधिक क्रोध आया था । उस समय में देवा यही चिन्ता करने लगी थी कि मैं अब अपने मन्दिर में

कैसे था। मुँह सेकर जाऊँगी । मैं भगवान् शङ्कर के दर्शन करने की इच्छा रखती हूँ किन्तु जब वे मुझ से पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगी । जो महादेव की निन्दा करता है और निन्दा करने वालों के ध्वजों का श्रवण किया करता है वे दोनों ही नरकगामी हुमा करते हैं और जब तक संसार में ये चन्द्र और सूर्य विद्यमान रहते हैं तब तक नरकों की यातनायें भोगते हैं । १७-२१।

तस्मात्प्रक्षयाम्यहं देहं प्रवक्ष्यामि हुताशनम् । २२।
 एवंमीमांसमानासाशिवरुद्रेतिभाषिणी ।
 अपमानाभिभूतासाप्रविवेशहुताशनम् । २३।
 हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ।
 सर्वे ते मन्त्रमारुढाः शस्त्रैर्ध्याप्तानिरन्तराः । २४।
 शर्षः स्वैर्जघ्नुरात्मानं स्वानि देहानि चिच्छिदुः ।
 केचित्करतले गृह्यं शिरांसि स्वानि चोत्सुकाः । २५।
 नीराजयन्तस्त्वरिता भस्मीभूताश्च जज्ञिरे ।
 एवमूचुस्तदा सर्वे जगज्जुंरतिभीषणम् । २६।
 शस्त्रप्रहारैः स्वाङ्गानि चिच्छिदुश्चातिभीषणाः ।
 ते तथा विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समन्तदा । २७।
 गणास्तत्रामुतेद्वेच तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
 ते सर्वे ऋषयो देवा इन्द्राद्याः समरुद्गणाः । २८।
 विश्वेऽश्विनौ लोकपालास्तूष्णीं भूतास्तदाऽभवन् ।
 विष्णुं वरेण्यं केचिच्च प्राययन्तः समन्ततः । २९।

इसलिए मैं इस अपने देह का ही त्याग कर दूँगी और हुताशन से चढ़ूँगी । २२। इस प्रकार से विचार करने वाली देवी उसने 'हा शिव-हा रुद्र !'—इस तरह भाषण करते हुए अत्यन्त अधिक अपमान से अभिभूत होकर अग्नि में प्रवेश कर लिया था । २३। उसी समय में महान् हाहाकार से समस्त दिशाएँ व्याप्त हो गईं थी । वे सभी जो मन्त्रों पर

अकुलीनो वेदवाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् ।
 तस्मान्नाकारितो भद्रे यज्ञाय चारुभाषिणी । १७।
 मया दत्ताऽसिसुश्रोणिपापिनामन्दबुद्धिना ।
 रुद्रायाविदितार्थाय उद्धताय दुरात्मने । १८।
 तस्मात्कार्यं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
 दक्षेणोक्ता तदा पुत्रो सा सती लोकपूजिता । १९।
 निंदायुक्तस्त्वपितर विलोक्य रुपिताभृशम् ।
 चितयन्तीतदा देवी कथयास्यामि मन्दिरे । २०।
 शङ्कर द्रष्टुकामाऽहं किं वक्ष्येतेनपृच्छिता ।
 योनिर्दत्तमहादेवनिघ्नमानं शृणोति यः ।
 तावुभौ नरके याता यावच्चन्द्रदिवाकरो । २१।

सती देवी के इस वचन का श्रवण करके प्रजापति दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह वचन बोला—इस समय पर यहाँ पर बहुत अधिक तुम्हारे द्वारा कहने का क्या प्रयोजन है । यहाँ इस कथन का कुछ भी काम नहीं है । हे भद्र ! तुम जाओ अथवा रहो तुम यहाँ पर क्यों समागत हो गई हो ? हे सुमध्यमे ! तुम्हारी जो स्वामी है वह शिव नहीं अशिव स्वरूप और भ्रमज्जल है । १५। १६। वह अकुलीन, वेदों से बहिष्कृत और भूत प्रेत तथा पिशाचों का राजा है । हे भद्रे ! तुम तो बहुत सुन्दर भाषण करने वाली हो । मैंने अपने इस महाद् यज्ञ में इन्हीं कारण से उनको नहीं बुलाया है । हे सुश्रोणि ! मन्द बुद्धि वाले पापी मैंने पूरा समाचरण न जानने के कारण ही उस उद्धत दुरात्मा रुद्र के लिए तुमको उस समय में दे दिया था । इस कारण से कार्य का परित्याग करके हे शुचिस्मित वाली ! तुम अब स्वस्थ एवं शान्त हो जाओ । इस समय में दक्ष के द्वारा कही गई उस पुत्री सती ने जो सम्पूर्ण लोकों की परम पूजित थी बहुत ही अनुचित समझा था । और शिव की निन्दा से युक्त अपने पिता को देखकर उसको अत्यन्त अधिक क्रोध आया था । उस समय में देवा यही चिन्ता करने लगी थी कि मैं अब अपने मन्दिर में

कोपान्निः स्वसितेनैवरुद्रस्य च महात्मनः ।

ज्ञातं ज्वराणांचशतंसन्निपातास्त्रयोदश ।३५।

उस ब्रह्म बन्धु दुरात्मा दक्ष का यज्ञ का यज्ञ उस समय में इस प्रकार का हुआ था और सब ऋषिगण भय से व्याप्त हो गये थे । हे विप्रगण ! इसी बीच से देवर्षि नारदजी ने जो एक महान् आत्मा वाले हैं भगवान् शिव के समीप में पहुंचकर यह दक्ष का पूरा समाचार जो भी कुछ कहने की चेष्टा उसने की थी भगवान् शिव को कह सुनाया था । भगवान् शिव ने नारद के मुख से कहे हुए इस बावय का श्रवण करके प्रत्यन्त अधिक क्रोध किया था और कोप के आवेश में आकर शिव अपने आसन से उछल पड़े थे । ३०।३१।३२। समस्त लोकों के संहार करने वाले भगवान् रुद्र ने अपनी जटा को खोल दिया था और उस जटा को पर्वत की ढिखर पर बड़े ही रोष से फेंक कर मारा था । उस जटा पड़ना से महान् यश वाला और भद्र समुत्पन्न हो गया था तथा करोड़ों भूतों से तपावृत्त महाकानी भी उत्पन्न हो गई थी । क्रोध के कारण जो भगवान् शिव के गर्म आग निकल रहे थे उनसे सैकड़ों प्रकार के ज्वर और त्रयोदश सन्निपात समुत्पन्न हो गये थे । ३०-३५।

विज्ञप्तो वीरभद्रोऽणुरद्वोरीद्रपराक्रमः ।

किंकार्यं भवतः कार्यं शीघ्रमेव वद प्रभो ।३६।

इत्युक्तो भगवान् रुद्रोऽप्रेषयामास सत्वरम् ।

गच्छ वीर महाबाहो दक्षयज्ञविनाशय ।३७।

शासनं शिरसा धृत्वा देवदेवस्य शूलिनः ।

कालिकाऽऽलिहितो वीरः सर्वभूतैः समावृतः ।

वीरभद्रो महातेजा ययो दक्षमखं प्रति ।३८।

तदानीमेव सहसार्दुनिमित्तानि चाऽभवन् ।

रुक्षो ववौ तदा वायुः शकं राशिः समावृतः ।३९।

असृग्वर्षंति देवश्च (पर्जन्य) तिग्मिरेणाऽऽवृता दिशः ।

उल्कापाताश्च बहवः पेतुर्गर्वा सहस्रशः ।४०।

समारुढ़ हो रहे थे शस्त्रों से व्याप्त हो गये थे तथा निरन्तर वहाँ पर
 शस्त्राघात धारम्भ हो गया था । उन्होंने शस्त्रों के द्वारा
 अपने आपका हनन किया था और अपने ही देहों का
 छेदन करने लगे थे । कुछ लोग तो अपने मस्तकों को काटकर करतल में
 रखकर समुत्सुक हो रहे थे । १४।२५। बहुत ही शीघ्रता से युक्त होते
 हुए वे नीराज्य कर रहे थे और सब भस्मीभूत हो गये थे । इसी प्रकार
 से उस समय में वह रहे थे और अस्यन्त भीषण ध्वनि के साथ गर्जना
 कर रहे थे । अस्यन्त भीषण स्वरूपधारी होकर राज्ञों के प्रहारों के
 द्वारा अपने ही शरीरों का छेदन करने लगे थे । वे सब उसी प्रकार से
 विलय हो गये थे और दाशायणी के साथ ही उन्होंने प्राणों
 का त्याग कर दिया था । वहाँ पर दो अयुत गण थे और वह एक
 अद्भुत सा दृश्य उस समय में हो गया था । वहाँ पर जो भी सब ऋषि-
 गण थे, इन्द्र आदि देवगण और मरुद्गण थे तथा विश्वेदेवी, अश्विना
 कुमार और तमस्त लोकपाल विद्यमान थे, उस समय में ये सब के सब
 चुप होकर मौन धारण कर गये थे । इनमें से जो कुछ लोग वरेण्य
 भगवान् विष्णु की सभी ओर से प्रार्थनाएँ कर रहे थे । २२-२६।

एवं भूतस्तदा यज्ञोजातस्तस्य दुरात्मनः ।
 दक्षस्य ब्रह्मबन्धोश्च ऋषयो भयमागताः । ३०।
 एतस्मिन्नन्तरे विप्रा ! नारदेन महात्मना ।
 कथितं सर्वमेवैतद्दक्षस्य च विचेष्टितम् । ३१।
 तदा ऋष्येश्वरो वाक्यं नारदस्य मुखोद्गतम् ।
 चुकोपपरमक्रुद्ध आसनादुत्पतन्निव । ३२।
 उदधृत्य च जटाश्रुतो लोफसहारकारकः ।
 आस्फोटयामास ह्या पर्वतस्य क्षिरोपरि । ३३।
 ताडनाच्च वसमुदभूतो वीरभद्रो महायशः ।
 तथा कालोऽसमुत्पन्ना भूतकोटिभिरावृता । ३४।

कोपाग्निः श्वसितेनैव रुद्रस्य च महात्मनः ।

ज्ञातं ज्वराणां च शतं सन्निपाताख्यो दश । ३५ ।

उस ब्रह्म बन्धु दुरात्मा दक्ष का यज्ञ का यज्ञ उस समय में इस प्रकार का हुधा था और सब ऋषिगण भय से व्याप्त हो गये थे । हे विप्रगण ! इसी बीच से देवर्षि नारदजी ने जो एक महान् आत्मा वाले हैं भगवान् शिव के समीप में पहुँचकर यह दक्ष का पूरा समाचार जो भी कुछ कहने की चेष्टा उसने की थी भगवान् शिव को कह सुनाया था । भगवान् शिव ने नारद के मुख से कहे हुए इस वाक्य का श्रवण करके अत्यन्त अधिक क्रोध किया था और कोप के आवेश में आकर शिव अपने आसन से उछल पड़े थे । ३०। ३१। ३२। समस्त स्त्रीयों के संहार करने वाले भगवान् रुद्र ने अपनी जटा को खोल दिया था और उस जटा को पर्वत की शिखर पर बड़े ही शेष से फँक कर मारा था । उस जटा के पछाटने से महान् यज्ञ शाला कीर भद्र समुत्पन्न हो गया था तथा करोड़ों भूतों से संपावृत्त महाकाली भी उत्पन्न हो गई थी । क्रोध के कारण जो भगवान् शिव के गर्भ श्वास निकल रहे थे उनसे सैकड़ों प्रकार के ज्वर और त्रयोदश सन्निपात समुत्पन्न हो गये थे । ३०-३५।

विजृम्भो वीरभद्रो रुद्रो रीद्रपराक्रमः ।

किं कार्यं भवतः कार्यं शीघ्रमेव वद प्रभो । ३६ ।

इत्युपतो भगवान् रुद्रो प्रेषयामास सत्वरम् ।

गच्छ वीर महाबाहो दक्षयज्ञ विनाशय । ३७ ।

शासनं गिरसा धृत्वा देवदेवस्य नूलिनः ।

कालिकाऽऽलिहितो वीरः सर्वभूतैः समावृतः ।

वीरभद्रो महातेजा ययौ दक्षमसं प्रति । ३८ ।

तदानीमेव साहसादुनिमित्तानि चाऽभवन् ।

स्थोत्रवीतदा वायुः सर्वरश्मिः समावृतः । ३९ ।

अमृग्यपंति देवदत्त (पर्जन्य) तिमिरेणाऽऽमृता दिशः ।

उत्कापाताश्च बहवः पेतुर्गर्वाः सहस्रशः । ४० ।

एवं विधान्यरिष्टानि ददृशुर्विवुधादयः ।

दक्षोऽपि भयमापन्नो विष्णुं शरणमाययौ ॥४१॥

रक्षरक्षमहाविष्णो त्वंहिनः परमोगुरुः ।

यज्ञोऽसि त्वंसुरश्रेष्ठ ! भयान्मां परिमोचय ॥४२॥

वीर भद्र ने समुत्पन्न होते ही रौद्र पराक्रम वाले भगवान् रुद्र से प्रार्थना की थी—हे प्रभो ! शीघ्र ही मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये कि इस समय मैं मुझे आपकी कौन सी सेवा करनी चाहिये । इस तरह से कहने पर भगवान् रुद्र ने उसे शीघ्र ही भेज दिया था और आज्ञा प्रदान की थी कि हे वीर ! हे महाबाहो ! तुम चले जाओ और शीघ्र ही दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कराओ । देवों के भी देव महादेवजी के इस शासन को शिरोधार्य करके कालिका के द्वारा भानिहित तथा भूतों से समावृत वीर वीरभद्र जोकि महान तेज से संयुत था दक्ष प्रजापति के यज्ञ की ओर रवाना हो गया था ॥३६॥३७॥३८॥ उसी समय में सहसा बड़े-बड़े भद्राकुल होने लगे थे और उस भयंकर पर धातु बहुत ही हल्ला होकर चलने लगा था जिसमें धूलि मिली हुई थी । मेघों में रुधिर की वर्षा होने लगी थी और सभी दिशाओं में घोर अन्धकार छा गया था । पृथ्वी पर सहस्रो ही उल्कापात आकर गिरने लगे थे ॥३६॥३४॥ ॥३८॥३९॥४०॥ देवगण आदि सबने इस तरह के परिश्रों को देखा था । प्रजापति दक्ष भी परम भय को प्राप्त हो गया था और भगवान् विष्णु की शरणगति में आ गया था ॥४१॥ दक्ष ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की थी—हे विष्णो ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो । आप ही हमारे परम गुरु हैं । आप तो स्वयं यज्ञ रूप हैं और सभी देवगणों में सर्वश्रेष्ठ हैं । इस महान् भय से मेरा मोचन कीजिये ॥४२॥

दक्षोऽपि प्रार्थ्यमानो हि जगाद मधुसूदनः ।

मयारक्षा विधातव्या भवतो नाश संशयः ॥४३॥

अवशा हि शृता दक्ष त्वया घर्ममजानता ।

ईश्वरावज्ञया सर्वं विफलचमविष्यति ॥४४॥

अपूजयायत्र पूज्यन्तेपूजनीयोन पूज्यते ।
 श्रीणि तत्रप्रवर्तन्तेदुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥४५॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमाननीयोवृषध्वजः ।
 अमानितात्महेशात्त्वामहद्भयमुपस्थितम् ॥४६॥
 अधुनेव धर्मं सर्वे प्रभवोन भवामहे ।
 भवतो दुर्धन्येनेव नाऽत्रकार्या विचारणा ॥४७॥
 विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत् ।
 विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः ॥४८॥

जिस समय मे दक्ष के द्वारा इस रीति से भगवान से प्रार्थना की गई थी तो भगवान मधुसूदन ने कहा था । मेरे द्वारा आपकी रक्षा मय्य ही की जायगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४३॥ हे दक्ष ! तुमने धर्म को न जानते हुए यही भारी भवज्ञा की है । ईश्वर की इस महती भवज्ञा से तेरा यह सभी कुछ विफल अवश्य ही हो जायगा ॥४४॥ जहाँ पर जो पूजने के योग्य हैं वे तो पूजे नहीं जाया करते हैं और पूजन करने के योग्य महान देवों की पूजा नहीं की जाती है यहाँ पर ये तीन कार्य हुआ करते हैं—महान दुर्भिक्ष का होना, मरण और तीसरा महान भय । इसलिये सभी प्रयत्नों के द्वारा भगवान् वृषध्वज का मान करना ही चाहिये । महेश के मान न करने से ही तुमको यह महार भय इस समय मे उपस्थित हो गया है ॥४५॥ इसी समय में हम सब समर्थ नहीं हो सकते हैं । यह आपके दुर्जय से ही सब कुछ हो रहा है । इसमे क्षय अधिक विचार करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ॥४७॥ भगवान् विष्णु के इस वचन को सुनकर दक्ष परम चिन्ता में समाकृत हो गया था और नास्तिकीन मुग घाला होकर श्रुपपाव भूमि पर स्थित हो गया था ॥४८॥

वीरभद्रो महाबाहू रद्रेणैवप्रचोदितः ।
 वाली कात्यायनीशानाचामुण्डा मुण्डमहिनी ॥४९॥

भद्रकालीतथाभद्रात्स्वरितावैष्णवी तथा ।

नवदुर्गादिसहितोभूतानाचरणोमहान् ॥५०॥

शाकिनी डाकिनी चैवभूतप्रमथगुह्यजाः ।

तथैवयोगिनोचक्रचतुः पष्टयः समन्वितम् ॥५१॥

निजुग्मुः सहसा तत्र यज्ञवाटं महाप्रभम् ।

वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्रतः ॥५२॥

पापंदाः शङ्करस्यैते सर्वे रुद्रस्वरूपिणः ।

पञ्चवक्त्रा नीलकण्ठाः सर्वे तैश्छपाण्यः ॥५३॥

छत्रचामरसंवीताः सर्वे हरपराक्रमाः ।

दशबाहुवस्त्रिनेत्रा जटिला रुद्रभूषणाः ॥५४॥

अर्धचन्द्रधराः सर्वे सर्वे चैव महौजसः ।

सर्वे ते वृषभारूढाः सर्वे ते वेपभूषणाः ॥५५॥

सहस्रबाहुभुजगाधिपैर्वृत्तखिलोचनो भीमबलो भयावहः ।

एभिः समेतश्च तदा महात्मा स वीरभद्रोऽभिजगाम यज्ञम् ॥५६॥

महान् बाहुमो बाला वीरभद्र जिसको भगवान रुद्र ने प्रेरित कर प्रेषित किया था । काली देवी, कात्यायजी, ईशान्न, चामुण्डा, मुण्ड-मादिनी, भद्र काली, भद्रा, स्वरिता तथा वैष्णवी इन सब दुर्गा आदि के सहित श्रीर महान् भूतों के गण, शाकिनी व डाकिनी, भूत, भ्रमण, गुह्यक तथा चौंसठ योगिनियों से समन्वित पूर्ण चक्र ये सभी वहाँ से निकल पड़े थे । वहाँ पर महान् प्रभा वाले यज्ञवाट में पहुँच गए थे । वीरभद्र के सहित सैकड़ों श्रीर हजारों गण थे । ये सभी भगवान शङ्कर के पापंद थे श्रीर सबका रुद्र के समान स्वरूप था । सबके पाँच मुख थे—नीले कण्ठ वाले थे श्रीर सबके हाथों में छत्र लगे हुए थे ॥५६-५३॥ सब छत्र श्रीर चामरों से संगीन थे श्रीर हर के ही समान पराक्रम वाले थे । सबके दश बाहुयें थी, जटाधारी थे श्रीर रुद्र के ही तुल्य भूषणों के धारण करने वाले थे ॥५४॥ सब आधे चन्द्र को धारण करने वाले महान् भीम

से सम्पन्न थे । सभी वृष पर समावृद्ध श्रीर शिवतुल्य वेप भूपाधारी थे । सहस्र बाहुधो वाला, भुजगो के षधियो ॥ समावृत, तीन नेत्रो का धारी भीम बल वाला, भय देने वाला वह महात्मा वीर भद्र इन सब के साथ लिये हुये उस यज्ञ के समीप में पहुँच गया था । १५५।१६।

युग्यानां च सहस्रेण द्विप्रमाणेनस्यदनम् ।
सिंहानांप्रयुतेनेवबाह्यमानं च तस्य सत् ॥१७॥
तथैव दक्षिताः सिंहवह्वः पार्श्वरक्षकाः ।
घातूँलामकरामस्यागजाश्चैव सहस्रशः ।
छत्राणि विविधान्येव चामराणि तथैव च ॥१८॥
मूर्धनिध्रियमाणानिसर्गतोऽग्रासिसर्वशः ।
ततोभेरी महानादाः शङ्खाश्चविविधस्वनाः ।
पटहा गोमुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च ॥१९॥
ततोऽवाद्यन्ततान्येवधनानिमुपिराणि च ।
कलगानपराः सर्वे सर्वे मृदङ्गवादिनः ॥२०॥
अनेकलास्यसयुक्ता वीरभद्राग्रतोऽभवन् ।
रणवादित्रनिर्घोषैर्जगजुं रमितोजसः ॥२१॥
तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् ।
एवं सर्वे समायाता गणारुद्रप्रणोदिताः ॥२२॥
यज्ञवाटं च दक्षस्यविनाशार्थंप्रहारिणः ।
रजसावाऽऽवृतव्योमतमसा च वृतादिशः ॥२३॥

उस वीरभद्र का हो प्रमाण समुक्त रथ था जिसमे एक सहस्र पशु थे और एक प्रयुक्त सिंहों द्वारा वह ब्रह्म मान हो रहा था । उसके बहुत से दक्षित सिंह पार्श्व रक्षक थे । सहस्रों घातूँल, मकरमत्स्य और गज थे । अनेक प्रकार के छत्र-चामर थे वो सबके आगे मस्तक पर धारण किये हुए थे । इसके अनन्तर महान नाद वाली भेरी और महान वाद ध्वनि वाले शङ्ख बजा रहे थे । पटह, गोमुख और अनेक शृङ्ग

भद्रकालीतथाभद्रात्वरितावैष्णवी तथा ।
 नवदुर्गादिसहितोभूतानां च गणो महान् ॥५०॥
 शाकिनी ङाकिनी चैव भूतप्रमथगुह्यकाः ।
 तथैव योगिनी च कंचतुः पृष्ठ्याः समन्वितम् ॥५१॥
 निजुग्मुः सहसा तत्र यज्ञवाटं महाप्रभम् ।
 वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्रशः ॥५२॥
 पापंदाः षडङ्कुरस्यैते सर्वे रुद्रस्वरूपिणः ।
 पञ्चवक्त्रा नीलकण्ठाः सर्वे ते शस्त्रपाणयः ॥५३॥
 छत्रचामरसंवीताः सर्वे हरपराक्रमाः ।
 दशबाहवस्त्रिनेत्रा जटिला रुद्रभूषणाः ॥५४॥
 अर्धचन्द्रधराः सर्वे सर्वे चैव महीजसः ।
 सर्वे ते वृषभारूढाः सर्वे ते वेपभूषणाः ॥५५॥
 सहस्रबाहुभुजगाधिपवृत्तस्त्रिलोचनो भीमबलो भग-
 एभिः समेतश्च तदा महात्मा स वीरभद्रोऽभिजगा-

काशगोभी थे और दूसरे सब दिशा-विदिशार्थों में समावृत्त होकर आवृत्त हुए थे । उस युद्ध में सभी धूर अनन्त और भ्रम्य थे जो कि के ही समान थे । इस प्रकार से रूद्रों के द्वारा परिवारित यह सेना । इसको देखकर सब परम विस्मित हो गये थे और कहने लगे थे । हम तो शस्त्र हाथों में ग्रहण कर भाज हो जाते हैं । ६६।६७।

४—देवताओं और शिव गणों का युद्ध

विष्णुनोक्तं वचः श्रत्वादक्षोवचनमब्रवीत् ।

वेदानामप्रमाणं च कृतं ते मधुसूदन ! ॥१॥

वैदिककर्मचोत्सृज्यकथंसेश्वरतां न्नजेत् ।

तदुच्यतामहाविष्णो ! येनधर्मः प्रतिष्ठितः ।२।

दक्षेणोक्तो महाविष्णुस्त्वाव परिसन्निवयन् ।

अंगुण्यविषया वेदाः सम्भवन्ति न चाग्यथा ।३।

वैदोदितानिकर्माणैश्चरेणविना कथम् ।

सफलानि भविष्यन्तिविफलान्येव तानिच ।४।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ईश्वरं शरणं यज ।

एवं ब्रूवति गोविन्द आगतः सैन्यसागरः ।

वीरभद्रेण सदृशो ददृक्षुस्तं तदा सुराः ।५।

इन्द्रोऽपि प्रहसन्विष्णुमात्मवादरतंतदा ।

वज्रपाणिः सुरैः सार्धं योद्धुकामोऽभवत्तदा । १६ ।

भृगुणाचारितः शीघ्रमुच्चाटनपरेणहि ।

तदा गणाः सुरैः साधं युयुधुस्ते गणान्विताः ।७।

महर्षि लोमश ने कहा— भगवान् विष्णु के द्वारा कहे हुए वचन का व्यवहार कर दश प्रजापति ने कहा— हे मधु सूदन ! आपने वेदों को प्रवर्णन कर दिया है। इन वैदिक कर्मों को छोड़कर आप कौंसे ईश्वरता का उद को प्राप्त करेंगे ? हे महाविष्णु ! अब आप यह ब्रह्मास्त्र देवायें प्रमत्त प्रतीति दीर्घ । इन तत्त्वों से दश क द्वारा कहे गये विष्णु ने

परिसान्त्वना देते हुए कहा था — ये वेद सब त्रैगुण विषय धाले हैं मन्यथा नहीं हुआ करते हैं । १।२।३। वेदों के द्वारा कहे हुए ये सब कर्म ईश्वर के बिना कैसे सफल होंगे । ये तो सभी विफल ही होंगे । इसलिये अब तो अपने समस्त प्रयत्नों के द्वारा तुम ईश्वर की शरण में चले जाओ । भगवान् गोविन्द यह कह ही कह रहे थे कि वह सेना रूपी सागर वही पर उमड़ कर आ ही गया था । उस समय में देवों ने वीरभद्र के सहस्र ही उसको देखा था । ४।५। इन्द्र ने उस समय में आश्रमवाद में रत भगवान् विष्णु की ओर हँसते हुए हाथ में वज्र ग्रहण करके सुरों के साथ युद्ध करने की इच्छा वाला हो गया था । भृगु ने शीघ्र ही उच्चारण परायण होकर समाचरण किया था । उस समय में गणों ने देवों के साथ युद्ध किया था । ६।७।

शरतोमरनाराचैर्जघ्नुस्तेषु परस्परम् ।
 नेदुः शङ्खाश्च बहुशस्तस्मिन्नणमहोत्सवे । ८।
 तथा दुग्दुभयोनेदुः पटहाडिण्डिमादयः ।
 तेन शब्देन महताश्लाघ्यमानास्तंदा सुराः ।
 लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्ताञ्छिवकिङ्करान् । ९।
 खड्गैश्चाऽपि हताः केचिद्गदाभिश्चविपोषिताः ।
 देवैः पराजिताः सर्वे गणाः शतसहस्रशः । १०।
 इन्द्रार्घ्यं लोकपालैश्चगणास्तेचपराङ्मुखाः ।
 कृताश्चतत्क्षणादेवभृगोमंश्रवलेनहि । ११।
 उच्चाटनकृत तेषांभृगुणायज्विना तदा ।
 यजनार्थं च देवानातुष्ट्यर्थदीक्षितस्य च । १२।
 तेनैव देवा जयिनोजातास्तत्क्षणाभेवहि ।
 स्वानां पराजयं दृष्ट्वा वीरभद्रोरुषान्वितः । १३।
 भूताग्रैरान्पिशाचांश्च कृत्वातानेव पृष्ठतः ।
 वृषभस्थान्पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः ।
 तीक्ष्ण त्रिशूलमादाय पातायामास तान्रणे । १४।

ये सब परस्पर दुर्भेदार-तोमर और नाराचों के द्वारा निहनन करने लगे थे । उस रण महोत्सव में बहुत बार शस्त्रों की ध्वनियाँ हुई थीं । इसी प्रकार से उस रणक्षेत्र में दुन्दुभियाँ और पटह एवं डिण्डिम आदि रण के वाद्यों ने ध्वनियाँ की थी । उस महान शब्द से उस समय में सुरगण बहुत ही एकाग्रमान हुए थे और लोकपालों के सहित उन्होंने उन समाक्रमणकारी शिव के किङ्करो का श्रवण ही हनन किया था । कुछ लोग तो रणों के द्वारा निहत किए गये थे और कुछ गदाघातों के प्रहारों से मारे गये थे अर्थात् विधोषित कर दिये गये थे । वे संकष्टों और सहस्रों शिव के गण देवों के द्वारा पराजित कर दिये गये थे । इन्द्र आदि के और लोकपालों के द्वारा वे सब गण पराङ्मुख कर दिए गये थे । उसी समय में भृगु के मन्त्र बल के द्वारा उन सबका उच्चारण किया गया था । यज्वी भृगु ने देवों के यजन करने के लिए और यज्ञ में दीक्षित दक्ष प्रजापति की सृष्टि के लिये ही ऐसा मन्त्रों का प्रयोग किया था । १०।११।१२। उसी के द्वारा उसी क्षण में देवगण विजयी हो गये थे । अपने गाय सेना में समागत गणों का पराजय देख कर वीरभद्र को बड़ा भारी क्रोध हुआ था । उसी समय में उन वीरभद्र ने उन पराङ्मुख होने वाले भूत-प्रेत और पिशाचों को पीछे की ओर धरके जो घुदगों पर समाकूट थे उनको धागे किया था और महान बल-शाली स्वयं भी धागे बद्ध कर आ गया था । फिर उसने अपने तीक्ष्ण घूर्ण की हाथ में लिया था और उन देवों को रणक्षेत्र में भूमिच्छापी कर दिया था । १३।१४।

देवाग्न्यशान्तिशाचां ब्रह्मगुह्यकान्नाक्षरास्तथा ।

पूलपातदक्ष ते सर्वगणादेवान्प्रजप्तिरे । १५।

वेचिद् द्विधाऋताः गृह्णीमुद्गरैश्चापि पोषिताः ।

परदत्तैः सण्डशद्व कृताः वेचिद्रग्नाजिरे । १६।

शस्त्रीभिर्नाशनततः वेचिच्चनस्तीरुताः ।

एवं पराजिताः सर्वे पन्थायनारागणाः । १७।

परिसान्त्वना देते हुए कहा था— ये वेद सब त्रैगुण विषय वाले हैं नहीं हुआ करते हैं । १।२।३। वेदों के द्वारा कहे हुए ये सब कर्म ईश्वर के बिना कैसे सफल होंगे । ये तो सभी विफल ही होंगे । इसलिये अब तो अपने समस्त प्रयत्नों के द्वारा तुम ईश्वर की धारण में चले जाओ । भगवाद् गोविन्द यह कह ही कह रहे थे कि यह सेना रूपी शागर वही पर उमड़ कर आ ही गया था । उस समय में देवों ने वीरभद्र के सहस्र ही उसको देखा था । ४।५। इन्द्र ने उस समय में भारमवाद में रत भगवाद् विष्णु की ओर हँसते हुए हाथ में वज्र ग्रहण करके सुरों के साथ युद्ध करने की इच्छा बना ही गया था । शृगु ने क्षीघ्र ही उच्चारण परा-यण होकर समाचरण किया था । उस समय में गणों ने देवों के साथ युद्ध किया था । ६।७।

शरतोमरनाराचंजघ्नुस्तेच परस्परम् ।
 नेदुः शङ्खाश्च बहुशस्तस्मिन्नरणमहोत्सवे । ८।
 तथा दुग्धुमयोनेदुः पटहाडिण्डिमादयः ।
 तेन शब्देन महताश्लाघ्यमानास्तंवा सुराः ।
 लोकपालश्च सहिता जघ्नुस्ताञ्छिवकिङ्करान् । ९।
 खड्गैश्चाऽपि हताः केचिद्गदाभिश्चविपोथिताः ।
 देवीः पराजिताः सर्वे गणाः शतसहस्रशः । १०।
 इन्द्रार्थं लोकपालश्चगणास्तेचपराङ्मुखाः ।
 कृताश्चतत्क्षणादेवभृगोर्मंश्रवलेनहि । ११।
 उच्चाटनकृतंतेपांभृगुणायज्विना तदा ।
 यजनार्थं च देवानांतुष्ट्यर्थदीक्षितस्य च । १२।
 तेनैव देवा जयिनोजातास्तत्क्षणमेवहि ।
 स्वानां पराजयं दृष्ट्वा वीरभद्रोरुपान्वितः । १३।
 भूताग्नेतान्पिशाचांश्च कृत्वातानेव पृथतः ।
 वृषभस्थान्पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः ।
 तीक्ष्णं त्रिशूलमादाय पातायामास वाज्रणे । १४।

और दोनों पूर्व भी माँस तथा उत्तर भी माँस (वेदान्त) उसको जानने में समर्थ नहीं हैं। वह तो अनन्य भक्ति के ही द्वारा जानने योग्य है। शान्ति और परा तुष्टि से ही भगवान सदाशिव जानने के योग्य हुमा करते हैं ॥२१॥२२॥

तेन सर्वसम्भवन्तिसुखदुःखात्मकं जगत् ।

परन्तु सम्बदिष्यामिकार्यकार्यविवक्षया ॥२३॥

त्वमिन्द्र ! बालिशो भूत्वा लोकपालः सहाय्य ये ।

आगतो बालिशो भूत्वा इदानीं किं करिष्यसि ॥२४॥

एतेरुद्रसहायाश्च गणाः परमशोभन ।

कृपिताश्च महाभागा न तु शेषः प्रकुर्वन्ते ॥२५॥

एवं बृहस्पतेर्वाक्यं श्रुत्वा तेषां पिदिवीकसः ।

चिन्तामापेदिरे सर्वे लोकपाला महेश्वराः ॥२६॥

ततोऽप्रवीचीरभद्रोगणः परिवृतो भृशम् ।

सर्वं यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः ॥२७॥

अवदानानि दास्यामितृप्यर्थं भवतात्वरम् ।

एवमुक्ता शितैर्वाणजघानाऽथ रुपाश्वितः ॥२८॥

वसी से यह दुःख-सुख स्वरूप वाला जगत् और सब समुपद्रव हुमा करते हैं किन्तु कार्य और अकार्य की विवक्ष्य से मैं कहूँगा ॥२३॥ हे इन्द्र ! तुम भूल हो गए हो और इन सब लोकपालों के साथ भाज भूलता की है। यहाँ पर बिल्कुल मूढ़ बनकर तुम समागन हो गये हो। इस समय मैं क्या करूँ ? ॥२४॥ ये समस्त गण भगवान रुद्र की सहायता वाले हैं और परम शोभन हैं। ये महाभाग धैर्यविक्रम क्रोध में भरे हुए हैं ये शेष नहीं रखा करते हैं ॥२५॥ इस प्रकार के कहे हुए बृहस्पती के वाक्य का श्रवण करके वे समस्त देवगण भी चिन्तित हो गए थे तथा सब महेश्वर लोकपाल भी चिन्ता को प्राप्त हो गए थे ॥२६॥ इसके अनन्तर गणों से मूढ़ घिरे हुए वीरभद्र बोले—आप सब मूर्खता के कारण से ही अवदान के लिए समागन हुए हैं ॥२७॥ आपकी वृत्ति के

परस्परं परिष्वज्यमतास्तेऽपि त्रिविष्टपम् ।
 केवलं लोकपालाश्च इन्द्राद्यास्तस्युत्सुकाः ।
 बृहस्पतिं पृच्छमानाः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ॥१८॥
 बृहस्पतिरुवाचेदं सुरेन्द्र त्वरितस्तदा ॥
 यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सत्यं जातमद्य वै ॥१९॥
 अस्ति चेदोऽश्वरः कश्चित्फलरूप्यस्य कर्मणः ।
 कर्तारं भजते सोऽपि महाकतुः प्रभुर्हितः ॥२०॥
 न मन्त्रोपधयः सर्वेनाभिचारानलौकिकाः ।
 न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयं तथा ॥२१॥
 ज्ञातुमीशाः सम्भवन्ति भवत्या ज्ञेयास्त्वनन्मया ।
 ज्ञान्त्या च परया तुष्ट्या ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ॥२२॥

उन सब गलों ने देवों को, यक्षों को, पिशाचों को, गुह्यकों को
 और राक्षसों को तथा देवों को दूत के घातों के द्वारा निहत्तन किया
 था ॥१५॥ कुछ लोग तो खंभों से दो टुकड़े कर दिये गए थे और मुद्-
 गरों के द्वारा भी पीपित किये गये थे । कुछ क्षेत्र परश्वधों से खड्ग-झड़
 कर डाले थे । इस प्रकार से उस रणक्षेत्र में हनन किया गया था ॥१६॥
 सैकड़ों तो परश्वधों के द्वारा भिन्न कर दिए थे और कुछ टुकड़े कर डाले
 थे । इस तरह से सब पराजित होते हुए भागने में परामण हो गये थे ।
 ॥१७॥ परस्पर में परिष्वजन करके वे भी सब स्वयं चले गये थे । बर्षा
 पर शिबं लौकपाल और इन्द्र आदि उत्सुक होते हुए स्थित रह गये थे ।
 इन सबने बृहस्पति से पूछा था कि हमारा विजय कैसे होगा ॥१८॥ उस
 समय में सीधता में बृहस्पति ने सुरेन्द्र से यह कहा था । बृहस्पति ने
 कहा—जो कुछ भी भगवान् विष्णु ने पहिले कहा था वह सब कुछ
 भान सत्य ही हो गया है ॥१९॥ इस फल रूप्य कर्म का यदि कोई ईश्वर
 है वह भी कर्त्ता का भजन किया करता है जो कर्त्ता का सह प्रभु नहीं
 होता है ॥२०॥ सब मन्त्र और औपधियाँ—अभिचार, लौकिक, कर्म, वेद

घोर दोनों पूरे भी माँस तथा उत्तर भी माँस (वेदान्त) उसको जानने में समर्थ नहीं हैं। वह तो अनन्य भक्ति के ही द्वारा जानने योग्य है। शान्ति घोर परा तुष्टि से ही भगवान सदाशिव जानने के योग्य हुआ करते हैं। १२१।२२।

तेन सर्वसम्भवन्तिसुखदुःखात्मकं जगत् ।

परन्तु सम्बन्धिष्यामिकार्याकार्यविवक्षया । १२३।

त्वमिन्द्र ! बालिशो भूत्वा लोकपालोः सहाय वै ।

आगतो बालिशो भूत्वा इदानीं किं करिष्यसि । १२४।

एतेरुद्रसहायाश्च गणाः परमशोभनः ।

कपिताश्च महाभागा न तु क्षेपं प्रकुर्वते । १२५।

एवं बृहस्पतेर्वामिश्रत्वातेऽपि दिवौकसः ।

चिन्तामापेदिरे सर्वलोकपाला महेश्वराः । १२६।

ततोऽग्नीद्वीरभद्रोगणैः परिवृतो भृशम् ।

सर्वं यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः । १२७।

अवदानानि दास्यामि तृप्त्यर्थं भवतांस्त्वरन् ।

एवमुक्त्वा शितैर्वाणैर्जघानाऽयं रूपाश्वितः । १२८।

उसी से यह दुःख-सुख स्वरूप बाना जगत् घोर सब समुपम हुआ करते हैं किन्तु कार्य और अकार्य की विवक्षय से मैं कहूँगा । १२३। हे इन्द्र ! तुम भ्रष्ट हो गए हो और इन सब लोकपालों के साथ आज भ्रष्टता की है। यहाँ पर बिस्फुल मूढ़ बनकर तुम समागत हो गये हो। इन समय में क्या करोगे ? । १२४। ये नमस्त गण भगवान रुद्र की सहायता वाले हैं और परम शोभन हैं। ये महाभाग अत्यधिक क्रोध में भरे हुए हैं ये क्षेप नहीं रखा करते हैं । १२५। इस प्रकार के कहे हुए बृहस्पती के वाक्य पर श्रवण करके वे नमस्त देवगण भी चिन्तित हो गए थे तथा सब महेश्वर लोकपाल भी चिन्ता में पड़ने लगे थे । १२६। इसके अनन्तर गणों से गुन घिरे हुए घोरभद्र बोले—चाप सब धूँगा के कारण से ही भवदाय के लिए समागत हुए हैं । १२७। आपकी मृति के

परस्परं परिष्वज्यगतास्तेऽपित्रिविष्टपम् ।
 केवलंलोकपालाश्चन्द्राद्यास्तस्युरुत्सुकाः ।
 बृहस्पतिं पृच्छमानाः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ।१८।
 बृहस्पतिरुवाचेदं सुरेन्द्रं त्वरितस्तदा ॥
 यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सत्यं जातमद्य वै ।१९।
 अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यस्य कर्मणाः ।
 कर्तारिंभजतेसोऽपिन ह्यक्तुः प्रभुर्हितः ।२०।
 न मन्त्रोपधयः सर्वेनाभिचारानलौकिकाः ।
 न कर्माणि न वेदाश्च न मीमासाद्वयं तथा ।२१।
 ज्ञातुमीषाः सम्भवन्ति भक्त्या ज्ञेयास्त्वनश्यया ।
 शान्त्या च परया तुष्ट्या ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ।२२।

उन सब गणों ने देवों को, यक्षों को, पिशाचों को, गुह्यकों को और राक्षसों को तथा देवों को शूल के घातों के द्वारा निह्नन किया था ।१५। कुछ लोग तो खगों से दो टुकड़े कर दिये गए थे और मुद्गरों के द्वारा भी पोषित किये गये थे । कुछ क्षेत्र परश्वधो ॥ खड्ग-खड्ग कर डाले थे । इस प्रकार से उस रणक्षेत्र में हनन किया गया था ।१६। सैकड़ों तो परश्वधो के द्वारा भिन्न कर दिए थे और कुछ टुकड़े कर डाले थे । इस तरह से सब पराजित होते हुए भागने में परायण हो गये थे । १७। परराज में परिष्वजन करके वे भी सब स्वर्ग चले गये थे । वहाँ पर सिकं लोकपाल और इन्द्र आदि उत्सुक होते हुए स्थित रह गये थे । इन सबने बृहस्पति से पूछा था कि हमारा विजय कैसे होगा ।१८। उस समय में क्षीघ्रता ॥ बृहस्पति ने सुरेन्द्र से यह कहा था । बृहस्पति ने कहा—जो कुछ भी भगवान् विष्णु ने पहिले कहा था वह सब कुछ आज सत्य हो हो गया है ।१९। इस फल रूप्य कर्म का यदि कोई ईश्वर है वह भी कर्त्ता का भजन किया करता है जो कर्त्ता का सह प्रभु नहीं होता है ।२०। सब मन्त्र और उपधियाँ—अभिचार, लौकिक, कर्म, वेद

और दोनों पूर्व भी माँस तथा उत्तर भी माँसा (वेदान्त) उसको जानने में समर्थ नहीं हैं। यह तो अनन्य भक्ति के ही द्वारा जानने योग्य है। शान्ति और परा तुष्टि से ही भगवान सदाशिव जानने के योग्य हुआ करते हैं। १२१।२२।

तेन सर्वं सम्भवन्ति सुखदुःखात्मकं जगत् ।
परन्तु सम्बन्धिष्यामि कार्यकार्यं विवक्षया । १२३।
त्वमिन्द्र ! बालिशो भूत्वा लोकपालीः सहाद्य वै ।
आगतो बालिशो भूत्वा इदानीं किं करिष्यसि । १२४।
एते रुद्रसहायाश्च गणाः परमशोभनः ।
कपिताश्च महामाणा न तु शेषं प्रकुर्वन्ते । १२५।
एवं बृहस्पतेर्विषयं धृत्वा तेऽपि दिवौकसः ।
चिन्तामापेक्षिरे सर्वलोकपाला महेश्वराः । १२६।
ततोऽब्रवीद्दीर्घभद्रोगणैः परिवृतो भृशम् ।
सर्वं यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः । १२७।
अवदानानि दास्यामि तृप्त्यर्थं भवतां त्वरन् ।
एवमुक्त्वा शितैर्बाणजं घानाऽथ रुपाश्वितः । १२८।

उसी से यह दुःख-सुख स्वरूप वाला जगत् और सब समुपद्रव हुआ करते हैं किन्तु कार्य और प्रकार्य की विवक्ष से मैं कहूँगा । १२३। हे इन्द्र ! तुम मूर्ख हो गए हो और इन सब लोकपालों के साथ आज भूलता की है। यहाँ पर बिल्कुल मुठ बनकर तुम समागत हो गये हो। इस समय मैं क्या करोगे ? । १२४। ये समस्त गण भगवान रुद्र की सहायता वाले हैं और परम शोभन हैं। ये महामाग अत्यधिक श्रेष्ठ में भरे हुए हैं ये शेष नहीं रखा करते हैं । १२५। इस प्रकार के कहे हुए बृहस्पती के वाक्य का श्रवण करके ये समस्त देवगण भी चिन्तित हो गए थे तथा सब महेश्वर लोकोपाल भी चिन्ता को प्राप्त हो गए थे । १२६। इसके अनन्तर गणों से खूब घिरे हुए दीर्घभद्र बोले—घाप मच सूझता के कारण से ही अवदान के लिए समागत हुए हैं । १२७। आपकी तृप्ति के

लिए बहुत ही क्षीघ्रता से मैं उन सब दानों को दूँगा । इस प्रकार से कहकर बड़े रोष से समन्वित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से हनन किया था । १२८।

तैर्बाणेनिहताः सर्वे जग्मुस्ते च दिशो दश । १२९।
 गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च ।
 यज्ञवाटे समायातो वीरभद्रो गणान्वितः । १३०।
 तदा त ऋषयः सर्वे सर्वमेवेश्वरेस्वरम् ।
 विज्ञप्तुकामाः सहसाऽधुरेवं जनार्दनम् । १३१।
 रक्ष यज्ञं हि दक्षस्य यज्ञोऽसित्वं न संशयः ।
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषीणां जनार्दनः । १३२।
 योऽहं कामः स्थितो युद्धे विष्णुरध्यात्मदीपकः ।
 वीरभद्रो महाबाहुः केशवं वाक्यमब्रवीत् । १३३।
 अत्र त्वया गतं कस्माद्विष्णो ! वेत्नामहाबलम् ।
 दक्षस्य पक्षमाश्रित्य कथं जेष्यसि तद्वद । १३४।
 दाक्षाय प्याकृतं यच्च न दृष्टं किं त्वयाऽनघ ! ।
 त्वंचाऽपि यज्ञे दक्षस्य अवदानार्थमागतः ।
 अतदानं प्रयच्छामि तव चाऽपि महाभुज ! । १३५।

उन बाणों से उन सब को निहत कर दिया था और वे दशों दिशाओं में चले गये थे । १२९। उन समस्त लोकपालों के चले जाने पर और देवगणों के विद्रुत हो जाने पर फिर वह वीरभद्र अपने गणों को साथ में लेकर उस यज्ञ वाट में समागत हुए थे । १३०। उस समय में वे समस्त ऋषिगण समस्त ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् जनार्दन से विज्ञापन करने की इच्छा वाले होते हुए सहस्र करने लगे थे । हे भगवन् ! इस दश के यज्ञ की रक्षा करिए क्योंकि प्रायः यज्ञ स्वरूप हैं—इसमें कुछ संशय नहीं है । भगवान् जनार्दन ने ऋषियों के वचनों को सुनकर गुड करने की इच्छा वाले होकर अध्यात्म दीपक वह भगवान् विष्णु स्वयं

युद्ध स्थल में स्थित हो गए थे । उस समय मे महाबाहु वीरभद्र ने भगवान् केशव से यह वाक्य कहा था — १३१।३२।३३। हे विष्णु ! आप यहाँ पर कैसे आ गए हैं । आप तो इस महाबल के ज्ञाता थे । आप इस दक्ष के पक्ष को ग्रहण करके इस छद्म की सेना को कैसे जीत लेंगे — यही आप हमको बतला दीजिए । हे जनक ! जो यहाँ पर दाक्षायणी किया है क्या आपने उस दुष्टता को नहीं देखा था ? आप भी इस दक्ष के पक्ष में प्रवृत्तान ग्रहण करने के लिए ही समागत हुए हैं । हे महाभुज ! मैं वह अवदान आपको भी देता हूँ । ३४।३५।

एयमुक्त्वा प्रणम्यादौ विष्णुं सृष्टारूपिणम् ।
वीरभद्रोऽग्रतो भूत्वा विष्णुं वाचयगयाऽब्रवीत् । ३६।
यथाशम्भुस्तथास्वहिममनास्त्यत्रसंक्षयः ।
तथाऽपित्वंमहाबाहोयोद्धु कामोऽग्रतः स्थितः ।
नेष्पाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना । ३७।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्यधीमतः ।
उवाच प्रहसन्देवोविष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः । ३८।
रुद्रतेजः प्रसूतोऽसि पवित्रोऽसि महामते ।
अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनः पुनः । ३९।
अहं भवतपराधीनस्तथासोऽपि महेश्वरः ।
तेनैव कारणेनाऽब्रवसस्य यजनं प्रति । ४०।
आगतोऽहं वीरभद्र ! रुद्रकोपसमुद्भव ! ।
अहं निवारयामित्वा त्ववामा विनिवारय । ४१।
इत्युक्तवतिगोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः ।
प्रथमावनतोभूत्वा इदमाह जनार्दनम् । ४२।

इस प्रकार से कहकर सर्वप्रथम सृष्टर स्वरूप वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम किया था और फिर वीरभद्र आगे होकर विष्णु भगवान् से यह वाक्य बोला था । ३६। जिस प्रकार से मेरे माननीय भगवान् शम्भु हैं

वैसे ही आप भी हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है तो भी हे महाबाहो ! आप मुझसे युद्ध करने की कामना वाले होकर मेरे आगे समवस्थित हो गए हैं । यदि आप अपने आप ही इस रख में स्थिर होकर लड़ते हैं तो मैं आपको यष्टुगवृत्ति में पहुंचा दूंगा । १३७। उस धीमान् वीरभद्र के इस वचन का श्रवण करके सबके ईश्वरों के भी ईश्वर विष्णुदेव हँसते हुए यह वचन बोले । १३८। भगवान् विष्णु ने कहा—हे महामते ! आप रक्ष के तेज से समुत्पन्न हुए हैं मतएव आप परम पवित्र हैं । देखो, इस दक्ष ने पहिले ही यज्ञ में समागत होने के लिए मुझे वारम्बर बुलाया था और मेरी प्रार्थना की थी । मैं तो भक्त के पराधीन हूँ उसी तरह भगवान् महेश्वर भी अपने भक्त के अधीन रहा करते हैं । इसी कारण से मैं दक्ष के इस यजन में आ गया हूँ । हे वीरभद्र ! आप तो रुद्र के कोप से समुत्पन्न होने वाले हैं । मैं आपको निवारण करता हूँ और आप मुझको विनिवारित कीजिये । १३९। १४०। १४१। इस प्रकार से यह श्री गोविन्द के कहने पर वह महान् भुजाघो वाना हुआ सकर । वीर प्रथय से एकदम विनम्र होकर जनार्दन से यह बोला— । १४२।

यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः ।

सेवकाश्च वयं सर्वे तव वा शङ्करस्य च । १४३।

तच्छ्रुत्वा वचन तस्य सोऽच्युतः 'सम्प्रहस्य च ।

इदं विष्णुर्महाबाहव्य जगादपरमेश्वरः । १४४।

यो धयस्व महाबाहो मया सार्धं मशङ्कितः ।

तवाञ्छः पूर्यमाणोऽहं गच्छामि भवनं स्वकम् । १४५।

तथैत्युक्त्वा तु वीरोऽसौ वीरभद्रो महाबलः ।

गृहीत्वा परमास्त्राणि सिंहनादं जगर्जह । १४६।

विष्णु इच्छाऽपि महाघोषं शङ्खनादं चकार सः ।

तच्छ्रुत्वा ये गतादेवारणाहित्वाऽऽययुः पुनः । १४७।

व्यूहं चक्रुस्तदा सर्वे लोकपालाः सनीसवाः ।

तदेन्द्रेण हतो नन्दो वर्ज्येण क्षतपर्वणा । १४८।

नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे ।

वायुना च हतो भृंगी भुङ्गिणा वायुराहतः ॥४६॥

जिस रीति से भगवान् शिव हैं उसी भाँति आप हैं और जैसे आप हैं वैसे ही भगवान् शिव हैं । हम सब तो भगवान् शङ्कर के घोर आपके सेवक हैं ॥४३॥ उसके इस वचन का श्रवण करके भगवान् प्रच्युत हो गये और फिर परमेश्वर-भगवान् विष्णु यह महावाक्य बोले ॥४४॥ हे महाबाहो ! तुम शङ्कर हित होकर मेरे साथ युद्ध करो । तुम्हारे शस्त्रों में पूर्णमाण होकर ही मैं अपने भवन को चला जाऊँगा ॥४५॥ ऐसा ही किया जायेगा—यह कहकर महान् बलवान् इस वीर धीरभद्र ने परम भक्तों को ग्रहण करके सिंह नादों के सहित गर्जना की थी ॥४६॥ भगवान् विष्णु ने भी महान् घोष बाला शङ्ख नाद किया था । यह सुन कर जो देवगण वहाँ से भागकर चले गये थे और युद्ध छोड़ चले थे वे भी फिर वहाँ पर लौट कर वापिस आ गये थे । इन्द्र के सहित समस्त लोकपालों ने एक व्यूह (मोर्चा) की रचना की थी । इसके पश्चात् उसी समय में इन्द्रदेव ने कतपर्वी वज्र के द्वारा नन्दी पर प्रहार किया था तथा नन्दी ने त्रिशूल के द्वारा स्तनो के मध्य में इन्द्र पर प्रहार किया था । वायुदेव ने भुङ्गि पर और भृङ्गी ने वायु पर प्रहार किए थे और दोनों एक दूसरे के प्रहारों से आहत हो गए थे ॥४७॥४८॥४९॥

शूलेन सितधारेण सनद्धो दण्डधारिणा ।

यमेन सह संग्रामं महाकालो बलान्वितः ॥५०॥

कुबेरेण च संगम्य कूष्माण्डानां पति स्वयम् ।

वरुणेन समं युद्धं मुण्डश्चैव महानलः ॥५१॥

युयुधे परया शक्त्या त्रैलोक्यं विस्मयन्निव ।

नैऋतेन समागम्य चण्डश्च बलवत्तरः ॥५२॥

युयुधे परमास्त्रेण नैऋत्यं च विडम्बयन् ।

योगिनो चक्रसंयुक्तो भैरवो नायको महम् ॥५३॥

विदायं देवानखिलान्पौ शोणितमद्भुतम् ।
 क्षेत्रपालास्तथा चान्ये भूतप्रमघगुह्यकाः ।५४।
 शाकिनी डाकिनी रोद्रा नवदुर्गास्तथैव च ।
 योगिन्यो यातुधान्यश्च तथा कूष्माण्डकादयः ।
 नेदुः पपुः शोणितं च बुभुजुः पिशितं बहु ।५५।
 भक्ष्यमाणंतदासैन्यं विलोक्य सुरराट् स्वयम् ।
 विहाय नन्दिनपश्चाद् वीरमद्रं समाक्षिपत् ।५६।

सितधार वाले शूल के द्वारा दण्डीधारी यम के साथ बल से समन्वित महा काल संध्याम के लिए सज्ज हो गया था । कुबेर के साथ मङ्गम करके स्वयं कूष्माण्डों का पति तथा महान बलशाली मुण्ड वरुण के साथ मिलकर युद्ध करने लगे थे । तीन लोको को विस्मय में डालते हुए परमाधिक शक्ति से बलवानो मे विशेष जनधारी अण्ड ने गीर्जित देव के साथ मिलकर युद्ध किया था । ५०।५१।५२। योगिनियो के अक्र से समन्वित होकर महान् सेना के नायक भैरव ने परमात्म के द्वारा नर्ऋत्य देव को विहम्बित करते हुए घोर युद्ध किया था । समस्त देवों को विदीर्ण करके उस गीरव में अद्भुत देवों का दधिर का पान किया था । उसी भाँति अन्य क्षेत्रपाल, भूत, प्रमघ, गुह्यक, शाकिनी, डाकिनी, परम रोद्र रूप वाली नव दुर्गा, योगिनियाँ, यातुधानियाँ, कूष्माण्ड आदि सबने महान घोर ध्वनि की, रक्त का खूब पान किया तथा मांस का अग्न्यो तरह से भक्षण किया था । उस समय में इस बुरी तरह से समस्त सेना का भक्षण होते हुये देखकर देवो के राजा इन्द्रदेव ने नन्दी के साथ युद्ध करना छोड़कर फिर वीरमद्र के ऊपर आक्रमण किया था । ५३।५४।५५।५६।

वीरमद्रो विहायैव विष्णुं देवेन्द्रमास्थितः ।

तयोयुद्धमभूदोरं बुधाङ्गारकयोरिव ।५७।

वीरभद्रं पदाशक्रो हन्तुकामस्त्वरान्वितः ।
 तावच्छक्रं गजस्थं हि पूरयामास मार्गणेः । ५८।
 वीरभद्रो रूपाविष्टो दुर्निवार्यो महाबलः ।
 तदेन्द्रेणाहृतः शीघ्रं वज्रेण शतपर्वणा । ५९।
 सगजञ्च सवज्रं च वासवंगन्तुमुद्यतः ।
 हाहाकारो महानासोद् भूतानां तत्र पश्यताम् । ६०।
 वीरभद्रं तथाभूतं हन्तुकाम पुरन्दरम् ।
 त्वरमाणास्तदा विष्णुर्वीरभद्रायतः स्थितः । ६१।
 शक्रं च पृष्ठतः कृत्वा योधयामास वै तदा ।
 वीरभद्रस्य विष्णोश्च युद्ध परमभूतदा । ६२।
 शस्त्रास्त्रैर्विविधाकारैर्योधयामास तु तदा ।
 पुनर्नन्दिनमालोक्य शक्रो युद्धविशारदः । ६३।

वीरभद्र ने भी भगवान् विष्णु को छोड़कर स्वयं देवेन्द्र को ऊपर भाक्रमण के लिए समास्थित हो गया था । उस समय में उन दोनों का बुध और मङ्गलारक के समान भटपट वीर युद्ध हुआ था । इन्द्र बहुत ही शीघ्रता युक्त होकर पद से वीरभद्र का हनन करना चाहता था किन्तु तब तक वीरभद्र ने ऐरावत हाथी पर स्थिति इन्द्र को बाणों से पूरित कर दिया था । वह महान बलवान् वीरभद्र एक दम रोष के आवेश में हुआ था और दुर्निवार्य हो गया था । उसी समय में इन्द्रदेव ने शतपर्वा वज्र के द्वारा उसे शीघ्र ही समाहृत कर दिया था । ५७। ५८। ५९। जिस समय में हाथी और वज्र के सहित इस पर गमन करने के लिए वह उद्यत हुआ था उस समय में वहाँ पर जो प्राणी देख रहे थे उनमें महान हाड़ाकार मच गया था । इस प्रकार से इन्द्रदेव का हनन करने की इच्छा वाले वीरभद्र को देखकर भगवान् विष्णु शीघ्रता से समागत होते हुये वीरभद्र के आगे स्थित हो गये थे । इन्द्र अपने पृष्ठ भाग की ओर करके स्वयं ही उस समय में युद्ध करने लगे थे । वह प्रथम पर वीर-

विदायं देवानखिलान्पपी शोणितमद्भुतम् ।
 क्षेत्रपालास्तथा चान्ये भूतप्रमथगुह्यकाः ॥५४॥
 शाकिनी डाकिनी रौद्रा नवदुर्गास्तथैव च ।
 योगिन्यो यातुधान्यश्च तथा कूष्माण्डकादयः ।
 नेदुः पपुः शोणितं च वृभुजुः पिशितं वह् ॥५५॥
 भक्ष्यमाणतदासैन्यं विलोक्य सुरराट् स्वयम् ।
 विहाय नन्दिनं पश्चाद् वीरभद्रं समाक्षिपत् ॥५६॥

सितधार वाले दून के द्वारा दण्डोघारी यम के साथ बल से
 समन्वित महा काल संधाय के लिए सन्नद्ध हो गया था । कुबेर के साथ
 सज्जम करके स्वयं कुष्माण्डों का पति तथा महान बलशाली मुण्ड वरुण
 के साथ मिलकर युद्ध करने लगे थे । तीन लोको को विस्मय में डालते
 हुए परमाधिक शक्ति से बलवानो में विशेष धनधारी चण्ड ने गैर्भृत
 देव के साथ मिलकर युद्ध किया था ॥५०॥५१॥५२॥ योगिनियो के चक्र से
 समन्वित होकर महान् सेना के नायक भैरव ने परमात्म के द्वारा
 नैऋत्य देव को विडम्बित करते हुए घोर युद्ध किया था । समस्त देवों
 को विदीर्ण करके उस गौरव में अद्भुत देवों का इधिर का पान
 किया था । उसी भाँति अन्य क्षेत्रपाल, भूत, प्रमथ, गुह्यक, शाकिनी,
 डाकिनी, परम रौद्र रूप वाली नव दुर्गा, योगिनियो, यातुधानियो,
 कूष्माण्ड आदि सबने महान घोर ह्वनि की, रक्त का खूब पान किया
 तथा मांस का भक्ष्यी तरह से भक्षण किया था । उस समय में इस घुरी
 तरह से समस्त सेना का भक्षण होते हुये देखकर देवों के राजा इन्द्रदेव
 ने नन्दी के साथ युद्ध करना छोड़कर फिर वीरभद्र के ऊपर आक्रमण
 किया था ॥५३॥५४॥५५॥५६॥

वीरभद्रो विहायैव विष्णुं देवेन्द्रमास्थितः ।

तयोयुद्धमभूदोरं बुधाङ्गारकयोरिव ॥५७॥

बुलाकर व्याधियों का हनन करने के लिए कहा गया था । तभी से लेकर उन्हें परम सुमुद्धिमान गिनकर उन दोनों को प्रयत्नपूर्वक दे दिया था । ६७। वे दोनों अश्विनीकुमार उस समय में सब प्रकार के जरो को, सन्निपालों को और अन्य प्राणियों को पीड़ा देने वाले रोगों को सबको निगृहीत करके परम प्रसन्न हुए थे । समस्त देवों को ऊपर से रक्षित करके चिरकाल पर्यन्त वे अश्विनी कुमार मुदित हुए थे । ६८। फिर उन देवों ने शीरव को व्याकुली कृत करके सम्पूर्ण योगिनी चक्र को जीत लिया था और तीक्ष्ण अप्रमाण वाले शरों के द्वारा भूतगणों को भी उन देवों ने रणक्षेत्र में गिरा दिया था । ६९। इस तरह सुरों के द्वारा विद्रा-वित अपनी सेना को देखकर तथा सबको घराशायी विलोकन करके धीर-भद्र को बड़ा भारी रोष था गया था तथा क्रोध में भरकर वह भगवान विष्णु से यह वचन बोला था । ७०।

त्वं शूरोऽसिमहाबाहो ! देवानांपालकोह्यसि ।

युव्यस्वमांप्रयत्नेन यदि ते मतिरीदृशी । ७१।

इत्युक्त्वा त समासाद्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।

ववपं निशितं वर्णैर्वीरभद्रो महाबलः । ७२।

तदा चक्रेण भगवान् वीरभद्र जघान सः ।

आयान्त चक्रमालोक्य ग्रसित तत्क्षणाच्च तत् । ७३।

प्रसितं चक्रमालोक्य विष्णुः परपुरस्त्रयः ।

मुखतस्त्य परामृज्य विष्णुनोदगलित पुनः । ७४।

स्वचक्रमादाय महानुभावो दिवगतोऽक्षो भुवनैकमर्ता ।

ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं च विष्णुः कृती कृत दुष्प्रसहं परेषाम्

। ७५।

हे महाबाहो ! आप तो महान शूरवीर हैं और देवों के आप परम पालन करने वाले भी हैं । यदि आपकी ऐसी ही बुद्धि है तो प्रयत्न पूर्वक मेरे साथ अब आप ही स्वयं युद्ध कर लीजिए । ७१। इतना

कहकर वह विष्णु भगवान के समीप में पहुँच गया था जो कि समस्त ईश्वरों के भी परम ईश्वर थे । महान बलवान वीरभद्र ने अत्यन्त तीखे बाणों के द्वारा उन पर वर्षा प्रारम्भ करदी थी । ७२। उसी समय भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा वीरभद्र का हनन किया था उस प्राते हुए चक्र को देखकर जो तत्क्षण ही प्रसन्न कर लेने लगा था । पर पुरों का जय करने वाले भगवान विष्णु ने उस प्रसन्न अपने चक्र को देखकर उसके मुख का परामृदन करके पुनः विष्णुन उसे उद्गलित किया था । अपने चक्र को ग्रहण करके वे मद्भानुभाव भगवान विष्णु जो समस्त भुवनों के एक ही भरण करने वाले हैं स्वर्गलोक में चले गये थे । कृतो विष्णुदेव ने इस सबका ज्ञान करके दूसरों का जो दुष्प्रसह था वह कर दिया था । ७३। ७४। ७५।

५—वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरच्छेदन

विष्णो गते तदा सर्वे देवाश्च ऋषिभिः सह ।
 विनिजिता गणैः सर्वे ये च यज्ञोपजीविनः । १।
 भृगुश्च पातयामास श्मश्रूणां लुञ्चनं कृतम् ।
 द्विजांश्चोत्पाटयामास पूष्णां विकृतविक्रियान् । २।
 विडम्बिता स्वधा तत्र ऋधपश्चविडम्बिताः ।
 बधूपुस्ते पुरोषेणवितानाभ्नोरूपाभ्विताः । ३।
 अनिर्वान्यं तदाचक्रुर्गणाः क्रोधसमन्विताः ।
 अन्तर्वेद्यन्तरगतो दक्षो वै महतो भयात् । ४।
 तं निलोनं समाज्ञाय आनिनाय रूपान्वितः ।
 कपोलेषु गृहीत्वा तं खड्गेनोपहतं शिरः । ५।
 अभेद्यं तच्छिरो मत्वा वीरभद्रः प्रतापवान् ।
 स्कन्धं पद्भ्यां समाक्रम्य कण्ठरेऽपीडयत्तादा । ६।
 कण्ठरात्पाट्यमानाच्च शिरश्छिन्नं दुरात्मनः ।
 दक्षस्य च तदा तेन वीरभद्रेण धीमता ।
 तच्छिरः सुहृतं कुण्डे ज्वलिते तत्क्षणात्तादा । ७।

महर्षि प्रवर सोमश मुनि ने कहा था—भगवान विष्णु के उस समय में वहाँ से चले जाने पर सगस्त देवगण ऋषियों के सहित गणों के द्वारा जीत लिये गए थे जो भी वहाँ पर यज्ञ के उपजीवी थे सभी को वीरभद्र के गणों ने पराजित कर दिया था । १। उस वीरभद्र ने भृगु को नीचे गिरा दिया था और उसको दमश्रुओं का सुखन कर डाला था पूष्पा को और विकृत विक्रिया वाले द्विजों को उत्पाटित कर दिया था । २। स्वषा को और ऋषियों को वहाँ पर विडम्बित कर दिया था । ३। राघ से समन्वित होकर उन्होंने वितानाग्नि में पुरीष (मल) को धर्पा की थी । क्रोध से भरे हुए उन गणों ने उस समय में ऐसे कृत्य किये थे जो वचनों के द्वारा कहने के भी योग्य नहीं हैं । प्रजापति बदा महान् भय से अन्तर वेदी के अन्दर चला गया था किन्तु वहाँ पर उसको छिपा हुआ जानकर क्रोध से समन्वित होकर वह वीरभद्र उसको निकाल कर ले आया था । उसके कपोलों को पकड़कर उसका शिर खड्ग से काट डाला था । ४। ५। प्रतापशाली वीरभद्र ने उसके शिर को अभेद्य मानकर उसके स्कन्ध को पैरों से दबाकर कन्धरा में पीडित किया था । ६। पीड्यमान कन्धरा से उस दुरात्मा का शिर छिन्न किया था । ७। वीरभद्र ने उस समय में इसी तरह से उसके मस्तक का छेदन किया था और उसी सस्र में उस जलती हुई अग्नि में तुरन्त ही कुण्ड में उसके शिर को भली-भाँति हृत कर दिया था । ८।

ये चान्यो ऋषयो देवाः पितरो यक्षराक्षसाः ।

गणैरुपद्रुताः सर्वे पलायनपरा ययुः । ९।

चन्द्रादित्यगणाः सर्वे ग्रहनक्षत्रतारकाः ।

सर्वे विचलिता ह्याशन् गणैस्तेऽपि ह्युपद्रुताः । १०।

सत्यलोकं गतो ब्रह्मा पुत्रशोकेन पीडितः ।

चिन्तयामास चाव्यग्रः किं कार्यं कार्यमद्य वै । ११।

मनसा द्रुयमानेन शं न तेभ्ये पितामहः ।

ज्ञात्वा सर्वं प्रयत्नेन दुष्कृतं तस्य पापिनः । १२।

गमनाय मतिं चक्रे कैलासं पर्वतं प्रति ।
 हंसारूढो महातेजाः सर्वदेवैः समन्वितः ॥१२॥
 प्रविष्टं पर्वतस्थेष्टं स ददर्श सदाशिवम् ।
 एकान्तवासिनं रुद्रं शैलादेन समन्वितम् ॥१३॥
 कपदिनं श्रियायुक्तवेदाङ्गानां च दुर्गमम् ।
 तथाविधं समालोक्य ब्रह्माक्षोभपरोऽभवत् ॥१४॥
 दण्डवत्पतितो भूमौ क्षमापयितुमद्यतः ।
 संस्पृशं तत्पदाब्जं च चतुर्मुकुटकोटिभिः ।
 स्तुतिं कर्तुं समारेभे शिवस्य परमात्मनः ॥१५॥

जो भग्य ऋषिगण, देवचन्द्र, पितृगण, यक्ष और राक्षस ये वे सब गणों के द्वारा उपद्रुत होने पर पलायन परायण हो गये थे अर्थात् भाग गए थे । ८५। उन रुद्रदेव के गणों के द्वारा पीड़ित होते हुए चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारक सभी विचलित हो गए थे । १६। अपने पुत्र दक्ष के शोक से पीड़ित होकर ब्रह्माजी सत्य लोक को चले गये थे और वे यह चिन्ता करने लगे थे कि आज मुझे सब कौन जा कार्य करना चाहिए । उस समय में प्रह्ला बहुत ही भयान्न होकर यह सोच रहे थे । १७०। वितामह के मन में बहुत ही अधिक दुःख था और उसके दूयमान होने के कारण उनके मन में शान्ति नहीं हुई थी । उस पापी दक्ष का यह सब दुष्कृत खूब समझकर सब प्रकार के प्रयत्न से कैलास पर्वत की ओर ही गमन करने की मति स्थिर की थी । समस्त देवगणों की साथ में लेकर अपने हंस पर समावृद्ध होकर महान तेजस्वी उस परम श्रेष्ठ पर्वत में प्रविष्ट हो गये थे और वहाँ पर भगवान सदाशिव का दर्शन प्राप्त किया था । कैलास पर भगवान रुद्र शैलाद के साथ एकान्त में निवास कर रहे थे । कपटी श्री से समन्वित और वेदाङ्गों के द्वारा दुर्गम उस प्रकार से सम्यस्थित भगवान शिव का आनोकन करके ब्रह्माजी के हृदय में बड़ा आगी क्षोभ उत्पन्न हो गया था । ११॥१२॥१३॥१४॥ ब्रह्मा सदाशिव के

चरणों में दण्ड की भाँति भूमि में गिर गये थे और अपराध की क्षमा याचना के लिए समुद्यत हो गए थे । उन्होंने अपने चारों भस्तकों पर धारण किये हुए मुकुटों की नौकों से शिव के चरण कमलों का स्पर्श किया था । फिर ब्रह्माजी ने परमात्मा शिव का स्तवन करने का आरम्भ किया था । १५।

नमो रुद्राय शान्ताय ब्रह्मणो परमात्मने ।
 त्वं हि विश्वसृजामास्य धाता त्वं प्रपितामहः । १६।
 नमो रुद्राय महते नीलकण्ठाय वेधसे ।
 विश्वाय विश्वबीजाय जगदानन्दहेतवे । १७।
 ओङ्कारस्त्व वषट्कार सर्वारम्भप्रवर्त्तकः ।
 यज्ञोऽसि यज्ञकर्माऽसि यज्ञानां च प्रवर्त्तकः । १८।
 सर्वेषां यज्ञकर्तृणां त्वमेव प्रतिपालकः ।
 शरण्योऽसि महादेव । सर्वेषां प्राणिनां प्रभो ।
 रक्ष रक्ष महादेव । पुत्रलोकेन पीडितम् । १९।
 महादेव उवाच

शृणु ष्वाऽवहितो भूत्वा मम वाक्यं पितामहः ।
 दक्षस्य यज्ञभङ्गोऽयं न कृतश्च मया क्वचित् । २०।
 स्वीयेन कमणा दक्षो हतो ब्रह्मन् सद्यः । २१।

ब्रह्माजी ने कहा — परम शांत स्वरूप, ब्रह्मा, परमात्मा भगवान् रुद्रदेव की सेवा में मेरा प्रणाम है । हे भगवन् ! आप तो समस्त विश्व के सृजन करने वालों के भी सृष्टा हैं । आप धाता हैं और सबके प्रपितामह हैं । नीलकण्ठ, महान् और वेध रुद्रदेव के लिए मेरा नमस्कार है । विश्व स्वरूप, विश्व के बीज और इस जगत की आनन्द प्रदान करने के हेतु आपके लिये प्रणाम है । १६। १७। आप ओङ्कार हैं, वषट्कार हैं और सब आरम्भों की प्रवृत्ति कराने वाले हैं । आप यज्ञ स्वरूप हैं, यज्ञ में होने वाले काम रूप हैं तथा समस्त यज्ञों के प्रवर्त्तक हैं । सभी यज्ञों

के करने वाले के साथ ही प्रतिपालन करने वाले हैं। हे महादेव ! आप शरण्य, हे हे प्रभो ! सब प्राणिमों के शरण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं। हे महादेव ! परित्राण कीजिए, रक्षा कीजिए मैं जाने पुत्र के शोक से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ। १८।११। श्री महादेवजी ने कहा—हे पिता-मह ! आप सावधान होकर मेरे वाक्य का श्रवण कीजिये। यह दश के यज्ञ का भङ्ग मैंने कभी भी नहीं किया है। हे ब्रह्मन् ! दश अपने ही कर्म के द्वारा हत हो गया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। १२०।११।

परेषां क्लेशदं कर्म न कार्यं सत्कदाचन ।
 परमेष्ठिन् परेषां यदात्मनस्तद्भविविध्यति । १२०।
 एवमुक्त्वा तदा रुद्रो ब्रह्मणा सहितः सुरैः ।
 ययौ कनखलं तीर्थं यज्ञवाटं प्रजापतेः । १२१।
 रुद्रस्तदा ददर्शास्थं वीरभद्रं यत्कृतम् ।
 स्वाहा स्वधा तथा पूषा भृगुर्मतिमताम्बरः । १२४।
 तदाज्यधूपयः सर्वे पितरश्च तथाविधाः ।
 येज्ये च बहस्तत्र यज्ञगन्धर्वकिन्नराः । १२५।
 ओटिता लुम्बिनाश्चैव मृनाः केचिद्रणाजिरे । १२६।
 शम्भुं समागतं दृष्ट्वा वीरभद्रो गणैः सह ।
 दण्डप्रणामसमुक्तस्तस्यावग्रे सदाशिवम् । १२७।
 दृष्ट्वा पुरः स्थितं रुद्रं वीरभद्रं महाबलम् ।
 उवाच प्रहसन्वाक्यं किं कृतं वीरनन्विदम् । १२८।

दुमरों को क्लेश देने वाला कार्य कभी भी नहीं करना चाहिए। हे परमेष्ठिन ! जो दुमरों के लिये होगा वही अपने लिये भी हो जायगा। १२२। उसी समय मैं इस प्रकार से कहकर भगवान् रुद्र ब्रह्माजी और समस्त देवगणों के साथ प्रजापति की यज्ञशाला में कनखल तीर्थ को चल दिये थे। उस समय मे भगवान् रुद्रदेव ने वहाँ पर पहुंच कर वह सभी स्वयं देखा था जो वीरभद्र ने किया था। स्वाहा, स्वधा, पूषा,

मतिमानों ने परम श्रेष्ठ ऋषि, प्रत्य समस्त ऋषिगण, उसी प्रकार वाले सब पितर धीर जो बहुत से वहाँ पर यज्ञ, गन्धर्व और किन्नर ये वे सभी त्रोटित एवं लुब्धित धीर रणक्षेत्र में कुछ भरे हुये थे । १२३। १२४। १२५। १२६। भगवान् शम्भु को वहाँ पर समागत हुये देखकर वीरभद्र अपने गणों के सहित दण्ड की भाँति गिरकर प्रणाम करके भगवान् सदाशिव के आगे समवस्थित हो गया था । १२७। इन्द्रदेव ने अपने आगे स्थित महान् वनवान् वीरभद्र को देखकर हैपते हुए यह वान्य कहा था—हे धीर ! क्यों जी, तुमने यह क्या कर डला है ? । १२८।

दक्षमानय शीघ्रं मो येनेदं कृतमीदृशम् ।
यज्ञे विलक्षणं तात यस्येदं फलमीदृशम् । १२९।
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रस्त्वरान्वितः ।
कबन्धमानयित्वाऽयं शम्भोरग्रे तदाक्षित् । १३०।
ततोक्तः शङ्करेणैव वीरभद्रो महामनाः ।
शिरः कृत्वापनीतं च दक्षस्याऽस्य दुरात्मनः । १३१।
दास्यामि जीवनं वीर कृटिलस्याऽपि चाधुना ।
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रोऽग्नरीत्पुनः । १३२।
मया शिरोहुतं चाग्नीतदानीमेव शङ्कर ! ।
अवशिष्टं शिरः शम्भो पशोश्च विकृताननम् । १३३।
इति ज्ञात्वा ततोऽदः कबन्धोपरिचाक्षिपत् ।
शिरः पशोश्च विकृतं क्लृप्तं भयावहम् । १३४।
न दक्षो जीवितं लेभे प्रसादाच्छङ्करस्य च ।
सदृष्ट्वाऽग्रे तदादृष्टं दक्षोलजासमन्वितः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शङ्कर लोकशङ्करम् । १३५।

हे वीरभद्र ! दक्ष को यहाँ पर बहुत शीघ्र लाघो जिसने यह ऐसा किया है । हे तात ! यज्ञ में जिसका ऐसा विनाशण फल हुआ है । दक्ष तरह से शङ्कर के द्वारा नष्ट गये वीरभद्र ने चुरन्त ही जाकर दक्ष

के कबन्ध को लाकर वहाँ पर शम्भु के भागे डाल दिया था । १२६।३०।
 उस समय में महान मन वाले वीरभद्र से भगवान शङ्कर ने कहा—इस
 दुरात्मा दक्ष का शिर किस ने दूर किया है ? हे वीर ! इस समय मे
 तो इस कुटिल को भी मैं जीवन दान दूँगा । इस प्रकार से शङ्कर के
 द्वारा कहे जाने पर फिर वीरभद्र ने कहा—१३१।३१। हे शङ्कर ! मैंने
 उसका शिर तो उसी समय में अग्नि में हवन कर दिया था अब तो हे
 शम्भो ! पशु का विकृत भानन ही अवशिष्ट रह गया है । उस दक्ष ने
 शङ्कर के प्रसाद से जीवन प्राप्त किया था । उसने उस समय में अपने
 भागे जब भगवान रुद्र को देखा तो वह दल लज्जा से अवनत हो गया
 था । फिर उसके प्रणत होकर लोक के कल्याण करने वाले भगवान
 शङ्कर का स्तवन किया था । १३३।३४।३५।

नमामि देवं वरदं वरेण्यं नमामि देवेष्वरं सनातनम् ।

नमामि देवाधिपमीश्वरं हरं नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम् । १३६।

नमामि विश्वेश्वर ! विश्वरूपं सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम् ।

नमामि सर्वं निजभावभावं वरं वरेण्यं वरदं सतोऽस्मि । १३७

दक्षेण संस्तुतो रुद्रो बभावे प्रहसत्पटुः । १३८।

चतुर्विधाभजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा ।

सार्तो जिज्ञासुरर्थार्थिजानी च द्विजसत्तमः । १३९।

तस्मान्मे ज्ञानिनः सर्वे प्रियाः स्युर्नाऽत्र संशयः ।

विना ज्ञानेन मां प्राप्सुं यतन्ते ते हि बालिषाः । १४०।

केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तुं मिच्छसि । १४१।

न वेदश्च न दानैश्च न यज्ञस्तपसा क्वचित् ।

न शनो वृन्ति मां प्राप्सुं भूदाः कर्मवशा नराः । १४२।

दक्ष ने कहा—वरदान प्रदान करने वाले, वरेण्य, देवों के ईशों
 में भी परमार्थेष्ट ! सनातन देव को मैं प्रणाम करता हूँ । देवों के

अधिप, ईश्वर, जगत के एकमात्र बन्धु हर क्षम्भु की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ । ३६। हे विश्वेश्वर ! विश्व के स्वरूप वाले, निज के आत्म रूप से युक्त सनातन ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ । निज भाव के भाव, धर, धरेण्य, धर प्रदान करने वाले आपको मेरा नमस्कार है । मैं आपको सेवा में नत हो रहा हूँ । ३७। महर्षि जाम्बवन् ने कहा—इस प्रकार से दक्ष प्रजापति के द्वारा मली-भाति स्तुति किये गये भगवान् शिव प्रह्लास करते हुए एकान्त में बोले । ३८। श्री हर ने कहा—हे द्विजों मैं परम श्रेष्ठ ! मेरे भजन एवं उपासना करने वाले चार प्रकार के प्राणी हुमा करते हैं जो परम सुकृतो सदा होते हैं । एक तो उन चारों तरफ के जनों में वह है जो धार्त्त होता है अर्थात् परम पीड़ा से उत्पीड़ित होकर मेरा भजन किया करता है । दूसरा जिज्ञासु होता है जिसे ज्ञान की विधासा हुमा करनी है । तीसरा धर्म की चाह रखने वाला प्राणी मेरी उपासना करता है और चौथा ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति होता है । इन सब चारों तरह के भजन करने वालों में सभी जानी जन मेरे सदा परम प्रिय हुमा करते हैं - इसमें शेष मात्र भी संशय नहीं है । बिना ज्ञान के जो मनुष्य भुके प्राप्त करने की चेष्टा एवं प्रयत्न किया करते हैं वे मर्दा मूख ही होते हैं । तुम तो केवल कर्म के द्वारा ही इस संसार से उद्धार होने की इच्छा रखते हो । ३९। ४०। ४१। कर्म के बल में ही केवल रहने वाले मनुष्य महान् मूढ होते हैं और वे देशों के द्वारा, धानों से, यज्ञ कर्मों के द्वारा और तपधर्मा से मुक्तो प्राप्त नहीं कर सकते हैं । ४२।

तस्माज्ज्ञानपरोभत्वाकुर्वन्कर्मसमाहितः ।

मुदादुःखसमो भूत्वासुखीभवति निरन्तरम् । ४३।

उपदिष्टस्तदा तेन क्षम्भुनापरमेष्ठिना ।

दत्तां तन्नीयसंस्थाप्यययौ रुद्रः स्वपर्वतम् । ४४।

प्रहाणाऽपितपासर्वेभृग्वाद्याश्चमहर्षयः ।

आद्यासिताबोधिताश्चजानिभस्त्राज्मवक्षणात् । ४५।

गतः पितामहो ब्रह्मा ततश्च सदनं स्वकम् । ४६।
 दक्षोऽपि च स्वयं वाक्यात्परं बोधमुपागतः ।
 शिवध्यानपरो भूत्वा तपस्तेषु महामनाः । ४७।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्यो भगवाञ्छिवः । ४८।

इसलिए ज्ञान में परम परावरण होकर ही समाहित होते हुए
 जो कुछ भी कर्म ही उठे करो । सुख और दुःख को समान समझ
 निरन्तर सुखी बनो । ४६। महर्षि प्रवर सोमशर्मा ने कहा—उम हन
 परमेश्वरी भगवान् शम्भु ने हम प्रकार से उरदेन दिया था और फिर त
 वान् हृदये वही पर दक्ष प्रजापति को सत्पापिन करके अपने स
 कैलास पर वापिस चले गये थे । ४७। उस समय में ब्रह्माजी के स
 सभी भूगुणादि महर्षि गण उसी भाँति आश्वासित किये गये थे कि
 उन्हें बोध दिया गया था और वे सभी तराण में सब ही जानी ही रहे
 थे । फिर पितामह ब्रह्माजी आने घर को वापिस चले गये थे । ४८।
 प्रजापति दक्ष भी भगवान् शिव के द्वारा सत्य कथित वाक्य से सब
 बोध को प्राप्त हो गये थे । महामना दक्ष ने फिर शिव के ध्यान में ल
 होकर तपश्चर्या की थी । इसलिए परम सार यही है कि सभी ॥ ४९॥
 द्वारा भगवान् शिव की भली भाँति उपासना करना चाहिये । ४९॥

६ - लिङ्गप्रतिष्ठावर्णन

लिङ्गे प्रतिष्ठा च कथं शिर्वहित्वा प्रवर्तिताः ।
 तत्कथ्यतां महाभाग । परं शुश्रूषतां हि नः । १।
 यदा दास्यते शम्भुमिक्षायै प्राचरत्प्रभुः । २।
 दिगम्बरो मुक्ताजटाकलापो वैदान्तवेद्यो भुवनेकभर्ता ।
 स ईश्वरो ब्रह्मकलापधारो योशोश्चराणां परमः परम् ॥ ३॥
 अणोरणीयान्महतो महोयान्महानुभावो भुवनाधिपो महर्षिः ।
 स ईश्वरो भिन्नरूपो महात्मा भिन्नाटनं दास्यते चकार ॥ ४॥

मध्याह्नप्रशोचिप्रास्तोर्थाजग्मुः स्वकाश्रमात् ।
 तदानीमेवसर्वास्ताःपिभार्याः समागताः ।१।
 विलोकयन्त्यः सम्भुतमाचक्षुश्चपरस्परम् ।
 कोऽसौ भिक्षुकरूपोऽयमागतौऽपूर्वदृश्वनः ।६।
 अस्मैभिक्षांप्रयच्छामोवयं च सखिभिः सह ।
 तथेतिगत्वासर्वास्तागृहेभ्यआनयन्मुदा ।७।

श्रुतिगण ने कहा—हे महन्भाग ! भगवान् शिव का स्पाग करके शिव के लिंग की पूजा करने की प्रतिष्ठा कंसे प्रवर्तित हुई थी— यह प्राह हमारे सामने बतलाइये । इसके श्रवण करने की हमारी बड़ी भारी इच्छा है ।१। श्रीमश जो ने कहा—जिस समय में प्रभु सम्भु भिक्षाटन के लिए दाक्षव न में प्रचरण कर रहे थे । उस समय में शिव परम दिगम्बर पर्णात् नान थे । उनकी जटाएँ सब खुली हुई थीं जोकि प्रभु वेदान्तों के द्वारा जानने के योग्य हैं और इस भुवन के एक ही पूर्ण मरण करने वाले हैं वह ईश्वर प्रहा कलाव धारी और योगीश्वरों के परम पर थे ।२।३। वह ईश्वर गण से भी छोटा है और महान से भी महान् यथात् बड़ा है, समस्त भुवनों का स्वामी, महान् और महानुभाव है किन्तु वह एक भिक्षु का रूप धारण किए हुये दाक्षव न में भिक्षा का समाचरण करता था ।४। मध्याह्न के समय में सभी दिग् और श्रुतिगण अपने प्राश्रमों से तीर्थ को चले गये थे । उसी समय में वे सब श्रुतियों की भाष्यार्थें यहाँ पर समागत हो गई थीं ।५। उन्होंने उन दिगम्बर स्वरूप धारी भगवान् सम्भु की देखकर वे परस्पर में कहने लगीं थीं— यह ऐसा एक भिक्षुक के रूप को धारण करने वाला कौन है जो इस समय में यहाँ पर समागत हो गया है । यह तो अपूर्व ही दर्शन वाला है । इसको हम सब अपनी सत्तियों के साथ भिक्षा दें । ठीक है ऐसा ही करो—यह कहकर वे सब अपने घरों से बहुत दो प्रसन्नता से भिक्षा ले भागी थीं ।६।७।

भिक्षाश्रं विविधं श्लक्ष्णं सौपचारं च शक्तिः ।

प्रदत्तं भक्षितं तेन देवेदेवेनशूलिना ।८।

काचित्प्रियतमंशम्भुं वभापेविस्मयान्विता ।

कोऽसित्वंभिक्षुकोभूत्वाआगतोऽयमहामते ।९।

ऋषीणामाश्रमं शुद्धं किमर्थं नो निषीदसि ।

तयोक्तोऽपि तदाशम्भुं वभापेप्रहसन्निव ।१०।

ईश्वरोऽहं सुकेशान्ते पावने प्राप्तवानिममम् ।

ईश्वरस्य वचःश्रुत्वा ऋषिभार्याउवाचतम् ।११।

ईश्वरोऽसि महाभाग कैलासपतिरेय च ।

एकाकिनः कथं देव ! भिक्षार्थमटनं तव ।१२।

एवमुक्तस्तया शम्भुः पुनस्तामब्रवीद्वचः ।

दाक्षायष्या विरहिरो विचरामि दिगम्बरः ।१३।

भिक्षाटनार्थं सुश्रोणि ! संकल्परहितः सदा ।

तया सत्या विना किञ्चित् स्त्रीमात्रं मम भामिति ।

न रोचते विशालाक्षि ! सत्यं प्रति वदामि ते ।१४।

यह भिक्षा का भक्षण मनेक प्रकार का था, परम श्लक्ष्ण और शक्ति भर उपचारों से समन्वित था । उसे उन मन्त्रों दिया था और उसे प्राप्त कर उन देवों के भी शूलों ने भक्षण कर लिया था ।८। उनमें से किसी ने विस्मय से संयुक्त होकर प्रियतम भगवान् शम्भु से कहा था—आप कौन हैं जो भिक्षुक होकर हे महान् मति वाले ! इस समय मैं यहाँ पर आपने पदार्पण किया है ? यह ऋषियों का आश्रम परम शुद्ध है । आप हमारे मध्य में किसलिए स्थित हो रहे हैं ? उन ऋषि पत्नी द्वारा इस तरह से कहे गये भी भगवान् शम्भु ने हँसते हुए ही यह कहा था—हे सुकेशान्ते ! मैं ईश्वर हूँ और इस परम पावन आश्रम में प्राप्त हो गया हूँ । ऐसे ईश्वर के वचन का श्रवण करके ऋषिभार्या ने उनसे कहा था—हे महाभाग ! आप जब ईश्वर हैं और कैलास पर्वत के स्वामी हैं तो हे देव ! फिर एकाकी आपका यह इस तरह से भिक्षाटन क्यों

होता है ? उस श्रृष्टि की भार्या के द्वारा इस तरह कहे गये शम्भु ने फिर उनसे यह वचन कहा था मैं अपनी पत्नी दादापत्नी से विरहित होकर दिगंबर होते हुए इसी तरह विचरण किया करता हूँ । हे सुयोनि ! भिक्षाटन के लिए भी मैं सदा मञ्जुल से रहित रहा करता हूँ । हे भागिनी ! उस सती के बिना मुझे स्त्री मात्र कुछ भी भण्डी नहीं लगा करती हैं । हे विशालाक्षि ! मैं यह बात आपको पूर्ण रूप से सत्य ही कह रहा हूँ ।
[६-१४]

तस्योक्तं वचनं श्रुत्वा उवाच कमलेक्षणा ।
स्त्रियो हि सुखसंस्पर्शाः पुरुषस्य न संशयः । १५।
ताः स्त्रियो यजिताः शम्भो ! त्वादृशेन विपश्चिता । १६।
इति च प्रमदाः सर्वामिलितामत्र शङ्करः ।
भिक्षापात्रं च तच्छम्भो, पूरितं च महागुणैः । १७।
अग्नीश्वतुर्विद्यैः पङ्क्तौ रसैश्च परिपूरितम् ।
यदा शम्भुर्गन्तुकामः कंलासं पर्वतं प्रति ।
तदा सर्वा विप्रपत्न्यो ह्यन्वगच्छन्मुदाम्विताः । १८।
गृहकार्यं परित्यज्य चिरस्तद्गतमानसाः ।
गतामुतामु सर्वासु पत्नीषु श्रापितामाः । १९।
यापदाश्रममभेत्य तावच्छून्यं स्थलोकयन् ।
परस्परमथोचुस्ते पत्न्यः सर्वाः कुनागताः । २०।
न विदामोऽथर्वसर्वाः केन नष्टेन चाहताः ।
एवं विमृश्यमानास्ते विचिन्वन्स्ततस्ततः । २१।
समपरपस्ततः सर्वे निवस्थानुगताश्रिताः ।
शिवं दृष्ट्वा तु सम्प्राप्ताश्च पवस्ते रथान्विताः । २२।
निवस्थाप्राप्तता भूत्वा ऊचुः सर्वे स्वराग्विताः ।
किं कृतं हि स्वयां शम्भो ! विरवतेन महात्मना ।
परदारान्पहर्षति रमृषोणां न ततः । २३।

भगवान् शिव के द्वारा कथित इस वचन का श्रवण करके वह कमल के सदृश नेत्रों वाली ऋषि पत्नी बोली—स्त्रियाँ निश्चय ही पुरुष के सुख सध्य वाली हुषा करती हैं—इसमें शंका भी संशय नहीं है । हे दाम्भो ! आप जैसे महान् विद्वान् पुरुष ने उन स्त्रियों को व्रजित कर दिया है । १५।१६। और इस प्रकार से उन समस्त प्रमदाग्रो ने सम्मिलित होकर जहाँ पर भगवान् शङ्कर विराजमान थे उनके भिक्षा के पात्र को महागुण वाले चार प्रकार के अग्रो से और छँ प्रकार के रसों से परिपूर्ण कर दिया था । जिस समय में भगवान् शम्भु अपने कैलास पर्वत को जाने की इच्छा वाले हुए थे उस समय में वे सब विप्रों की पत्नियाँ भी परमानन्द से समन्वित होकर उनके ही पीछे जाने लगीं थीं । १७।१८। शम्भु में ही अपना मन समासक्त करके उन्होंने अपने गृह का सम्पूर्ण कार्य त्याग दिया था और उन्हीं शम्भु के साथ में चरण करने लगीं थीं । उन सब पत्नियों के गमन करने के बाद परम ध्येष्ठ ऋषि वृन्द ने जैसे ही अपने आश्रमों में आकर देखा तो सबको उस समय में धूम्य ही पाया था । वे सब आपस में कहने लगे थे सबकी सब पत्नियाँ कहाँ चली गयी हैं । हम सब कुछ नहीं जानते हैं कि इन सबको किस नष्ट हुए व्यक्ति ने समाहूत कर लिया है, इस तरह से विचार करते हुए वे जहाँ-तहाँ पर खोज करने में तत्पर हो रहे थे । बाद में उन्होंने देखा कि वे सभी पत्नियाँ शिव के पीछे चली गयीं हैं । भगवान् शिव की देखकर वे सब ऋषिगण रोष से संयुक्त होने हुए वहाँ उनके पास प्राप्त हुए थे । वे सब भगवान् शिव के सामने उपस्थित होकर बड़ी ही शीघ्रता के साथ वे सब कहने लगे थे । हे दाम्भो ! आपने जो बहुत बड़ी महान् आत्मा वाले एव परम विरक्त हैं, यह क्या किया है । आप तो पराई दारामो के अपहरण करने वाले हैं और आपने हम लोग ऋषियों की पत्नियों का अपहरण किया है—इसने कुछ भी संशय नहीं है । १९।२०। २१। २२। २३।

एव क्षिप्तः शिवोमीनीमच्छ्रमानोऽपि पर्वतम् ।
 तदा गच्छतिभिः प्राप्तो महादेवोऽव्ययस्तथा । १२४।
 यस्मात्कलशहर्ता त्वं तस्मात्पण्डो भवत्वरम् ।
 एवं शमः समुनिभिलिङ्गं तस्यापतद्भुवि ।
 भूमिप्राप्तं च तस्मिन् ववृधे तरसा महत् । १२५।
 आवृत्य समपातालान्दण्डातिनृमघोर्ध्वतः ।
 व्याप्य पृथ्वीमग्रां च अन्तरिक्षं समावृणोत् । १२६।
 स्वर्गाः समावृताः गर्वैर्गर्गानो नमभाभ्रतः ।
 न मही न वा दिवश्च न तोर्यं न च पावकः । १२७।
 न नारायणं वाऽऽकाशं नार्हं नारो न वा महत् ।
 न चाभ्यक्तं न कालश्च न महाप्रहृतिस्तथा । १२८।

लयनाल्लिङ्गमित्येवं प्रवदन्ति मनोपिणा ।

तथाभूतं वद्धं मानं दृष्ट्वा तेऽपि सुरपुंगवः । ३०।

ग्रहोन्द्रविष्णुवाय्वग्निलोकपालाः सपद्मगाः ।

विस्मयाविष्टमनसः परस्परमयाऽद्भुतम् । ३१।

किमापामंचयिस्तारं वयश्चान्तः बबचपीठिका ।

इतिचिन्तान्वितोविष्णुमूचुः सर्वे मुरास्तदा । ३२।

अस्य मूलं त्वया विष्णो ! पद्मोद्भव ! च मस्तकम् ।

युवान्म्यां च विलोक्यं स्यात्स्थाने स्यात्परिपालको । ३३।

श्रुत्वा तुतोमहाभागो वंकुण्ठकमलोद्भवो ।

विष्णुगंतो हि पातालं ग्रहा स्वर्गजगामह । ३४।

स्वर्गं गतस्तदा ग्रहा अवलोकनतत्परः ।

नापश्यत्तत्र लिङ्गस्य मस्तकं च विचक्षणः । ३५।

उम भगवान् रुद्रादिषु के लिङ्ग को मूर्ति के बारण ईस विभाग ही नहीं रहा था । उसी राण में सब सीन हो गये थे । क्योंकि यह गङ्गुणं जगत् उन महात्मा के निग में सीन हो गया था । सब हो जाने से मनोयोगण सब कुछ को निग ही कहते थे क्योंकि सबत्र उन्हें निङ्ग के दर्शन होते थे और सब समी उसी में सीन हो गये थे । उम प्रकार से वद्धमान होकर सर्वत्र स्थात हुए दिव के उस निग को देतार के सब गुरविष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, वायु अग्नि, गमस्त्र सोरपान, पद्मग आदि सभी शिष्य से समाविष्ट मन वाले होकर आपस में कहने लगे थे हमका जितना ध्यायाम है, वंसा विमलणु रितार है, हमका बड़ी पर पात्र है और बड़ी हमको पीठिका है, हम तरु को विष्णु से, पादत्र समा-
 कृत होने हूये सब गुरों ने उम समय में भगवान् शिष्य से कहा था । ३१।
 ३०। ३१। ३२। इसी में बग—हे विष्णो ! हे पद्म से उद्भव प्रात करी
 वाले ! याव हमका मूल और पाद दोनों ही के द्वारा देखने के योग्य
 है और सब दोनों ही समुचित परिपालक है । हमका भगवान् शिष्य

और ब्रह्माजी ने श्रवण करके दोनों महाभागो ने यह जानने का विचार किया था । भगवान विष्णु तो पाताल लोक को गये थे और ब्रह्माजी स्वर्गलोक में यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए गये थे । स्वर्ग में गये ब्रह्माजी भवलोकन करने परायण हो गए थे किन्तु विपक्षण ब्रह्माजी ने उस शिव लिङ्ग का मस्तक वहाँ पर कहीं भी नहीं देखा था । १३३। १४। १५।

तथागतेन मार्गेण प्रत्यावृत्त्याब्जसम्भवः ।
 मेरुपृष्ठमनुप्राप्तः सुरभ्या लक्षितस्ततः । १३६।
 स्थिता या केतकीच्छायामुवाच मधुरं वचः ।
 तस्या वचनमाकर्ण्य सर्वलोकपितामहः ।
 उवाच प्रहसन्वाक्यं ह्यलोक्या सुरभि प्रति । १३७।
 लिङ्गं महाद्भुतदृष्टं येन व्याप्तं जगत्त्रयम् ।
 दर्शनार्थं च तस्यान्तं देवैः सम्प्रेषितोऽस्म्यहम् । १३८।
 न दृष्टं मस्तकं तस्य व्यापकस्य महात्मनः ।
 किं वक्ष्येऽहं च देवाग्ने चिन्तामेचातिवर्तते । १३९।
 लिङ्गस्य मस्तकं दृष्टं देवानां च गूपा वदेः ।
 ते सर्वे यदि वक्ष्यन्ति ह्यद्राक्षा देवतागणाः । १४०।
 ते सन्ति साक्षिणो देवा अस्मिन्नर्थे वद स्वरम् ।
 अर्थोऽस्मिन्भव साक्षी त्वं केतक्या सह सुव्रते । १४१।
 तद्वचः शिरसा गृह्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
 केतकी सहिता तत्र सुरभी तदमानयत् । १४२।

कमल से समुत्पन्न ब्रह्माजी तथागन मार्ग से प्रत्यावृत्ति के द्वारा मेरु के पृष्ठ भाग पर प्राप्त हो गये थे । वहाँ पर सुरभि ने उनको देखा था । वह वहाँ पर केतकी की छाया में स्थित थी । उसने परम मधुर वचन कहा था । उसने वचन में श्रवण करके समस्त लोकों के पिता-मह ने छल की रक्ति से सुरभि के प्रति हँसते हुए यह वाक्य कहा था ।

१३६।३७। एक महान भद्रमुक्त निग देखा या जिसने तीनों जगनों को व्याप्त कर रक्खा है । उसी के दर्शन के लिए देवगणों ने मुझे यहाँ भेजा है और उसका अन्त कहीं पर यह जानने के लिए भी मैं उनके द्वारा भेजा गया हूँ । उस व्यापक महात्मा का भस्तक भी कहीं नहीं देखा गया है । अब मैं जाकर उन देवगणों के प्रागे बतलाऊँगा—यही मुझे एक बड़ी भारी विन्ता व्याप्त हो रही है । या मैं यह भिन्ना उन देवगणों के प्रागे बोल दूँ कि मैंने निग का भस्तक देख लिया है । यदि वे सब देवता जिनमें इन्द्र आदि सभी हैं यह कहेंगे कि तुम्हारे कोई साक्षिगण हैं तो आप इस विषय में शीघ्र बोलो । इस विषय में हे सुव्रते ! केतकी के साथ मेरे साथी बन जाओ ॥३८॥३९॥४०॥४१॥ परमेशी ब्रह्माजी के उस वचन को शिर के बल ग्रहण करके वहाँ पर केतकी के सहित सुरभी उसको मान लिया था ॥४२॥

एवं समोगतो ब्रह्मा देवाग्ने समुवाच ह ॥४३॥

लिङ्गस्य भस्तकं देवा दृष्टवानहमद्भुतम् ।

समीचीनं चर्चितं च केतकीदलसंयुतम् ॥४४॥

विशालं विमलश्लक्ष्णं प्रमत्ततरमद्भुतम् ।

रम्यं च रमणीयं दर्शयिष्ये महाप्रभम् ॥४५॥

एतादृशं मयादृष्टं न दृष्टं तद्विनाशवचित् ।

ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सुराविस्मयमाययुः ॥४६॥

एवं विस्मयपूर्णास्तेन्द्राद्यादेव तागणाः ।

तिष्ठन्ति तावत्सर्वेशोविष्णुरघ्यात्मदीपकः ॥४७॥

पातालादागतः सद्यः सर्वेषामवदत्त्वरन् ।

तस्याप्यन्तो न दृष्टो मे ह्यवलोकनतत्परः ॥४८॥

विस्मयो मे मृगञ्जातः पातालात्परतश्चरन् ।

अतलं सुतलं चापि वितलं च रसातलम् ॥४९॥

इम प्रकार से ब्रह्माजी वहाँ वापिस समागत हो गये थे और देवों के समक्ष में यह बोले—हे देवगण ! इस निग का भस्तक मैंने देख लिया

है जोकि परम अद्भुत है । यह बहुत ही समोचीन है, चर्चित है और केतकी के दल से संयुत है । ४३। ४४। यह बड़ा विशाल है, विमन है, दलक्षण है, प्रसन्न तर एव अद्भुत है । परमरम्य, रमणीय, दर्शन करने के योग्य और महान् प्रभा वाला है । ४५। ऐसा मैंने देखा है और उसके बिना कही नहीं देखा है । ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर सुरगण परम बिस्मय को प्राप्त हो गये थे । इस प्रकार से बिस्मय में भरे हुए इन्द्र आदि सभी देवगण तब तक कहीं पर स्थित रहे थे जब तक अष्टा-रम दीपक भगवान् विष्णु सुरन्त ही पाताल ओक से समागत हो गये थे उनने उन सभी देवगणों से शीघ्रतापूर्वक कहा था । मैंने उसका कोई भी अन्त नहीं देखा है और मैं इसके बराबर घबलोकन करने में तरार होकर लगा रहा हूँ । पाताल से भी आगे विचरण करते हुए मुझे बड़ा भारी बिस्मय उत्पन्न हो गया है । मैंने अतल, सुतल, वितल और रसा-तल तक जाक छान ली है । ४६-४६।

तथा गतस्तलं चैव पातालं च तथातलम् ।
तलातलानि तान्येवं क्षूण्यवद्यद्विभाव्यते । ५०।
क्षूण्यादपि च क्षूण्यं च तत्सर्वं सुनिरोक्षितम् ।
न मूलं च न मध्यश्चान्तो ह्यस्य न विद्यते । ५१।
लिंगरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत् ।
यस्य प्रसादादुत्पन्ना यूयं च ऋषयस्तथा । ५२।
श्रुत्वा सुराश्च ऋषयस्तस्य वाक्यमपूजयन् ।
तदा विष्णुरुवाचेदं ब्रह्माणं प्रहसन्निव । ५३।
दृष्टं हि चेत्त्वया ब्रह्मन् मस्तकं परमार्थतः ।
साक्षिणः केत्वया तत्र प्रस्मिन्नर्थे प्रकलिताः । ५४।
आकर्ण्य वचनं विष्णोर्ब्रह्मालो कृपितामहः ।
उवाच त्वरितेनेव केतवी सुरभीति च । ५५।
ते देवा मम साक्षित्वे जानीहि परमार्थतः ।
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सर्वदेवास्त्वरान्विताः । ५६।

॥३६॥३७॥ एक महान् अद्भुत लिंग देखा था जिसने तीनो जगत् को व्याप्त कर रक्खा है । उसी के दर्शन के लिए देवगणों ने मुझे यहाँ भेजा है और उसका अन्त कहीं पर यह जानने के लिए भी मैं उनके द्वारा भेजा गया हूँ । उस व्यापक ब्रह्मात्मा का मस्तक भी कहीं नहीं देखा गया है । अब मैं आकर उन देवगणों के आगे बतलाऊँगा—यही मुझे एक बड़ी भारी कृपा व्याप्त हो रही है । या मैं यह मिथ्या उन देवगणों के आगे बोल दू कि मैंने लिंग का मस्तक देख लिया है । यदि वे सब देवता जिनमें इन्द्र आदि सभी हैं यह कहेंगे कि तुम्हारे कोई साक्षिगण हैं तो आप इस विषय में शीघ्र बोलो । इस विषय में हे सुव्रते ! केतकी के साथ मेरे साथी बन जाओ ॥३८॥३९॥४०॥४१॥ परमेश्वरी ब्रह्माजी के उस घन को शिर के बल प्रदण करके वज्र पर काँकी के सहित सुरभी उसको मान लिया था ॥४२॥

एवं समोगतो ब्रह्मा देवाग्ने समुवाच ह ॥४३॥

लिङ्गस्य मस्तकं देवा दृष्टवानहमद्भुतम् ।

समीचीनं चर्चितं च केतकीदलसयुगम् ॥४४॥

विशालं विमलश्लक्ष्णं प्रमद्वतरमद्भुतम् ।

रम्यं च रमणीयं दर्शनीयं महाप्रमम् ॥४५॥

एतादृशं मयादृष्टं न दृष्टतद्विनाशविवित् ।

ब्रह्माणो हि वचः श्रुत्वा सुराविस्मयमानयु ॥४६॥

एवं विस्मयपूर्णास्तेऽन्द्राद्यादेव तागणाः ।

तिष्ठन्ति तावत्सर्वेशोविष्णुरध्यात्मदीपकः ॥४७॥

पातालादागतः सद्यः सर्वेषामवदस्त्वरन् ।

तस्याप्यन्तो न दृष्टो मे ह्यवलोकनतत्परः ॥४८॥

विस्मयो मे भूज्जातः पातालात्परतश्चरन् ।

अतलं सुतलं चापि वितलं च रसातलम् ॥४९॥

इमं प्रकार से ब्रह्माजी वहाँ वापिस समागत हो गये थे और देखों के समक्ष में यह बोले—हे देवगण ! इस लिंग का मस्तक मैंने देख लिया

है जोकि परम अद्भुत है । यह बहुत ही समीचीन है, चर्चित है श्रीर
केतकी के दल से संयुत है । ४३। ४४। यह बड़ा विशाल है, विमल है,
दलक्ष्ण है, प्रसन्न तर एव अद्भुत है । परमरम्य, रमणीय, दर्शन करने
के योग्य श्रीर महान् प्रभा वाला है । ४५। ऐसा मैंने देखा है श्रीर उसके
बिना कहीं नहीं देखा है । ग्रहाजी के इस वचन को सुनकर सुरगण
परम विस्मय को प्राप्त हो गये थे । इस प्रकार से विस्मय में भरे हुए
इन्द्र आदि सभी देवगण सब तक कहीं पर स्थित रहे थे जत्र तक प्रध्या-
त्म बोधक भगवान् विष्णु तुरन्त ही पाताल लोक से नमागत हो गये थे
उनने उन सभी देवगणों से शीघ्रतापूर्वक कहा था । मैंने उसका कोई
भी फल नहीं देखा है श्रीर मैं इसके बराबर सबलोकन करने में तत्पर
होकर लगा रहा हूँ । पाताल से भी भावे विचरण करते हुए मुझे बड़ा
भारी विस्मय उत्पन्न हो गया है । मैंने अतल, सुतल, वितल श्रीर रमा-
तल तक साक दान की है । ४६-४६।

तथा गतस्तलंचैव पातालं च तथातलम् ।

तलातलानि तान्येवं क्षूण्यवद्यद्विभाष्यते । ४७।

क्षूण्यादपि च क्षूण्यं च तत्सर्वमुनिरीक्षितम् ।

न मूलं च नमध्यश्चान्तोह्यस्यनविद्यते । ४८।

लिंगरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत् ।

यस्य प्रसादादुत्पन्ना यूयं च श्रृण्वस्तथा । ४९।

श्रुत्वा सुराश्च श्रृण्वस्तस्मिन्नात्ममपूजयन् ।

तदा विष्णुह्वाचेदं ग्रहाणं ग्रहसन्निव । ५०।

दृष्टं हि चेत्त्वया ग्रहान् मस्तकं परमार्थतः ।

साक्षिणः केत्वया तत्र प्रस्मिन्नर्थे प्रकल्पिताः । ५१।

आकर्ण्य वचनं विष्णोर्ग्रहालोत्पत्तामहः ।

उवाच तस्मिन्नेव केतुस्य सुरभीति च । ५२।

ते देवा मम साक्षित्वे जानीहि परमार्थतः ।

ग्रहाणो हि वचः श्रुत्वा मय देवास्त्वरान्विताः । ५३।

इसके भी प्रागे में तल में गया था फिर पाताल और तलातल तक पहुँच गया था किन्तु वे सब दून्य की भाँति विभावित होते हैं । मैंने दून्य से भी परम दून्य सम्पूर्ण स्थल का भस्ती-भाँति निरीक्षण किया था किन्तु इस लिंग का न तो कहीं पर मूल है, न मध्य है और न कहीं इसका अन्त ही है । यह तो लिंग रूपी सर्वत्र महादेव ही है जिनके द्वारा यह समस्त जगत् धारण किया जाता है जिसके प्रसाद से प्राप लोग और सब ऋषिगण समुत्पन्न हुए हैं । ५०।५१।५२। सुरों ने और ऋषियों ने यह सुनकर उनके वाक्य का बड़ा संस्कार किया था । उसी समय में भगवान् विष्णु ने हँसते हुए ब्रह्माजी से कहा था — हे ब्रह्मन् ! यदि वास्तव में प्रापने इस शिव लिंग के मस्तक को देखा है तो प्राप ने इस धर्म के विषय में कौन से साक्षी कल्पित किये हैं ? लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु देव के इस वचन को सुनकर बहुत ही शीघ्रता से कहा था—केतकी और सुरभी ये दोनों ही हे देवगणों ! मेरे साक्षी हैं और इनको ही प्राप लोग साक्ष्य (गवाही) देने वाले समझ लो जो परमार्थ रूप से हैं । ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके सब देवता लोग बहुत ही शीघ्रता वाले हो गये थे । ५३-५६।

आह्वानं चक्रिरे तस्याः सुरभ्याश्च तया सह ।
 आगते तरक्षणादेवकार्याथ ब्रह्मणस्तदा । ५७।
 इन्द्रार्घ्यश्च तदादेवैरुक्ता च सुरभीततः ।
 उवाच केतकी साध्वं दृष्टो वै ब्रह्मणा सुराः । ५८।
 लिंगस्य मस्तको देवा केतकीदलपूजितः ।
 तदा नभोगता वाणीसर्वेषां शृण्वतामभूत् । ५९।
 सुरभ्यार्चयत्प्रोक्तं केतक्या च तथा सुराः ।
 तन्मृषोक्तं च जानीध्वन् हृष्टो ह्यस्य मस्तकः । ६०।
 तदा सर्वेऽथ विबुधाः सेन्द्रा वै विष्णुना सह ।
 शेषुश्च सुरभिरोपान्मृषावादनतत्पराम् । ६१।

मुनेनोक्तं त्वयाऽद्यर्वमनृतं च तथा शुभम् ।
अपवित्रं मुखं तेऽस्तु सर्वधर्मबहिष्कृतम् । ६२।
सुगन्धकेतकीचार्जपत्रयोग्या त्वं शिवार्चने ।
भविष्यसि न सन्देहोऽनृताच्चेवभामिनि । ६३।

उन देवों ने उसके तकीके सहित उस सुरभी का वहाँ पर समाह्वान किया था । उसी समय में उसी क्षण में ब्रह्माजी के कार्य को सम्पादन करने के लिए वे वहाँ पर आ गयीं थीं । फिर इन्द्र आदि देवों ने सुरभी से कहा था । तब केतकी के सहित सुरभी ने कहा था—हे सुरगणों ! ब्रह्माजी ने केतकी के दान से पूजित लिंग का मस्तक देखा है । उसी समय में सब लोगों के श्रवण करते हुए आकाश में स्थित रहने वाली याणी हुई थी—सुरभी ने तथा केतकी ने यह जो कुछ भी कहा है वह सभी मिथ्या ही कहा है । आप लोग अब यह समझ लीजिये कि ब्रह्माजी ने तथा इन दोनों ने लिंग का मस्तक नहीं देखा है । १५७। १५८। १५९। १६०। उसी समय में हमारे अनन्तर सब देवताओं ने इन्द्रदेव के साथ तथा भगवान् विष्णु के सहित रोप से मिथ्या बोलने में तत्पर सुरभी की शपथ दिया था—तूने हम अपने मुख से आज यह मिथ्या वचन कहे हैं इसलिए यह तुम्हारा परम शुभ मुख जो परम पवित्र माना जाता था आज ते ही अपवित्र और सब धर्मों से बहिष्कृत हो जायगा । यह सुन्दर गन्ध वाली केतकी भी शिव भर्चना के अयोग्य हो जायगी । हे नमिनी ! इससे अब कुछ भी सन्देह नहीं है कि आप अनृत भाषिणी हैं अतएव मिथ्या ही हो जायगी । १६१। १६२। १६३।

तदानभोगतावाणीब्रह्माणं च दशाय वै ।
मृषोक्तं च त्वया मर्दं ! किमर्थं बालिशेनहि । १६४।
भृगुणा अपिभिः साकं तथैव च पुरोधसा ।
तस्माद्यूयं न पूज्याभ्रमवेयुः क्लेशभागिनः । १६५।
अपयोर्जिषा धमिष्ठास्तत्त्ववाचयबहिष्कृताः ।
वियार्जनिरता भूदा अतत्त्वज्ञाः समत्सराः । १६६।

याचकाश्चावदान्याश्च नित्यं स्वज्ञानघातिकाः ।

आत्मसंभाविताः स्तब्धाः परस्परविनिन्दकाः । ६७।

एवं क्षप्ताश्च मुनयो ब्रह्माद्या देवतास्तथा ।

शिवेन क्षप्तास्ते सर्वे लिङ्गं शरणमाययुः । ६८।

उसी समय में आकाशवाणी ने ब्रह्माजी को भी शाप दिया था—
हे माद ! आपने भी यह सब मिथ्या वचन कहे हैं । भूलेंता के वश में
आकर ऐसा किस लिए तुमने कह दिया है ? भृगु पुरोहित और समस्त
ऋषियों के सहित आपने ऐसा किया है । इससे आप लोग पूजा के
योग्य नहीं रहोगे तथा सब लोग वलेशों के भोगने वाले बन जाओगे ।
ऋषिगण भी बड़े ही धर्मिष्ठ हैं किन्तु सब तत्त्व वाक्यों से बहिष्कृत,
देवों के वादों से ही सर्वदा निरत रहने वाले, मूढ़, तत्त्वों के न जानने
वाले, मात्सर्य से युक्त, याचक अवदान्य (दानशील न होने वाले), निरप
ही अपने ज्ञान के घात करने वाले, आरथ सम्भावित (अपने आप
की प्रतिष्ठित मानने और कहने वाले) स्तब्ध और परस्पर में एक दूसरे
की निन्दा करने वाले हो जायेंगे । इस प्रकार से सब मुनिगण और
ब्रह्मादि देवगण शिव के द्वारा शाप दिये गये थे । वे फिर सबके सब
शिव के लिंग की शरणागति में समागत हुये थे । ६४-६७। ६८।

७—देवों द्वारा लिङ्ग की स्तुति

तदा च ते सुराः सर्वे ऋषयोऽपि मयान्विताः ।

ईडिरे लिङ्गमैशं प्रह्लाद्याज्ञानविह्वलाः । १।

त्वं लिंगरूपी तु महाप्रभावो वेदान्तवेद्योऽसि महारमरूपी ।

येनैव सर्वे जगदात्मभूलं कृतं सदान्दपरेण नित्यम् । २।

त्वं साक्षीसर्वलोकानां हर्ता त्वं च विचक्षणः ।

रक्षणोऽसि महादेव मीरवोऽसि जगत्पते । ३।

त्वया लिंगस्वरूपेण व्याप्तमेतज्जगत्त्रयम् ।

क्षुद्रार्श्वं वयं नाथ ! मायामोहितचेतसः । ४।

अहं सुराऽसुराः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।

पन्नगाश्चपिशाचाश्च तथा विद्याधराहमी ।१।

त्वं हि विश्वसृजांस्तथा त्वं हि देवोजगत्पतिः ।

कर्ता त्वं भुवनस्यास्य त्वं हर्ता पुरुषः परः ।६।

ग्राह्यस्माकं महादेव ! देवदेवनमोऽस्तुते ।

‘एवं’ स्तुतो हि नै घात्रा लिङ्गरूपी महेश्वरः ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा—उप समय में वे सब सुरगण, ऋषि वृक्ष और ज्ञान विह्वल प्रह्ला प्रभृति सब भय से भरपूर भीत हो हो गये थे और फिर इन सब ने भगवान् शिव के लिङ्ग का स्तवन किया था ।१। प्रह्लाजी ने कहा—हे भगवन ! आप महान् प्रभाव वाले लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले हैं आप वेदान्तों के द्वारा जानने योग्य हैं और महात्मा रूपी हैं । जिसने ही सानन्द परायण ने यह सब जगत आत्म मूल निश्चय कर दिया है ।२। आप समस्त लोकों के साक्षी और हर्ता हैं । आप परम विचाराण हैं । आप ही रक्षा करने वाले हैं । हे महादेव ! आप इस जगत के पति हैं और भैरव हैं । आपने इस समय में अपने इस लिंग के स्वरूप से इस त्रिलोकी को ही व्याप्त कर लिया है । हे नाथ ! हम लोग तो बहुत ही क्षुब्ध हैं और माया से सम्मोहित चित्त वाले भी हो रहे हैं । मैं सब सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग, पिशाच और ये विद्याधर हैं किन्तु आप तो इन विश्व के सृजन करने वालों के भी सृजन करने वाले हैं । हे देव ! आप तो इस जगत के स्वामी हैं । आप ही इस भुवन के करने वाले हैं । आप ही इसके संहार करने वाले हैं । आप पर पुरुष हैं । हे महादेव ! आप अब हमारा परिश्राण कीजिए । हे देवो के भी देव ! आपकी सेवा में हम सदा प्रणाम है । इस प्रकार से पाता के द्वारा यह लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले महेश्वर महाप्रभु की स्तुति की गई थी ।३-७।

ऋषयः स्तोतुकामास्तेमहेश्वरमकल्मषम् ।
 अस्तुवन्गोभिरग्याभिः श्रुतिगीताभिरादृताः । ८ ।
 अजानिनो वयं कामान्न विदामोऽस्य सस्थितिम् ।
 त्वं ह्यात्मा परमात्मा च प्रकृतिस्त्वं विभाविनी । ९ ।
 त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
 त्वमेश्वरो वेदविदेकरूपो महानुभावीः परिचिन्द्यमानः । १० ।
 त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवंधसाम् ।
 सर्वं भवति यस्मात्त्वत्तस्मात्सर्वोऽसि नित्यदा । ११ ।
 यस्माच्च सम्भवत्येतत्तस्माच्छम्भुरिति प्रभूः । १२ ।
 त्वत्पादपद्भुजं प्राप्ता वयं सर्वं सुरादयः ।
 ऋषयो देवगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः । १३ ।
 तस्माच्च कृपया शशभो पाह्यस्माञ्छगताः पतेः ! । १४ ।

उन कल्मष रहित महेश्वर देव की स्तुति करने की कामना वाले ऋषियण भी जो श्रुति गीता से समागत थी अपनी परमोत्तम भाणियों के द्वारा स्तुति करने लगे थे । ऋषियों ने कहा—हम लोग तो बहुत ही मजानी हैं क्योंकि कामना से परिपूर्ण रह कर रहे हैं आपकी संक्षिपति को नहीं जानते हैं । आप तो आत्मा-परमात्मा और विभाविनी प्रकृति हैं । आप ही हम सबकी माता तथा पिता हैं । आप ही हमारे बन्धु हैं और आप ही हमारे सखा भी हैं । आप ईश्वर, वेदवित् और एक रूप हैं । आप महानुभावों के द्वारा सर्वदा परिचिन्द्यमान होते हैं । ८।९।१०। आप समस्त सूर्यों के आत्मा हैं, आप एषों की एक ही ज्योति हैं । क्योंकि जिससे यह सभी कुछ होता है इसलिये आप निरय ही सर्व स्वरूपों वाले हैं । जिससे यह सभी कुछ सम्भूत अर्थात् समुत्पन्न होता है इसी कारण से आप शम्भु प्रभू हैं । हम सभी सुर प्रादि आपके चरण रूपी कमलों की शरण में प्राप्त हुए हैं । हम में सब ऋषियण, देव, गन्धर्व, विद्याधर और महोरग भी हैं । इसलिए हे

सम्भो ! हे जगत् के स्वामिन् ! भव कृपा करके इस महान् समागत
भय से हमारी रक्षा कीजिए । ११—१४।

शृणुष्वं तु वचोमेऽथ क्रियतां च वरान्वितैः ।
विष्णुं सर्वं प्रार्थयन्तु त्वरितेन तपोधनाः । १५।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करस्य महात्मनः ।
विष्णुं सर्वं नमस्कृत्य ईडिरे च तदा सुराः । १६।
विद्याधराः सुरगणा ऋषयश्च सर्वे

प्राप्तास्त्वयाऽथ सकला जगदेकवन्धो ।
तद्वत्कृपाकर ! जनान्परिपालयाऽथ
श्रेलोक्यनाथ ! जगदीश ! जगन्निवास ! । १७।
प्रहस्य भगवान्विष्णुरुवाचेदं वचस्तदा ।
क्षेमैः प्रवीडिता यूयं रक्षिताश्च पुरामयाः । १८।
अद्यैव भयमुत्पन्नं लिङ्गादस्माच्चिरन्तनम् ।
न दा भयते मया त्रातुमस्मात्लिङ्गभयात्सुराः । १९।
अच्युतेनैव मुक्तास्ते देवाश्चिन्ताम्यिता भवन् ।
तदानभोगतायाणीतवाचाश्चास्य वै सुरान् । २०।
एतल्लिङ्गं सवृणुष्व पूजनाय जनार्दन ।
पिण्डीभूत्या महाबाहोरक्षस्य सचराचरम् ।
तथेति मत्वा भगवान्वीरभद्रोऽभ्यपूजयत् ॥ २१।

श्री महादेव जी ने कहा—भाप लोग आज मेरा वचन श्रवण
करो और तब से समन्वित होकर उभी काम की भाप लोगों को
करना भी चाहिए । भाप सब लोग श्रीप्राप्ता से समन्वित होकर—हे
सोपानो ! भगवान् विष्णु को प्रार्थना करो । महान् आत्मा वाले भग-
वान् शङ्कर के उस वचन का श्रवण करके उस समय में तब सुरगणों
ने भगवान् विष्णु को नमस्कार करके उनका स्तवन करना आरम्भ कर
दिया था । १५। १६। देवान् ने कहा—हे जगत् के एक बन्धो ! समस्त

पुराण, अथि वृन्द और विद्याधर समस्त भान आपके द्वारा ही रक्षित हैं और रहे हैं । हे कृपा करने वाले ! आप ही इस त्रिलोकी के नाथ हैं, जगत् के ईश हैं और इस जगत् के प्राध्वय हैं । उसी भाँति जैसे समय-समय पर आप रक्षा करते रहे हैं अग्ने इन जनो का परिपालन करिये । उस समय मे भगवान् विष्णु हँसकर यह बचन बोले थे । धार लोगो पहिले दैत्यों ने पीड़ित किया था तो मैंने आपकी सुरक्षा की थी । आज ही इस लिंग से विरग्जन भय समुदाय हो गया है । हे सुरगणो ! इस लिंग के महान् भय से मैं आपका आणु नहीं कर सकता हूँ । जब भगवान् प्रच्युत ने इस प्रकार से कहा तो वे देवता लोग परम चिन्ता में प्रातुर हो गये थे । उसी समय में आकाश गामिनी वाणी ने समस्त सुरो को समाधासन प्रदान करते हुए कहा था—हे जनादेन ! पूजन के लिए इस लिंग का सम्बरण कीजिये । हे महाबाहो ! पिण्डी भूत होकर इस समस्त चराचर जगत् की रक्षा कीजिये । तब भगवान् ने समास्तु (ऐसा ही होगा) यह मानकर वीरभद्र ने अग्निपूजन किया था । १७-२१।

ब्रह्मादिभिः सुरगणैः सहितैस्तदानीं सम्पूजितः

शिवविधानरतो महारमा ।

स वीरभद्रः शशिशेखरोऽसौ शिवप्रियौ

रुद्रसमखिलोक्त्याम् ॥२२॥

लिङ्गस्यार्चनयुक्तोऽसौ वीरभद्रोऽभवत्तदा ।

तद्रूपस्यैव लिङ्गस्य येन सर्वमिदं जगत् ॥२३॥

उद्भाति स्थितिमाप्नोतितयाविलयमेति च ।

तल्लिङ्गं लिङ्गमित्याहुर्लंयनात्तत्त्ववित्तमाः ॥२४॥

प्रह्लाण्डगोलकैर्गोप्तं तथा रुद्राक्षभूषितम् ।

तथा लिङ्गं महजातं सर्वेषां दुरतिक्रमम् ॥२५॥

तदा सर्वेऽथ विबुधा ऋपयो वै महाप्रभाः ।
 तुष्टुबुध्ना महालिंग वेदवादैः पृथक्-पृथक् । २६।
 अणोरणीयांस्त्वंदेवतथा त्वं महतोमहान् ।
 तस्मात्त्वयाविधातव्यसर्वेषांलिङ्गपूजनम् । २७।
 तदानीमेव सर्वेण लिङ्गं च बहुशः कृतम् ।
 सत्ये ब्रह्मेश्वरं लिंगं वंकुण्ठे च सदाशिवः । २८।

उस समय में द्वित से समन्वित ब्रह्मा आदि महान् सुरगणों के द्वारा शिव की समर्था के विधान में रति रखने वाले महात्मा यह वीर सम्पूजित हुए थे जो चन्द्र को मस्तक में धारण करने वाले शिव के परम प्रिय और त्रिभुवन में भगवान् शिव के ही तुल्य थे । २९। उस अवसर में यह वीरभद्र शिव लिङ्ग की धर्चना में समापुक्त हो गये थे । यह लिङ्ग साक्षात् उन शिव के ही स्वरूप वाला था जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् उद्भूत होता है—स्थिति को प्राप्त होता है और विलय को प्राप्त हुआ करता है । हे तत्त्व के ज्ञाता गणो ! जय हो वैसे ही लिङ्ग "लिङ्ग" इस नाम से कहा गया है । २३। २४। ब्रह्माण्ड गोलकी के द्वारा व्याप्त तथा चद्रादों से विभूषित यह लिङ्ग सभी के लिये हरति श्रम वाला महान् समुदाय हो गया था । २५। उस समय में समस्त देवगण और महती प्रभा से सुसम्पन्न ऋषि गणों ने वेद वादों के द्वारा पृथक्-पृथक् स्तवन किया था—हे देव ! आप अणु से भी अधिक अणु है और आप महान् से अधिक महान् हैं । इस लिए आपके द्वारा सभी को लिंग का पूजन करना चाहिए । उसी समय में भगवान् शिव ने बहुत-से लिंग कर दिये थे । सत्य लोक में ब्रह्मेश्वर नाम वाला लिंग है और वंकुण्ठ में सदाशिव हैं ॥ २५-२८॥

अमरावत्यां सुप्रतिष्ठममरेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
 वरुणेश्वरं च वारुण्यां याम्यांकालेश्वरंप्रभुम् । २९।

नैऋतेश्वरं च नैऋत्यां वायव्यां पावनेश्वरम् ।
 केदार मृत्युलोके च तथैव अमरेश्वरम् । ३०।
 ओङ्कारं नमंदायां च महाकालं तथैव च ।
 काश्यां विश्वेश्वरं देवं प्रयागे ललितेश्वरम् । ३१।
 त्रियम्बकं ग्रहागिरी कली भद्रेश्वरं तथा ।
 द्राक्षारामेश्वरं लिङ्गं गङ्गासागरसङ्गमे । ३२।
 सोराष्ट्रे च तथा लिङ्गं सोमेश्वरमिति स्मृतम् ।
 तथा सर्वेश्वरं विन्ध्येश्वरं शैलेश्वरं शिखरेश्वरम् ।
 कान्त्यामल्लालनाथं च सिंहनाथं च सिंगले । ३३।
 विरूपाक्षं तथा लिङ्गं कोटिशङ्करमेव च ।
 त्रिपुरान्तकं च भीमेशममरेश्वरमेव च । ३४।
 भोगेश्वरं च पाताले हाटकेश्वरमेव च ।
 एवमादौ न्यनेकानि लिङ्गानि भुवनत्रये ।
 स्थापितानि तदा देवैर्विश्वोपकृतिहेतवे । ३५।

अमरावती में अमरेश्वर नाम वाले सुप्रतिष्ठित हुए थे । वाहणी
 दिशा में बहणेश्वर और यामी दिशा में कालेश्वर प्रभु संस्थापित हुए
 थे । नैऋत्य दिशा में नैऋतेश्वर तथा वायव्य कोण में पावनेश्वर
 विराजमान हुए थे । इस मृत्युलोक में केदार तथा अमरेश्वर स्थापित हुए ।
 नमंदा में ओङ्कार तथा महाकाल प्रतिष्ठित हुए थे । काशी पुरी में
 विश्वेश्वर (विश्वनाथ) और प्रयाग में ललितेश्वर हैं । २९। ३०। ३१। ग्रहा-
 गिरि में त्रियम्बक है, कलि में भद्रेश्वर है और गङ्गा सागर सगम में
 द्राक्षा रामेश्वर लिङ्ग विराजमान हैं ३२। सोराष्ट्र में सोमेश्वर लिङ्ग है,
 विन्ध्य में सर्वेश्वर तथा श्री शैल में शिखरेश्वर नाम वाला लिङ्ग प्रतिष्ठित
 है । कान्ति में मल्लाल नाथ तथा सिंगल में सिंहनाथ नामक लिङ्ग
 विराजमान हैं । ३३। विरूपाक्ष लिङ्ग कोटिशङ्कर, त्रिपुरान्तक, भीमेश,
 अमरेश्वर, भोगेश्वर और पाताल में हाटकेश्वर लिङ्ग हैं । इस प्रकार छे

उपयुक्त अनेक लिंग इस त्रिभुवन में प्रतिष्ठित हैं और उस समय में सम्पूर्ण विश्व के उपकार के लिए देवगणों ने इन्हें स्थापित किया है । ३४।३५।

लिंगेशश्च तथा सर्वैः पूर्यमासीज्जगत्त्रयम् ।
 तथा च वीरभद्राशाः पूजार्थममरैः कृताः । ३६।
 तत्रविंशति संस्कारास्तेषामष्टाधिकाभवन् ।
 कथिताः शरुरेणैव लिंगस्यार्चनसूचकाः । ३७।
 सन्ति रुद्रेण कथिताः शिवधर्माः सनातनाः ।
 वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथाऽन्ये गुरवः स्मृताः । ३८।
 गुरोर्जाताश्च गुरवो विख्याता भुवनत्रये ।
 लिंगस्य महिमानं तु नन्दीजानातितत्त्वतः । ३९।
 तथास्कन्दोहिभगवानन्येतेनामधारकाः ।
 यथोक्ताः शिवधर्माहिनन्दिनापरिकीर्तिताः । ४०।
 शैलादेन महाभागा विचित्रा लिंगधारकाः ।
 शवस्योपरिलिङ्गं च ध्रियते च पुरातनैः । ४१।
 लिंगेन सहस्रवत्स्य लिंगेन सह जीवितम् ।
 एते धर्माः सुप्रतिष्ठाः शैलादेन प्रतिष्ठिताः । ४२।

समस्त लिंगेशों के द्वारा ये तीनों जगत् परिपूर्ण या और अमर गणों के द्वारा पूजा के लिए वीर भद्राश कर दिए गये थे । यहाँ पर आठ अधिक विंशति अर्थात् षट्ठाईस संस्कार हुए थे ये भगवान् शङ्कर ने ही लिंग की अचना के सूचक कहे थे । ३६।३७। भगवान् शिव के द्वारा कहे गये सनातन शिवधर्म हैं । जिस प्रकार से भगवान् रुद्र हैं उसी तरह वीर भद्र हैं अन्य गुरुगण कहे गये हैं । ३८। गुरु से गुरुवृन्द समुत्पन्न हुए थे जो भुवन त्रय में विख्यात थे । लिंग की महिमा को तत्त्व पर्वक नन्दी जानते हैं । उन्हीं प्रचार से भगवान् स्कन्द भी जानते हैं । अन्य जो हैं वे नाम धारक हैं । जो जिस तरह से शिवधर्म कहे

गये हैं वे नन्दी के द्वारा परिकीर्तित किये गये हैं । १३६।४०। शैलाद के द्वारा महोभाग विचित्र लिंग धारक हुए हैं । पुरातनों के द्वारा सब के ऊपर लिंग को धारण किया जाता है । लिंग के सह पञ्चत्व है और लिंग के साथ जीवन है । ये सब सुप्रतिष्ठ धर्म शैलाद के द्वारा प्रतिष्ठित हुए हैं । १४१।४२।

धर्मः पाशुपतः श्रेष्ठः स्कन्देन प्रतिपालितः । ४३।

शुद्धापञ्चाक्षरीविद्याप्रासादी तदनन्तरम् ।

पडक्षरी तथा विद्याप्रासादस्यचदीपिका । ४४।

स्कन्दात्तत्समनुप्राप्तमगस्त्येन महात्मना ।

पञ्चादाचार्यभेदेन ह्यागमा बहवोऽभवन् । ४५।

किं नु वै बहुनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयम् ।

उच्चारयन्ति ये नित्यं ते रुद्रा नात्र संशयः । ४६।

सतामार्गपुरस्कृत्य ये सर्वे ते पुरान्तकाः ।

वीरा माहेश्वरा ज्ञेयाः पापक्षयकरानृणाम् । ४७।

प्रसंगे नानुपगेष्वश्रद्धयाचयदृच्छया ।

शिवभक्तिम्प्रकुर्वन्ति ये वै ते यान्तिसद्गतिम् । ४८।

शृणुष्व कथयामीह इतिहास पुरातनम् ।

कृत शिवालये यच्च पतभ्या मार्जनं पुरा । ४९।

भगवान् स्कन्द के द्वारा प्रति पालित पाशुपत धर्म परम-
श्रेष्ठ है । ४३। इसके अनन्तर प्रासादी शुद्धा पञ्चाक्षरी विद्या तथा
प्रासाद की दीपिका पडक्षरी विद्या महान् आत्मा वाले अगस्त्य के
द्वारा भगवान् स्कन्द से भली भाँति प्राप्त की थी । पीछे आचार्यों के
भेद से बहुत से आगम हुए ये । ४४। ४५। अत्यधिक कथन करने से क्या
लाभ है । केवल 'शिव'—ये दो अक्षरों को जो नित्य ही उच्चारण
किया करते हैं वे साक्षात् रुद्र ही हैं—इसमें लेख मात्र भी संशय नहीं
है । ४६। जो सत्पुरुषों के मार्गों को पुरस्कृत करके रहने वाले हैं वे सब

पुरान्तक हैं । मनुष्यों के पापों का क्षय करने वाले माहेश्वर धीरे जानने के योग्य होते हैं । ४७। जो प्रसंग से अनुपंग से, थड़ा से धीरे यदृच्छा से भगवान् महाशिव की भक्ति किया करते हैं वे सद्गति को प्राप्त होते हैं । ४८। यहाँ पर एक परम पुरातन में इतिहास कहता हूँ उसका प्राप सब लोग श्रवण करिये । पहिले जो पतंग्या ने शिवालय में मार्जन किया था । ४९।

आगता भक्षणार्थं हि नैवेद्यं केन चापितम् ।
मार्जनं रजसस्तस्याः पक्षाम्यामभवत्पुरा । ५०।
तेन कर्मविपाकेन उत्तमं स्वर्गमागता ।
भुक्त्वा स्वर्गसुखं चोर्ध्वं पुनः संसारमागता । ५१।
काशिराजमुता जातासुन्दरी नामविश्रुता ।
पूर्वाम्यामाञ्च कल्याणी बभूवपरमासती । ५२।
उपस्युपसि तन्वगीशिवद्वाररतासदा ।
सम्मार्जनं च कुरुते भक्त्या परमया युता । ५३।
स्वयमेव तदा देवी सुन्दरीराजकन्यका ।
तथाभूता च ता दृष्ट्वाऋषिर्दालकोऽब्रवीत् । ५४।
सुकुमारो सती बाले स्वयमेव कथं शुभे ! ।
समार्जनं च कुरुये कन्यकेत्वंशुचिस्मिते ! । ५५।
दासी दास्यन्नग्रहवः सन्ति देवि ! तथाग्रतः ।
तथाशयाकरिष्यन्मिसर्वसंमार्जेनादिकम् । ५६।

ये किसी के द्वारा समर्पित किये हुए नैवेद्य के भक्षण करने के लिये यहाँ शिवालय में ममागत हुए थे । पहिले उस पतंग्या के पंखों से यहाँ की रज का मार्जन हुआ था । ५०। उस रज के मार्जनस्वरूप कर्म के विपाक से यह स्वर्ग में आ गई थी । यहाँ पर परमोच्च स्वर्ग के गुण का उरमोग करके पुनः वह संसार में आ गयी थी । यहाँ पर यह सुन्दरी — इस नाम से प्रसिद्ध काशिराज की पुत्री होकर गमुत्पन्न हुई

थी । पूर्व जन्म के अभ्यास से वह बलियाणी परम सती हुई थी । १५१।
 १५२। प्रत्येक दिन में प्रातः काल के समय में वह तत्वगी सदा भगवान्
 शिव के द्वार पर रत रहा करती थी और परम भक्ति से युक्त होकर
 वहाँ पर शिवालय में सम्मार्जन किया करती थी । १५३। उस समय में
 राजकन्या सुन्दरी स्वयं ही शिवालय के मार्जन भी किया करती थी ।
 उस प्रकार से सम्मार्जन करने वाली उसको देखकर उद्दालक ऋषि ने
 उससे कहा था—हे बाले ! हे दुग्धे ! हे कन्यके ! हे शुचि स्मितवाली !
 आप तो परम सुकुमारो हैं और परम सती हैं । यहाँ पर आप स्वयं ही
 यह शिवालय का सम्मार्जन क्यों करती हैं । हे देवि ! आप तो राज-
 कन्या हैं, आपके तो दास और दासियाँ ही बनेक हैं जो आपके आगे
 यह सभी सम्मार्जन आदि कर्म आपकी आज्ञा से ही कर लेंगे । १५४।
 १५५। १५६।

ऋषेस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्येहमुवाच ह ।
 शिवसेवा प्रकुर्वाणाः शिवभक्तिपुरस्कृताः । १५७।
 ये नराश्चैव नार्यश्च शिवलोकं व्रजन्ति वै । १५८।
 समार्जनं च पाणिभ्यापदभ्यागान् शिवालये ।
 तस्मान्मया च क्रियते सम्मार्जनमनन्तरम् । १५९।
 अन्यत्किञ्चिन्न जानामि एकसम्मार्जनं विना ।
 ऋषिस्तद्वचनं श्रुत्वा मनसा च विमृश्य हि । १६०।
 अतया किं कृतं पूर्वं केयं कस्य प्रसादतः ।
 तदा ज्ञातं च ऋषिणा तत्सर्वं ज्ञानचक्षुषा ।
 विस्मयेन समाविष्टस्तूष्णीमूतोऽभवत्तदा । १६१।
 सविस्मयोऽभूदथ तद्विदित्वा उद्दालको ज्ञानवता वरिष्ठः ।
 शिवप्रभाव मनसा विचिन्त्य ज्ञानात्पर बोधमवाप शान्तः । १६२।

ऋषि के उस वचन का ध्यान कर वह हैसकर ऋषि से यह
 बोली थी—जो नर और नारियाँ शिव की भक्ति की भावना में निमग्न

होकर शिवकी सेवा किया करते हैं वे निश्चय ही शिव के सोन में गमन किया करते हैं । १५७।१८। जो अपने हाथों से ही स्वयं सम्मार्जन किया करते हैं तथा अपने पैरों से चलकर शिवालय तक गमन किया करते हैं उन्हें ही शिवलोक की प्राप्ति दृष्टा करता है । इसी कारण से मेरे द्वारा स्वयं ही निरालस्य होकर यहाँ पर नित्य ही सम्मार्जन किया जाता है । १५९। इस एक सम्मार्जन के अतिरिक्त अन्य में कुछ भी नहीं जानती ॥ । महर्षि ने उससे इस वचन का श्रवण करके मन से विचार किया था कि यह बौद्ध है और किसके प्रभाव से इसने पहिले जन्म में क्या किया है । ऐसा विचार-विमर्श करने पर उम समय ऋषि ने अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा उसी समय में वह सभी कुछ ज्ञान कर लिया था । प्रासाद प्रणव है — यह मन्त्र सासन में प्रणव प्रासाद बोज सज्ञा होती है । उस समय में वह ऋषि विस्मय से समाविष्ट होकर तूष्णीभूत प्रवर्तित हुए हो गया था । १५९।६०।६१। वह विस्मय से समाविष्ट हो गया था । इसके अनन्तर ज्ञान बालों में परम वरिष्ठ उद्दालक यह सभी कुछ जान कर श्रीर भगवान् शिव के प्रभाव की मन से सोच कर परम दान्त होते हुए ज्ञान से उसने परम ज्ञान प्राप्त किया था । ६२।

८—रावणोपाख्यान

रावणेन तपस्तप्तं सर्वेषामपि दुःसहम् ।
तपोधिपो महादेवस्तुतोऽपि च तदा भृशम् । १।
यराभ्रायच्छन तदा सर्वेषामपि दुर्लभान् ।
ज्ञान विज्ञानसहित लब्धतेन सदाशिवत् । २।
अजेयत्वं च सग्रामे ह्येगुष्य शिरसामपि ।
पश्यावना महादेवोदशववत्रोऽय रावण । ३।
देवानृषीनिर्गुणैश्च निजित्यतपना विभु ।
महेशस्यप्रसादात्सर्वेषामपि । ४।

राजा त्रिकूटाधिपतिर्महेभेनकृतो महान् ।
 सर्वपांराक्षसानां च परमासनमास्थितः ।५।
 तपस्विनां परीक्षायं यदृषीणां विहिततनम् ।
 कृततेन तदा विप्रा रावणेन तपस्विना ।६।
 धजेयो हि महाछातो रावणो लोकरावणः ।
 सृष्टघन्तरं कृत येन प्रसादाच्छंकरस्य च ।७।

सोमदा महापि ने बड़ा—रावण ने सब लोगों के लिए परम दुःसह तप का तपन किया था । उस समय में तप का रवामी महादेव अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुए थे ।१। उसी समय में तपको धनीव दुर्लभ वरदान प्रदान किये । उसने सदाशिव भगवान् से विज्ञान के सहित ज्ञान प्राप्त किया था ।२। सधाम ने उगने धजेयस्य की प्राप्ति की थी और शिर भी दुगुने प्राप्त कर लिये थे । महादेव तो पाँच ही मुख वाले थे किन्तु रावण दश मुखी वाला हो गया था ।३। मिथु उसने समस्त देवों को, ऋषियों को और भित्तों को तप के द्वारा निर्वृत करके महेश के प्रसाद से सबसे अधिक हो गया था ।४। महेश भगवान् ने महान् त्रिकूट का अधिपति राजा कर दिया था । वह रावण समस्त राक्षसों के परमासन पर समास्थित हो गया था ।५। हे विप्रगण ! उस समय में परम तपस्वी रावण ने तपस्वियों की परीक्षा के लिये ऋषियों का विहितन किया था । वह लोक रावण महान् धजेय हो गया था जिसने भगवान् शङ्कर के प्रसाद से सृष्टघन्तर अर्थात् रचना में अन्तर कर दिया था ।६।७।

लोकपाला जितास्तेन प्रनापेन तपस्विना ।
 ब्रह्माऽपि विजितोयेन तपसापरमेण हि ।८।
 अमृताशुकरोभूत्वाजितोयेनशशो ' द्विजाः ।
 दाहकत्वाज्जितोबह्विरीशः कैलासतोलनात् ।९।

ऐश्वर्येणजितश्चेन्द्रो विष्णुः सर्वगतस्था ।
 लिंगार्चनप्रसादेन त्रैलोक्यं च वशीकृतम् ॥१०॥
 तदा सर्वे सुरगणा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
 मेरुपृष्ठं समासाद्य सुमंत्रं चकिरे तदा ॥११॥
 पीडिताः स्मोरावणेन तपसादुष्करेण वै ।
 गोकर्णख्ये गिरी देवाः श्रूयतां परमाद्भुतम् ॥१२॥
 साक्षात्लिंगार्चनं येन कृतमस्ति महात्मना ।
 ज्ञानमेयं ज्ञानगम्यं यद्यत्परममद्भुतम् ॥१३॥
 तत्कृतं रावणेनैव सर्वेषां दुरतिक्रमम् ॥१४॥

उस प्रतापी तपस्वी ने सम्पूर्ण लोक पालों को जीत लिया था और जिसने अपने परम उग्र तप के द्वारा ब्रह्मा जी को भी जीत लिया था । हे द्विजगण ! जिसने अमृतांशु कर होकर चन्द्र को जीत लिया था और वाहकत्व के होने से अग्नि को जीत लिया था । कैलास पर्वत को उत्तोलित अर्थात् हाथों से उठाकर भगवान् शिव को भी जीत लिया था क्योंकि शङ्कर भगवान् उस कैलास पर ही विराज मान रहा करते थे ॥१॥१॥ ऐश्वर्य से इन्द्र को जीत लिया था तथा सर्वत्र रहने वाले भगवान् विष्णु को जीत लिया था । लिंग की अर्चना के प्रसाद से उस रावण ने सम्पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया था । उस समय में सब देवगणों ने जिनमें ब्रह्मा और विष्णु पुरोगामी थे मेरु पर्वत की पृष्ठ भूमि पर एकत्रित होकर मन्त्रणा करने लगे थे कि हम सब लोग परम दुष्कर तपश्चर्मा के द्वारा रावण से उद्गीर्णित हो गये हैं । गोकर्ण नामक गिरि पर हे देव गणो ! इस परम अद्भुत का श्रवण करो । जिस महात्मा ने साक्षात् शिव के लिंग का अर्चन किया है । ज्ञान के द्वारा मेय (मान करने के योग्य), ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य जो-जो भी परम अद्भुत है वह सभी कुछ सबके लिये दुरतिक्रम रावण ने ही किया है ॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥

चैराभ्यं परमास्थाय औदार्यं च ततोऽधिकम् ।
 तेनैव ममता त्यक्त्वा रावणेन महात्मना । ११५।
 संवत्सरसहस्राक्षं स्वशिरो हि महाभुजः ।
 कृत्वा करेणालिगस्य पूजनार्थं समर्पयत् । ११६।
 रावणस्य कवचं चतुर्दशै च समीपतः ।
 योगधारणया युक्तं परमेण समाधिनाः । ११७।
 लिंगेलयं समाधाय कन्यापिकलया स्थितम् ।
 अन्यच्छिरोविवृश्यैव तेनापिशिवपूजनम् । ११८।
 कृतं नैवान्यमुनिना तथा चंचापरेण हि । ११९।
 एवं शिरां त्येव बहूनि तेन समर्पितान्येव शिवार्चनार्थं ।
 भूत्वा कवचो हि पुनः पुनश्च तदा जिवोऽभौ वरदो बभूव । १२०।
 मया विनासुरस्तत्र पिण्डीभूतेन च पुरा ।
 वरान्वरय पौलस्त्ययथेष्टं तान्ददाम्यहम् । १२१।

उस महात्मा रावण ने परम वैराग्य में समास्थित होकर घोर
 उससे भी अधिक औदार्य में आस्थित होकर ममता का पूर्ण रूप से
 त्याग कर दिया था । महान भुजाधारी वाले उसने एक सहस्र वर्ष तक
 घोर तपश्चर्या करते हुए अपना अस्तक हाथ में लेकर उसे लिंग की
 पूजा के लिए समर्पित कर दिया था । उस लिंग के समीप में ही उसके
 प्राणे रावण का कवच (चउ) योग की धारणा से युक्त होकर परम
 समाधि से लिंग में किसी भी अत्यद्भुत कला से लय की प्राप्ति कर स्थित
 रहा था । इसी मूर्ति उसके अपने अन्य शिर भी काट कर भगवान शिव
 का पूजन किया था । ऐसा अन्य किसी भी मुनि ने तथा दूसरे ने
 नहीं किया था । ११५। ११६। ११७। ११८। ११९। इस प्रकार से उसने अपने बहुत से
 शिरो को ही भगवान शिव के अर्चना के लिए समर्पित कर दिया था
 बारम्बार कवच रख्य हो गया था । उसी समय में शिव वर प्रदान
 करने चाहे ही गये थे । १२०। वहाँ पर विना सूर के पिण्डी भूत होने

उससे पहिले ही कहा था—हे पौलस्त्य ! गरदाना की याचना कर लो जो भी तुमको अभीष्ट हों, मैं उन सब वरों को देता हूँ । १२१।

रावणेन तदा चोक्तः शिवः परममङ्गलम् ।

यदि प्रसन्नो भगवन् देवो मे वर उत्तमः । १२२।

न कामयेऽन्यं च वरमाश्रये त्वत्पदांबुजम् ।

यथा तथा प्रदातव्यं यद्यस्ति च कृपामयि । १२३।

तदा सदाशिवेनोक्तो रावणो लोकरावणः ।

मत्प्रसादाच्च सर्वं त्वं प्राप्स्यसे मनसेप्सितम् । १२४।

एवं प्राप्तं शिवात्सर्वं रावणेन सुरेश्वराः ।

तस्मात्सर्वं भवद्भिश्च तपसा परमेण हि । १२५।

विजेतव्यो रावणोऽयमिति मे मनसि स्थितम् ।

अच्युतस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्माद्या देवतागणाः । १२६।

चितामापेदिरे सर्वे चिरन्ते विषयान्विताः ।

ब्रह्माऽपि चेद्रियग्रस्तः सुतां रमितुमुद्यतः । १२७।

इन्द्रो हि जारभावाच्च चन्द्रो हि गुरुतत्पगः ।

यमः कदर्यभावाच्च चंचलत्वात् सदा गतिः । १२८।

उक्त समय में गरम मङ्गल स्वरूप भगवान शिव से कहा था—
हे भगवन ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो मुझे एक ही सर्वोत्तम
वरदान देने की कृपा कीजिए । मैं अन्य कोई भी वरदान नहीं चाहता
हूँ, मैं केवल आपके चरण कमलों के समीपव प्राप्त करने का ही वर-
दान चाहता हूँ । यदि मुझ पर आपकी कृपा है तो यथा तथा यही मुझे
प्रदान करिये । १२२। १२३। उस समय उस लोकरावण रावण से भगवान
सदाशिव ने कहा था—मेरे प्रसाद से सभी कुछ जो भी तुम्हारे मन में है
तथा अभीष्ट है वह तुम अवश्य प्राप्त कर लीये । १२४। हे सुरेश्वरो ! इसी
प्रकार से उन रावण ने भगवान शिव से सभी कुछ प्राप्त कर लिया है
इसलिए अब आप सबके द्वारा परमोत्तम तपश्चर्पा से इस रावण को

भी जीत लेना चाहिए, यही बात मेरे मन में स्थित है । भगवान् अच्युत के इस वचन का अवलोकन करके ब्रह्मादि देवगण सब यही भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे क्योंकि वे चिरकाल से विषयों में लित थे । पितामह ब्रह्मा भी इन्द्रियों में अस्त थे और अपनी सुता के साथ रमण करने को समुद्यत हो गये थे । इन्द्रदेव भी जार भाव से युक्त थे तथा अश्वदेव भी गुरु धर्म पर गमन करने वाला था । यम में पूर्ण तथा कर्कश भाव था । सदागति वायुदेव चञ्चल थे । १२१—२८।

पावकः सर्वभक्षित्वात्तयाऽन्येदेवतागणाः ।

अशक्ता रावणजेतुं तपसा च विजृम्भितम् । १२१।

शीलादो हि महातेजा गणधेष्ठः पुरातनः ।

बुद्धिमाप्नोति निपुणो महाबलपराक्रमी । १२०।

शिवप्रियो रुद्ररूपी महात्मा ह्युवाच सर्वानथ चन्द्रमुख्यान् ।

कस्माद्ययं स भ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यतां विस्तरेण । १२१।

नन्दिना च तदा सर्वे पृष्टाः प्रोचुस्त्वरान्विताः । १२२।

रावणन वयसर्वे निजितामुनिभिः सहः ।

प्रसादयितुमायाताः शिव लोकेश्वरेश्वरम् । १२३।

प्रहस्य भगवान्नदी ब्रह्माणं वै ह्यवाच ह ।

पथय्यस्यैव शिवः शम्भुस्तपसा परमेण हि ।

द्रष्टव्यो हृदि मध्यस्थः सोऽद्य द्रष्टुं न पायते । १२४।

यावद्भावा ह्यनेकाश्चन्द्रियार्थास्तथैव च ।

यावच्च समवाभावस्तावदशो हि दुर्लभः । १२५।

अग्निदेव सर्व भक्षिता का दोष था तथा अन्य भी सब देवता-गण अशक्त थे । तपश्चर्षा के द्वारा रावण को जीतना एक विजृम्भित भाव ही था । शीलाद पुरातन गणों में अश्व महात तेजस्वी था । यह महान् बुद्धिमान्, नीति शास्त्र में परम निपुण, महान् बल और पराक्रम से समन्वित थे । शिव के परम प्रिय रुद्र के रूप धारण करने वाले,

महात्मा वह चन्द्र जिनमें प्रमुख थे उन सभसे बोले—आप सब किस सम्भ्रम से यहाँ पर समागत हुए हैं—यह विस्तार पूर्वक हमको पतलाइये । हम प्रकार से जब नन्दी के द्वारा पूछे गये तो सभी देवगण स्वराग्वित होकर कहने लगे थे । २६।३०।३१।३२। देवगण ने कहा—
रावण ने समस्त मुनिगण के साथ हम लोगों को जीत लिया है इसलिए हम सब लोकों के ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान सदाशिव को प्रसन्न करने के लिए यहाँ पर आये हुए हैं । उस समय में भगवान नन्दी ने हसकर ब्रह्माजी से कहा था—कहाँ तो आप हैं और कहाँ परम तप से समन्वित भगवान सम्भु शिव हैं । यद्यपि हृदय के मध्य में स्थित ही देने के योग्य हैं । वे सब आज देखे नहीं जा सकते हैं । जब तक घनेक भाव हृदय में विद्यमान है तथा इन्द्रियों के धर्म धर्मात् बहुत प्रकार के विषय मन में प्रविष्ट हो रहे हैं एवं जिस समय तक समता की भावना हृदय में स्थित है तब तक भगवान ईश परम पुनर्भ हो हैं । ३३।३४।३५।

जितेन्द्रियाणां शान्तिनां तत्तिष्ठानां ममृत्तमनाम् ।
सुलभो निगच्छोऽस्याद्भवता हि सुदुर्लभः । ३६।
तदा ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च विपश्चितः ।
प्रणम्य नदिनं प्राहुः कस्मात्त्वं वानराननः । ३७।
तत्सर्वं कथमागम्यं च रावणस्य तपोश्रमम् ।
कुवेरोऽधिष्ठुस्तस्तेन शरूरेण महात्मना ।
घनानामाधिपत्ये च तं द्रष्टुं रावणोऽश्रयं । ३८।
आगच्छत्वरया युक्तः समारुह्य स्ववाहनम् ।
मा दृष्ट्वा चाश्रयोत्कृष्टः कुवेरो ह्यत्र आगतः । ३९।
त्वया दृष्टोऽथवाऽश्रामोऽयमविलम्बितम् ।
किं कार्यं घनदेनाद्यज्ञातपृष्ठो मया हि सः । ४०।
तदोवाच महातेजा रावणो लोकरावणः ।
मम्यश्रदान्वितो भूत्वा विषयात्मानुदुर्मदः । ४१।

शिक्षापयितुमारब्धोर्मेवंकार्यमितिप्रभो ।

यथाऽहं च श्रियायुक्तश्राद्धयोऽहं बलवानहम् ।

तथा त्वं भव रे मूढ मा मूढत्वमुपाजंय ॥४२॥

जो अपनी इन्द्रियो के जीने वाले हैं, परम शान्ति की भावना से युक्त हैं, शिव में ही परम निष्ठा रखने वाले हैं और महान आत्मा वाले हैं उनको ही लिंग रूपी भगवान शिव सुलभ हुआ करते हैं आप लोगों को तो वे सुदुर्लभ ही हैं ॥३६॥ उसी समय में ग्रहा भावि समस्त देवताओं और महान विद्वान ऋषिगणों ने नन्दी को प्रणाम करके कहा था कि आप धानर के तुल्य मुख वाले किस कारण से हो गये हैं यह सब क्या हमको बतलाइये तथा अन्य जो रावण का तपोबल है उसे भी कहिये ॥३७॥ नन्दीश्वर ने कहा—महारमा शङ्कर ने कुशेर को धनी के आधिपत्य में अधिष्ठान कर दिया था । यहाँ पर उसको देखने के लिए अपने बाहुन पर समावृद्ध होकर बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर यहाँ पर रावण आया था । उसने यहाँ पर मुझको देखकर अत्यन्त क्रोधित होते हुए कहा था कि क्या यहाँ पर कुशेर आया था ? क्या आपने उसको यहाँ पर देखा है ? वह बहुत ही शीघ्र बिना कुछ विलम्ब किये मुझे बतलाओ कि क्या वह यहाँ पर है । उस समय में मैंने उससे पूछा था कि आज आपको घनद (कुशेर) से क्या काम है । उस समय में लोक रावण, महान तेजस्वी रावण ने कहा था—मुझसे अधिका से युवन होकर विषयो में लिप्त आरमा वाला तू धनीव सुदुर्भेद हो गया है । मुझे ही आज शिक्षा देना तुमने आरम्भ कर दिया है । हे प्रभो ! ऐसा तुमको नहीं करना चाहिये । जैसा मैं श्री से युक्त हूँ और परम श्राद्ध हूँ तथा मैं बलवान भी हूँ । रे मूढ ! उसी प्रकार का तू भी हो जा और इस मूढता का उपाजंन मत करो ॥३८—४२॥

अहं मूढः कुतस्तेन कुबेरेणमहात्मना ।

मया निराकृतो रोषात्तपस्तेषु स गुहाकः ॥४३॥

कुबेरः स हि नंदिन्किमागतस्तव मन्दिरम् ।
 दीयतां च कुबेरोऽद्यनात्रकार्याविचारणा ॥४४॥
 रावणस्यवच. श्रत्वाह्यवोचत्वरितोऽप्यहम् ।
 लिंगकोसिमहाभागत्वमहं च तथाविधः ॥४५॥
 उभयोः समताज्ञात्वावृथाजल्पसि दुर्मते ।
 यथोक्तः स त्ववादीन्मां वदनार्थवलोद्धतः ॥४६॥
 यथा भवद्भिः पृष्ठोऽहं वदनार्थं महात्मभिः ।
 पुरावृत्तं मया प्रोक्तं शिवार्चनविधे. फलम् ।
 शिवेन दत्तं सारूप्यं न गृहीतं मया तदा ॥४७॥
 याचितं च मया शंभोर्वदनं वानरस्य च ।
 शिवेन कृपया दत्तं मम कारुण्यशालिना ॥४८॥
 निराभिमानीनो ये च निदंभानिष्परिग्रहाः ।
 क्षमोः प्रियास्तेविज्ञायाह्यन्येशिवबहिष्कृताः ॥४९॥

उस महात्मा कुबेर के द्वारा मैं मूढ़ बना दिया गया हूँ । जब मैंने रोप से उसका निरादर कर दिया था तो उस गुह्ययुक्त (कुबेर) ने तपश्चर्या की थी ॥४३॥ रावण ने कहा—हे नन्दिन ! यह कुबेर आपके मन्दिर में क्यों समागत हुआ था ? भाग उस कुबेर को तुम मेरे सुपुत्र कर दो और इस विषय में कुछ भी विचार मत करो ॥४४॥ रावण के इस वचन को सुनकर मैंने तुरन्त ही उससे यह कहा था—हे महाभाग ! भाव निष्कृष्ट हैं अर्थात् शिव निष्कृष्ट की उपासना करने वाले हैं और मैं भी उसी प्रकार का उपासक हूँ । हम तुम दोनों की समता का ज्ञान प्राप्त करके भी हे दुर्मते ! यह सब व्यर्थ ही कह रहे हो । ऐसा उग्र ही मैंने उससे कहा था वह मुझसे बोला—वदनार्थ मैं बल से उद्धत हो गया है । महान आत्मा वाले आपने जैसा मुझसे वदनार्थ में पूछा है । मैंने शिवार्चन की विधि का फल पुरावृत्त कहा है । भगवान् शिव ने मुझे क्षमा प्रदान किया था किन्तु उस समय से मैंने उसे स्वी-

कार नहीं किया था । ४५।४६।४७। मैंने उस समय में भगवान् शम्भु से वानर का वहन याचित किया था । कल्याणशाली शिव ने कृपा करके मुझे वह प्रदान कर दिया था । ४८। जो अमिमान से रहित हैं, दम्भ से शून्य हैं और परिग्रह हीन होते हैं वे ही लोग भगवान् शम्भु के परम प्रिय होते हैं और अन्य जो होते हैं वे शिव के द्वारा बहिष्कृत हुमा करते हैं । ४९।

तथावदन्मया साढ्वं रावणस्तपसोवलात् ।
मया च याचिताग्रेवदश चक्राणिधीमता । ५०।
उपहासकरं वाक्यं पोलस्त्यस्य तदासुराः ।
मया तदा हि क्षप्तोऽसौ रावणो लोकरावणः । ५१।
ईदृशान्येव वचनाणि येषां वं सम्भवति हि ।
तैः समेतो यदाकोऽपि न रवर्यो महातपाः ।
मा पुरस्कृत्य सहसा हनिष्यति न स शयः । ५२।
एवं क्षप्तो मया ब्रह्माप्रावणो लोकरावणः ।
अचितं केवलं लिङ्गं विना तेन महात्मना । ५३।
पोठिगरूपसंस्थेन विना तेन सुरोत्तमाः ।
विष्णुना हि महाभागास्तस्मात्सर्वं विधास्यति । ५४।
देवदेवो महादेवो विष्णुरूपी महेश्वरः ।
सर्वं यूयं प्रार्थयन्तु विष्णुं सयंगुहाशयम् । ५५।
अहं हि सर्वं देवानां पुरोवर्ती भवाम्यतः ।
ते सर्वे नन्दिनो वाक्यं श्रुत्वा मुदितमानसाः ।
यंगुण्डमागता गोभिर्विष्णुं स्तानुं प्रचक्रिरे । ५६।

तबसेम मे रावण ने मेरे माथ उत प्रहार से कहा था कि धीमाशु मैंने तो भगवान् शम्भु से दशगुणों ने हो जाने की याचना की थी । हे गुरुराण ! यह उत समय में भीमराज का परम उपहास के करने कासा वाक्य था । उत समय में मोर्कों को डराने जाने उत रावण की

मैंने क्षाप दे दिया था । जिनको ऐसी ही मुछ हुआ करते हैं, जिस समय मैं उनसे युध्द महान तपस्वी कोई नरनर्या होगा वह सहसा मुझको प्रागे करके मार डालेगा — इसमें कुछ भी संशय नहीं है । १५०।११।१२। इस तरह से मेरे द्वारा क्षाप दिया हुआ है ब्रह्मा ! वह लोकरावण रावण था । उसने उस महात्मा के बिना केवल लिङ्ग का ही अर्पण किया था । हे महान भाग वाले सुरोत्तमो ! उसने पीठिका रूप संस्पित उस विष्णु भगवान के बिना ही यह समर्चना की थी । अतएव वह विष्णु ही सब क्रुद्ध करेंगे । देवों के भी देव महेश्वर विष्णु के स्वरूप वाले महादेव हैं । इसलिए क्षाप सब लोग सबके गुहाशय भर्षात् सबके अन्तर्गामी भगवान विष्णु की प्रार्थना करिये । १३।१४।१५। इसलिए मैं क्षाप सब लोगों के प्रागे रहने वाला होऊँगा । वे समस्त देवता लोग नन्दी के इस वाक्य का श्रवण कर बहुत ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे । फिर वे सभी वैकुण्ठ में समागत हो गये थे और वाहिनियों के द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति करने लगे थे । १६।

नमो भगवते तुभ्यं देवदेव ! जगत्पते ! ।
 त्यदाधारमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् । १७।
 एतल्लिगंत्वयाविष्णोघृतं वै पिण्डरूपिणा ।
 महाविष्णुस्वरूपेणपातितो मधुकैटभो । १८।
 तथा कमठरूपेण घृतो वै मंदराचलः ।
 बराहस्वभास्याय हिरण्याक्षो हतस्त्वया । १९।
 हिरण्यकशिपुर्दंत्यो हतोनृहरिरूपिणा ।
 त्वयाचंच बलिबंधो दंत्यो वामनरूपिणा । २०।
 भृगूणामन्वये भूत्वा कृतवीर्यात्मजोहतः ।
 इतोप्यस्मान्महाविष्णो तथैव परिपालय । २१।
 रावणस्य भयादस्मात्त्रातुं भूयोऽर्हसि त्वरम् । २२।

एवं संप्रार्थितो देवर्भगवान्भूतभावनः ।

उवाच च सुरान्सर्वान्वासुदेवो जगन्मयः । ६३।

हे देवाः ध्रूयतां वाक्यप्रस्तावसदृशमहत् ।

शैलादि च पुरस्कृत्य सर्वे यूयं स्वराग्नयिताः ।

अवतारान्प्रकुर्वन्तु वानरी तनुमाश्रिताः । ६४।

देवगण ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं । भगवान् आपके लिए हमारा नमस्कार है । इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के आप ही एक मात्र आधार हैं । ६३। हे विष्णो ! विण्ड रूपी आपने इस लिये को धारण किया है । महा विष्णु के स्वरूप से आपने मधु और कैटभ दोनों असुरों का हनन किया था । ६८। आपने कमठ रूप से मन्दराचल को धारण किया था तथा आपने वरह के स्वरूप में समास्थित होकर हिरण्यक्ष का वध किया था । नृसिंह के स्वरूप को धारण करके आपने हिरण्यकशिपु दैत्य का हनन किया था और वामन रूपी आपने ही बलि दैत्य को बध किया था । भृगुओं के वंश में जन्म धारण करके कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन का हनन किया था । हे महा विष्णो ! उसी भाँति ये यहाँ पर भी हमारी रक्षा प्राप्त कीजिए । रावण के इस भय से आप बहुत ही शीघ्र पुनः रक्षा करने के योग्य होते हैं । ६६। ६७। ६८। ६९। इस प्रकार से देवगणों के द्वारा भूतों पर दया करने वाले भगवान् समस्त देवों से जगन्मय वासुदेव बोले—हे देवगणों ! आपके इस प्रस्ताव के सदृश मेरा महान् वाच्य श्रवण करो । आप सभी लोग अत्यन्त शीघ्रता से समन्वित होते हुए शैलादि को अपने प्रागे करके वानरी तनु (शरीर) का समावेश ग्रहण करते हुए अवतारों को करो । ६३। ६४।

अहंहिमानुषो भूत्वा ह्यज्ञानेन समावृतः ।

संभविष्याम्ययोध्यायां गृहे दशरथस्य च ।

ब्रह्मविद्यासहायोऽस्मि भवतां कार्यसिद्धये । ६५।

जनकस्यगृहेसाक्षाद्ब्रह्मविद्याजनिष्यति ।
 भक्तो हि रावणः साक्षाच्छिवध्यानपरायणः । ६६।
 तपसा महता युक्तो ब्रह्मविद्यां यदेच्छति ।
 तदा सुसाध्योभवति पुरुषो धर्मनिजितः । ६७।
 एवं संभाष्य भगवान्विष्णुः परममङ्गलः ।
 बालीचेन्द्रांशसम्भूतः सुग्रीवोऽशुमतः सुतः । ६८।
 तथा ब्रह्मांशसम्भूतो जाम्बवानृक्षकुञ्जरः ।
 शिलादतनयोऽनन्दीश्विवस्यानुचरः प्रियः । ६९।
 यो वै चंकादशोरुद्रो हनुमान्स महाऋषिः ।
 अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः । ७०।

मैं फिर बाली से समावृत्त होकर मनुष्य होऊँगा और राजा दशरथ के घर में अयोध्या पुरी में जन्म ग्रहण करूँगा । आप सब लोगो के कार्य की सिद्धि के लिये मैं ब्रह्म विद्या की सहायता वाला होऊँगा । वह ब्रह्म विद्या राजा जनक के गृह में जन्म ग्रहण करेगी । परमभक्त रावण साक्षात् शिव के ध्यान में परागण होकर महान् तप-
 श्र्चर्या से युक्त जब ब्रह्म विद्या की इच्छा करेगा तो उही समय में वह धर्म निजिता पुष्ट मुसाध्य ही जायगा । ६५। ६६। ६७। परम मंगल स्वरूप भगवान् विष्णु ने इस तरह से कहकर इन्द्र के भंश से सम्भूत बाली, प्रशुमान् का पुत्र सुग्रीव का ऋक्ष कुञ्जर जाम्बवान् ब्रह्मा के भंश से सम्भूत हुआ । शिलाद का तनय (पुत्र) नन्दी भगवान् शिव का प्रिय अनुचर था जो एकादश रुद्र रूप महा ऋषि था वह हनुमान् हुआ । इसी रीति से अपरिमित तेज धारण करने वाले भगवान् विष्णु की सहायता करने के लिये अवतीर्ण हुए थे । ६८। ६९। ७०।

मैन्दादयोऽय कपयस्ते सर्वे सुरसत्तमाः ।

एव सर्वेसुरगणावतेष्यथातथम् । ७१।

तथैव विष्णुस्तपन्नः कौशल्यानन्दवद्धनः ।
 विश्वस्य रमणाच्चैव राम इत्युच्यते युधै ॥७२॥
 शेषोऽपि भक्त्या विष्णोश्च तपसाऽवातरद्भवि ॥७३॥
 दोर्दण्डावपि विष्णोश्च भवतीणीप्रतापिनौ ।
 शत्रुघ्नभरताख्यौ च विख्यातोभुवनत्रये ॥७४॥
 मिथिलाधिपतेः कन्यायाउक्ताग्रह्यादिभिः ।
 सा ग्रह्याविद्याऽवतरत्सुराणांकार्यसिद्धये ।
 सीता जाता लाङ्गलस्य इय भूमिविकर्षणात् ॥७५॥
 तस्मात्सीतेति विख्याता विद्या सान्वीक्षिकी तदा ।
 मिथिलाया समुत्पन्ना मंथिलीत्यभिधीयते ॥७६॥
 जनकस्य कुले जाता विश्रुताजनकात्मजा ।
 ख्याता वेदवती पूर्वं ग्रह्याविद्याऽघनाशिनी ॥७७॥

ये सब सुरश्रेष्ठ तथा मैनव आदि ऋषिगण इसी प्रकार से यथातथ भवतीर्ण हुए थे । इसी भाँति कौशल्या के आनन्द का वद्धन करने वाले भगवान् विष्णु समुत्पन्न हुए थे । समस्त विश्व के रमण कराने से युधो के द्वारा “राम”—इस नाम से कहे जाते हैं । भगवान् शेष भी विष्णु भगवान् की भक्ति के कारण से तप के द्वारा इस भू-मण्डल में भवतीर्ण हुए थे । प्रतापी दोर्दण्ड भी जो भगवान् विष्णु के थे उस समय में भवतीर्ण हुए थे । ये दोनों दोर्दण्ड भुवनत्रय में भरत और शत्रुघ्न इन दो शुभ नामों से विख्यात हुए थे ॥७१॥७२॥७३॥७४॥ जो मिथिला देश के स्वामी की कन्या थी वह ब्रह्मा वादियों के द्वारा ब्रह्म-विद्या कही गयी थी जो कि सुरों के कार्य की सिद्धि के लिए भवतीर्ण हुई थी । यह सीता इन के द्वारा भूमि के विकर्षण से समुत्पन्न हुई थी ॥७५॥ इसी कारण से उस समय में वह आन्विक्षिकी की विद्या “सीता” इस नाम से विख्यात हुई थी । यह मिथिला देश में समुत्पन्न हुई थी इसलिये यह “मंथिली”—इस शुभ नाम से भी कही जाती है । वह

राजा जनक के कुल में समुत्पन्न हुई थी अतएव वह जनक राजा—इस नाम से विप्रुत हुई थी । यह अश्वो के नाश करने वाली ब्रह्म विद्या पहिले वेदवती—इस नाम से विख्यात हुई थी । ७६।७७।

सा दत्ता जनकेनैव विष्णवे परमात्मने । ७८।

तयाऽयं विद्यया साद्धं देवदेवो जगत्पतिः ।

उग्रे तपसिलीनोऽसौविष्णुः परममङ्गलः । ७९।

रावणं जेतुकामो वै रामो राजीवलोचनः ।

अरण्यवासमकरोद्देवानां कार्यसिद्धये । ८०।

शेषावतारोऽपि गहांस्तपः परमदुष्करम् ।

तताप परयाशक्त्या देवानां कार्यसिद्धये । ८१।

शत्रुघ्नो भरतश्चैव तपतुः परमन्तपः । ८२।

ततोऽसौ तपसा युक्तः साद्धं तैर्देवतागणः ।

सगणं रावणं रामः षड्भिमसैरजीहन्त् ।

विष्णुना घातितः शस्त्रैः शिवसारूप्यमाप्तवान् । ८३।

सगणः स पुनः सद्यो बन्धुभिः सह सुवताः । ८४।

उसको स्वयं राजा जनक ने ही परमात्मा विष्णु को प्रदान किया था । ७८। इसके अनन्तर देवों के देव भगवान् जगत्पति उस विद्या के साथ मैं परमोग्र तप मैं यह परम मङ्गल प्रभु लीन हो गये थे । राजीव (कमल) के समान लोचनों वाले भगवान् श्री राम रामण को जीतने की कामना वाले थे । उन्होंने देवगणों के कार्य की सिद्धि के लिये अरण्य का निवास किया था । शेष के अवतार वाले ने भी देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए अपनी पराशक्ति के द्वारा परम दुष्कर एवं महान् तपश्चर्या की थी । शत्रुघ्न और भरत ने भी परम तप का तपन किया था । ७९। ८०। ८१। ८२। इसके उपरान्त देवगणों के साथ तपश्चर्या से युक्त इन भगवान् श्री राम ने छह ही मोर्चों के अन्दर गणों के सहित रावण को मार डाला था । भगवान् विष्णु ने दान्त्रों से उनका

पथं गरं भक्षितवाञ्छितो लोकमहेश्वरः ।

तत्सर्वं श्रयतां विप्रा यथावत्कथयामि वः ॥६८॥

इस प्रकार से इस ससार के चक्र में बहूत-से मनुष्य भ्रमण किया करते हैं । देवगति से यहृच्छा से मनुष्य भगवान् शिव का समेवन किया करता है । जो गर भगवान् शिव के ध्यान में परायण होते हैं और संयत चित्त वाले होते हैं उनकी भाया का निरसन तुरन्त ही हो जायगा—इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से नहीं होता है । जब भाया का निरसन हो जाता है तो तुरन्त सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों का नाश हो जाया करता है । जब मनुष्य गुणों से भतीत हो जाया करता है तो वह मुक्ति के प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी हो जाता है । इसीलिए समस्त देहधारियों को शिव लिंग का अर्चन अवश्य ही करना चाहिए । लिंग रूपी शिव होकर इस चराचर जगत् का प्राण किया करता है । पहिले भुक्त से आप लोगो ने पूछा था कि यह भगवान् शिव लिंग के स्वरूप की धारण करने वाले कैसे हुए थे । हे विप्रगण ! वह सभी कुछ इस समय मे याथातथ्य रूप से आप लोगो को कह कर बतला दिया है । लोक महेश्वर भगवान् शिव ने गरल का भक्षण कैसे किया था—इस सबको भी हे विप्र वृन्द ! आप अवण करिये । ॥ यथावत् सब आपको बतला रहा हूँ ॥६९-६८॥

६-गुरु की अवज्ञा से इन्द्र का राज्य भङ्ग

एकदा तु सभामभ्यवास्थितो देवराट्स्वयम् ।

लोकपालः परिवृतो देवश्च अपिभिस्तथा ॥१॥

अप्सरोगणसंवीतो गन्धर्वश्च पुरस्कृतः ।

उपगीयमानविजयः सिद्धविद्याधरैरपि ॥२॥

तदाक्षिप्यः परिवृतो देवराजगुरुः सुधीः ।

आगतोऽसी महाभागो बृहस्पतिरुदारधीः ॥३॥

त इष्ट्वः सहसाः देवाः प्रणोमुः समुपस्थिताः ।
 इष्ट्रोपिद्दृशे तत्र प्राप्तं वाचस्पतितदा । १४।
 नोवाच किञ्चिद्दुर्मैधावचो मानपुर मरम् ।
 नाह्वानं नासनं तस्य न विसर्जनमेव च । १५।
 शकं प्रमत्तं ज्ञात्वाऽप्य मदाद्राज्यस्य दुर्मतिम् ।
 तिरोधानमनुप्राप्तो बृहस्पनोरुपाश्वितः । १६।
 गते देवगुरोतस्मिन्विमनस्काऽमवन्सुराः ।
 यक्षानागाः सगन्धर्वाश्चपयोऽपितथाद्विजाः । १७।

महर्षि लोमश ने कहा—एक बार सभा के मध्य में देवराज इन्द्र स्वयं समास्थित हो रहे थे । उनके चारों ओर लोकपाल, देव और ऋषिगण विराजमान थे । वह अम्बराम्बी के नृत्य को देखने में मग्न थे गन्धर्वगण धीमे गमन कर रहे थे और सिद्ध तथा विद्याधरी के द्वारा उनके विजय यश का गायन हो रहा था । उसी समय में शिष्यों के सहित देवराज के सुधी गुरुदेव उदार बुद्धि वाले महाभाग बृहस्पति वहाँ पर समागत हो गये थे । ११।२।३। उनकी देखकर सब देवगण सहमा उठ लगे हुए और सबने उनको प्रणाम किया था । उस समय में वहाँ पर प्राप्त हुए वाचस्पति की इन्द्रदेव ने भी स्वयं देखा था किन्तु उन कुछ बुद्धि वाले ने मान पूर्वक उनसे कुछ भी नहीं कहा था । न तो उनका कुछ स्थागत ही किया—न भासन दिया और और न उनकी विदाई ही की । इसके अनन्तर बृहस्पति जी ने इन्द्र की राज्य के मद से प्रमत्त दुर्मति समझकर क्रोध से युक्त होकर घपना तुरन्त ही वहाँ से तिरो-
 धान कर लिया था । १४।१५। देव गुरु के चले जाने पर समस्त सुरगण बहुत ही चराम हो गये थे । सब यज्ञ, नाग, गन्धर्व, ऋषिवृन्द और दिव्यगण विमनस्क हो गये थे । १७।

गान्धर्वस्यावसानेतु लब्धसञ्ज्ञाऽहिरिः सुरान् ।

पप्रच्छत्वरितेनैव यव गतो हि महातपाः । १८।

तदेव नारदेनोक्तः शक्रो देवाधिपस्तथा ।
 त्वयाकृताह्यवज्ञा च गुरोर्नास्त्यत्र संशयः । १६।
 गुरोरवज्ञया राज्यं गतं ते बलसूदन ! ।
 तस्मात्क्षमापनीयोऽगौ सर्वभावेन हि त्वया । १७।
 एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यनारदस्य महात्मनः ।
 आसनात्महंसोत्थायतैः सर्वैः परिवारितः ।
 आगच्छस्वरया शक्रो गुरोर्मेहमतन्द्रितः । १८।
 पृष्ट्वा तारांप्रणम्यादौ क्व गतो हि महातपाः ।
 न जानामीत्युवाचेदं तारा शक्रं निरीक्षती । १९।
 तदा चिन्तान्वितोभूत्वाशक्रः स्वगृहमाव्रजत् ।
 एतस्मिन्नन्तरे स्वर्गेह्यनिष्ठान्पुद्गुद्भृतानि च । २०।
 अभवन्सर्वदुःखार्थं शक्रस्य च महात्मनः ।
 पातालस्थेन बलिना ज्ञातं शक्रस्य चेष्टितम् । २१।
 ययौ दैत्यैः परिवृतः पातालादमरावतीप् ।
 तदा युद्धमतीवाऽऽसीद्द्वानां दानवैः सह । २२।

गन्धर्वों का गायन जब समाप्त हो गया तो उस समय में इन्द्र को कुछ होश आया था और उसने देवताओं से शीघ्र ही पूछा था—महान तपस्वी गुरुदेव कहीं चले गये हैं ? उन्हीं समय में देवर्षि नारदजी ने देवों के स्वामी इन्द्रदेव से कहा था—तुमने गुरु की भवज्ञा की थी है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । हे बलसूदन ! तेरा राज्य गुरुदेव की भवज्ञा से गया है । इसलिए आपको अब सर्वतोभाव से उनसे दक्षमन कराना चाहिए । महात्मा श्री नारदजी के इस वचन का श्रवण करके वह अपने आसन से सहसा समुत्थित हो गया था और उन सबके द्वारा परिवारित होता हुआ बड़ी ही शीघ्रता के साथ इन्द्र प्रतन्द्रित होकर गुरुदेव के घर में आया था । सर्व प्रथम गुरु पत्नी तारा को प्रणाम करके उसने पूछा था—महान तपोमूर्ति गुरुदेव इस समय में

कहाँ चले गये हैं ? तारा ने इन्द्र की देखते हुए यही उत्तर दिया था कि मैं नहीं जानती हूँ । उस समय मे परम चिन्ता से समन्वित होकर इन्द्र आपिस अपने घर में आ गये थे । इसी बीच में स्वर्ग अत्यद्भुत अनिष्ट हुए थे जो सब प्रकार के दुःखों के लिए ही महात्मा इन्द्र को हुये थे । पाताल में स्थित बलि ने इन्द्र की इस दुश्चेष्टा को समझ कर वह पाताल से दैत्यों से परिवृत्त होता हुआ ममरावती में गया था । उस समय में देवों का दानवों के साथ अतीव घोर युद्ध हुआ था । ८-१५।

देवाः पराजिता दैत्यैः राज्यं शक्यं तत्क्षणात् ।

सम्प्राप्तं सकलं तस्य मूढस्य च दुरात्मनः । १६।

नीतं सर्वप्रयत्नेन पातालं त्वरितं गताः ।

शुक्रप्रसादात्ते सर्वे तथा विजयिनोऽभवन् । १७।

शक्रोऽपि निःश्रिकोजातो देगैस्त्यक्तस्ततोभृशम् ।

देवीतिरोधानगता बभूव कमलेक्षणा । १८।

ऐरावतो महानागस्तथ्योच्चैः श्रवा हयः ।

एवमादीनि रत्नानि अनेकानि बहून्पि । १९।

नीतानि सहस्रार्थ्यलोभादसाधुवृत्तिभिः ।

पुण्यभाञ्जि च तान्येव पतितानि च सागरे ।

तदा स विस्मयाविष्टो बलिराह गुह्यप्रति । २०।

देवाभिजित्य चास्माभिरानोतानि बहूनि च ।

रत्नानि तु समुद्रेऽपतितानि तदद्भुतम् ।

यत्नेस्तद्वचनं श्रुत्वा उन्मत्ता प्रत्युवाच तम् । २१।

दैत्यों के द्वारा सब देशगण पराजित हो गये थे और दुरात्मा महाभूत इन्द्र का सम्पूर्ण राय दैत्यों ने प्राप्त कर लिया था । ये सब राज्य के सम्पूर्ण वैभव को लेकर सीधे ही आपिस पाताल लोक को चले गये थे । दैत्यों के गुह्यरेव युक्ताचार्य के प्रभाव से ये सब दैत्यगण विजयी हो गये थे । इन्द्र भी श्रीहीन हो गया था और समस्त देवों के द्वारा

वह अत्यन्त त्याग दिया गया था । कमलेदाणा देवी भी तिरोधानगत हो हो गई थी अर्थात् वहाँ से छिपकर चुप हो गई थी । महानाग ऐरावत तथा उच्चैःश्रवा अश्व आदि इस प्रकार से अनेक बहुत से रत्न भी सहसा दैत्यो ने जो अमायु चरित्र वाले थे लोभ से ले लिए थे । ये सब रत्न परम पुण्यात्म्य के ही उपभोग करने के योग्य थे इसलिये वे सब सागर में पतित हो गये थे । उस समय में अतीव विस्मय से समाधिष्ट होकर राजा बलि ने गुरुदेव दुष्काचार्य्यं जो से कहा था ॥१६-२०॥ हे गुरुदेव ! देवों को युद्ध में जीतकर हथले ये सब रत्न बहुत से प्राप्त किये थे किन्तु ये सभी रत्न समुद्र में गिर गये हैं—वह एक बहुत ही भद्दा मुत्त पटना है । दैत्यराज बलि के इस वचन का थबगु करके दुष्काचार्य्य ने उसकी इसका उत्तर दिया था ॥२१॥

अश्वमेधशतेगेय सुरराज्यं भविष्यति ।
 दीक्षितस्य न सन्दहस्तस्माद्भोवता स एवच ॥२१॥
 अश्वमेध विना किञ्चित्स्वर्गं भोवतुं न पायते ॥२३॥
 गुरोर्यंगनमाजाय तूष्णीभूतो बलिस्ततः ।
 यभूय देवैः माद्वं च यथोचितमवारयत् ॥२४॥
 द्वाद्विंशोऽप्यतोऽप्राप्तोजगाम परमेष्ठिनम् ।
 विज्ञापयामागतधामयं राज्यभयादिपम् ।
 शक्रस्य वचनं श्रुत्वा परमेष्ठो जवाप ह ॥२५॥
 मंगिनिरा गुराण्तर्वास्त्रया साकं रथराश्रिताः ।
 सारायनार्यं गच्छामो विष्णुं सर्वेऽपरेऽपरे ॥२६॥
 तथेति गत्वा ते सर्वेऽप्राप्तोऽप्राप्तोऽप्राप्तः ।
 प्रजापतिं च पुरस्तद्वत्तटं दीरागुर्वरय च ॥२७॥
 प्राप्तोऽपि तस्य ते सर्वे हरि स्तोत्रं प्रवक्ष्यते ॥२८॥

जो अश्वमेध दत्तों के करों पर ही सुर राज्य के संसार का आनंद प्राप्त होता उसके द्वारा प्रसार के दीक्षित युद्ध हो पायेंगे ।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । इससे इन समस्त रत्नों का भोक्ता वह ही होता है जो सौ भवमेघ कर लिया करता है । बिना भवमेघ यज्ञ के स्वर्ग का सुख भोग नहीं किया जा सकता है । १२२।१२३। गुरुदेव के इस वचन का श्रवण करके फिर दैत्यराज बलि चुप हो गया, या क्षीर देवों के साथ उसने यथोचित व्यवहार कराया था । १२४। देवराज इन्द्र भी परम लोक को प्राप्त होकर परमेष्ठी ब्रह्माजी के पास गया था । क्षीर वहीं जाकर सब राज्य भय आदि की घटना का समाचार सुनाया था । इन्द्र-देव के इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—। १२५। अत्यन्त शीघ्रता से समन्वित होकर समस्त भुरों के साथ मिलकर सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णु की समाराधना करने के लिए चलें । ऐसा ही करना चाहिए— यह विचार कर वे सब इन्द्र आदि लोकपाल जाकर ब्रह्माजी की अपना अग्रगामी बना कर क्षीर सागर के तट के समीप में प्राप्त हो गये थे । वहीं पर बैठकर उन सबने श्री हरि का स्तवन करना आरम्भ कर दिया था । १२६-१७-२८।

देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत ।
 पुण्यश्लोकाव्ययानन्त परमात्मन्नमोऽस्तुते । १२६।
 यज्ञोऽसि यज्ञरूपाऽसियज्ञांगोऽसि रमापते ।
 ततोऽद्य कृपयाविष्णोदेवानां वरदोभव । १३०।
 गुरोरवज्ञयाचाद्य भ्रष्टराज्यः क्षतक्रतुः ।
 जातः सुरर्षिभिः सार्क तस्मादेनं समुद्धत । १२१।
 गुरोरवज्ञया सर्वं नश्यतीति किमद्भुतम् ।
 ये पापिनोऽर्धमिष्टाः केवलं विषयात्मकाः ।
 पितरो निन्दितो यैश्च निर्देवास्ते न संशयः । १२२।
 अनेन यत्कृतं ब्रह्माश्रयस्तत्फलमागतम् ।
 कर्मणा चास्य शक्य सर्वेषां संकटागमः । १३३।

विपरीतो यदा कालः पुरुषस्य भवेत्तदा ।

भूतमैत्री प्रकुर्वन्ति सर्वकार्यार्थसिद्धये । १४।

तेन वै कारणेनेन्द्र मदीय वचनं कुरु ।

कार्यहेतोस्त्वया कार्यो दैत्यैः सह समागम । १५।

ब्रह्माजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं । सुर और असुर सभी आपको नमस्कार करते हैं । हे पुण्य दलोक ! आप बिनाश रहित हैं और अनन्त स्वरूप वाले हैं । हे परमात्मन् ! आपको हम सबका नमस्कार है । १४। आप यज्ञ स्वरूप हैं और स्वयं ही साक्षात् यज्ञ हैं । हे रमायते ! आप यज्ञ के धङ्ग हैं । इसलिए हे विष्णो ! आज अपनी परम कृपा करके इन समस्त देवों को धरदान देने वाले हो जाइये । अब अपने गुरुदेव की भवना करने के कारण इन्द्र अपने राज्य से भ्रष्ट हो गए हैं । यह सुरपियों के सहित भक्ष्यन्त ही हीन दद्या को प्राप्त हो गया है । इसलिए आप अब कृपा करके इसका उद्धार कर दीजिये । १५। श्री भगवान् ने कहा—गुरु की भवना करने से सभी कुछ नाश हो प्राप्त हो जाया करता है—इसमें अद्वितीय बात है । जो पापी और अपरिमिश्र है तथा केवल विषयात्म ही है अर्थात् विषयों के उपयोग करने में ही लित रहा करते हैं और जिन्होंने अपने माता-पिता की निन्दा की है वे निर्देव अर्थात् भाग्यहीन ही होते हैं—इसमें कुछ भी शक्य नहीं है । १६। इस इन्द्र में जो कुछ भी किया है उक्त कर्म का सुरन्त ही इसे फल भी प्राप्त हो गया है । इस इन्द्र के ही हम दुष्कर्म से घाय सभी को सङ्गत प्राप्त हो गया है । १७। जिस समय में पुरुष का विपरीत बाल भावर उत्पन्न हो जाये वे उस समय में समस्त कार्यों की अर्थ-सिद्धि के लिए मनुष्य भूत मैत्री अर्थात् समस्त प्राणिम जी से मित्रता का व्यवहार करना चाहिये । हे इन्द्र ! इस कारण से अब तुम मेरा वचन स्वीकार करो । कार्य के हेतु से तुमने दैत्यों के साथ समागम कर लेना चाहिये । १४-१५।

एवं भगवताऽऽदिष्टः शक्रः परमबुद्धिमान् ।
 अमरावतीं ययौहित्वा सुतलं देवतैः सह ।३६।
 इन्द्रं समागतं श्रुत्वा इन्द्रसेनो रूपाग्वितः ।
 बभूव सह संन्येन हन्तुकामः पुरन्दरम् ।३७।
 नारदेन तदा दैत्या बलिश्च बलिनां वरः ।
 निवारितस्तद्वधाच्च वाक्यैरुच्चावचैस्तथा ।३८।
 ऋणेस्तस्यैव वचनात्यक्तमन्युर्वलिस्तदा ।
 बभूव सह संन्येन आगतो हि शतक्रतुः ।३९।
 इन्द्रसेनेन दृष्टोऽसौ लोकपालैः समावृतः ।
 उवाच त्वरयायुक्तः प्रहसन्निव दैत्यराट् ।४०।
 कस्मादिहागतः शक्र ! सुतलं प्रतिकथ्यताम् ।
 तस्यैतद्वचनं श्रुत्वास्मयमानउवाचतम् ।४१।
 वयं कथपपदायादा यूयं सर्वे तथैव च ।
 यथा वयं तथा यूयं विग्रहोहि निरयंकः ।४२।
 मम राज्यं क्षणेनैव नीतं दैववशात्स्वया ।
 तथा ह्येतानि तान्येव रत्नानि सुबहून्त्यपि ।
 गतानि तत्क्षणादेव यत्नानीतानि वै त्वया ।४३।

परम बुद्धिमान् इन्द्र ने इस घाँति भगवान् के द्वारा समादिष्ट होकर अपनी अमरावती का त्याग करके वह देवगणों के साथ सुतल को चले गये थे । वहाँ पर इन्द्र को समागत सुनकर इन्द्रसेन क्रोध से युक्त होकर इन्द्र को हनन करने की कामना वाला होकर अपनी सेना के साथ हो गया था । उस समय में देवर्षि नारद के द्वारा दैत्यगण थोर बलिपों में परम श्रेष्ठ बलि को उसके बच से ऊँचे-नीचे वाक्यों के द्वारा निवारित कर दिया गया था । उस समय में सती ऋषि के वचन से राजा बलि ने अपना क्रोध त्याग दिया था । इन्द्र अपनी सेना के साथ समापत हुआ था । इन्द्रसेन ने लोकपालों से उसे समावृत देखा था । यह

देत्यराज बहुत ही क्षीघ्रता के साथ हँसते हुए ही यह बोला था । हे इन्द्र ! आप इस सुतल लोक में किस कारण में समागत हुए हैं— यह बतलाइये । उसके इस वचन को श्रवण करके मुस्कराते हुए इन्द्रदेव ने उससे कहा था । ३६-४२। हम सभी लोग महर्षि कश्यप के दामाद हैं और आप भी सब लोग उसी भाँति के हैं । जैसे हम हैं वैसे ही आप भी सब लोग हैं । हमारे आपके बीच में विश्वह निरर्थक ही है । देव वश से एक ही क्षण में आपने मेरा सम्पूर्ण राज्य ले लिया था । उसी भाँति से बहुत से वे ही रत्न हैं जो आपने ही बड़े यत्न से समानीत किये थे । वे सभी उसी क्षण में चले गये हैं । ४३।

तस्माद्विमर्शः कर्तव्यः पुरुषेणविपश्चिता ।
 विमर्शज्जायते ज्ञानं ज्ञानाग्नौक्षो भविष्यति । ४४।
 किंतु मे वत उक्तेन जाने नच सवाग्रतः ।
 शरणार्थी ह्यहं प्राप्त सुरैः सहतवान्तिकम् । ४५।
 एतच्छ्रुत्वा तु शक्रस्यवाक्यवाक्यविदा वरः ।
 प्रहस्योवाचमतिमाञ्छकंप्रतिविदावरः । ४६।
 त्वमागतोऽसि देवेन्द्र ! किमर्थं तन्न वेदग्यहम् । ४७।
 शक्रस्तद्वचनं श्रुत्या ह्यश्रुपूर्णकुलेक्षणः ।
 किञ्चिन्नोवाच तत्रैनं नारदो वाक्यमब्रवीत् । ४८।
 बले त्वं किनजानासिकार्याकार्यविचारणाम् ।
 धर्मो हि महतामेषशरणागतपालनम् । ४९।
 शरणागतं च विप्रं च रोगिणं वृद्धमेव च ।
 य एतान्न च रक्षन्ति ते वै ब्रह्माहणो नराः । ५०।
 शरणागतशब्देन आगतस्तव सन्निधौ ।
 संरक्षणीय योग्यश्च त्वया नास्त्यत्र संशयः ।
 एवमुबनो नारदेन तदा दैत्यपतिः स्वयम् । ५१।

इसलिए विद्वान् पुरुष के द्वारा विमर्श प्रवर्ण्य ही करना चाहिए । विमर्श करने से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर ही मोक्ष होगा । ४८। किन्तु मेरा यह कथन ही है इससे क्या होगा । मैं तो आपके आगे कुछ भी नहीं जानता हूँ । मैं तो सब देव वृन्दों के साथ आपके समीप में शरणार्थी होकर ही प्राप्त हुआ हूँ । ४९। वाक्यों के जालाग्रों में परम श्रेष्ठ और विद्वानों में उत्तम वह मरिचान इन्द्र के इस वचन का श्रवण कर हंसते हुए इन्द्रदेव से यह बोला—हे देवेन्द्र ! तुम यहाँ किस प्रयोजन से आये हो—यह मैं नहीं जानता हूँ । ४९। ४७। इन्द्र ने उसके इस वचन का श्रवण करके आसुओं से अपनी भर फर कुछ भी न बोला वहीं पर इसने देवर्षि नारदजी ने यह वचन कहा था— ४८। हे वसे ! क्या आप कार्य (करने के योग्य) और अकार्य (न करने के योग्य) की विचारणा की नहीं जानते हो ? महान् पुरुषों का यही धर्म होता है कि जो भी कोई शरणार्थी हो उसका पूर्ण पालन करे । अपनी शरण में समागत, विप्र, रोगी और वृद्ध पुरुष, इनकी जो रक्षा नहीं करता है वे मनुष्य ग्राह्य ही हुमा करते हैं । यह इन्द्र तो शरणार्थी शब्द से आपकी सन्निधि में प्राप्त हुआ है और आप इसके संरक्षण के लिए परम योग्य भी हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । इस प्रकार से जब श्री नारद जी के द्वारा दैत्यपति से कहा गया था तब उसने स्वयं विचार किया था । ४९—५१।

विमृश्य परया बुद्ध्या कार्यकार्यविचारणम् ।

शक्रं प्रपूजयामास बहुमानपुरः सरम् ।

लोकपालं समेत च तथा सुरगणैः सह । ५२।

प्रत्ययार्थं च सत्त्वानि ह्यनेकानि व्रतानि वै ।

बलिप्रत्ययभूतानि च चकार पुरन्दरः । ५३।

एव स समयं कृत्वाशक्रः स्वार्थपरायणः ।

बलिना सहचावात्सीदर्थशास्त्रपरो महान् । ५४।

एवं निवसतस्तस्य सुतलेऽपि शतक्रतोः ।
 वत्सरा बहवो ह्यासंस्तदा बुद्धिमकल्पयत् ।
 संस्मृत्य वचनं विष्णोर्विमृश्य च पुनः पुनः । ५५।
 एकं तु सभामध्यभासीनो देवराट् स्वयम् ।
 उवाच प्रहसन्वाक्यं बलिमुद्दिश्य नीतिमान् । ५६।

दैत्यो के राजा बलि ने अपनी पराबुद्धि से वार्याकार्य के विचार का विमर्श करके फिर उसने बहुमान पूर्वक इन्द्र की पूजा की थी और समस्त लोकपालों एवं सुरगणों का भी परम समादर किया था । ५२। उस इन्द्रदेव ने दैत्यराज बलि के विश्वास के स्वरूप वाले उसके विश्वास को समुत्पन्न करने के ही लिए उस इन्द्रदेव ने अनेक सत्त्व व्रतों को उस समय वही पर किया था । इस प्रकार से परम स्वार्थ में परायण इन्द्र ने सन्धि करके महान् अर्थशास्त्र में परायण वह पुरन्दर वही पर बलि दैत्यराज्य के साथ ही निवास करने लग गया था । ५३। ५४। इस रीति से सुतल लोक में दैत्यो के राजा बलि के साथ निवास करते हुए उस इन्द्र देवराज को बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे । उस समय में फिर उसने अपनी बुद्धि से विचार किया था । जबकि भगवान् विष्णु के कहे वचनों का उसे सस्मरण हुआ था और बारम्बार उसने उस पर विचार किया था । एक बार वह देवराज स्वयं सभा के मध्य में विराजमान थे । उस परम नीति में निपुण इन्द्र ने उस समय में दैत्यराज बलि का उद्देश करके हँसते हुए यह वाक्य कहा था । ५५। ५६।

प्राप्तव्यानि त्वया वीरवस्माकं च त्वया बले ।
 गजादीनि बहूष्येव रत्नानि विविधानि च । ५७।
 गतानि तत्क्षणादेव सागरे पतितानि च ।
 प्रयत्नो हि प्रकर्तव्यो ह्यस्माभिस्त्वरयान्वितैः । ५८।
 तेषां चोद्धरणो दैत्य रत्नानामिह सागरात् ।
 उहि निर्मथनं कार्यं भवता कार्यं सिद्धये । ५९।

बलिः प्रवर्तितस्तेनशक्रेण सुरसूदनः ।
 उवाच शक्रं त्वरितः केनेदं मथनं भवेत् ॥६०॥
 तदा नभोगतावाणीमेघगंभोरनिः स्वना ।
 उवाच देवादृत्याश्च मन्यध्वं क्षीरसागरम् ॥६१॥
 भवतां बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः ॥६२॥
 मन्दरश्चैवमन्यान् रज्जुं कुह्तवासुकिम् ।
 पश्चाद्देवाश्चर्दंत्याश्चभेलयित्वाविमथ्यताम् ॥६३॥
 नभोगतां च तां वाणीनिशम्याथतदा सुराः ।
 दैत्यैः साद्धंततः सर्वं उद्यमचक्रुः सदा ॥६४॥

हे दैत्यराज बले ! आप तो बड़े ही धीर पुरुष हैं हमारे जो
 रत्न हैं वे आपकी भवश्य ही प्राप्त कर लेने चाहिये । ऐरावत आदि
 बहुत से अनेक परम सुन्दर रत्न विद्यमान हैं । वे सब चले गये हैं और
 सागर में जाकर पतित हो गये हैं । अब उनको प्राप्त करने के लिए हम
 सभी की बहुत ही शीघ्रता के साथ प्रयत्न ही प्रयत्न करना चाहिए ।
 हे दैत्यराज ! उन रत्नों का सागर से उद्धरण करने के लिए अब
 आपको कार्य सिद्धि के लिए समुद्र का निमंथन करना ही चाहिये ।
 ॥५७॥५८॥५९॥ वह सुर सूदन दैत्यराज बलि उन इन्द्रदेव के द्वारा प्रव-
 र्त्तित किया गया था और वह फिर इन्द्र से बोला था कि वह निमंथन
 बहुत ही शीघ्रता से होने वाला किमके द्वारा होगा ॥६०॥ उग ममय में
 मेघ के समान परम गम्भीर छवि वाली आकाश गामिनी वाणी ने
 कहा था—“हे देववृन्द ! धीर हे दैत्यगण ! अब आप लोग क्षीर
 सागर का मन्थन करो इसके करने में आप लोगों के बल की वृद्धि
 होगी—इसमें सन्देह भी संशय नहीं है । आप लोग इस क्षीर सागर
 के मन्थन करने के लिए मन्दरावन की मन्थन बनाइये और वासुकि
 सर्पराज को उसकी रज्जु बरिये । इसके पदस्थान देवता और दैत्यगण
 सब मिगजर सागर का मन्थन करो । इस तरह किये नभोगत वाणी

को उसी समय में व्यवस्था कर देवों ने दैत्यों के साथ मिलकर उद्यत होते हुए सबने मन्थन करने के लिए उद्यम किया था । ६१—६४।

१०—लक्ष्मी देवी का आविर्भाव

पुनः सर्वे सुसंरब्धममन्युः क्षीरसागरम् ।
मध्यमानास्तदा तस्मादुदयेश्च तथाऽभवत् । १।
कल्पवृक्षः परिजातश्चूतः सन्तानकस्तथा ।
ताम्रद्रुमानेकतः कृत्वा गन्धर्वनगरोपमान् ।
ममन्युरुग्रं त्वरिताः पुनः क्षीराण्यं बुधाः । २।
निर्मस्यमानादुदधेरभवत्सूर्यवर्चसम् ।
रत्नानामुत्तमं रत्नं कौस्तुभाख्यं महाप्रभम् । ३।
स्वकीयेन प्रकाशेन भासयन्तं जगत्त्रयम् ।
चिन्तामणिपुरस्कृत्य कौस्तुभं ददृशुहिते । ४।
सर्वसुराददुस्तं ये कौस्तुभं विष्णवेतदा ।
चिन्तामणिततः कृत्वा मध्ये चैवसुरासुराः ।
ममन्युः पुनरेवापि गर्जन्तस्ते घत्तोत्कटाः । ५।
मध्यमानास्ततस्तस्मादुच्चैः श्रवाः समुद्रमुत्तम् ।
बभूव अश्वोरत्नाना पुनश्चैरावतो गजः । ६।
तथैवगजराजं च चतुःषष्ट्यासमन्वितम् ।
गजानां पाण्डुराणां च चतुर्दन्तमदाम्बितम् । ७।

महापि लोमश जी ने कहा—फिर सभी देव क्षीर दैत्यगण ने सुसंरब्ध होकर उस क्षीर सागर का मन्थन किया था । उस समय में मन्थन किये गये उस सागर से उस प्रकार से हुआ था कि कल्प, वृक्ष, परिजात, सन्तानक, चूत ये वृक्ष समुत्पन्न हुये थे । उन सब द्रुमों को एक जगह करके जो गन्धर्व नगर के तुल्य थे फिर देवगण ने बहुत ही शीघ्र टाशाली होकर उपरता से उस क्षीर सागर का मन्थन किया था ।

॥१२॥ उस निर्मथ्यमान सागर से सूर्यदेव के समान वर्णसं वाला समस्त रत्नों में परम श्रेष्ठ रत्न मङ्गती प्रभा से समन्वित कीस्तुभ नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । अपने प्रकाश से तीनों भुवनों को भासित करते हुए चिन्तामणि रत्न को धारण करके उन्होंने कीस्तुभ को देखा था । सब सुरों ने उस कीस्तुभ मणि को उसी समय भगवान् विष्णु को समर्पित कर दिया था । इसके अनन्तर चिन्तामणि को मध्य में करके उन सुर और प्रसुरों ने जो परम बल से उत्कट ध्वज गर्जना करते हुये फिर उस सागर का मन्थन किया था ॥३॥४॥ इसके उपरान्त मन्थन किए गये उस समुद्र से उर्ध्वःश्रवा शम्भु समुद्भूत हुआ था जो एक उन रत्नों में से था । इसके पश्चात् ऐरावत हाथी समुत्पन्न हुआ था ॥६॥ उसी प्रकार से चौकट से समन्वित गजराज जो पाण्डुर रङ्गों में चतुर्दन्त शीर मदान्वित था उदधि से समुत्पन्न हुआ था ॥७॥

तान्सर्वान्मिष्यतः कृत्वा पुनश्चैव ममन्थिरे ।

निर्मथ्यमानादुदधेर्निर्गतानि बहून्यथ । ।

मदिरा विजया भृङ्गी तथा लघुनृगजनाः ।

अतीव उन्मादकरा घत्तूरः पुष्करस्तथा । १६

स्थापितानंकपद्येनतीरेनदनदोषतेः ।

पुनश्चेतत्तत्रमहामुरेन्द्राममन्थुरन्विमुरसत्तमैः सह ॥१०॥

निर्मथ्यमानादुदधेस्तशसीरसा दिव्यलक्ष्मीभुवनैकनाथा ।

आन्ध्रीसिक्कीं ब्रह्माविदो वदन्ति तथा चान्ये मूलविद्या गृणन्ति

॥११॥

ब्रह्मविद्यां केचिदाहुः समर्थाः केचित्सिद्धि मृद्धि माजामयाशाम् ।

यां वैष्णवीयोगिनः केचिदाहुस्तथा च मायां मायिनो नित्य-

युक्ताः ॥१२॥

वदन्ति सर्वे केनसिद्धान्तयुक्तां यां योगमायां ज्ञानशक्त्यान्विता

ये ॥१३॥

ददशुस्तामहालक्ष्मीमायान्तोशनकस्तदा ।

गीरां च युवतीस्निग्धांपर्वाकिजल्कभूषणाम् । १२।

उन सबको मध्य में करके फिर उन्होंने मन्थन किया था । इस तरह से निर्मेद्यमान सागर से बहुत से रत्न निकले थे । मदिरा, विजया, भृङ्गी, सहस्रन, गृज्ज (गाजर) और अत्यन्त उन्माद के करने वाला घनूरा तथा पुष्कर सागर से निकले थे । ये सब एक ही साथ नन्दनदी पति प्रयात् सागर के तीर पर स्थापित किये गये थे । फिर पक्षी पर उन महान असुरेश्वरों ने देवगणों के साथ मिलकर उस सागर का मन्थन किया था । १०। उस समय में मन्थन किए गये सागर से वह दिव्य लक्ष्मी प्रकट हुई थी जो भुवनों की एकमात्र स्वामिनी हैं । ब्रह्म वेत्ता इस देवी को भान्विक्षिकी कहा करते हैं तथा अन्य लोग इसी देवी को मूलविद्या इस नाम से ग्रहण किया करते हैं । ११। कुछ लोग इस देवी को ब्रह्म विद्या कहते हैं और कुछ समर्थ लोग इसको श्रुद्धि एवं मिद्धि कहते हैं तथा प्रासा भी कहा करते हैं । योगी लोग जिसको वैष्णवी देवी कहते हैं और कुछ निर्य युक्त मायी लोग इसको "माया" — इस नाम से पुकारते हैं । केनोपनिषत् के द्वारा प्रतिपाद्य सिद्धांत (उमा शब्द वाच्य ब्रह्मविद्या) से युक्त जिस देवी को ज्ञान की शक्ति से समन्वित जो लोग हैं वे योगमाया कहते हैं । १२। १३। उस समय में प्राप्ती हुई उस महालक्ष्मी की जो गीर वणुं वाली, युवती, स्निग्धा और रश्मिजल्क के भूषणों वाली थी, धीरे से सबने देखा था प्रयात् सबने उस देवी के दर्शन हुए थे । १४।

आलोकितास्तथा देवास्तथा लक्ष्म्या त्रिप्राश्विताः ।

सङ्घातास्तत्क्षणदेव राज्यलक्षणलक्षिताः । १५।

दैत्यास्ते निःश्रिका जाना ये श्रियाऽनवलोकिताः । १६।

निरीक्ष्यमाणा च तदा मुकुन्दं तमालनीलं मुकुपोलनासम् ।

विभ्राजमानं वपुषा परेण श्रीवत्सलदमं सदयावलोकम् । १७।

दृष्ट्वा तदव सहसा वनमालयाश्रिता लक्ष्मीर्गजादवततार
सुविस्मयन्ती ।

कण्ठे ससर्जं पुरुषस्य परस्य विष्णोर्मालां श्रिया विरचितां
भ्रमररूपेताम् । १८।

वामाङ्गमश्रित्य तदा महात्मनः सोपाविशत्तत्र
समीक्ष्य ता उभौ ।

सुराः सदैत्या मुदमापुरदभुतां सिद्धाप्सरः
किन्नरचारणाश्च । १९।

उत सती महा लक्ष्मी देवी ने उन सब देवगणों—दानवी और सिद्धों—चारणों एवं पक्षियों को जिस तरह से माता अपने पुत्रों को देखा करती है उसी भाँति देखा था । लक्ष्मी देवी ने श्री से समन्वित देवी का अवलोकन किया था । उसी क्षण में वे सब देवगण राज्य लक्षणों से लक्षित हो गये थे । १५। ये सब दैत्यगण जो श्री के द्वारा अवलोकित नहीं हुए वे निःश्रीय भर्षात् श्री से हीन हो गये थे । १६। उस समय में भगवान् मुमुक्षु को जो तमास के समान नीलवर्ण वाले—सुन्दर वपोल और वासिका से युक्त, परमोत्तम वपु से विभ्रज मान, श्री वत्स के वक्षस्त्रय में चिह्न वाले तथा दया पूर्वक सबकी ओर अवलोकन करने वाले थे ऐसे भगवान् का निरीक्षण करती हुई महालक्ष्मी तुरन्त ही उसी समय में देवतार ही वनमाला से समन्वित होकर सुस्वरायी हुई गज से नीचे उतर गई थी और वनमाला परम देव पुरुष भगवान् विष्णु के कण्ठ में डाल दी थी जो कि श्री देवी ने द्वारा विरचित थी हुई और भगवत् के समूह में संयुक्त थी । उक्त समय में महान् चारमा वाले भगवान् व वामाङ्ग में समाधिग्रहीत होकर वह देवी उरविष्ट हो गई थी । यहाँ पर उन दोनों देवों तथा दैत्यों के दोनों ने उगकी देखा था । गुरु और अगुरु, सिद्ध, विप्लव, चारण और अप्सराओं के गण ने लक्ष्मी देवी के

रहित विष्णु का दर्शन करके परम ध्यानन्द की प्राप्त किया था अर्थात् सचको अत्यन्त ही प्रसन्नता हुई थी । १७।१८।१९।

सर्वेषामेवलोकानामैकपद्येन सर्वशः ।

हर्षो महानमभूत्तत्र लक्ष्मीनारायणागमे । २०।

लक्ष्म्यावृतो महाविष्णुर्लक्ष्मीस्तेनैव सम्भृता ।

एवं परस्परं प्रीत्याह्यवलोकनतत्परी । २१।

शलाञ्च पटहाञ्चैव मृदंगानकगोमुखाः ।

भेर्यञ्च भर्भरीणां च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् । २२।

बभूव गायकानां च गायनं सुमहत्तदा ।

ततानि वितताग्येव घनानि सुपिराणि च । २३।

एव वाद्यप्रभेदैश्चविष्णुं सर्वात्मना हरिम् ।

अतोपयन्सुगीतज्ञागन्धर्वाप्सरसांगणाः । २४।

तथा जगुर्नरिदत्तुम्बुरादयो गन्धर्वयक्षाः सुरसिद्धसंघाः ।

संसेवमानाः परमात्मरूपं नारायणं देवमगाधघोषम् । २५।

उस समय में लक्ष्मी नारायण के समागम के होने पर वहाँ पर समस्त लोकों को एक साथ महान् हर्ष हुआ था । महान् विष्णु लक्ष्मी देवी से आवृत थे और महा लक्ष्मी देवी उन विष्णु भगवान् से सम्भृत थीं । इस प्रकार से परस्पर में ये दोनों ही प्रीति पूर्वक एक दूसरे के सम्बलोजन करने में परायण हो रहे थे । २०।२१। उस समय में चारों ओर शला, पटहा, मृदङ्ग, आनक, गोमुख, भेरी, भर्भरी—इन सब प्रकार के वाद्यों की तुमल ध्वनि हुई थी । उस ध्यानन्द के पाल में गायक गणों के गायन का सुमहान् शब्द हो रहा था । तत-वितत-घन और सुपिर प्रभृति वाद्यों के प्रभेदों के द्वारा सचने इस रीति से सर्वात्म भाव से श्री हरि विष्णु का परम तोष किया था । सुन्दर गीतों के ज्ञाता गन्धर्व, अप्सराओं के गण, नाग, तुम्बर आदि, गन्धर्व, यक्ष, गुर, मिटों के समुदाय ने गान किया था और परमात्मा के स्वप्न वाले,

अगाध घोष से सुसम्पन्न देव नारायण की सवने परम सेवा की थी
॥२२-२५॥

११-अमृत विभाजन वर्णन

प्रणम्य परमात्मानं रमायुक्तं जनादेनम् ।
अमृताय ममन्युस्ते सुरासुरगणाः पुनः ।१।
उदयेमंध्यमानाश्च निगंतः सुहायशाः ।
धन्वन्तरिरिति ह्यातो युवामृतयुञ्जयः परः ।२।
पाणिभ्यां पूरणंकलशमुघायाः परिगृह्य वै ।
यावत्सर्वे सुराः सर्वे निरीक्षन्तेमनोहरम् ।३।
तदा दैत्याः सम गत्वा हतुंकामा बलादिव ।
सुधया पूरणंकलशं धन्वन्तरिकरे स्थितम् ।४।
यावत्तारङ्गमालाभिरावृतोऽभुद्भिपक्तमः ।
दानं दानैः समायातो दृष्टोऽसौ वृषपर्वण ।५।
गरस्यः कलशस्तस्य हृतस्तेन बलादिव ।
अनुराश्च ततः सर्वे जगज्जुरतिभीषणम् ।६।
कनका सुधया पूर्णं गृहीत्यातेसमुत्सुकाः ।
दैत्याः पातालाजग्मुस्तदा देवाभ्रमाश्रिताः ।७।
अनुजग्मुः सुसंनद्धायद्घुक्कामाश्च तैः सह ।
तदा देवास्तमातोवय बलिदेवमभापत ।८।

मक्षि प्रवर सोमश ने कहा—रमादेवी से सम्बन्धित परमात्मा
अगशान् जनादेन की प्रणाम करके फिर उन गुरु और असुरों के गण
ने अमृत की प्राप्ति करने के लिए समुद्र का मग्न्य करना प्रारम्भ कर
दिया था ।१। उक्त मग्न्यमात्र उन्धि से गुम्बर मटार यदा से सम्पन्न, पुनः
मृत्यु पर विषय प्राप्त करने बाने, परम "धन्वन्तरि"—इस नाम से
विष्णु निम्न हुए थे ।२। उनके दोनों हाथों में गुण से परिपूर्ण कपल
परिदृष्ट हो रहा था । उनको सभी गुणगुण बड़ा ही गुम्बर के साथ

तावद्देत्याः सुसंरब्धाः परस्परमथाब्रुवन् ।

विवादः सर्वदेत्यानाममृतार्थे तदाऽभवत् ॥१५॥

दैत्यराज बलि ने कहा—हे देवगणों ! हम तो केवल सुधा से ही परितोषित हो गये हैं । हे सुरोत्तमों ! आप लोगों को अब यहाँ से बहुत शीघ्र ही चले जाना चाहिए । आप लोग आनन्द से युक्त होकर अपने स्वर्गलोक में चले जाओ । अब हम लोगों से आपका क्या प्रयोजन है ? पहिले ही स्वार्य में पराधण होकर आप सबने हमारे साथ मीनी का व्यवहार किया था । अब हमको वह सब शात हो गया है । इसलिए अब इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥१॥१०॥ इस प्रकार से बलि के द्वारा सब देवगण बहुत फटकारे गये थे । फिर वे सब यथागत मार्ग के द्वारा परम प्रभु नारायण के समीप में चले गये थे । भगवान् विष्णु ने उन ममस्त सुरों को भग्न मनोरथों वाले देखकर अनेक अनुनय से परिपूर्ण ध्वनी के द्वारा भगवान् ने उन सबको समा-भसन दिया था ॥१॥१२॥ हे देवगणों ! इस विषय में आप लोग अपने मनमें किसी भी प्रकार का पात मत करो । मैं उन सुधा के कलश को ले आऊँगा । इस तरह ले मनाथों को समाश्रय प्रदान करने वाले भगवान् मुकुन्द ने उन सब देवनामों से कहा था । भगवान् मधुसूदन ने वही पर समस्त सुरों को स्थापित करके अपना एक मोहिनी का रूप धारण किया और उन दैत्यों के सामने जाकर स्थित हो गये थे । तब तक वे सब दैत्यगण सुसंरब्ध होकर परस्पर में बातचीत कर रहे थे । उस समय में सब दैत्यों का उस अमृत के लिए बड़ा भारी विवाद हो गया था ॥१३॥१४॥१५॥

एव प्रवर्तमानेतु मोहिनीरूपमाश्रिताम् ।

दृष्ट्वा योषां तदा दैवात्सर्वभूतमनोरमाम् ॥१६॥

विस्मयेन समाविष्टा बभूवुस्तृपितेक्षणाः ।

तां सामान्य तदा दैत्यराजा बलिस्त्वाच ह ॥१७॥

हुआ करती हैं । आप उन कही हुई नारियों के मध्य में रहने वाली हो
 शोभने ! नहीं हैं । १२५। आपके ऐसे अत्यधिक कथन से क्या लाभ है ?
 आप तो मेरे निवेदित वचन को ही करिये । वह मोहिनी दैत्य राज
 बलि के वाक्य के अनन्तर यह वचन बोली—हे प्रभो ! आपके सूक्ता-
 सूक्त वाक्य का मैं अवश्य ही पालन करूँगी । १२६। १२७। बलि ने कहा—
 आज आप इस अमृत को यथातथ अर्थात् ठीक-ठीक रूप से सबको
 विभाजित कर दीजिएगा । आपके द्वारा दिये हुए इस अमृत को हम
 सब लोग ग्रहण कर लेंगे । यह बात हम बिल्कुल आपसे सत्य-सत्य कह
 रहे हैं । इस प्रकार से उस समय में बही हुई सर्ग मङ्गला मोहिनी देवी
 समस्त असुरों से लौकिक स्थिति को रोषित करती हुई बोली ।
 १२८। १२९।

यूयं सर्वेकृतार्थाश्च जाताद्वेनकेनचित् ।
 अद्योपवाससंयुक्ता अमृतस्याधिवासनम् । ३०।
 क्रियतामसुराः श्रेष्ठाः शुभेच्छाकिञ्चिदस्तिवः ।
 इवोभूते पारणकुर्वाद्भ्रताचनरतिश्च वः । ३१।
 न्यायोपाजितवित्तेन दशमांशेन धीमता ।
 कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थंहेतवे । ३२।
 तथेति मत्वा ते सर्वे यथोक्तदेवमायया ।
 चक्रुस्तथैव दंतेया मोहिता नातिकोविदाः । ३३।
 मयासुरेण च तदा भवनानि कृतानिवे ।
 मनोज्ञानि महार्हाणि सुप्रभाणि महान्तिव । ३४।
 तेषूपविष्टास्ते सर्वे सुस्नाताः समलङ्कृताः ।
 स्थापयित्वा सुसंरब्धाः पूर्णं कलशमग्रतः । ३५।
 रात्री जागरणं सर्वं कृतं परमया मुदा ।
 अथोपसि प्रवृत्ते च प्रातः स्नानयुता भवन् । ३६।

असुरा बलिमुक्ष्याञ्च पङ्क्तिभूता यथाक्रमम् ।

सर्वमावश्यककृत्वा तदा पानरता भवन् । ३७।

मोहिनी के स्वरूप को पारण करने वाले श्री भगवान ने कहा—
 आप सब लोग किसी देव के द्वारा परम सफल हो गये हैं । हे शत्रु
 असुर गणों ! यदि आपकी कुछ शुभेच्छा है तो आज आप लोग सब
 उपवास से संयुक्त होमो अर्थात् उपवास करो और इस प्राप्त हुए
 अमृत का अधिकारन करो । कल प्रातःकाल होने पर इस उपवास का
 पारण करना चाहिए । आप लोगों की अतार्चन की रति समुत्पन्न
 होगी । धीमान् पुरुष के द्वारा ईश की प्रीति के लिए भ्याय से समुपाजित
 वित्त के दशम अंश से विनियोग करना चाहिये । ३०। ३१। ३२। उन सब
 ने 'ऐसा ही किया जायेगा'—इस तरह से जो कुछ भी देव माया ने
 कहा था उसको मान लिया था । उन देवों ने मोहित होने हुए वैसा
 ही सब कुछ किया था क्योंकि वे अरयन्त कोविद तो थे नहीं । ३३। उस
 समय में मयामुर के द्वारा गरम सुन्दर-मुन्दर प्रभा से समन्वित, विशाल
 एवं बहुमूल्य भवनो की रचना की गई थी । उन भवनो में वे सब भली-
 भाँति स्नानादि करके समबद्धकृत होते हुए उपविष्ट हो गये थे । सुप्त-
 रव्य उन्होंने सुधा से परिपूर्ण कलश की आगे स्थापित करके रात्रि में
 सबने बहुत ही अधिक प्रसन्नता के साथ जागरण किया था । इसके अन-
 स्तर प्रातःकाल के प्रवृत्त होने पर सब लोगों ने स्नानादि किया था ।
 जिनमें बलि प्रधान था उन सब असुरों ने अपनी पङ्क्ति यथाक्रम से बना
 ली थी । सभी कुछ आवश्यक कर्म करके वे सब अमृत के पान करने के
 लिए निरव्य हो गये थे । ३४--३७।

करस्थेन तदा देवी कलशेन विराजिता ।

शुशुभे परया कान्त्या जगन्मङ्गलमङ्गला । ३८।

परिवेषधरा सर्वे सुरास्तेह्यसुरान्तिकम् ।

आगतास्तत्क्षणादेव यत्र ते ह्यसुरोत्तमाः ।

तान्दृष्ट्वा मोहिनी सद्य उवाच प्रमदोत्तमा । ३९।

एते ह्यतिथयो ज्ञेया धर्मसर्वस्वसाधनाः ।
 एभ्योदेयं यथाशक्त्या यदि सत्यवचोमम ।
 प्रमाणं भवतां चाद्य कुरुष्व मा विलम्बय ॥४०॥
 परेषामुपकारं च ये कुर्वन्तिस्वशक्तितः ।
 धन्यास्ते चैव विज्ञेयाः पवित्रालोकपालकाः ॥४१॥
 केवलात्मोदरार्थाय उद्योगंये प्रकुर्वन्ते ।
 ते क्लेशभागिनो ज्ञेया नात्रकार्या विचारणा ॥४२॥

उस समय में वह मोहिनी देवी अपने कर में स्थित धर्म के कलश में घोभाषमान हो रही थी । वह जगन्मङ्गलों के भी परम मङ्गल स्वरूपिणी अपनी परमाधिक काम्ति से सुशोभित हो रही थी । परिवेष को धारण करने वाले वे समस्त देवगण भी उन असुरों के ही समीप में उसी क्षण में समागत हो गये थे जहाँ पर वे असुर श्रेष्ठ विराजमान हो रहे थे । उनको देखकर वह प्रमदायी में परमोत्तमा मोहिनी तुरन्त ही बोली थी ॥३८॥३९॥ मोहिनी ने कहा—ये सब कभी धर्म सर्वस्व के साधक करने वाले प्रतिगिण हैं । इनके लिए भी यथाशक्ति कुछ अवश्य ही देना चाहिये । यदि मैं यह वचन सर्वथा सत्य कह रही हूँ तो अब आज आप लोग ही सब कुछ करने के लिए समर्थ हैं जो भी कुछ आप चाहें वैसे ही करिये । अब इसमें विन्मम मत करिये ॥४०॥ जो लोग अपनी शक्ति से दूसरों का उपकार किया करते हैं वे ही इस विश्व में परम धन्य हैं । ऐसे ही लोगों को परम पवित्र और लोकों के पालन करने वाले ममभूता चाहिये ॥४१॥ जो केवल अपने ही उदर के भरने के लिए उद्योग किया करते हैं, वे इस जगत् में बनेधों के भोगने वाले ही हुमा करते हैं ऐसा ही जानना चाहिये । इस विषय में विलग्न विचार नहीं करना चाहिये ॥४२॥

तस्माद्विमजन्तं धार्यं मयेतस्यनुभयताः ।

देवेभ्यश्च प्रयच्छस्व यदि धातमाप्रियाप्रियम् ॥४३॥

इत्येवमेव वचने देव्यात्तथाचक्र रतन्द्रिताः ।
 आह्वायामासुरसुराः सर्वान्देवान्सवासवान् । ४४।
 उपविष्टाश्च ते सर्वे अमृतार्थं वभाद्विजाः ।
 तेऽप्यविश्यमानेषु ह्युवाच परमं वचः ।
 माहिनी सर्वं धर्मज्ञा अमुराणां समयन्निव । ४५।
 आदौ ह्यभ्यागताः पूज्या इति व वंदिकी श्रुतिः । ४६।
 तस्माद्यस्य वैदपराः सर्वे देवपरायणाः ।
 न वन्तु त्यरितेनैव आदौ केषां ददाम्यहम् ।
 अमृतं हि महाभागा वलिमुक्या वदन्तु भाः । ४७।
 वलिनोक्तास्तदादेवा यत्ते मनसिरोचते ।
 स्वामिनो त्वं न सन्देहो ह्यस्माकमुन्मत्ताने । ४८।
 एवं संमानिता तेन वलिना भावितात्मना ।
 परिवेषणकायार्थं कलशं गृह्य सत्वरं । ४९।

हे सुभद्रत आजी ! मुझे तो इन अमृत का विभाजन सभी के लिए कर देना चाहिये । ओ भी पचना प्रिय तथा अप्रिय भी हो उसको देवों के लिए भी दो । इन वचन के कड़ने पर जोरि देवी मोहिनी ने कहा था, उन अमृतों ने अनन्त्रित होकर बना ही रहीकार कर लिया था और फिर असुरों ने उन सब सुरगणों को भी जिनमें इन्द्रदेव भी विद्यमान थे वही पर चुना लिया था । ४३। ४४। हे द्विजपण ! उस अमृत के पान करने के लिए ये सभी वक्षों पर उपविष्ट हो गये थे । उन सबके यहीं पर बैठ जाने पर सब प्रकार के धर्म के जानने वाली मोहिनी असुरों की ओर मुस्कराते हुए यह परम वचन कहा था— । ४५। मोहिनी ने कहा—वंदिकी श्रुति का यही आदेश है कि सबके आदि में अभ्यागत गणों का पूजन करना चाहिये । ४६। इसलिए आप सभी लोग वेदों को मानने में परायण हैं और आप सब देव परायण भी हैं । मगर अब आप सब लोग मुझे प्रति जीघ्रता से बतसाइये कि सबसे प्रथम मैं किन को इस अमृत को दूँ । हे महाभाग

वालो ! दैत्यराज बलि जिनमें परम प्रधान हैं वे सभी मुझे अब बत-
लाइये । ४६। उस समय में इस प्रकार से कहने पर दैत्यराज बलि ने
मोहिनी से कहा था—हे सुन्दरानने ! जो भी आपको अपने मन में
अच्छा लगे वैसा ही करिये । आप तो हम सबकी स्वामिनी हैं । इसमें
किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं । इस तरह से भाषितात्मा बलि के द्वारा
सम्मानित हुई उस मोहिनी देवी ने परिवेषण करने के लिए शीघ्र ही
उस सुधा के कलश को ग्रहण कर लिया था । ४७। ४८। ४९।

तस्माद्भरेन्द्रकंरभोरुलसद्दुकूला

श्रोणीतटालसगतिर्मवविह्वलाङ्गी ।

सा कूजती कनकनूपुरसिञ्जितेन

कुम्भस्तनी कलसवाणिरयाविवेश । ५०।

तदा तु देवी परिवेषयन्ती स मोहिनी देवगणाय साक्षात् ।

ववर्ष देवेषु सुधारसं पुनः पुनः सुधाहाररसामृतं यथा । ५१।

पुनश्च ते देवगणाः सुधारसं दत्तं तथा परया विश्वसूर्या ।

देवेन्द्रमुखाः सह लोरुपाला गन्धर्वय क्षाप्सरसां गणाश्च । ५२।

सर्वे दैत्या आसनस्थास्तदानी

चिन्तान्विताः क्षुधया पीडिताश्च ।

तूष्णीभूता बलिपृथ्वा द्विजेन्द्रा

मनस्विनो ध्यानपरा बभूवुः । ५३।

ततस्तथाविधान्दृष्ट्वा दैत्यास्ताग्मोहमाश्रितान् ।

तदाराहुश्चकेतुश्चद्वावेतो दैत्यपुङ्गवो । ५४।

देवानां रूपमास्याय अमृतार्थत्वरान्वितो ।

उपविष्टो तदा पद्भ्यां देवानाममृतार्थिनो । ५५।

यदाऽमृतं पातुकामो राहुः परमदुर्जयः ।

चन्द्रार्कभ्यां प्रकाशितो विष्णोरमिततेजसः । ५६।

तदा तस्य शिरच्छिन्नं राहोर्दुर्विग्रहस्य च ।

शिरो गगनभाषेदे कवन्धं च महीतले ।

भ्रममाणं तदा ह्यद्रोश्चूणयामास वै तदा ॥५७॥

श्रेष्ठ पुरुष के करम के सहस्र ळवर्षों पर शोभित जुहुन (वस्त्र) वाली धोली वट से अनन्य मति से युक्त, मद से विह्वलित यज्ञों वाली, मुक्ता के नूपुरों की ध्वनि से कृपण करती हुई, कुम्भ के तुल्य स्तनों से समन्वित कवच हाथों में ग्रहण किये हुई उस मोहिनी इसके अनन्तर वहाँ पर प्रवेश किया था ॥५७॥ उस समय में देवगण के लिये साक्षात् परिषेपण करती हुई उस मोहिनी देवी ने जिस प्रकार से मृषा के आहार का रसानृत हो उस तरह से बारम्बार उन देवगणों में सुवा रस की खूब वृष्टि का थी ॥५८॥ परा विभ्र मृति उनके द्वारा दिए उस मृषा के रस का उन सब देवगणों, देवेन्द्र मुखों, नीकवाचों और गन्धर्व, पक्ष तथा असुरगणों के समुदाय ने बारम्बार खूब पान किया था ॥५९॥ उस समय में सब दैत्यगण आने आमतों पर स्थित हुये परपाबित्तित हुये थे और लुप्ता से पीड़ित हो रहे थे । हे द्विजेन्द्रो ! बलि दैत्य जिनमें प्रधान था वे सब दैत्यगण ज्ञान में परायण होते हुए मनस्वी चुप ही रह गये थे । इसके अनन्तर मोह ने समाधिा हुए उस प्रकार से स्थित उन समस्त दैत्यों को देखकर उसी समय में राहु और केतु ये दोनों दैत्यगण देवों का स्वरूप धारण करके बहुत ही शीघ्रता से अमृतपान करने के लिए अमृतार्थी ये दोनों देश के वीरों में धाकर बैठ गये थे । जिस समय में अमृत पान करने की कामना बावश परम दुर्गंग राहु प्रस्तुत हो रहा था उसी समय चन्द्र और सूर्य, इन दोनों देवों ने मरिचि मित्र तेज वाले ममयान विष्णु ने इनको अज्ञा दिया था । उस समय में उस दुर्विग्रह राहु का शिर क्षिप्त हो गया था और वह शिर गगन में गह्वर गया था तथा उसका घड़ महानन पर गिर गया था । उस घड़ ने भ्रमण किये हुए उस समय में पक्षियों को जूलित कर दिया था ।

साद्रिश्च सर्वभूलोकश्चूर्णितश्च तदाऽभवत् ।
 तथा तेन च देहेन चूर्णितं सचराचरम् ।५८।
 दृष्ट्वा तदा महादेवस्तस्योपरितुसंस्थितः ।
 निवासः सर्वदेवानां तस्याः पादतलेऽभवत् ।५९।
 पीडनं तत्समोपेक्ष्य निवास इति नाम वै ।६०।
 महतामालयेयस्माद्यस्यास्तद्वरणाम्बुजम् ।
 महालयेति विख्याता जगत्त्रयविमोहिनी ।६१।
 वेतुश्च धूमरूपोऽसावाकाशे विलयं गतः ।
 सुधा समर्प्य चन्द्राय तिरोधानगतोऽभवत् ।६२।
 वासुदेवोजगद्योनिर्जंगताकारणं परम् ।
 विष्णोः प्रसादात्ताज्जातं सुराणां कार्यं सिद्धिदम् ।६३।
 क्षमुराणां विनाशाय जातं दैवविषयं यात् ।
 विना दैवेन जानीष्वमुद्यमो हि निरर्थकः ।६४।
 य गण्डोनः तैः सर्वैः क्षीराब्धेर्मयनंकृतम् ।
 सिद्धिर्जाता हि देवनामसिद्धिरसुराङ्गप्रति ।६५।
 ततश्च ते देववराङ्गप्रकोपिता दंस्याश्च
 मायाप्रविमोहिताः पुनः ।
 अनेकशस्त्रास्त्रयुतास्तदाऽभवन्विष्णो
 गते गर्जमानास्तदानीम् ।६६।

पर्वतों के सहित सम्पूर्ण यह भूभोक उस समय में चूर्णित हो गया था और उससे तथा उसके देह से जड़-चेतन सभी कुछ चूर्णित हो गया । उस काल में महादेव जो ने देखा कि सर्व देवों का निवास उसके ऊपर जो संस्थित था वह उसके पाद तल में हो गया था और उसके समीप में पीडन हो रहा था । इसके 'निवास' यह नाम हो गया था । ।५८।५९।६०। क्योंकि उसका चरणाम्बुज महान् पुष्पों का घालय था इसलिए 'महानया'—इस नाम से वह जगत् त्रय को विमोहन करने

शाली विरूपाक्ष हो गई थी । यह केतु जो घूम रूप वाला था वह आकाश में विलय को प्राप्त हो गया था । उस संध्या को चन्द्र के निचे समर्पित करके वह निरोधानवत हो गया था । भगवान् वामदेव इस सम्पूर्ण जगत् को योनि थे और जगतो के परम कारण थे । भगवान् विष्णु के प्रसाद से वह सूरों के कार्यों की सिद्धि का प्रदान करने वाला हो गया था । ६१-६४। देव के विपर्यय होने ही से वह असुरों के विनाश करने के लिये हुआ था । यह जान सेना चाहिये कि बिना देव के समस्त उद्यम निरर्थक ही हुआ करता है । उन सबने एक ही साथ मिलकर उस क्षीर सागर का मन्थन किया था किन्तु उस मन्थन करने की सिद्धि देवगणों को ही हुई थी और असुरों को केवल परिश्रम ही मिला था और सबका असिद्धि उनको प्राप्त हुई थी । इसके अनन्तर माया से प्रकट रूप से विमोहित हुए थे सब दैत्यगण देवों के प्रति अत्यधिक आक्रुषित हुये थे । उस समय में एक शस्त्र और घट्यों से संयुक्त होकर ये सब भगवान् विष्णु के चले जाने के पश्चात् उसी समय में बहुत अधिक गर्जना करने लगे थे । ६५। ६६।

१२—शिव लिङ्ग माहात्म्य वर्णन

हृत्वा तं तारकं संख्ये कुमारेण महात्मना ।
किं कृतं सुमहद्विप्र तत्सर्वं ब्रह्ममहंसि । १।
कुमारो ह्यपरः शम्भुर्येन सर्वमिदं ततम् ।
तपसा तोषितः शम्भुर्ददाति परमं पदम् । २।
कुमारो दर्शनात्सद्यः सफलो हिनृणांसदा ।
येवापिनोऽप्यधम्मिष्टाः स्वपचाज्जपितोमशः ।
दर्शनादधूतपापास्ते भवन्त्येव न संशयः । ३।
दीनस्त्य वचः श्रुत्वा उवाच चरितं तदा ।
व्यासशिष्यो महाप्राज्ञः कुमारस्त्वमहात्मनः । ४।

हत्वा तं तारकं सरये देवानामजयं ततः ।

अवध्यं च द्विजश्रेष्ठाः कुमारोजयमाप्तवान् ।५।

महिमा हि कुमारस्य सर्वंशास्त्रेषु कथ्यते ।

वेदश्च स्वागमेश्चापि पुराणैश्च तथैव च ।६।

तथोपनिषदश्चैव भीमांसाद्वितयेन तु ।

एव सूतः कुमारोयमशक्यो वर्णितुं द्विजाः ।७।

शौनक जी कहा—हे विप्रवर ! महात्मा कुमार द्वारा रण स्थल में उस तारक का हनन करके फिर सुमहान क्या कर्म किया था वह सभी पुरुष प्राण वर्णन करने के योग्य है ।१। भगवान कुमार तो दूसरे शम्भु ही हैं जिन्होंने यह सभी कुछ विस्तृत किया है । उपश्रवण के द्वारा तोपित हुए भगवान शम्भु परम पद प्रदान किया करते हैं ।२। भगवान कुमार मदा ही मनुष्यों के लिए दर्शन से ही तुरन्त फल दाता हो जाया करते हैं । हे लोगश ! जो महापापी हैं, अपायमिष्ठ है और अवपथ हैं वे भी सब दर्शन से ही निष्पाप हो जाया करते हैं—इसमें लेखा मात्र भी न शय की कोई बात नहीं है ।३। शौनक ने इस वचन का श्रवण करके उसी समय में महान पण्डित श्री व्यास देश के शिष्य ने महारमा कुमार का चरित कहा था । लोगश महर्षि ने कहा—हे द्विजो मैं परम श्रेष्ठो ! युद्ध स्थल में देवों के द्वारा अजय उस तारका सूर का हनन करके जोकि वध करने के योग्य ही नहीं था, कुमार ने विजय प्राप्त करने का वध प्राप्त किया था । भगवान कुमार की महिमा समस्त शास्त्रों में कही जाती है । वेदों के, आगमों के, पुराणों के, उपनिषदों और दोनों प्रकार के भीमांसादों के द्वारा भी कुमार की महिमा का गान किया जाता है । हे द्विजगण ! इस प्रकार का यह कुमार है जिसका वर्णन नहीं किग जा सकता है ।४ ७।

यो हि दर्शनमात्रेण पुनाति मकलजगत् ।

त्रातार भुवनस्यास्यनिशम्यपितृराट्स्वयम् ।८।

ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य विष्णुं चैव सवासवम् ।
 स ययो त्वरितेनैवशंकरं लोकशंकरम् ।
 तुष्टाव प्रयतो भूत्वा दक्षिणाशापतिः स्वयम् । १९
 नमो भर्गाय देवाय देवानां पतये नमः ।
 मृत्युञ्जयाय रुद्राय ईशानाय कपर्दिने । २०
 नीलकण्ठाय शर्वाय व्योमावयवरूपिणे ।
 कालाय कालनाथाय कालरूपाय नमः । २१
 यमेन स्तूयमानो हि उवाच प्रमुरीश्वरः ।
 किमर्थं भागतोऽसि त्वं तत्सर्वंकथयस्व नः । २२
 श्रूयता देवदेवेश वाक्यं वाक्यविशारद ।
 तपसा परमेष्णैव तुष्टिं प्राप्नोऽसि शङ्कर । २३
 कर्मणा परमेष्णैव ब्रह्मा लोकपितामहः ।
 तुष्टिमेति न संदेहो जराणां हि सदा प्रभुः । २४

जो दर्शन मात्र से सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर दिया करता है और इस भुवन का परिपालन करने वाला है—ऐसा पितृराट् यम ने स्वयं श्रवण किया था । वह ब्रह्माजी को श्रीर इन्द्र के सहित भगवान् विष्णु की भजने भावे करके बहुत ही शीघ्रता के साथ लोकों का कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर के समीप में गया था । दक्षिण दिशा के स्वामी यमराज ने स्वयं प्रपत होकर स्तवन किया था । देवों के पति भर्ग देव के लिये बारम्बार नमस्कार है । भगवान् मृत्युञ्जय, रुद्र, ईशान, कपर्दी, नीलकण्ठ, शर्व, व्योमावयव रूपी, काल, काल नाथ और काल रूप के लिये हम सबका नमस्कार है । इस प्रकार से यम के द्वारा स्तवन किये गये प्रभु ईश्वर ने कहा—तुम यहाँ किन प्रयोजन से भाये हो—यह सब हमको बतलाओ । यमराज ने कहा—हे देवों के भी देवेश ! आप तो वाक्य कहने में महान् विशारद हैं । मेरा वाक्य श्रवण कीजिए । हे शङ्कर ! आप परमार्थिक तप से तुष्टि को प्राप्त हो गये हैं ।

नोनों के पितामह ब्रह्मा जी परम कर्म में ही नृष्टि को प्राप्त हो जाते हैं । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि वरों के प्रदान करने में सदा प्रभु है ॥८-१४॥

तथा बिष्णुर्हि भगवान्वेदवेद्यः सनातनः ।
 यज्ञैरनेकैः सन्तुष्ट उपवासव्रतैस्त्रया ॥१॥
 ददाति केवलं भावं येन कैवल्यमाप्नुयुः ।
 नराः सर्वे मम मतं नान्यथा हि वचो मम ॥१६॥
 ददाति तुष्टो वैभोगंतयास्वर्गादिसंपदः ।
 सूर्यो नमस्ययाऽऽरोयददातो ह न चान्यथ्यथा ॥१७॥
 गणेशो हि महादेव अर्घ्यपाद्यादिवन्दनैः ।
 मन्त्रावृत्त्या तथा शंभो निर्विघ्नं च करिष्यति ॥१८॥
 तथान्ये लोकाः सर्वे यथाशक्त्या फलप्रदाः ।
 यज्ञाध्ययनदानार्थैः परितुष्टाश्च शङ्कर ॥१९॥
 महाद्वार्यसंभूतं सर्वेषां प्राणिनामिह ।
 कृतं च तव पुत्रेण स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥२०॥
 दर्शनाच्च कुमारस्य सर्वे स्वर्गाकसो नराः ।
 पापिनोऽपि महादेवजातानास्त्यत्र संशयः ॥२१॥

उसी प्रकार से वेदों के द्वारा जानने के योग्य, सनातन भगवान् बिष्णु अनेक प्रकार के यज्ञों के द्वारा तथा उपवास और व्रतों के द्वारा सन्तुष्ट हो जाते हैं । वह केवल भाव को प्रदान किया करते हैं जिसके द्वारा सब मनुष्य कैवल्य को प्राप्त कर लेते हैं—ऐसा मेरा मत है । मेरा वचन अन्यथा नहीं है । वह नृष्ट होकर भोग तथा स्वर्गादि को सम्पदा प्रदान किया करते हैं । सूर्य देव नमस्कारों से ही आरोग्य का प्रदान करते हैं जैसा कि अन्य कोई नहीं करता है । हे महादेव ! हे शंभो ! गणेश देवता अर्घ्य-पाद्य आदि चन्दन जैसे अर्घ्य नौप चारों के द्वारा तथा मन्त्र की आवृत्ति के द्वारा कर्षों में निर्विघ्नता कर दिया करते हैं इसी

भक्ति पन्थ जोरवान भी मत्र गया शक्ति फलों के प्रदान करने वाले हैं ।
हे शङ्कर ! यज्ञ-प्रथवा-दान आदि के द्वारा मत्र परितुष्ट हो जाया करते
हैं । यही वर सपत्न प्राणियों के लिए यह महात् आश्चर्य सम्भूत है
कि प्रारो पुत्र ने स्वर्ग के द्वार की अपावृत्त कर दिया है । केवल कुमार
के दर्शन कर लेन भर ने ही सब मनुष्य स्वर्ग में निवास करने वाले हो
जाया करते हैं । हे महादेव ! जो महा पापी लोग होते हैं वे भी सीधे
कुमार के दर्शन करने की मद्रिमा से स्वर्गवासी हो जाने हैं—इसमें
विजितमान भी तस्य नहीं है ॥१५-२१॥

मया कृतिप्रसादेयकार्याकार्यं वयस्त्वितो ।
ये मत्प्रशोसाः साताश्रयदान्यानि रवप्रहा । १२१
जितेन्द्रिया अनुस्थाश्च वामरागविषजिताः ।
याज्ञिना धर्मान्नाश्रयेद्व्यदागवारगाः ॥ १२३ ॥
या गतिं याति ये नभा तथै गुरुतिनापि हि ।
सांगीदशनारागवैश्यामयमाश्रयि ॥ १२४ ॥
कुमारस्य च देवेश महदाश्रयं कर्मणः ।
कातिनाया कृतिनामोगमहिनाया शिवस्य च ॥ १२५ ॥
शिरस्य तनय दृष्ट्वा ते याति स्वगुलं गुरु ।
काटिभिर्वह्निभिश्च समस्त्यागपरिमुच्यते ॥ १२६ ॥
कुमारदशनारम्भे श्राया अगि याति ये ।
गदगतिं स्वस्तिनेनैव हि विवेकमयाऽनुना ॥ १२७ ॥
ममस्य वषा श्रुता दानुः श्राया मयवा ॥ १२८ ॥

प्राप्त किया करते हैं उसी उत्तम गति को सभी अपच और अधम पुरुष भी केवल कुमार के दर्शन मात्र के करने से प्राप्त कर लिया करते हैं । १२२।२३।२४॥ यमराज ने भगवान् शङ्कर से पूछा था—हे देवेश ! कृति का के योग से समुत्त कर्त्तिकी में महान् आश्चर्य से युक्त वर्म धाले कुमार का और शिव का तथा शिव के पुत्र का दर्शन प्राप्त करके वे अपने बहुत से करोड़ों कुम्भों के साथ मेरे स्थान का परित्याग करके कुमार के दर्शन के प्रभाव से सब अपच भी सुरन्त ही सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं । अब मुझे क्या करना चाहिए अर्थात् अब तो मेरे लिये कुछ भी कार्य करना शेष ही नहीं रह गया है । यमराज ने इस वचन का श्रवण करके भगवान् शङ्कर ने यह वाक्य कहा था । १२५।२६। १२७।२८।

येषां त्वंगस्तं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
 विशुद्धभावो भो धर्मं तेषां मनसि वर्तते । २९।
 सत्तीर्थगमनायैव दर्शनार्थं सतामिह ।
 वाञ्छाच्चमहती तेषां जायते पूर्वकारिता । ३०।
 बहूनां जन्मनामन्तै मयि भावोऽनुवर्तते ।
 प्राणिनां सर्वभावेन जन्माभ्यासेनभो यम । ३१।
 तस्मात्सुकृतिनः सर्वे येषां भावोऽनुवर्तते ।
 जन्मजन्मानुवृत्तानां विस्मयनैवकारयेत् । ३२।
 स्त्रीबालशूद्राः श्वपचाधमाश्च प्राग्जन्मसंस्कारवशाद्धि धर्मम् ।।
 योनिं गताः पापिषु वर्त्तमानास्तथाऽपि शुद्धा
 मनुजा भवन्ति । ३३।
 तथा सितेन मनसा च भवन्ति सर्वे सर्वेषु चैव विषयेषु
 भवन्ति तज्ज्ञाः ।
 दैवेन पूर्वचरितेन भवन्ति सर्वे सुराश्चन्द्रादयो
 लोकपालाः प्राक्तनेन । ३४।

जाता ह्यमी भूतगणाश्च सर्वे ह्यमी अष्टपयो देवताश्च । ३५।

भगवान् वाङ्मुर ने कहा—जिन परम पुण्य कर्मा करने वाले मनुष्यों के भगवत्पाप होता है हे धर्म । उनके कर्म में परम विशुद्ध भाव घाला धर्म रहा करता है । यहाँ अच्छे तीर्थों के गमन के लिये और सरपुरुषों के दर्शन प्राप्त करने के वास्ते उनको पूर्व कारिता याञ्छा समुपपन्न हुआ करता है । बहुत-से जन्मों के अन्त में मुझ में उनका भाव अनुवर्तित हुआ करता है । हे यमराज ! ऐसा प्राणियों के सर्वतोभाव से जन्मों के अम्यास से ही हुआ करता है । इसलिये जिनका भाव अनुवर्तित होता है वे सभी सुवृत्ती होते हैं क्योंकि वे सब जन्म-जन्मा-नुवृत्ता ही हुआ करते हैं अर्थात् बहुत से जन्मों के अनुवर्तन से ही ऐसा हुआ करता है । इसलिए इससे विस्मय कभी नहीं करना चाहिए । हे धर्मराज ! स्त्री, बालक, दूढ़, अपघ्न और अघम लोग भी पहिले जन्मों के संस्कार के कारण ही पापियों की वर्त्तमान योनियों में प्राप्त हुए हैं तो भी वे मनुष्य छुट होते हैं । २६-३३। उसी भाँति वे अपने विशुद्ध मनसे सब सभी विषयों में उनके पूर्ण ज्ञाता हो जाया करते हैं । पूर्व चरित दैव से और प्राप्तन कर्म से वे सब सुर, इन्द्रादि और लोक पास हो जाया करते हैं । ये समस्त भूत गण, अष्टि गण और देव गण समुत्पन्न हुए हैं ॥३४॥३५॥

विस्मयो नैव कर्त्तव्यस्त्वया वापि कुमारके ।

कुमारदर्शने चैव धर्मराज निबोध मे । ३६।

वचन कर्मसमुक्तं सर्वेषां फलदायकम् ।

सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च दानानि विविधानि च ।

पार्थाणि मनः शुद्धयर्थं नात्र वार्या विचारणा । ३७।

मनसामावितो ह्यात्मा आत्मनात्मानमेव च ।

आत्माग्रहच सर्वेषां प्राणिना हि व्यवस्थितः । ३८।

अहं सदा भावयुक्त आत्मसंस्थो निरन्तरः ।

जङ्गमाजंगमाना च सत्य प्रति वदामिते । ३६ ।

द्वन्द्वातोतो निर्विकल्पो हि साक्षात्स्वस्थो नित्यो

नित्ययुक्तो निरोहः ।

कूटस्थो वै कल्पभेदप्रवादबहिष्कृति बोधबोध्यो

ह्यनन्तः । ३७ ।

विस्मृत्यचैनस्वात्मानकेवलबोधसक्षरम् ।

समारिणो हि दृश्यतेसमस्ताजीवराशयः । ३८ ।

बह्व श्रद्धा च विष्णुश्चतयोऽमीगुणकारिणः ।

सृष्टिपालनसंहारकारकानान्यथाभवेत् । ३९ ।

अहंकारवृत्तेनैव कर्मणा कारितावयम् ।

यूयं च सर्वे त्रिबुधा मनुष्याश्च खगादयः । ४० ।

हे धर्मराज ! आपको कुमार के विषय में बिल्कुल विस्मय नहीं चाहिए । कुमार के दर्शन में जो भी फलोदय हुआ करता है उसे तुम मुझसे भली भाँति समझ ली । कर्मों से समन्वित वचन हो सबको कष्ट प्रदान करने वाला हुआ करता है । सम्पूर्ण तीर्थ-यज्ञ और विविध प्रकार के किये जाने वाले दान मन की विसृद्धि प्राप्त करने के लिए अवश्य ही करने चाहिए । इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए । (३६।३७) मन में नाशित भावना होता है और अपनी आत्मा में ही आत्मा हुआ करता है यथात् अपने आपको कल्याण अपनी ही आत्मा के द्वारा हुआ करता है । समस्त प्राणिमों की व्यवस्थित आत्मा में ही है । मैं सदा भाव से युक्त निरन्तर आत्मा में संस्थिति करने वाला हूँ चाहे कोई जगम सृष्टि हो या जड सृष्टि हो । यह मैं आपको बिल्कुल सत्य-सत्य बताना रहा हूँ । मेरा स्वरूप सुख दुःखादि द्वन्द्वों से परे हूँ- मैं निर्विकल्पक हूँ, मेरा स्वरूप साक्षात् स्वस्थ, नित्य, नित्ययुक्त, निरोह (विष्टा रहित), कूटस्थ, वस्तुओं के भेद, प्रवाहों से बहिष्कृत, बोध के द्वारा

जानने के योग्य और अनन्त है । किन्तु इस प्रकार के हम बोध लक्षण वाली अपनी आत्मा को विस्मृत करके ही ये समस्त सार्वत्रिक जीवों के समुदाय दिखलाई दिया करते हैं । मैं ही ब्रह्मा हूँ और मैं ही ताक्षान् विष्णु हूँ । ये तीनों स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के गुणकारी हैं । संसार का सृजन-पालन और संहार करने वाले ये जिस प्रकार से हुमा करते हैं । ३८-४२) यह द्वार वृत्त कर्म से ही हम सब कराये गये हैं और आप सब देवगण तथा मनुष्य दुन्द और खग (पक्षी) प्रकृति भी उसी प्रकार के किये गये कर्म से हुए हैं । ४३।

पृथग्भूतास्तथान्ये बहवो ह्यमी ।
 पृथक्पृथक्ममीचीना गुणवत्तश्च समृती । ४४।
 पतिता मृगतृष्णायां मायया च यशोकृताः ।
 यय सर्वत्रविबुधाः प्राज्ञाः पंडितमानिनः । ४५।
 परस्परं दूषयन्तो मिथ्यावादरताः खलाः । ४६।
 त्रैगुणा भवसंपन्ना अतत्त्वज्ञाश्च रागिणः ।
 कामक्रोधभयद्वेषमदमात्सर्यसंयुताः । ४७।
 परस्परं दूषयन्तो ह्यनर्बन्धा बहिर्मुखाः ।
 तस्मादेवं विदिश्वस्य असत्यं गुणभेदतः । ४८।
 गुणातीते च यस्त्वर्थे परमार्थैकदर्शनम् । ४९।

पशु प्रादि सब पृथग्भूत हैं तथा अन्य बहुत-से हम पृथक्-पृथक् रूप संसार में गुणवान् और समीचीन हैं । माया के द्वारा बंधी रह गए हम सब मृग तृष्णा में पड़े हुए हैं । हम सब और परम प्राप्त अपने आपसी पण्डित मानने वाले देवगण परस्पर में एक दूसरे को दुष्टि करते हुए मिथ्यावाद में निरत हुए गल हो रहे हैं । गरव, रज, तम इन त्रिगुणों से संयुक्त, सब से सम्पन्न, तरंगों के न जानने वाले राग से परिपूर्ण-राम, क्रोध, भय, द्वेष, मद और मात्सर्य से समन्वित एक दूसरे के बलवाने वाले—अनर्बन्ध और बहिर्मुख हैं । इसलिए तुलों

ने भेद से इस प्रकार से सबको धसत्य जान कर रहे । गुणातीत वस्तु के धर्म में परमार्थ का एक दर्शन होता है । ४४-४६।

यस्मिन्भेदो ह्यभेदं च यस्मिन् प्रागो विरागताम् ।

क्रोधो ह्यक्रोधतां याति तद्धाम परमं शृणु । ५०।

न तद्भासयते शब्दः कृतकत्वाद्यया घटः ।

शब्दो हि जायते घर्मः प्रवृत्तिपरमो यतः । ५१।

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा द्वन्द्वानि सर्वशः ।

विलययाति यत्रैव तत्स्थानं शाश्वतं मतम् । ५२।

निरन्तरं निर्गुणं जप्तिमात्रं निरञ्जनं निर्विकारं निरीहम् ।

सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं स्वसिद्धं स्वयम्भु सुप्रभं बोधगम्यम् । ५३।

एतज्ज्ञानं ज्ञानविदो वदन्ति सर्वात्मभावेन निरोक्षयन्ति ।

सर्वातीतं ज्ञानगम्यं विदित्वा येन स्वस्थाः समबुद्धया चरन्ति । ५४।

अतीत्य संसारमनादिमूलं मायामयं मायया दुर्विचार्यम् ।

मार्या त्यक्त्वा निर्ममा चीतरागा गच्छन्ति प्रेतराणि वि-
कल्पम् । ५५।

संसृतिः कल्पनामूलं कल्पना ह्यमृतोपमा ।

यैः कल्पनापरित्यक्ता ते याति परमां गतिम् । ५६।

जिसमें भेद अभेदता को प्राप्त हो जाता है, राग विरागता की प्राप्ति कर लिया करता है, क्रोध अक्रोध भाव को प्राप्त होता है वही परम धाम है, यह श्रवण करजो । जिस तरह से कृतक होने से घट भारीत नहीं होता है उसी भाँति वहाँ पर शब्द भासित नहीं हुआ करता है क्योंकि यह शब्द प्रवृत्ति परम धर्म हुआ करता है । सभी जगह प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा द्वन्द्व विद्यमान रहा करते हैं किन्तु जहाँ पर ये सब विलीनता को प्राप्त हो जाया करते हैं वही परम शाश्वत स्थान माना गया है ॥ ५०॥ ५१॥ ५२॥ निरन्तर, निर्गुण,

ज्ञानिमात्र, निरञ्जन, निर्विकार, निरोद्ध, सत्ताउम्य, ज्ञानगम्य, स्वसिद्ध, सुप्रभ, दोषगम्य जो होता है उसी को ज्ञान के वेत्ता गण्य ज्ञान कहा करते हैं और सर्वात्मभाव से निरीक्षण किया करते हैं अर्थात् सभी को अपने ही समान देखा करते हैं । सबसे प्रतीत अर्थात् परे और ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य समझकर जिसके द्वारा परमस्वस्य और सम वृद्धि से सञ्जरण किया करते हैं । ॥५३॥५४॥ माया से परिपूर्ण, माया से दुविचार्य अर्थात् परम दुःख से विचार करने के योग्य और अनादि मूल इस संसार का अति क्रमण करके हे, प्रेतराट् । इस माया का त्याग करके मनता से रहित, चीतराग वे पुरुष ही निर्विकल्पक को जाया करते हैं ॥५५॥ यह सृष्टि कल्पना के मूल वाली है और यह कल्पना अमृत के समान है जिन्होंने इस कल्पना का त्याग कर दिया है वे सत्पुरुष ही परम गति को प्राप्त किया करते हैं ॥५६॥

शुक्लया रजतमुद्धिश्च रज्जुवुद्धियंचोरणे ।

मरीचो जलमुद्धिश्चमिथ्यामिथ्यैवनान्यथा ॥५७॥

सिद्धिः स्वच्छदर्वत्तित्वंपारतत्र्यहिवैमृषा ।

बद्धोहिपरतत्राख्योमुक्तः स्वात त्र्यभावन ॥५८॥

एको ह्यात्मा विदित्वाय निर्ममा निरवग्रहः ।

कुनस्तेषा वधन च यथाखेपुष्पमेव च ॥५९॥

प्राशविपाणमेवतज्ज्ञानं संसार एव च ।

किं कार्यं यदुनोक्तेन वचसा निष्फलेन हि ॥६०॥

ममता च निराकृत्यप्राप्तुकामा, परपदम् ।

ज्ञानिनस्तेहिविद्वांसोवीतरागाजितेंद्रियाः ॥६१॥

यैस्त्यक्तो ममताभावोलोभक्रोपोनिराकृतौ ।

तेषातिपरमं स्थान कामक्रोधविवर्जिताः ॥६२॥

यावत्कामश्च लोभश्चरागद्वेषोव्यवस्थितो ।

नाप्नुवतिचतसिद्धिशब्दमात्रं कबोधकाः । ६३।

सोप मे रजत (चांदी) की बुद्धि, जिस तरह से सर्व में रज्जु (रस्सी) की बुद्धि और मीबि मे जल की बुद्धि—यह सब मिथ्या ही मिथ्या है इसमे धन्यता कुछ भी नहीं है । सिद्धि, राक्षस, वस्तुत्व और परतन्त्रता भी मृषा है । जो परतन्त्र नाम वाला है वही बड़ है और स्वतन्त्रता भावना वाला ही मुक्त होता है । एक ही धारमा है—ऐसा ज्ञान करके निर्मम और मो निरवग्रह होता है उसको बन्धन कहाँ हो सकता है । जैसे आकाश में पुष्प का होना असम्भव है वैसे ही ऐसे पुरुष का बन्धन असम्भव होता है । संसार में ही यह ज्ञान दाता (सरमोश) के निपाण की ही भाँति असम्भव है । इस प्रकार के फल शून्य अत्यधिक वचनों से क्या करना है यथात् अधिक कथन का कोई भी लाभ नहीं है । परम पद की प्राप्ति करने की कामना रखने वाले पुरुषों को संसार मे इस ममता की भावना का त्याग कर देना चाहिये । वे ही विद्वान् ज्ञानी हैं जो भीतराग और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं । जिन्होंने अपने हृदय में स्थित ममता का भाव त्याग दिया है और लोभ तथा क्रोध को निराकृत कर दिया है । वे ही काम और क्रोध से रहित पुरुष परम स्थान को प्राप्त हुआ करते हैं । जब तक यह काम, लोभ, राग और द्वेष व्यवस्थित रहा करते हैं ऐसे शब्द मात्र एक के ही बोधक पुरुष होते हैं वे उस सिद्धि को प्राप्त नहीं किया करते हैं । १५७-६३।

शब्दाच्छब्दः प्रवर्त्तते निःशब्दं ज्ञानमेव च ।

अनिर्ह्यत्वं हि शब्दस्य कथं प्रोक्तं त्वया प्रभो । ६४।

अक्षरं ब्रह्म परमं शब्दो वै ह्यक्षरात्मकः ।

तस्माच्छब्दस्त्वया प्रोक्तो निरीक्षक इति श्रुतम् । ६५।

प्रतिपाद्यं हिर्यात्किञ्छब्ददेनैव विना कथम् ।

तत्सर्वं कथ्यतां शंभो कार्यकार्यं व्यवस्थितो । ६६।

शृणुष्वभावहितो भूत्वा परमार्थयुतं वनः ।

यस्य श्रवणमात्रेण ज्ञातव्यं नावशिष्यते ।६७।

ज्ञानप्रवादिनः सर्वं श्रूययो वीतकल्मषाः ।

ज्ञानाम्यासेन वतंते ज्ञानं ज्ञानविरोविदुः ।६८।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं ज्ञात्वा च परिगोयते ।

कथं केन च ज्ञातव्यं किं तद्वक्तुं विवक्षितम् ।६९।

एतत्सर्वं समासेन कथयामि निश्चोच मे ।

एको ह्यनेकधा चैव दृश्यते भेदभावनः ।७०।

शब्द से शब्द की प्रवृत्ति हुआ करती है और निःशब्द केवल ज्ञान ही होता है । हे प्रभो ! आपने इस शब्द की अनिश्चयता कैसे वर्णित की है ? यक्षर परम सदा होता है और यह शब्द भी यक्षर स्वरूप ही तो है । इसलिये आपने शब्द की निरीक्षक कहा है—ऐसा श्रुत है । जो कुछ भी प्रतिपादन करने के योग्य विषय होता है वह शब्द के ही द्वारा ही हुआ करना है शब्द के बिना प्रतिपादन कैसे हो सकता है ? हे शम्भो ! वर सभी कार्याकाश की व्यवस्था में आप मुझको कृपा करके बतलाइये । ६४।६५।६६। भगवान् शङ्कर ने कहा—यव तुम ब्रह्म हो अक्षरी तरह नावधान होकर परमार्थ से समन्वित मेरा ध्वनन श्रवण करो जिसके श्रवण मात्र से ही फिर जानने के योग्य कुछ भी शेष नहीं रह जाया करना है । मेरा भी श्रुतिगण जो वीत कल्मष वाले हैं ज्ञान प्रवादी होते हैं । ज्ञान के अम्बाम से ये रहा करते हैं । ज्ञान के चेतावन इसक ज्ञान कहा करते हैं । ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानगम्य को जानकर परिणाम किया जाता है । जिसके द्वारा कैसे क्या जानना चाहिये और क्या कहने के लिये विवक्षित है—यह सभी कुछ अतीव संक्षेप से मैं कहता हूँ । उसे तुम अब मुझसे समझ लो । एक ही भेद भावन अनेक प्रकार से दिखाई दिया करता है । ६७—७०।

यथा भ्रमरिकादृष्टा भ्रम्यते च मही यम ।
 तथात्मा भेदबुद्ध्या च प्रतिभातिह्यानेकधा ॥७१॥
 तस्माद्विमृश्य ततोव ज्ञातव्यः श्रवणेन च ।
 मतव्यः मुप्रयोगेण मननेन विशेषतः ॥७२॥
 निर्द्वयं चात्मनात्मानं सुखं वधात्प्रमुच्यते ।
 मायाजालमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥७३॥
 मायामयोऽयं संसारो ममतालक्षणो महान् ।
 ममताचवहि कृत्वा सुखवधात्प्रमुच्यते ॥७४॥
 कोऽहं कस्त्वं कुतश्चान्ये महामायावलम्बिनः ।
 भजागलस्तनस्येवं प्रपञ्चोऽयमनिरर्थकः ॥७५॥
 निष्फलोऽयं निराभासो निःसारा धूमडवरः ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भात्मानं स्मरन्वयम ॥७६॥

हे यम ! जिस तरह से भ्रमरिका के द्वारा देखी गई मही घूमती हुई दितलाई दिया करती है ठीक उसी भाँति यह आत्मा भेद की बुद्धि से अनेक प्रतीत हुआ करती है । इसीलिए भली-भाँति विमर्श करके उसी के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । और श्रवण ' के द्वारा समझना चाहिए । सुन्दर रीति से प्रयोग के द्वारा तथा विशेष रूप से मनन करने के द्वारा भावना चाहिये ॥७१॥७२॥ अपनी आत्मा से ही अपनी आत्मा का निर्धारण करके सुख पूर्वक बन्ध से प्रमुक्त हो जाया करता है । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् माया का ही एक जल है । यह समस्त संसार भी माया से परिपूर्ण है और यह महान ममता के लक्षण वाला है । इस ममता का बहिष्कार करके अर्थात् मैं मेरे मन की भावना को दूर हटाकर प्राणी परम सुख के साथ इस संसार के बारम्बार जन्म-मरण के द्वारा आवागमन के बन्धन से छुटकारा पा जाया करता है । मैं कौन हूँ, तू कौन है और अन्य महामाया का प्रवलम्बन करने वाले कौन कहाँ से आये हैं—बकरी के बले में समुत्पन्न होने वाले स्तन की ही भाँति यह सारा प्रपञ्च निरर्थक ही होता है । यह सभी

कुछ फल रहित, निरामास, सार से शुन्य घूम डम्बर है अर्थात् घूँघ्रा का सा धाया हुँघ्रा बास है जिसमें वास्तविकता लेश मात्र को भी नहीं है । इतलिये हे यम ! सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा आत्मा का ही स्मरण करो । ७३—७६।

एवंप्रचोक्षितस्तेन शम्भुना प्रेतराट्स्वयम् ।

बुद्धोभूत्वायमः साक्षादात्मभूतोऽभवत्तदा । ७७।

कर्मणां हि च सर्वेषां शास्ता कर्मानुसारतः ।

बभूव डंबरो नृगाभतानांचसमाहितः । ७८।

हत्वा तु तारकं युद्धे कुमारेण महात्मना ।

अत ऊर्ध्वं कथ्यतां भोक्ति कृतं महद्दभुतम् । ७९।

हते तु तारके दंत्ये हिमवत्प्रमुखादयः ।

कार्तिकेयं समागत्य गोर्भो रम्याभिरंडयन् । ८०।

नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमङ्गल ।

विश्वबंधो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन । ८१।

वरिष्ठाः श्रपचः येन कृता वै दशैनास्त्वया ।

त्वा नमामो जगद्धुंत्वां वयं शरणागताः । ८२।

नमस्ते पार्वतीपुत्र शङ्करात्मज ते नमः ।

नमस्ते कृत्तिकासूनो अग्निभूत नमोऽस्तु ते । ८३।

नमोऽस्तु ते देववरैः सुपूज्य नमोऽस्तु ते ज्ञानविदां वरिष्ठ ! ।

नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद क्षरण्य सर्वातिविनाशवक्ष ! । ८४।

महर्षि भोमश्च जी ने कहा—इस तरह से भगवान् शम्भु के द्वारा प्रेरणा दिये हुए प्रेतराज स्वयं ही परम बुद्ध होकर उस समय में साक्षात् आत्मभूत हो गये थे । तमस्त कर्मों के अनुसार ही सबके कर्मों का शासन करने वाला हो गये थे और प्राणियों का तथा मनुष्यों का परम समाहित डम्बर हो गया था । ७७। ७८। श्रुतिगण ने कहा—महात्मा कुमार ने रणभूमि में तारका सुर का हनन करके इसके पश्चात्

उन्होंने क्या महान् अद्भुत कर्म किया था उसे बतलाइये । श्री सूतजी ने कहा—तारका सुर के निहत हो जाने पर हिमवान् आदि प्रमुख पर्वत वृन्द स्वामी कार्तिकेय के समीप में आकर परम रम्य वाणियों के द्वारा स्तवन करने लगे थे । गिरिगण ने कहा—हे विश्व के भङ्गल करने वाले ! कल्याण स्वरूप आपके लिए हमारा नमस्कार है । हे विश्व बन्धो ! आप तो समस्त विश्व पर दयाभाव रखने वाले हैं आपके लिए आरम्भार नमस्कार है । जिन्हें आपने अपने सुन्दर दर्शन ही देकर के जो शपथ थी उनको परम परिष्ठ बना दिया है । जगत् के बन्धु आपको हम नमस्कार करते हैं और हम सब आपकी शरणागति में प्राप्त हुए हैं । १७६—८२। यमराज ने कहा—हे पार्वती के पुत्र ! हे शङ्कर के आरम्भ ! आपके लिये आरम्भार नमस्कार है । हे कृतिका के पुत्र ! आप तो अग्नि, भूत हैं । आपके लिए मेरा आरम्भार नमस्कार है । हे देववरों के द्वारा भली-भाँति पूजा करने के योग्य ! हे ज्ञान के वेत्तानों में परम श्रेष्ठ ! आपकी सेवायें आरम्भार नमस्कार है । हे देवों में श्रेष्ठ ! हे शरण्य ! आप तो सबकी प्राप्ति के विनाश करने में परम कुशल हैं । आप प्रसन्न होइये । आपको मेरा नमस्कार है । ८३। ८४।

एवं स्तुतोगिरिभिः कार्तिकेयोह्युमासुतः ।
 तान्गिरीभ्युप्रसन्नात्मा वरंदातु'समुत्सुकः । ८५।
 भोभो गिरिवरा यूयं शृणुध्वमद्वचोऽधुना ।
 कर्मभिर्जानिभिश्च वसेम्यमानाभविष्यथ । ८६।
 भवत्स्वेवहि वक्तॄन्ते हृपदो यत्नसेविताः ।
 पुनस्तु विश्वे वचनान्मम ता नात्र संशयः । ८७।
 पर्वतीयानितीर्थानिभविष्यन्तिनचाग्नयथा ।
 शिवालयादिदिव्यानिदिव्याग्यायतनानिच । ८८।
 अयनानि विचित्राणि शोभनानि महानि च ।
 भविष्यन्ति न सन्देहः पर्वता वचनान्मम । ८९।

योऽयं मातामहो मेऽद्यहिमवान्पर्वतोत्तमः ।

तपस्विनामहाभागः फलदोहि भविष्यति । ६०।

मेरुश्च गिरिराजोऽयमाश्रयो हि भविष्यति ।

लोकालोकागिरिवरउदयाद्रिमहायशाः । ६१।

इस प्रकार से सुन्दर नाणियों के द्वारा स्तवन किये गए उमा देवी के पुत्र स्वामी कार्तिकेय परम प्रसन्न आत्मा बाले होकर उन गिरिवरो को वरदान प्रदान करने के लिए समुत्सुक हो गये थे । स्वामी कार्तिकेय ने कहा—हे गिरिवरो ! भाव लोग इस समय मेरे वचन का ध्यान करो । भाव लोग सब कर्मों के करने वालों के द्वारा जानियों के द्वारा से व्यर्थ हो जायेंगे । भाव लोगों के भन्दर ही ऐसी शिष्यायें विद्यमान हैं जो यत्नों के द्वारा सेवित होनी हुईं मेरे वचन से इस संपूर्ण विश्व को पवित्र करेंगी, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । अनेक पर्वतीय तीर्थ होंगे, यह धर्मवादी नहीं है । दिव्य शिवालय और दिव्य प्रायतन एवं विविध भवन जो शोभन तथा महान होंगे । हे पर्वतगण ! मेरे इस वचन से इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है । जो यह मेरे पितामह हैं वे समस्त पर्वतों में परम श्रेष्ठ इन समय पर हैं । यह सब तात्त्विकों में महान भाग वाले हैं और निश्चय ही फल देने वाले होंगे । यह मेघ नाम धारी पर्वत गिरियों का राजा है और यह सबका समाधत्ता होगा । शोचनीय पर्वत गिरियों में श्रेष्ठ गिरि है और यह महान वन वाला उदय गिरि है । ५५-६१।

लिंगरूपो हि भगवान्भविष्यति न भान्यथा ।

श्रीशैलोलिङ्गहृद्दत्तनवाप्तह्यानलोलिङ्गः । ६२।

मात्स्यवान्मत्स्यो विष्णुस्तथासौ गंधमादनः ।

द्वेत्तूटस्त्रिभूटो हि तेषाददुर्गपर्वतः । ६३।

एते चान्ये च यद्वयः पर्वता निगरूपिणः ।

मम वायव्यदक्षिणदिशि वापशयकरा ह्यमौ । ६४।

एवं वरं ददौ तेभ्यः पर्वतेभ्यश्च शाङ्करिः ।
 ततो नन्दी ह्युवाचाथ सर्वाणिमपूरस्कृतम् । १६५।
 त्वया कृता हि गिरयो लिगरूपिण एवते ।
 शिवालयाः कथंनाथपूज्याः स्युः सर्वदेवतैः । १६५।
 लिङ्गं शिवालये ज्ञेयं देवदेवस्य शूलिनः ।
 सर्वैर्नृभिर्देवतैश्च ब्रह्मादिभिरतन्द्रितैः । १६७।
 नीलं मुक्ता प्रवालं च वैडूर्यं चन्द्रमेव च ।
 गोमेदपद्मरागं च भारतं काश्चन तथा । १६८।

भगवान् लिङ्ग रूप वाले होने—इसमें सम्यक् नहीं है । श्री शूल, महेन्द्र, सह्याचल, गिरि, मात्यवान, मलय, विन्ध्य, गन्ध, मादन, श्वेत कूट, त्रिवूट तथा ददुर पर्वत—ये सब तथा अन्य पर्वत लिङ्ग रूप वाले हैं । ये सभी मेरे वचन से पापों के नाश करने वाले हो जायेंगे । इस प्रकार से भगवान् शाङ्कर के पुत्र कुमार ने उन पर्वतों के लिए वरदान प्रदान किया था । इसके पश्चात् नन्दी समस्त प्राणियों से पुरस्कृत वचन कहा था । नन्दी ने कहा था—हे भगवान् ! आपने इन समस्त पर्वतों को लिङ्ग रूपी बना दिया है । हे नाथ ! ये शिवालये समस्त देवों के द्वारा किस प्रकार से पूज्य होंगे ? कुमार ने कहा— देवों के देव भगवान् शूलि के लिङ्ग को ही शिवालये जानना चाहिए । यह बात सभी मनुष्यों, देवतों और अतन्द्रित ब्रह्मादि की भी ममत्ता लेना चाहिये । नील (नीलम) मुक्ता (मोती), प्रवाल (मूगा), वैडूर्य, चन्द्र, गोमेद, पद्मराग, भारत, काश्चन, राजत, ताम्रम्बर तथा पर ताम्रभय—इस सब रत्न एवं धातुओं से परिपूर्ण लिङ्ग आपको हमने वतला दिये हैं । १६२—१६८।

राजतं ताम्रमाखं च तथा नागमय परम् ।

रत्नधातुमयान्येव लिगानिकथितानि ते । १६९।

पवित्राण्येव पूज्यानि सर्वकामप्रदानि च ।
 एतेषामपि सर्वेषां काश्मोरहिविशिष्यते ॥१००॥
 ऐहिकामुष्मिकं सर्वं पूजाकर्तुः प्रयच्छति ॥१०१॥
 लिंगानामपि पूज्यं स्थाप्यलिंगं त्वया कथम् ।
 कथितं चोत्तमत्वेन तत्सर्ववदमुव्रत ॥१०२॥
 देवायां तोयमध्ये च दृश्यते दृषदोहियाः ।
 शिवप्रसादात्तास्तु स्युर्लिंगरूपानचान्यथा ॥१०३॥
 इत्यष्टममूलाश्च कर्तव्याः पिण्डिकोपरिसंस्थिताः ।
 पूजनीयाः प्रयत्नेन शिवदीक्षायुतेन हि ॥१०४॥
 पिण्डोक्तं च शास्त्रेण विधिना च यजेच्छिवम् ।
 वरदोहिजगन्नाथः पूजकस्य न चान्यथा ॥१०५॥
 पञ्चाक्षरी यस्य मुखे स्थिता गदा
 चेतोनिवृत्तिः शिवचिन्तने च ।
 भूतेषु साम्यं परिवादमूकता
 पण्डितमेव परमोपितासु ॥१०६॥

ये सब परम पवित्र, पूज्य एवं समस्त प्रकार की कामनाओं को पूर्ण तथा प्रदान करने वाले हैं । इन ममस्तो में श्री काश्मोर विशेष रूप से माना जाता है । पूजा करने वाले मनुष्य को ऐहिक (इस लोक-का) और आमुष्मिक (परलोक का) सभी कुछ यह प्रदान किया करता है ॥१००॥१०१॥ नन्दी ने कहा—हे मुनि ! आपने इन रामस्तोत्रों में बाण लिङ्ग को परम पूज्य कैसे कहा था । आपने उसे सर्वोत्तम रूप से बतलाया था—यह सब कृपा करके बतलाइये । भगवान् कुमार ने कहा—रेशा नदी में जल के मध्य में जो शिलायें दिखाई दीया करती हैं वे सब भगवान् शिव के प्रसाद से बिज्जु के स्वरूप वाले हो गये हैं—इसमें तनिक भी भ्रम था नहीं है । पिण्डिका के ऊपर में संस्थित दशमल मूला करने चाहिये उन शिलाओं का पूजन भगवान्

शिव की दोखा से संयुक्त मनुष्य के द्वारा ही करना चाहिये । शास्त्रोक्त विधि के द्वारा शिण्डीयुवन भगवान शिव का यवन करना चाहिये । जो भगवान शिव का भर्त्ता करने वाला पुण्य होता है उसकी जगत् के वाढ्य शिव वरदान के प्रदाता हुमा करते हैं—इसमें कुछ भी पागपा नहीं है । जिसके मुख में सदा “ॐ नमः शिवाय” —यह पञ्चाक्षरी मन्त्र स्थित रहा करता है और भगवान शिव चिन्तन करने में चेत की निवृत्ति हो जाया करती है । प्राणिमात्र में समता की भावना, परिवाह में भूकता अर्थात् किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का विवाद न करना तथा पराई स्त्रियों के विषय में पण्डित अर्थात् दूसरों की स्त्रियों के साथ में सङ्गम का अभाव का रहना यह कल्याण के लिये होना चाहिये । १०२-१०६।

१६-राशि नक्षत्र निरूपण

यदा सृष्टं जगत्सर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिता ।
 कालचक्रं तदा जातं पुरा राशिसमन्वितम् ।
 द्वादश राशगस्तत्र नक्षत्राणि तथैव च । १।
 सप्तविंशतिसंख्यानि मुख्यानि कार्यसिद्धये । २।
 एभिः सर्वैः प्रचंडं च राशिभिरुद्बुधैस्तथा ।
 कालचक्रान्वितः कालः क्रीडयन्सृजतेजगत् । ३।
 आग्रहस्तवपर्यंतं सृजत्यवति हति च ।
 निबद्धमस्ति तेनैव कालेनैकेन भो द्विजाः । ४।
 कालो हि बलवांस्लोके एक एव न चापरः ।
 तस्मात्कालात्मकमवर्गमिदं नास्त्यत्र संशयः । ५।
 आदौ कालः कालनाच्च लोकनायकनायकः ।
 ततो लोकहिसंजाताः सृष्टिश्च तदनंतरम् । ६।
 सृष्टेर्लंबो हि संजातो लवान्च क्षणमेव च ।
 क्षणाच्च निमिषं जातं प्राणिनां हिनिरन्तरम् । ७।

श्रुतिगण ने कहा—इस ग्रन्थ की पहिले किमने बतलाया था—
 किसने सर्वप्रथम इसको किया था, इसका फल क्या है, इसका उद्देश
 क्या है, हे विभो ! सब भाष बतलाने की कृपा करें । महर्षिदेव श्री
 मोमश ने कहा—परमेश्वी ब्रह्माजी ने जिस समय मे इस सम्पूर्ण जगत्
 का सृजन किया था उसी समय मे पहिले राशियों से समन्वित यह काल
 चक्र समुपन्न हुआ था । उनमे बारह राशियाँ हुई थी तथा उसी प्रकार
 से नक्षत्र भी हुए थे । १। ये नक्षत्र सस्या में सत्ताईस परम मुख्य कार्यों की
 सिद्धि के लिए हुए थे । २। इन समस्त राशियों से तथा उद्भूतों से समुत्पन्न
 यह सम्पूर्ण प्रचण्ड जगत् का काल चक्र से समन्वित काल क्रीडा करता
 हुआ सृजन किया करता है । ३। प्रपञ्चस्वप्न वषणुन्त हे द्विजगण ! यही
 सृजन किया करता है, परिपालन करता है और हनन किया करता है
 सर्वात् इसी में उत्पत्ति, रक्षण और संहार हुआ करते हैं । यह सभी कुछ
 उसी एक काल के द्वारा निबड है । ४। यह काल एक ही इस लोक मे
 परम ब्रह्मवान है । ऐसा ग्रन्थ कोई भी बनवाली नहीं है । इसलिए यह
 सभी कुछ कालात्मक ही हैं और इसमे कुछ भी सशय नहीं है । ५। सबके
 प्रादि में काल न होने से काल होना है और यह लोको के नायको का
 भी नायक है । इसके अनन्तर ये समस्त लोक समुत्पन्न हुये थे और
 इसके पश्चात् यह सृष्टि हुई है । ६। सृष्टि से सब हुआ और सब से क्षण
 उत्पन्न हुआ है । क्षण से निमिष की उत्पत्ति हुई जो प्राणियों की निर-
 न्तर रहा करती है । ७।

निमिषाणा च पष्टथा व पल इत्यभिधीयते ।

पञ्चदश्या अहोरात्रे. ऽक्षइत्यभिधीयते । ८।

पक्षाभ्या मास एव स्यान्मासाद्वादशवत्सर ।

तकालं जातु कामेन कार्यज्ञानविचक्षणे । ९।

प्रतिपदिनमारम्य पीरुमास्यन्तमेव च ।

पक्षः पूर्णो हि यस्माच्च पूर्णिमेत्यभिधीयते । १०।

पूणचद्रमसो या तु सा पूर्णा देवताप्रिया ।
 नष्टस्तुचद्रोयस्यावाजमासाकथिताबुधैः । १८
 अग्निष्वात्तादिपितृणा प्रियातोव बभूव ह ।
 त्रिंशद्दिनानि ह्येतानपुण्यकालमुत्तानि च ।
 तेषा मध्ये विशेषो यस्त स्मृणुष्व द्विजोत्तमाः । १९
 योगाना वा व्यतीपात ऊहूना श्रवणस्तथा ।
 अमावास्यातिथोनाश्चपूर्णिमावैतथैव च । २०
 सक्रातयस्तथा ज्ञेया पवित्रा दानकर्मणि ।
 तथाष्टमो प्रिया शम्भोर्मणेशस्यचतुर्थिका । २१

साठ निमित्तों का एक पक्ष होता है जो 'पक्ष'—इस नाम से ही
 कहा जाता है । चन्द्र प्रक्षेत्रों से एक पक्ष होता है । दो पक्षों का एक
 मास होता है और बारह मासों का एक वर्ष होता है । उस काल का
 ज्ञान प्राप्त करने की कामना से विचक्षण पुरुषों के द्वारा ज्ञान करना
 चाहिये । प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके पूणमासी की समाप्ति पर्यन्त
 पूर्ण एक पक्ष हुआ करता है इसीलिए इस तिथि का नाम पूर्णिमा कहा
 जाता है । १८। १९। जो यह पूर्ण चन्द्र से युक्त हुआ करती है इसीलिए
 यह पूर्णा और देवगणों की परम प्रिय हुआ करती है । जिस तिथि में
 चन्द्र पूर्ण तथा नष्ट होता है अर्थात् बिल्कुल दिखनाई हो नहीं दिया
 करता है वह तिथि 'अमा' अर्थात् अमावस्या कही जाया करती है ।
 यह अमावस्या अग्निष्वात्तादि पितृगणों की अत्यन्त प्रिय हुई थी । इस
 प्रकार से तीस दिन होते हैं जो पुण्य काल से युक्त हुए करते हैं । हे
 द्विजोत्तमो ! उन तीस मास के दिनों में जो विशेषता से युक्त दिन होता
 है उसका प्रब ओग मुझसे श्रवण करिए । १९। २०। योगों का व्यतीपात
 तथा उदुगणों में श्रवण, तिथियों में अमावस्या तथा पूर्णिमा एवं
 सङ्क्रान्तिर्वा ये सब दान देने के कर्म में परम पवित्र जाननी चाहिए ।
 विभिन्न देवों की भी परम प्रिय विभिन्न तिथियाँ हुआ करती हैं । भग-

वान शम्भु की प्रिय तिथि अष्टमी होती है और गणेश की परम प्रिय तिथि चतुर्थी हुआ करती है । १३।१४।

पञ्चमी नागराजस्य कुमारस्य च पष्ठिका ।

भानोश्चसप्तमीज्ञेयाववमोचण्डिकां निया । १५।

ब्रह्मणो दशमी ज्ञेया रुद्रस्यैकादशी तथा ।

विष्णुप्रिया द्वादशी च अम्बकस्य त्रयोदशी । १६।

चतुर्दशी तथा शम्भोः प्रिया नास्त्यत्र संशयः ।

निशीथसंयुतायायातुकृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

उपोष्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी । १७।

शिवरात्रितिथिः ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ।

अत्र बोद्धाहंरंतीममितिहासं पुरातनम् । १८।

ब्राह्मणो विषवा काश्चित्पुराह्यसीच्चचञ्चला ।

श्वपचाभिरतासाचकामुको कामहेतुतः । १९।

वस्यो वस्य सुतो जातः श्वपचस्यदुरात्मनः ।

दुःसहोदुष्टनामात्मा सर्वधर्मबहिष्कृतः । २०।

महापापप्रयोगाच्च पापमारभते सदा ।

कितवश्च सुरापायी स्तेयो च गुह्यतल्पगः । २१।

मृगयुद्धं दुरात्मासौ कमचण्डाल एव सः ।

अधर्मिष्ठो ह्यसद्वृत्तः कदाचिच्चशिवालयम् ।

शिवरात्र्यां च संप्राप्तो ह्यपितः शिवसन्निधौ । २२।

नागराज की परम प्रिय तिथि पञ्चमी होती है तथा कुमार स्कन्द की प्यारी तिथि पष्ठी हुआ करती है । भास्कर भगवान सूर्य की प्रिय तिथि सप्तमी होती है और नवमी तिथि भगवती चण्डिका की परम प्रिय मानी गई है । ब्रह्माजी की प्यारी तिथि दशमी हुआ करती है तथा रुद्रदेव की परम प्रिय तिथि एकादशी होती है । भगवान विष्णु की परम प्रिय तिथि द्वादशी है तथा अन्तक यमराज की प्रिय तिथि त्रयो-

दशी हुआ करती है । चतुर्दशी तिथि भगवान् शम्भु की होती है—इस विषय में लेश मात्र सन्देह नहीं होता है । मास के कृष्ण पक्ष में अर्ध रात्रि में समुत्त जो चतुर्दशी तिथि हुआ करती है उस तिथि में उपवास अवश्य ही करना चाहिए । यह तिथि परम अष्ट मानी गई है जो कि भगवान् शिव के सायुज्य कराने वाली हुआ करती है । १५।१६।१७। यही शिवरात्रि तिथि के नाम से विख्यात है जो समस्त पापों का नाश करने वाली होती है । इसी विषय में इस परम पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं । १८। पहिले पुराने समय में कोई एक विधवा ब्राह्मणी थी जो अत्यन्त ब-बूला थी । वह काम वासना के कारण से ऐसी कामुकी थी कि एक श्वपच के साथ में अभिरत रहा करती थी । उस ब्राह्मणी के उदर से उस दुरात्मा श्वपच का एक पुत्र समुत्पन्न हो गया था । वह बहुत ही अधिक दुःसह, दुष्टनामात्मा और सभी धर्मों से बहिष्कृत था । महान् पापों के प्रयोग करने के कारण यह सदा पाप कर्म का ही आरम्भ किया करता था । यह क्लृप्त था, मदिरा के पान करने वाला था, स्तेय (चोरी) कर्म का करने वाला और गुरु पत्नी के साथ गमन करने वाला भी था । वह मृगयु, दुरात्मा और कर्मों से पूर्णतया चाण्डाल ही था । असद्व्यय में रति रखने वाला दुश्चरित्र था । यह किसी समय में शिवरात्रि के दिन में शिवरात्रि में एक शिवालय में प्राप्त हो गया था और वहाँ पर यह भगवान् शिव की सन्निधि में बैठ गया था । १९—२२।

श्रवणं शैवाशास्त्रस्य गृह्यज्ञाजातमतिके ।

शिवस्य लिंगरूपस्य स्वयम्भुवो यदा तदा । २३।

स एकत्रोपितो दुष्टः शिवरात्र्यां तु जागरात् ।

तेन कर्मविपाकेन पुण्या योनिमवाप्तवान् । २४।

भुक्त्वा पुण्यतमं लोकानुपित्वा शाश्वतोः समाः ।

चित्रागदस्य पुत्रोऽभूद्भूपालेश्वरलक्षणः । २५।

नाम्ना विचित्रवीर्योऽसौ सुभगः सुन्दरीप्रियः ।
 राज्य महत्तरं प्राप्यानिः स्तम्भो हि महानभूत् ।२६।
 शिवे भक्तिं प्रकुर्वाणः शिवकर्मपरोऽभवत् ।
 शैवशास्त्रं पुरस्कृत्य शिवपूजनतत्परः ।
 रात्री जागरणं यत्नात्करोति शिवसन्निधौ ।२७।
 शिवस्य गाथा गायंस्तु आनन्दान्मुक्ताङ्गमुहुः ।
 प्रमुचंश्चैवनेत्राभ्यां रोमांचपुलकावृतः ।२८।

शिव के समीप में रहने पर शैवशास्त्र का ध्वण स्वइच्छा से ही समुत्पन्न हो गया था । जब तक स्वयंभू भगवान शिव के लिङ्ग रूप का भी ध्वण हुआ था । वह दुष्ट एक ही स्थान में बैठा रहा था । शिव रात्रि में जागरण हो जाने से उसी कर्म के विपाक से उसने फिर पुण्यमयी धोनि की प्राप्ति की थी । परम गुणतम लोकों के निवास करने का सुख भोगकर जोकि बहुत ही अधिक समय तक हुआ था और सहस्रों वर्षों तक वही निवास करके फिर विनागद का भूपातेश्वर लक्षणों वाला पुत्र हुआ था । यह नाम से विचित्र वीर्य या और परम सुभग एवं सुन्दरी प्रिय था । इसने बहुत अधिक बड़ा राज्य प्राप्त किया था तथा यह महान निःस्तम्भ हो गया था ।२३-२६। भगवान शिव की भक्ति करता हुआ भगवान शिव के ही कर्म में परागण हो गया था । शैव शास्त्र को प्राप्ति करके वह शिव के ही पूजन में तत्पर हो गया था । वह रात्रि में भगवान शिव की सन्निधि में रहकर बड़े ही यत्न से जागरण किया करता हुआ आनन्द के कारण समुद्रभुत भद्रों के कणों को बारम्बार नेत्रों से मोचन करता हुआ रोमाञ्च पुलकों से समावृत हो जाया करता था ।२५-२८।

आयुष्यं च गतं तस्य शिवाध्यानपरस्य च ।

शिवोहिसुलभोलोकेपशूनां ज्ञानिनामपि ।२९।

ससेवितुं सुखप्राप्तये ह्येक एव सदाशिवः ।
 शिवरात्र्युपवासेन प्राप्तो ज्ञानमनुत्तमम् ।३०।
 ज्ञानात्सर्वमनुप्राप्तं भूतसाम्यं निरन्तरम् ।
 सर्वभूतात्मकज्ञात्वावेवलं च सदाशिवम् ।३१।
 बिना शिवेन यत्किञ्चित्तास्ति वस्त्वत्र न यदचित् ।३२।
 एव पूर्णं निष्प्रपञ्चं ज्ञानं प्राप्नोति दुर्लभम् ।
 प्राप्तज्ञानस्तदा राजजातो हि शिववत्सलम् ।३३।
 मुक्तिं सायुज्यतां प्राप्तः शिवरात्रे रूपोपणात् ।
 तेन सर्वशिवो जन्मपुराय स्कथित मया ।३४।
 दाक्षायणीवियोगाच्च जटाजूटेन विस्तरात् ।
 यदप्यस्मिन्स्तकाच्च शिवस्य परमात्मनः ।
 बीरभद्रेति विख्यातो यक्षयज्ञविनाशनः ।३५।

इस तरह से भगवान् शिव के हो ध्यान में परामर्श हुए उसकी
 प्राप्ति सनात हो गई थी । इस लोक में ज्ञानियों को और पशुओं को भी
 भगवान् शिव सुलभ हो जाया करते हैं । परम सुख की प्राप्ति के लिए
 सती-माँति सेवन करने के लिए एक ही भगवान् सदाशिव हैं । शिव-
 रात्रि के एक दिन के ही उपवास करने से परम उत्तम ज्ञान इसने प्राप्त
 कर लिया था और उस ज्ञान से ही सभी कुछ प्राप्त कर लिया था ।
 समस्त प्राणियों में समानता का भाव निरन्तर सर्व भूतात्मकता का
 ज्ञान प्राप्त करके फिर केवल भगवान् सदाशिव को प्राप्त कर लिया था ।
 ।३६।३०।३१। कहीं पर भी भगवान् शिव के बिना यहाँ पर कुछ भी
 कोई वस्तु नहीं है । इस प्रकार से पूर्ण प्रपञ्च से रहित
 दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति किया करता है । उस समय में ज्ञान प्राप्त
 करने वाला राजा भगवान् शिव का वत्सल्य हो गया था ।३२।३३।
 केवल शिवरात्रि के दिन का उपवास करने ही से वह सायुज्यता स्वरूप
 वाली मुक्ति को प्राप्त हो गया था । पहिले जो मैंने वरुण किया था वह
 ज म उसने भगवान् शिव से ही प्राप्त किया था । दाक्षायणी सती प्रजा-

पति दक्ष की पुत्री के वियोग से जेटाजूट के द्वारा परम विस्तार वाले परमात्मा शिव के मस्तक से जो समुत्पन्न हुआ था जो प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाला था वह 'वीरभद्र'—इस शुभ नाम से विख्यात हुआ था । ३४।३५।

शिवरात्रिव्रतेनैव तारिता बहवः पुराः ।

प्राप्ताः सिद्धिं पुरा विप्राभरताद्याश्चदेहिनः । ३६।

मान्धाता धुम्धुमादिश्च हरिश्चन्द्रादयो नृपाः ।

प्राप्ताः सिद्धिमनेनैव व्रतेनपरमेणहि । ३७।

ततो गिरीशो गिरिजासमेतः

क्रीडाम्बितोऽसौ गिरिराजमस्तके ।

द्युतं तथैवाक्युतं परेशो युवतो

भयन्या स भृशं चकार । ३८।

हे विप्रवृन्द ! पुरातन समय में देहवागी भरत प्रभृति बहुत से लोग इस शिवरात्रि के व्रत से ही परम सिद्धि को प्राप्त हुये थे और तारित हो गये थे । मान्धाता, धुम्धुमारि और हरिश्चन्द्र आदि नृप इसी परमोत्तम व्रत से ही सिद्धि को प्राप्त हुये थे । इसके अनन्तर गिरिजा के सहित भगवान गिरीश गिरिराज कैलास की शिखर पर क्रीडाम्बित हुये थे । भवानी के साथ संयुक्त होकर परेश भगवान शम्भु ने वशों से युक्त द्युत अत्यधिक रूप से किया था । ३६।३७।३८।

१७—दानभेद प्रशंसा वर्णन

वतस्त्वहं चिन्तयागि कथं स्थानमिदं भवेत् ।

ममयत्तं यतो राज्ञांभूभिरेपासदा वये । १।

यत्त्वहं धर्मवर्माणं गत्वा याचे ह मेदिनीम् ।

अर्पयत्येव सच मे याचितो न पुनः नरः । २।

तथा हि मुनिभिः प्रोक्तं द्रव्यं त्रिविधमुत्तमम् ।

शुक्लमध्यमवशवलमधमंकृष्णमुच्यते । ३।

ध्रुतेः संपादनाच्छिष्यात्प्राप्तं शुक्लं चकन्यवा ।

तथाकुसोददागुज्यकृपियाचतमेवख ॥४॥

शवलं प्रोष्यते सदिमचूतचौर्येण साहसैः ।

व्यजेनोपाजितं यच्च तत्कृष्णसमुदाहृतम् ॥५॥

शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्याच्छ्रद्धयाश्रितः ।

तीर्थपात्रं समासाद्य देवस्त्वे तत्समश्नुते ॥६॥

राजसेन च भावेन वित्तेन शवलेन च ।

प्रदद्याद्दानमर्थिभ्यो मानुष्यत्वे तदश्नुते ॥७॥

देवर्षि नारदजी ने कहा - इसके उपरान्त 'मैंने सोचा कि यह स्थान किस प्रकारसे मेरे अधीन होवे । क्योंकि यह भूमि ' तो सदा राजाओं के वश में रहा करती है । यदि मैं धर्म धर्मों के समीप में समुपस्थित होकर इस भेदिनी की याचना करूँ तो मेरे द्वारा याचना किया हुआ वह मुझे अर्पण कर दिया करेगा । पुनः पर वहीं है ॥१२॥ उसी प्रकार से मुनिवर्गों ने कहा है कि तीन प्रकार का द्रव्य उत्तम होता है— शुक्ल, मध्य, शवल, । प्रथम द्रव्य कृष्ण हुआ करता है ॥३॥ श्रुति के सम्पादन से शिष्य से और कन्या के द्वारा जो प्राप्त होता है वह शुक्ल द्रव्य हुआ करता है । कुसीद (व्याज), वाणिज्य, कृषि और वाचित किया हुआ जो द्रव्य होता है वह शवल द्रव्य कहा जाया करता है जिसे सत्पुरुष ऐसा ही बतलाया करते हैं । धन के द्वारा, और धर्म से, साहस पूर्ण धर्म के द्वारा और व्याज से उपाजित द्रव्य होता है, वह कृष्ण द्रव्य कहा गया है ॥४॥ अन्ध से सम्पन्न जो पुरुष शुक्ल धन से धर्म किया करता है और तीर्थ पात्र को प्राप्त करने जो धर्म किया जाता है उसको देवत्व भाव उपभोग किया करता है । राजस भाव से और शवल धन के द्वारा याचकों के लिए दान दिया करता है उसका मानुष्यत्व में उपभोग किया करता है ॥६॥

तमोवृषस्तु यो दद्यात्कृष्णवित्तेमानवः ।
 तिर्यंकवत्वेतत्फलं प्रेत्यसमश्नातिनराधमः । १८।
 तत्तु याचितद्रव्यं मे राजसं हि स्फुटं भवेत् ।
 अथ ब्राह्मणभावेन नृपं याचेप्रतिग्रहम् । १९।
 तदप्योच्चातिकष्टं हेतुना तेन मे मतम् ।
 अयं प्रतिग्रहो घोरोमघ्वास्वादोविषोपमः । २०।
 प्रतिग्रहेण संयुक्तं ह्यमोवमाविशेद्द्विजम् ।
 तस्मादहं निवृत्तश्चपापादस्मात्प्रतिग्रहात् । २१।
 ततः केनाप्युपायेन द्वयोरभ्यतरेण तु ।
 स्वापत्तं स्थानकं कुम्भं एतत्सञ्चितये मुहुः । २२।
 यथा कुभायः पुरुषश्चिन्तान्तं न प्रपद्यते ।
 तथैव विमृशश्चाहं चिन्तान्तं न लभाम्यणु । २३।
 एतस्मिन्मररे पार्थ स्नातुं तत्र समागताः ।
 बहवो मुनयः पुण्ये महोसागरसङ्गमे । २४।

तमोगुण से प्राप्त होकर जो मानव कृष्ण द्रव्य से दान किया करता है वह नराधम तिर्यक्, योनि में जाकर ही उसके फल की प्राप्ति किया करता है । वह मेरे द्वारा याचना किया हुआ द्रव्य स्फुट रूप से राजस ही होगा । इससे अनन्तर ब्राह्मण भाव से राजा से प्रतिग्रह की याचना करे । किन्तु उम हेतु से मेरे लिए वह भी भयान्त कष्टदायक है । यह प्रतिग्रह भी भयान्त घोर ही है जो मधु का आस्वाद विष के समान ही है जो प्रतिग्रह से संयुक्त द्विज, के अन्दर अमृत की भाँति प्रवेश कर जाया करता है । इसीलिए मैं तो इस प्रतिग्रह के पाप से निवृत्त होता हूँ । इसीलिए मैं बार-बार सोचता हूँ कि इन दोनों में से किसी भी एक उपाय के द्वारा इस स्थान को स्वायत्त अर्थात् अपने अधीन में रहने वाला बना लूँ । १८-२२। जिस प्रकार से बुरी माय्या वाला पुरुष कभी भी अपने हृदय में स्थित बिम्बा का अन्त नहीं प्राप्त किया करता

है उसी प्रकार से विचार-विमर्श करता हुआ भी मैं चिन्ता को एक क्षणमात्र भी अन्त नहीं प्राप्त कर रहा हूँ। हे पार्य ! इसी बीच में बहुत से मुनिगण उस पुष्पमय मही-सागर के सङ्गम में वहीं पर स्नान करने के लिए समागत हो गये थे । १२।१४।

अहं तानब्रुवं सर्वान्कुतो यूय समागता ।
 ते मामूचुः प्रणम्याथ सौराष्ट्रविषयेमृते ॥ १५ ॥
 धर्मवर्मेति नृपतियोऽस्य देशस्य भूपतिः ।
 स तु दानस्य सत्त्वार्थतिपेवर्षगणान्वहन् ॥ १६ ॥
 ततस्तं प्राह खे वाणी श्लोकमेकं नृप शृणु ।
 द्विहेतु पडघिष्ठान पडगं च द्विपाकयुक् ॥ १७ ॥
 चतुः प्रकारं त्रिविधं विनाश दानमुच्यते ।
 इत्येकं श्लोकमाभाष्य खेवाणो विररामह ॥ १८ ॥
 श्लोकस्यार्थं नावभाषे पृच्छमानाऽपि नारद ।
 ततो राजा धर्मवर्मा पटहेनान्वधापयत् ॥ १९ ॥
 यस्तु श्लोकस्य चेवास्य लब्धस्य तपसामया ।
 करोति सम्यग्वास्यायंतस्मै नृणां दाम्यहम् ॥ २० ॥
 गर्वा च सप्त नियुयं सुवरांतावदेवतु ।
 आजग्मुर्वहुदेशीया ब्राह्मणाः कोटिशो मुने ॥ २१ ॥

उन सबसे मैंने पूछा था कि आप सब लोग कहीं ॥ समागत हुए हैं ? तब उनमें प्रणाम करके मुझसे कहा था—हे मुने ! सौराष्ट्र देश में धर्म वर्मा नाम वाला एक राजा है जो कि इस देश का भूपति है । वह दान के तत्व का भर्षा है और बहुत से वर्षों तक उसने तरुधर्मा की थी । इसके पडनात् आकाश में होने वाली वाणी ने उससे कहा था—हे नृप ! एक श्लोक का अवलोकन करो, दो हेतु वाला, छँ अविष्टानों से युक्त, छँ भङ्गो वाला, दोषोंको से युक्त, चार प्रकार का, तीन किस्मों वाला तथा तीन तरह के नाशों से समन्वित दान कहा जाया करता है—

इस एक श्लोक को कहकर वह आकाश में होने वाली घाणी विरत हो गई थी । १५—१८। हे नारद ! पूछी गई थी उसने इस श्लोक का अर्थ उसने नहीं कहा था । इसके पश्चात् उस धर्म वर्म, राजा ने पटह की ध्वनि के साथ यह घोषणा कर दी थी कि जो कोई भी विद्वान् मेरे द्वारा तपस्या से प्राप्त इस श्लोक का अच्छी तरह से व्याख्या करेगा उसको मैं ऐसा दान दूंगा जिससे सात नियुक्त गीर्वाणों की उतना ही सुवर्ण भी होगा । जो विद्वान् इस श्लोक की उगमना भली-भाँति कर देगा उसको मैं सात ग्राम दूंगा । १९। २०। २१।

पटहेनेति नृपतेः श्रुत्वा राज्ञो वचो महत् ।
 आजग्मुर्बहुदेशीयाब्राह्मणाः कोटिशो मुने । २२।
 पुनर्दुर्बोधविन्यासः श्लोकस्तैर्विप्रपुङ्गवैः ।
 आख्यातुं शक्नवते नैव गुडो मूकैर्यथा मुने । २३।
 वयं च तत्र याताः स्मो धनलोभेन नारद ।
 दुर्वोधत्वाद्गमस्कृत्यश्लोकचात्रसमागताः । २४।
 दुर्बोध्यैश्च स्वयं श्लोको धनं लभ्य न चैव नः ।
 तोर्यमात्राकथयामीत्येवाचित्यात्रवागताः । २५।
 एवमात्मानुतेपातुवचः श्रुत्वा महत्तमनाम् ।
 अतीव सप्रहृष्टोऽहं तांस्त्रिभुव्यस्त्यचिन्तयाम् । २६।
 अहो प्राप्त उपायो मे स्थानप्राप्तीनसंशयः ।
 श्लोकव्याख्याय नृपते लप्स्ये स्थानधनं तथा । २७।
 विद्यामूल्येनैव च याचितः स्यात्प्रतिग्रहः ।
 सत्यमाह पुराणपिर्वा मुदेवो जगद्गुरुः । २८।

पटह के द्वारा राजा के इस महान् वचन का श्रवण करके हे मुनिवर ! बहुत से देशों के करोड़ों ब्राह्मण वहाँ पर समागत हो गये थे, किन्तु उन विप्र श्रेष्ठों के द्वारा वह श्लोक दुर्बोध विन्यास वाला हो गया था अर्थात् वह श्लोक उनके शुद्ध ज्ञान के द्वारा व्याख्यात नहीं हो

सका था । हे मुने ! जिस तरह से कोई मूँचा पुरुष गुट के स्वाद का वरुण नहीं कर सकता है उसी भाँति वे उस दलोक की व्याख्या नहीं कर सके थे । हे नारद ! हम भी वहाँ पर उस विशाल धन के तोम से गये थे किन्तु उस दलोक की भाने तुच्छ ज्ञान की सीमा से बाहर होने के कारण नमस्कृत करके व पित्त यहाँ पर चले आये हैं । क्योंकि वह दलोक बहुत ही कठिनाई से व्याख्या करने के योग्य है मतएव वह धन प्राप्त करने के योग्य ही नहीं है । पय तीर्थों की यात्रा को कैसे जावे । यही विचार करके यहाँ पर समागत हो गये हैं । इस प्रकार का उन महात्माओं का यह फाल्गुन वचन सुनकर मैं घबरात ही प्रसन्न हुआ था और मैंने उनको छोड़कर यही विचार किया है कि बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि मैंने स्थान की प्राप्ति के विषय में अब उपाय प्राप्त कर लिया है—अब इसमें कुछ भी सशय नहीं है । इस दलोक की व्याख्या करके मैं अब राजा से धन और स्थान प्राप्त कर लूँगा । यह विद्या के मूल्य के द्वारा ही सब प्राप्त हो जायगा और याचित यह किमी प्रकार भी नहीं होगा । इस प्रकार यह प्रतिषद् नहीं होगा । जगत् के कुछ पुराणों के ऋषि वासुदेव ने यह सर्वथा वस्थ ही कहा है । १२-२८।

धर्मस्य मत्स्यप्रदास्यान्न च सा नैव पूर्यते ।
पापस्य मत्स्यप्रदास्यान्न च साविनपूर्यते । १२।
एवं विचिन्त्यविद्वांसः प्रकुर्वन्ति यथाशुचि ।
सत्यमेतद्विप्रोर्वाच्यं दुर्लभोऽपि यथाहिमे । १३।
मनोरथेऽयं संकल्पः संभूतोऽकुरितः स्फुटम् ।
एतं च दुर्विद्वन्लोकमहं जानामि स्फुटम् । १४।
अमूर्तः पितृभिः पूर्वमेव ख्यातो हि मे पुरा ।
एवं हर्षो विस्तः पापैश्च निरयाऽहं ततो मुहुः । १५।
प्रणम्य तीर्थं च ततो महोत्तामरसंगमम् ।
पृथुप्राज्ञान्स्पृष्ट्वा ततोऽहं यागयान्ताम् । १६।

इदं भक्षितयानस्मि श्लोकव्याख्यां नृप शृणु ।

यतो पटहविख्यातं दानञ्च प्रगुणीकुरु । ३४।

एवमुक्ते नृपः प्राह प्रोचुरेवं हि कोटिशः ।

द्विजोत्तमाः पुनर्नास्य प्रोवतुमर्था हिशवयते । ३५।

धर्म के विषय में जितकी श्रद्धा होती है वह कभी पूर्ण नहीं की जाया करती है और जिनकी पाप कर्म करने की श्रद्धा ठीका करती है वह भी पूरी नहीं की जाया करती है । इस प्रकार से विशेष विस्तार करके विद्वान् पुरुष अपनी रुचि के ही अनुसार किया करते हैं—यह विष्णु का वाक्य पूर्णतया सत्य ही है जैसा कि मुझे यह दुर्लभ भी है । यह मेरा मनोरथ पूर्णतया सफल हो गया है और अब यह स्फुट रूप से अङ्कुरित भी हो गया है । यह श्लोक यद्यपि दुर्लभ है तथापि मैं इसकी स्फुट रूप से जानता हूँ । बिना मूर्ति वाले पितृगणों ने पहिले पुराने समय में मुझे इसको बतनाया था । हे पार्थ ! इस प्रकार से बड़े ही हर्ष से समन्वित होते हुए मैंने सचिन्तन करके इसके अनन्तर मैंने फिर तीर्थ को प्रणाम किया था जोकि मही सागर सङ्गम था । मैं वहाँ से रवाना हो गया था । फिर मैं एक परम वृद्ध ब्राह्मण के रूप को धारण करके नृप के समीप में गया था । मैंने वहाँ पर पहुँच कर इस तरह से कहा था—हे नृप ! अब आप उस श्लोक को व्याख्या का प्रवण कीजिए । आपने जो पटह के द्वारा लोक में घोषणा करके विख्यात किया है उस दान को प्रगुणित कीजिए । इस तरह से मेरे कहने पर उस राजा ने कहा था—इसी तरह से करोड़ों ब्राह्मणों ने मुझसे कहा था । हे द्विजोत्तमो ! किन्तु इस श्लोक का अर्थ नहीं कहा जा सकता है । ३६-३५।

के द्विहेतूपडाख्यात न्यधिष्ठानानिष्ठानिच ।

कानिचैवषडङ्गानिकोद्वोपाकोतथास्मृतोः । ३६ः

केच प्रकाराश्चत्वारः किंस्वित्त्रिविधद्विजः ।

त्रयोनाशाश्चक्रेप्रोक्तादानस्यैतत्स्फुटं वद ॥३७॥

ततो गवा सप्तनियुतं सुवर्णं तावद्वदतु ॥३८॥

सप्तग्रामाश्च दास्यामि नो चेद्यास्यसि स्वगृहम् ।

इत्युक्तवचनं पार्थ सौराष्ट्रस्वामिनं नृपम् ॥ ३९॥

धर्मदर्मार्णमस्त्वेवं प्रावोचमवघादय ।

इलोकव्याख्यां स्फुटां वक्ष्ये दानहेतुचतौ शृणु ॥४०॥

अल्पत्वं वा बहुत्ववादानस्याभ्युदयावहम् ।

श्रद्धाशक्तिश्च दानानां वृद्ध्यक्षयकरेहि ते ॥४१॥

तत्र श्रद्धाविषये इलोका भवन्ति ।

कायवलेषीश्च बहुभिनं चैवाऽयं स्थ रशिभिः ॥४२॥

धर्मः स पाप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाः धर्मोऽद्भुतं तपः ।

यद्वा स्वयंश्च मोक्षश्च यद्वा सर्वमिदं जगत् ॥४३॥

वे दो हेतु कौन से है और छे कहे हुए वे अधिष्ठान कौन हैं ? छे भङ्ग कौन से होते हैं तथा वे दो पाक कौन से बनाये गये हैं ? वे चार प्रकार कौन होते हैं ? हे शत्रु ! क्या वह तीन प्रकार के हैं ? तीन नाश कौन से बतलाये गये हैं जो दान के हुमा करते हैं—यह सब आप मेरे सामने स्फुट रूप से बतलाइये । हे बाह्याण देव ! इन सात प्रश्नों को यदि आप बिल्कुल स्पष्ट रूप से कह देंगे तो फिर सात नियुत गोयें और उनना ही सुवर्ण तथा सात ग्राम मैं अवश्य ही आपको दे दूंगा । यदि ऐसा नहीं होगा तो आप अपने घर को चले जायेंगे । इस तरह ही इन वचनों को कहने वाले, सौराष्ट्र के स्वामी धर्म वर्मा नृप से मैंने कहा है पार्थ ! मैंने कहा था—ऐसा ही होगा, अच्छा अब आप अवधारण करिये मैं इस इनोक्त की व्याख्या को बहुत सुस्पष्ट रूप से कहूंगा—उन दोनों दान के हेतुओं का सुनिये—दान का अल्पत्व हो या बहुत्व हो पर्याप्त या न हो छोटा—सा हो या बहुत बड़ा हो इसके अभ्युदय भर्तृ होते हैं । यद्वा और शक्ति ये दोनों ही दानों की वृद्धि एवं क्षय करने

वाली हुमा करती है । वहाँ पर श्रद्धा के विषय में श्लोक है—बहुत से कार्य क्लेशों के द्वारा और घन की राशियों के द्वारा परम सूक्ष्म धर्म से प्राप्त किया जाता है । श्रद्धा ही धर्म और श्रद्धा ही अद्भुत तप है । श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है । यह संपूर्ण जगत् श्रद्धा ही है । ३६।४३।

सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धया यदि ।

नाप्नुयात्सफलं किञ्चिच्छ्रद्धयानस्ततो भवेत् । ४४।

श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्य राशिभिः ।

अकिञ्चना हि मुमयः श्रद्धावन्तो दिवंगताः । ४५।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सास्वभावजा ।

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु । ४६।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ।

प्रेतान्भूतपिशाचांश्च यजन्ते तामसा जनाः । ४७।

तस्माच्छ्रद्धावता पात्रे दत्तं न्यायार्जितं हियत् ।

तेनैव भगवान् रुद्रः स्वल्पकेनापि तुष्यति ।

शक्तिविषये च श्लोका भवन्ति : ४८।

कुटुम्बभुक्तवसनाद्देयं यदातिरिच्यते ।

मध्यस्वादो विषं पश्चादातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत् । ४९।

अपना सर्वस्व और जीवन भी यदि कोई अश्रद्धा से दान कर देता है तो वह कुछ भी फल प्राप्त नहीं किया करता है । अतएव यह परम आवश्यक है कि श्रद्धा वाला होवे । धर्म की साधना श्रद्धा से ही की जाया करती है । महान घन की राशियों से धर्म साध्य कभी नहीं हुमा करता है । मुनिगण अकिञ्चन हुमा करते हैं किन्तु श्रद्धावान होने के ही कारण से वे सब दिव लोक को प्राप्त हुए हैं । देह धारियों की वह श्रद्धा स्वभाव से ही समुत्पन्न तीन प्रकार की हुमा करती है । एक सात्त्विकी श्रद्धा होती है, दूसरी राजसी और तीसरी तामसी हुमा करती है । उसका भव अवलोक करो । ४४।४५।४६। सात्त्विकी श्रद्धा वाले

सात्विक पुरुष देवों का यजन किया करते हैं । राजस लोग यज्ञ और राक्षसों का यजन करते हैं और जो तामस जन होते हैं वे प्रेत-भूत और पिशाचों का यजन किया करते हैं । इसीलिए श्रद्धा में युक्त पुरुष के द्वारा न्याय से सर्वाङ्गित धन का पात्र में जो दान किया गया है उससे ही पाहे वह बहुत ही स्वल्प ही नवों न हो भगवान् रुद्र परम तुष्ट हो जाया करते हैं । यहाँ तक तो धन के विषय में बतलाया गया है अब शक्ति के विषय में भी श्लोक हैं—कुटुम्ब के भोजन और वस्त्र से अधिक प्रतिरिक्त देव हो पीछे यधु का पास्वाद करना विष के समान ही होता है अथवा दाता का धर्म होता है । १४७।४८।४९।

शक्ते परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
मध्वापानविषादः स धर्माणां प्रतिरूपकः । १५०।
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदकं जीवतोऽस्पृष्टस्य च । १५१।
सामान्यं याचितन्यासमाधिर्दाराश्च दर्शनम् ।
अन्वाहितचनिक्षेपः सर्वस्वचान्वसेयति । १५२।
आपस्वपि न देयानि न वस्तूनि पण्डितैः ।
यो ददाति समूहात्माप्रायश्चित्तीयतेनरः । १५३।
इति ते गदितो राजर्षो हेतु श्रूयतामतः ।
अधिष्ठानानि वक्ष्यामि पण्डितैस्तु तान्पि । १५४।
धर्ममर्थं च कार्यं च ग्रीहाहपभयानि च ।
अधिष्ठानानि दानानां पठेतां प्रचक्षते । १५५।
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम् ।
केवलं धर्मबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते । १५६।

अपने जनों के दुःख से पूर्ण जीवन यापन करने पर भी जो शक्त दूसरे जनों का दाता होता है तथा मध्वापान के विषय का यदन करने का होता है वह धर्मों का प्रति रूपक हुआ करता है । १५०।

मृत्यो के उपरोध से जो धीर्ध्वं दैहिक कृत्य किया करता है वह इसके जीवित रहते हुए और मृत हो जाने पर भी सुखोदक ही हुषा करता है अर्थात् उससे किसी भी दशा में सुख प्राप्त नहीं होता है । १२१। सामान्य, याचित, न्यास, धाधि, दाग, दर्शन, धन्वाहित, निक्षेप और सर्वस्व सन्वय के होने पर पण्डितों के द्वारा जब वस्तुओं को आपत्ति काल के समयों में भी नहीं देनी चाहिये । जो दे देता है वह महान मूढ़ प्रात्मा वाला है और ऐसा मनुष्य प्रायश्चित्त करने का अधिकारी हो जाया करता है । हे राजन् ! ये दो हेतु हमने आपको बतला दिये हैं । इसके उपरान्त अब अधिष्ठानों के विषय में आप श्रवण कीजिये । वे अधिष्ठान धर्म ही होते हैं उनको मैं बतलाऊँगा । उन्हें भी सुनिये । १२२। १२३। १२४। धर्म, धर्म, काम, कीडा, हर्ष और मय ये छह दानों के अधिष्ठान कहे जाया करते हैं । सुयोग्य पात्रों के लिए बिना किसी प्रयोजन की अपेक्षा किये हुए जो निरर्थ ही केवल धर्म बुद्धि से दान दिया जाता है वह धर्म दान नाम से पुकारा जाता है । १२५-१२६।

घनिनं घनलोभेन लोभयित्वाऽथ माहरेत् ।
तबन् दानमित्याहुः कामदानमतः शृणु ॥ १२७॥
प्रयोजनमपेक्षयैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ।
धनर्हेषु सरागेण कामदानं तदुच्यते ॥ १२८॥
ससदिब्रीडयाऽऽश्रुत्यमविम्यः प्रददाति च ।
प्रतिदीयते च यद्दानब्रीडादानमिति श्रुतम् ॥ १२९॥
दृष्ट्वा प्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते ।
हर्षदानमिति प्रोक्तं दानं तद्धर्मेचितकः ॥ १३०॥
आक्रोशानर्थं हिसाना प्रतीकाराय यद्भवत् ।
दीयतेऽनुपकृतृभ्यो भयदानं तदुच्यते ॥ १३१॥
प्रोक्तानि षडधिष्ठानाग्न्याग्न्यापि च वटं च्युतुः ।
दाताप्रतिग्रहीताच शुद्धिर्देयं च धर्मयुक् ॥ १३२॥

किसी धनी पुरुष को धन के मोक्ष से सान्ध में डालकर जो धर्म का आह्वान किया जावे वह "धर्म दान"—इस नाम से कहा जाता है । इसके उपरान्त मे काम धन के विषय मे श्रवण कीजियेगा । प्रयोजन की अपेक्षा करके प्रसङ्ग से जो दान किया जाता है और वह भी राग के सहित घट्टता से शून्य पुरुषों को दिया जावे वही दान कामदान कहा जाता करता है । १५७।५८। किसी संसद में छोटा से प्रतिष्ठा करके जो धर्मियों के लिए दान या धन दिया जाता है और प्रतिदान किया जाता है वही दान छोटा दान कहलाना है । १५९। प्रिय वस्तुओं को देखकर या परम प्रिय वस्तु एवं मनुष्यों को देखकर हर्ष-वान् होकर जो प्रदान किया जाता है उस दान को धर्म चिन्तकों के द्वारा हर्षदान कहा जाता है । अकोश, मनर्ष और हिंसा के प्रतिहार के लिए जो मनुष्यादि के लिए दान दिया जाता है वह धर्म दान कहा जाता करता है । ये ही छंद अधिष्ठान कहे गये हैं । अब इसके छंद भगों का भी श्रवण करिये । दानदान, दान का प्रतिग्रहीता, शुद्धि, धर्मयुक्, देय, देश और काल ये छंद दानों के छंद भग जान लेने चाहिये ।

१६०।६१।६२।

देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानिपठ्विविदुः ।

अपरोगीचधर्मात्मादित्सुरव्यसनः शुचिः । ६३।

अनिद्याजोवकर्मा चपट्भिर्दाताप्रयस्यते ।

अनृजुश्चाश्रद्धानोऽशांतात्माघृष्टभीरुकः । ६४।

असत्यसन्धो निद्रालुर्दाताऽयंतामसोऽधमः ।

त्रिशुबलः कृशवृत्तिश्चघृणालुः सकलेन्द्रियः ।

विमुक्तो योनिदोगेभ्यो ब्राह्मणपात्रमुच्यते । ६५।

सौमुह्यवादभिसंप्रीतिरयिना दशने सदा ।

सत्कृतिश्चानसूया च सदा शुद्धिरितिस्मृता । ६६।

अपराधाधमक्लेश स्वयत्नेनाजित धनम् ।

स्वल्पं वा विपुलंवापिदेयमित्यभिधीयते । ६७।

तेनापि किल घर्मण उद्दिश्य किञ्च किञ्चन ।

देयं तद्धर्मयुगिति द्यूग्येद्यूग्यं फलं मतम् ।६८।

न्यायेन दुर्लभं द्रव्यं देशे कालेऽपिवापुनः ।

दानाहीदेशकालोत्तोस्यातांश्चेष्टोनचाग्यथा ।६९।

पण्डगानीतिचोक्तानिद्वौ चपाकायतः शृणु ।

द्वौपाकीदानञ्चोप्राहुः परत्राज्यत्विहोच्यते ।७०।

अनरोगी, घर्मात्मा, दिव्य (देने की इच्छा वाला) अश्वत्थन (धर्मनों से रहित), शुचि, अनिष्ट अजीविका के कर्म वाला—इन छौ बातों से बना प्रशस्त हुपा करता है। असरत, श्रद्धा से रहित, अज्ञान्त आरमा वाला, धूर्तों सहित, भीषक, असत्य सन्ध्या (प्रतिज्ञा) वाला, निर्बन्धी ऐसा दाता तामस और अधम हुमा करता है। निशुक्ल, कुशवृत्ति, घृणालु, समस्त इन्द्रियों वाला, योगि से विमुक्त जो ग्राह्य होता है वही पात्र कहा जाया करता है। ६९। ६४। ६५। सौमुख्य होने से अग्नि सम्प्रीति जो अग्नियों के दर्शन में सदा ही होती है, सत्कार, मन-सूया जब होती हैं तभी शुद्धि कही गई है। अग्नि वाधा से रहित, क्लेश से हीन, अपने ही यत्नों के द्वारा उपाजित जो धन है वह चाहे स्वयं हो या विपुल (अधिक) हो, वही देयम् इस नाम से कहा जाता है वही भी किसी धर्म के द्वारा उद्दिश्य करके जो कुछ भी देय होता है। वही देय धर्म युक्त होता है और जो द्यूग्य होता है उसमें फल भी द्यूग्य हो माना गया है। न्याय से देश और काल में भी द्रव्य दुर्लभ होता है। दान के योग्य वे दोनों देश और काल परम श्रेष्ठ होते हैं वे दोनों अग्यथा नहीं होने चाहिये। ये छौ अंग बतला दिए गये हैं। अब इससे आगे दो पाकों के विषय में श्रवण करिये। दान से समुत्पन्न होने वाले दो पाक कहे गये हैं जो परलोक में होते हैं यहाँ कहे जाते हैं।

सदम्यो यद्दीयते किञ्चित्त्परयोपतिष्ठति ।
 अस्तसु दीयते किञ्चित्दानमिह भुज्यते ॥७१॥
 द्वोपाकावितिनिदिष्टोप्रकारांश्चतुरा । शृणुः ।
 ध्रुवमाहुस्त्रिकं काम्यं नैमित्तिकमतिक्रमात् ॥७२॥
 वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्थो वण्यं ते द्विजैः ।
 प्रपारामतद्वागादिसर्वकामफलं ध्रुवम् ॥७३॥
 तदाहुस्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिनेदिने ।
 अपर्यविवर्जयंश्चैश्वरीवालायं प्रदीयते ॥७४॥
 इच्छासंस्थं च यद्दानं काम्यमित्यभिधीयते ।
 कालापेक्षं क्रियापेक्षं गुणपेक्षमिति स्मृतौ ॥७५॥
 त्रिधानैमित्तिकं प्रोक्तं सदाहोमविवर्जितम् ।
 इति प्रोवृत्ताः प्रकारास्तेन विध्यमभिधीयते ॥७६॥
 अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यमाधिविधानतः ।
 कानीयसानि क्षेपाणि त्रिविधरवमिदं विदुः ॥७७॥

सत्पुरुषों के लिए जो कुछ भी दान किया जाता है वह परलोक में उपस्थित होता है और भक्तपुरुषों में जो कुछ भी दिया जाया करता है वह दान यहाँ पर ही भोग लिया जाया करता है । इस तरह से ये दो पाक निश्चित किए गये हैं । अब इसके चार जो प्रकार होते हैं उनका अवलोकन कीजिए । ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक—इस क्रम से चार तरह का होता है । यह वैदिक दान मार्ग द्विजों के द्वारा चार प्रकार से वर्णित किया जाता है । प्रपा (व्याक), प्रपाराम (उद्यान) और तद्वाग आदि यद्यपि सर्व काम फल ध्रुव होता है । जो दिन-दिन से दिया जाया करता है तथा असत्य, विजय, ऐश्वर्य, स्त्री और बालकों के लिए दिया जाता है । अपनी इच्छा में संस्थित रहने वाला जो दान है वह काम्य कहलाता है । कालापेक्ष, क्रियापेक्ष और गुणपेक्ष ये स्मृति में तीन प्रकार का नैमित्तिक दान बताया गया है जो सदा होम से

दिव्यजित होना है । इस तरह से ये प्रकार बहे गये हैं जिनके तीन प्रकार के कहे गये हैं । उसके तीन प्रकार इस तरह से हैं—प्राठ उत्तम हैं, धाविनिधान से चार मध्यम हैं और शेष कनिष्ठ होते हैं । ७१—७७।

गृहप्रासादविद्याभूगोकूपप्राणाहाटकम् ।

एताग्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः । ७८।

अन्नारामं च वासांसिहयतप्रभृतिवाहनम् ।

दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः । ७९।

उपानच्छत्रपात्रादिदधिमध्वासनानि च । ८०।

दीपकाष्ठोपलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ।

इति कानीयसान्यहुर्दाननाशत्रयं शृणु । ८१।

यद्दत्त्वा तप्यते पश्चादासुरं तद्व्या मतम् ।

अथदद्या यद्दाति राक्षसं स्यद्वयंवत् । ८२।

यज्ञाऽऽकृश्यददात्यगदत्त्वाचक्रोशतिद्विजम् ।

पैशाचंतद्व्या दानं दानानाशास्त्रयस्त्वमी । ८३।

इति सप्तपदेर्वेदं दानमाहात्म्यमुत्तमम् ।

शक्त्या ते कीर्तितं राज्ञसाधुवाऽसाधु वा वद । ८४।

गृह, प्रासाद, विद्या, भूमि, गो, कूप, प्राण, हाटक—ये उत्तम द्रव्य के दान से उत्तम दान हुमा करते हैं । अन्न, आराम, वस्त्र, मश्व प्रभृति वाहन—ये सब दान मध्यम द्रव्य के दान होने के कारण से मध्यम दान बहे जाते हैं । उपानव (जूता), छत्र (छाता), पात्र आदि, दधि, मधु, आसन, दीप, काष्ठ, उपल प्रभृति बहु धार्मिक चरम श्रेणी के दान हैं । इसीलिए ये सब दान कनिष्ठ कहे जाते हैं । हम तीन दानों के नाशों का ध्यान करो । जिसको दान में देकर पीछे से हृदय में ताप किया जाता है वह आसुर दान कहा गया है और वह वृथा ही माना गया है । जो अथदा से दिया जाया करता है वह राक्षस दान होता है । यह भी वृथा ही हुमा करता है । जिसको आक्रोश करके

दिया जाता है और जो देकर फिर द्विज को कोशा जाया करता है । वह पेशाच दान होखा है और यह भी दान वृथा ही हुआ करता है अर्थात् फल से सर्वथा शून्य माना जाया करता है । ये तीन दानों के नाश होते हैं अर्थात् दिये हुए दानों को फलों से शून्य बना देने वाले हुआ करते हैं । हे राजन् ! इस प्रकार से तुम्हारे सामने कीर्तित कर दिया गया है । यह साधु है धर्मका प्रमाधु है—यह भाव शतवाइये १७८—८५।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।

अद्य ते कृतकृत्योऽस्मि कृतः कृतिमतां वर । ८५।

पठित्वासकलं जन्ममह्यचारीयथा वृथा ।

बहुक्लेशात्प्राप्तभार्यः सावृथाऽप्रियवादिनी । ८६।

बलेशेनकृत्वा कूपं वा सच क्षारोदकोवृथा ।

बहुक्लेशीजंश्म नीतं विनाधर्मं तथावृथा । ८७।

एवं मे यद्वया नाम जातं तत्सफलं त्वया ।

कृतं तस्मात्तमस्तुभ्यं द्विजेभ्यश्च भो नमः । ८८।

सत्प्रमाह पुरा विष्णुः कुमारारिविष्णुसत्पति ।

नाहं तथापि यजमानहोविवितान-

श्च्योतद्धृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन । ८९।

यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुयास

तुष्टस्य मय्यपहितैर्निजकर्मचारैः । ९०।

तत्प्रमाश्रमं वापि यद्विप्रैर्व्यप्रियं कृतम् ।

सर्वस्य प्रभवो विप्रास्तत्त्वमंतां प्रसादये । ९१।

एवंच कोऽसिनसामाभ्यः प्रणम्याहं प्रसादये ।

आत्मानं कृपापयमुनेप्रोक्तस्नेह्यन्नवंतदा । ९२।

धर्मं वर्मा ने कहा—हे कृतिमानों मैं परम श्रेष्ठ ! आज मेरा जन्म सफल हो गया है और आज ही मेरा किया हुआ तप भी फल युक्त हो गया है । आज आपके द्वारा मैं पूर्ण तपा कृत-कृत्य हो गया है ।

यमस्त पदकर एक ब्रह्मचारी के तुल्य जन्म वृथा ही है । अत्यधिक क्लेशों से भार्या को प्राप्त किया था सो वह भी अप्रिय बोलने वाली होने के कारण वृथा ही है । क्लेश पूर्वक कूप का निर्माण कराया सो खारा जल वाला होने के कारण वृथा ही हुआ । बहुत से क्लेशों को भोग कर यह जन्म प्राप्त किया है सो बन्धन के बिना यह भी वृथा ही है । इस तरह से मेरा यह सब वृथा ही नाम हुआ था वह आपने आज मुझे पूर्ण रूप से सफल बना दिया है । इसलिये आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है और सब द्विजों के लिए भी बारम्बार नमस्कार है । विष्णु के सख में पहिले भगवान् विष्णु ने कुमारों के प्रति हितकुल सार्य ही कहा—जो हवि वितान में बहते हुए घृत से लुप्त है और दुत-भुक् के मुख के द्वारा जिसको दण्ड कर दिया गया है उस यजमान के हवि की मैं उस प्रकार से नहीं खाता हूँ जो मुझमें अपहित कर्म वाकों के द्वारा अनुयास चरण करके परम तुष्ट वाह्यण के मुख में पड़े हुए हवि से जैसा मैं ग्रहण किया करता हूँ । अकस्मात्कारि मैंने विप्रों का जो कुछ भी अप्रिय किया है उसके लिए मुझे क्षमा कीजिये और उन्हें आप मेरे ऊपर प्रसन्न करा दीजिए क्योंकि विप्र सबके शत्रु होते हैं । आप कौन हैं ? आप कोई साधारण पुरुष नहीं हैं । मैं प्रणाम करके आपको प्रसन्न करता हूँ । हे मुने ! आप अपना पूर्ण परिचय प्रदान करिये । इस तरह से जब राजा के द्वारा कहा गया तो उस समय में मैंने यह कहा था । ८५-८२।

नारदोऽस्मि नृपश्रेष्ठ स्थानकार्थी समागतः ।

प्रोवतं च देहि मे द्रव्यभूमिचस्थानहेतवे । ८३।

यद्यपीयं देवतानांभूमिद्रव्यंचपायिव । ।

तथापियस्मिन्मयः काले राजाप्राप्यः । ननिश्चितम् । ८४।

त हीश्वरस्यावतारो भर्ता दाताऽमयस्य सः ।

तथैव त्वामहं याचेद्रव्यशुद्धिपरीप्सया । ८५।

पूर्वं त्वं नारदो विप्र राज्यमस्त्वखिलं तव ।

अहं हि ब्राह्मणानां ते दास्यं कतनिसंशयः । १६६।

यद्यस्माकं भवान्भक्तस्तत्तं दायं च नो वचः । १६७।

सर्वं यत्तद्देहि मे द्रव्यमुक्तं भुवं च मे सप्तगव्यूतिमात्राम् ।

भूमात्त्वत्तोऽप्यस्य रक्षेति सोऽपि मेने त्वहं चिन्तये चाऽर्प-

येपम् । १६८।

देवर्षि नारद जी ने कहा—हे नृषों में परम श्रेष्ठ ! मैं नारद हूँ । मैं स्थान को इच्छुक होकर ही यहाँ पर समागत हुआ हूँ और मैंने कह दिया है । मुझे द्रव्य दो और स्थान के लिए भूमि दो । हे पार्षद ! यद्यपि यह भूमि देवताओं की ही है और द्रव्य भी देवों का है तो भी जिस समय में जो भी कोई राजा होता है उसी की प्रार्थना करनी चाहिये यही निश्चित है क्योंकि वह राजा एक ईश्वर का ही अवतार होता है । वह भरण करने वाला होता है तथा अभय का देने वाला हुआ करता है । उस रीति से मैं आपसे द्रव्य की शुद्धि की परीक्षा से याचना कर रहा हूँ । देवार्थ में प्रार्थना परायण होकर सबसे पूर्व मुझे भक्षण दो । १६२-१६६। राजा ने कहा—हे विप्र ! यदि आप नारद हैं तो यह सम्पूर्ण राज्य ही आपका है । मैं तो ब्राह्मणों का ही सेवक हूँ । मैं अब आपकी दासता करने वाला रहूँगा, इसमें शनिक भी संशय नहीं है । देवर्षि नारद जी ने कहा—यदि आप हमारे परम भक्त हैं तो आपको हमारा वचन करना चाहिये । १६७। जो द्रव्य कहा गया है वह सप्त गव्यूति दो और मुझे सात गव्यूति परिमाण वाली केवल भूमि दो । तुमसे इसकी भी रक्षा होवे । वह भी मान गया था और मैं अर्घ्य सेप का धितन करता हूँ । १६८।

१५—सुतनु और नारद सम्वाद

ततोऽहं धर्मवर्माणप्रोच्य तिष्ठद्धनं त्वयि ।

कृत्यकाले ब्रह्मण्यामोत्याममन्दैव तं गिरिम् । १॥

आसं प्रमुदितश्चाहं पश्यंस्त्वगिरिसत्तमम् ।
 आह्वायानं नराणां धूम्रभूमेभुं जमिवोच्छ्रितम् ॥२॥
 यस्मिन्नानाविधा वृक्षाः प्रकाशंते समन्ततः ।
 साधुं गृह्णति प्राप्य पुत्रभार्यादयो यथा ॥३॥
 मुदिता यत्र समृद्धा वासते कोकिलादयः ।
 सद्गुरोर्जनिर्संपन्ना यथा शिष्यगणान्भुवि ॥४॥
 यत्र तपसा तपो मर्त्या यथेक्षितमवाप्नुयुः ।
 श्रीमहादेवमासाद्य भक्तो यद्वन्मनोरथम् ॥५॥
 तस्याहं च गिरेः पार्थ समासाद्य महाशिलासु ।
 शीतसौरभ्यमं देन प्रीणितोऽर्चयितुं हृदि ॥६॥
 तावन्मया स्वानमामं यदतीव सुदुर्लभम् ।
 ह्वदानीं ब्राह्मणार्थं ऽहं कुर्वे तावदुपक्रमम् ॥७॥

देवपि श्री नारद जी ने कहा—इसके उपरान्त यह पवन तब तक
 तुम्हारे पास ही रहे—यह उस घण्ट घर्मा राजा मे मैंने कह कर कि
 मैं जब मिरा कृष्ण करने का समय आयेगा उसी में इसे ग्रहण कर
 लूँगा । मैं फिर रंमत गिरि पर आगया था ॥१॥ उस परम उत्तम
 पर्वत को देखते हुए मैं अत्यन्त अधिक प्रमुदित हो गया था जो साधु
 नरो को बुलाने वाला भूमि का ऊँचा उठा हुआ एक भुज वी ही भाँति
 था । जिस पर्वत में अनेक प्रकार के गृक्ष चारो ओर प्रकट हो रहे थे
 जिस प्रकार से किसी परम साधु वृत्ति आते वह के स्वामी ने प्राप्त कर
 पुत्र एवं भार्या आदि रक्षा करते हैं । जहाँ पर कोकिल आदि पक्षिगण
 परम उत्तम और प्रशस्त होते हुए निवास कर रहे थे जिन तरह से किसी
 सद्गुरु से ज्ञान से सुमन्ना शिष्यगण भूमण्डल में निवास किया करते हैं
 ॥२॥३॥४॥ जहाँ पर मनुष्य तपस्यार्थ करके अपने मन के अभीष्ट मनोरथों
 की प्राप्ति विधा करते हैं जैसे कोई भक्त साक्षात् भगवान् श्री गुरुदेव की
 की प्राप्त करके अपने मनोरथ को पूर्ण किया करता है । हे पार्थ ! उस

गिरिवर की मैंने महाशिला को प्राप्त भ्रम्यन्त शीत, सुरभित और मन्द वायु से मैं परम प्रसन्नारमा हो गया था । फिर मैंने अपने हृदय में विचार किया था—उस समय तक मैंने भ्रमने लिए कोई भी स्थान प्राप्त नहीं किया था किन्तु अब यहाँ पर मैंने देखा कि यह स्थान तो भ्रम्यन्त सुदुर्लभ स्थान है । अब मैं ब्राह्मणों के लिए ही उपक्रम करेगा । १५।१।७।

ब्राह्मणाश्च विलोकयामेये हि पात्रतमामताः ।
 तथा हि चात्र श्रूयंते वचासि श्रुतिवादिनाम् । ८।
 न जलोत्तरणे क्षक्ता यद्वज्रोः कर्णवज्रिता ।
 तद्वच्छ्रेष्ठोऽप्यमाचारो विप्रो नोद्धरणक्षमः । ९।
 ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
 तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्म निहूयते । १०।
 दानपात्रमर्तकम्य यदपात्रे प्रदीयते ।
 सदृत्तं गामतिक्रम्य गदं भस्म गराह्निकम् । ११।
 ऊपरे वापितं वीजं भिन्नभाण्डे च गोदुहम् ।
 भस्मनीव हुतं हव्यं मूर्खे दानमशाश्वतम् । १२।
 विधिहीने तथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।
 न केवलं हि तदातिशेषं पुण्यं प्रणश्यति । १३।
 भूराप्ता गोस्तथा भोगा सुवर्णदेहमेव च ।
 अश्वश्चक्षुस्तथा वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः । १४।

मुझे अब ये ब्राह्मण देखने चाहिये जो परम योग्य पात्र तम हों । यहाँ पर श्रुतिवादियों के उसी भाँति के वचन श्रवण गोचर हुमा करते हैं । ये लोग जल के उत्तरण करने में भी समर्थ नहीं होते हैं जिस तरह से कर्ण धार से रहित नौका पार जाने में असमर्थ हुमा करती है । उसी तरह से परम श्रेष्ठ भी विप्र यदि आचार से हीन है तो वह उद्धरण करने में समर्थ नहीं होता है । बिना पढ़ा हुमा ब्राह्मण

तृणों की अग्नि के समान ही शीघ्र धान्त हो जाया करता है । ऐसे विप्र को कभी भी हव्य नहीं देना चाहिए क्योंकि भस्म में कभी भी हवन नहीं किया जाता है । ८।६।१०। दान देने के योग्य पात्र का प्रति क्रमण करके जो किसी अयोग्य अपात्र को दान दिया जाता है वह दान इसी तरह का है जैसे किसी गौ का प्रतिक्रमण करके वह गवाहिक गर्दन को दे दिया जाये । ११। ऊपर भूमि में वपन किया हुआ बीज, दूटे हुए वरतन में दोहन किया हुआ दूध, भस्म में हवन किया हुआ हव्य तथा मूर्ख विप्र को दिया हुआ दान भशाश्रित अर्थात् अस्थायी एवं निष्फल ही हुआ करता है । १२। विधि जो शास्त्रकार दान की बतलाते हैं उससे हीन तथा अपात्र में जो कोई प्रतिग्रह दिया करता है उसका वह दिया हुआ दान ही केवल नष्ट नहीं होता बल्कि श्रेष्ठ पुण्य भी नष्ट हो जाया करता है । भूमि, गो, भोग, सुरण, देह, अश्व, चन्दन, वस्त्र धृत, तेज, तिल और प्रजा नष्ट कर दिया करते हैं । १३। १४।

धनन्तितस्मादविद्वास्तुविमियाच्चप्रतिग्रहात् ।
स्वरूपकेनाप्यविद्वास्तुपङ्के गीरिवसीदति । १५।
तस्माद्ये गूढतपसोगूढस्वाध्यायसाधकाः ।
स्वदारनिरताः शास्तास्तेषु दत्तं सदाऽश्रयम् । १६।
देशकालउपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् । १७।
न विद्यया केवलया तपसा चाऽपि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रम्प्रचक्षते । १८।
तेषां त्रयाणां मध्येचविद्यामुत्थोमहागुणः ।
विद्यांविनान्धवद्विप्राश्चक्षुष्मन्तोहितेमताः । १९।
तस्माच्चक्षुष्मतो विद्वान्देशे देशे परीक्षयेत् ।
प्रदनाग्ये ममवक्ष्यंतितेभ्योदास्ताम्यहंततः । २०।

इति संचित्य मनसा तस्माद्देशात्समुत्थितः॥

आश्रमेपुमहर्षीणां विचराम्यस्मि फाल्गुन ॥२१॥

इसलिए विद्वान् पुरुष को प्रतिग्रह लेने में मय करना चाहिये । जो विद्वान् नहीं है वह तो बहुत स्वल्प भी प्रतिग्रह से दलदल में फँसी हुए गी के समान उल्टीछित हो जाया करता है । इसीलिए जो परम गूढ़ तपश्चर्या वाले हैं — गूढ़ स्वाध्याय की साधना करने वाले हैं, अपनी ही स्त्री में रति रखने वाले हैं और परम शान्ति से पूर्ण धृति वाले हैं ऐसे ही विश्वों को दिया हुआ दान सदा प्रक्षय हुआ करता है । १५।१६। देश और काल के उपाय से श्रद्धा से सम्पन्नित श्रवण जो किसी सुयोग्य पात्र को प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म का वलण है । १७। केवल विद्या से और न केवल तपश्चर्या से शान्तिता हुआ करती है । जहाँ पर सञ्चारिणता है और वे दोनों (विद्या और तप) भी विद्यमान हैं वह ही वस्तुतः पात्र कहा जाया करता है । उन तीनों के मध्य में विद्या मुख्य और एक महान् मुख्य गुण है क्योंकि विद्या के बिना चक्षुषों वाले भी भन्धे ही माने गये हैं । इसलिए विद्या रूपी चक्षुषों वाले विद्वानों का परीक्षण देश-देश में करना चाहिये । जो मेरे किये हुए प्रश्नों का उत्तर दे दोगे उन्हीं को मैं दूँगा । इस प्रकार से मन के द्वारा भली-भाँति चिन्तन करके हे फाल्गुन ! मैं फिर उन देश से उठकर वस दिया या और महर्षियों के आश्रमों में विचरण किया करता था । १८—२१।

इमाञ्छलोकाग्नायमानः प्रश्नरूपाञ्छृणुष्व तान् ।

मातृका को विजानाति कतिधा कोटशाश्वराय ॥२२॥

पञ्चपञ्चादभृतं मेहं को विजानाति वा द्विजः ।

यहुल्पां स्त्रियं कतुं येकरूपाञ्च वेत्ति कः ॥२३॥

को वा चित्रक्यावर्धं वेत्ति संसारगाचरः ।

को वारणं वमाहाय्राह वेत्ति विद्यापरायणः ॥२४॥

कोवाऽष्टविध ब्राह्मण्यं वेत्ति ब्राह्मणसत्तमः ।
 युगानां च चतुर्मास्यं कोमूलदिवासं च वेत् ॥ १२५ ॥
 चतुर्दशमनुना वा मूलवामरं वेत्ति कः ।
 कस्मिंश्चैव दिने प्राप पूर्वं वा भास्करोरथम् ॥ १२६ ॥
 उद्वेजयति भूतानि कृष्णाहिरिव वेत्ति कः ।
 को वा ऽस्मिंघोरससारे दक्षदक्षतमो भवेत् ॥ १२७ ॥
 पन्थानां च द्वौ कश्चिद्वेत्ति वक्ति च ब्राह्मणः ।
 इति मे कादशप्रश्नान्ये विदुर्ब्राह्मणोत्तमा ॥ १२८ ॥

मैं प्रश्नों के स्वरूप वाले इन श्लोकों को गाता हुआ विचरण किया करता था । उन प्रश्नों को मुझ श्रवण कर लो । कौन ऐसा पुरुष है जो मातृका को जानता है ? वह कितने प्रकार की है और उसके प्रकार किन प्रकार के होते हैं ? अथवा ऐसा कौन द्विज है जो पक्ष पञ्चादभुत गेहू को जानता है ? कौन ऐसा है जो बहुत रूपों वाली और एक छत्र वाली स्त्री को करना जानता है ? अथवा ऐसा कौन ससार का गोचर है जो चित्र क्या व-य का ज्ञान रखता है ? ऐसा कौन विद्या में परम परामण है जो आर्णव ग्राह को जानता है तथा वतनाता है ? ऐसा कौन परम श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो आठ प्रकार के ब्राह्मण का ज्ञान रखता है ? ऐसा कोई कौन है जो चारों युगों के मूल दिवसों का बतला देवे ? ऐसा कोई कौन है जो चौदह मनुष्यों के मूल वासर का ज्ञान रखता है ? कौन वह है जो यह बतला देवे कि किस दिन में सबसे प्रथम भगवान् भास्कर ने रथ को प्राप्त किया था ? ऐसा कौन ज्ञाता है जो यह बतला देवे कि वह कौन है जो कृष्ण सर्प को माँति समस्त प्राणियों को उद्विग्न किया करता है ? ऐसा कौन है जो इस भयोव घोर ससार में दलों में भी परम दक्ष होवे ? कोई ऐसा ब्राह्मण है जो दोनों मार्गों को जानता है और वतनाता है ?—ये बारह प्रश्न हैं । इनको जो जानते हैं वे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ॥ १२२-१२८ ॥

ते मे पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम् ।
 इत्यहं गायमानो वै भ्रमितः सकलांमहीम् ।२६।
 ते चाहुदुः सदाः स्याताः प्रश्नास्तेकुर्महे नमः ।
 इत्यहं सकलां पृथ्वीविचित्रालब्धब्राह्मणः ।३०।
 हिमाद्रिशिखरासीनो भूर्यश्रितामवाप्तवान् ।
 सर्वे विलोकिताविप्राः किमतः कर्तुमुत्सहे ।३१।
 ततो मे चिन्तयानस्य पुनर्जातामतिस्त्विदम् ।
 अद्यापि न गतश्चाहं कलापग्राममुत्तमम् ।३२।
 यस्मिन्विप्राः संवसन्तिमूर्तानीवतपांसि च ।
 चतुराशीतिसाहस्राः क्षुताप्ययनशालिनः ।३३।
 स्थाने तस्मिन्गमिष्यामोत्पुक्त्वाहंचलितस्तदा ।
 खेचरोहिममाक्रम्यपरंपारं गतस्ततः ।३४।
 अद्राक्षं पुण्यभूमिस्थं ग्रामरत्नमहं महत् ।
 धातयोजनविस्तीर्णं नानावृक्षसमाकुलम् ।३५।

ऐसा जाता जो ब्राह्मण है वे मेरे परम पूज्य हैं और मैं उनकी
 चिरकाल पर्यन्त आराधना करने वाला हूँ । इस प्रकार से यही गायन
 करता हुआ मैं सम्पूर्ण भूमि भ्रमण में भ्रमण किया करता हूँ ।२६। वे
 ब्राह्मण जो इन मेरे प्रश्नों को सुनते थे वे यही कह दिया करते थे कि वे
 प्रश्न तो बहुत ही दुःख देने वाले प्रसिद्ध हैं—यह कहकर वे नमस्कार
 कर दिया करते थे । इस रीति से मैं इस समस्त भूमि पर घूम चुका था
 किन्तु विचार करके देखा कि कोई भी ऐसा योग्य ब्राह्मण प्राप्त नहीं
 हुआ था । फिर मैं हिमाचल पर्वत की शिखर पर समासीन हो गया था
 और फिर पुनः मैं इसी चिन्ता में ग्रस्त हो गया था । मैंने सभी ब्राह्मणों
 को देख डाला है । अतएव अब मैं क्या करूँ ? इस प्रकार मैं अब मैं
 चिन्तन कर ही रहा था कि मुझे फिर यह बुद्धि स्फुरित हुई थी कि
 १. तब मैं परमोत्तम कलाप नामक ग्राम में नहीं जा पाया है जिन

ग्राम में श्रुताध्ययन शीघ्र चौरासी सहस्र ब्राह्मण निवास किया करते हैं जो साक्षात् तप की भूति के ही समान हैं । मैं उस स्थान में अवश्य ही जाऊँगा—इतना कहकर ही मैं कहने से उसी समय में चल दिया था । धाकाशगामी होकर समाक्रमण किया था और मैं परले पार पर इसके पश्चात् पहुँच गया था । वहाँ पर मैंने परम पुण्य भूमि में स्थित महान ग्राम रत्न को देखा था जो सौ योजन के विस्तार से पुक्त और अनेक प्रकार के वृक्षों से सम्तकीर्ण था । ३०—३१।

यत्र पुण्यवता सन्ति शतश प्रवराश्रमाः ।
 सर्वेषामपिजोवता यत्राग्योग्यं न दुष्टताः । ३६।
 यज्ञभाजा मुनिना यदुपकारकरं सदाः ।
 सता धर्मवता यद्वदुपकारो न शाम्यति । ३७।
 मुनीना यत्र परम स्थानचाप्यविनाशकृत् ।
 स्वाहास्वषावपटूकारहन्तकारोनश्यति । ३८।
 यत्र कृतयुगस्याऽर्थं बीजं पार्थाऽवशिष्यते ।
 सूर्यस्य सोमवशास्य ब्राह्मणानातथैव च । ३९।
 स्थानवतत्समासाद्यप्रविष्टोऽहं द्विजाश्रमान् ।
 तत्रतेर्विविधान्वादाग्विवदन्तेद्विजोत्तमाः । ४०।
 परस्पर चितयाना वेदा भूतिधरा यथा ।
 तत्र मेधाविनः केविदर्थमग्न्येः प्रपूरितम् । ४१।
 विचिक्षिपुर्महारमानो मनोगतमिवामिषम् ।
 तथाऽहं करमुद्यम्य प्रावोचपूर्वताद्विजाः । ४२।
 काकारावैः किमेतेर्वीर्यद्यस्तिज्ञानशालिता ।
 व्याकुलध्व ततः प्रश्नान्ममदुविषहान्वहून् । ४३।

जिस विशाल ग्राम में परम पुण्यस्थानी महापुरुषों के सैकड़ों ही प्रतिश्रेष्ठ भाग्यवाने हुए थे और जिस ग्राम में सभी जीवों में परस्पर में अग्न्योग्य के प्रति सर्वेषा दुष्टता की भावना थी ही नहीं । यज्ञों के

यज्ञ करने वाले मुनियों का जो सदा उपकार के करने वाला था और धर्म वाले सत्पुरुषों का जो उपकार होता है यह कभी भी नाश नहीं होने का होता है । ३६—३७। जिस ग्राम में भविनाश के करने वाला परत स्थान था और जहाँ पर स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और हस्तकार कभी भी नष्ट नहीं हुआ करता है । हे पार्थ ! जिस ग्राम में कृन्तयुग का घण्टा और बीज अवशिष्ट रहता है और सोम तथा सूर्य के बंध का एवं ब्राह्मणों का वह अमो तक भी बीज विद्यमान था । उस स्थान की मैं पर्वण्य कर दिनों के आश्रमों में प्रविष्ट हुआ था । वहाँ पर मैंने देखा था कि द्विजोत्तम वृन्द अनेक प्रकार के वादों की परस्पर में वर्णा कर रहे थे । वे ब्राह्मण ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानो साक्षात् वेद ही भूति धारण करके वहाँ पर उपस्थित होकर परस्पर में विविध विषयों का चिन्तन कर रहे हो । उनमें कुछ लोग परम मेधावी थे जोकि महान् आत्मा वाले अर्णवों के द्वारा अभूरित घण्टा की नमोमन आधिपति की भाँति ही विशेष रूप से स्तुति कर दिया करते थे । वहाँ पर मैंने भी अपना हाथ उठाकर कहा था—हे द्विजगण ! मेरे घण्टा की भी पूति कीजिए । उन काको की भाँति ध्वनि (काँद-काँद) करने में धारा लोगों को क्या प्रयोजन मिष्ट होगा ? यदि आप लोगो में कुछ ज्ञानशीलता विद्यमान है तो मेरे किये हुए परम दुर्विषय बहुत में प्रश्नों की व्याख्या करके मुझे समझाइये । ३८—४३।

यद ब्राह्मण प्रश्नान्स्वाङ्मुक्त्वाऽऽधास्यामहे ययम् ।

परमो ह्येष नो लाभः प्रश्नान्पृच्छति यद्भवान् । ४४।

अहं पूर्विकाया ते वै ण्यपेधन्त परस्परम् ।

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति वीर्यं यथा रणे । ४५।

ततस्तान्नव्वं प्रश्नानहं द्वादश पूर्वकान् ।

श्रुत्वा ते मामबोधन्त लीलायन्तोमुनीश्वराः । ४६।

किं ते द्विज बालप्रश्नरमाभिः स्वल्पकैरपि ।
 अस्माकं यन्निहीनं त्वं मन्यसे स ब्रवीत्वमूनु । १४७।
 ततोऽतिविस्मितश्चाऽहं मन्यमानः कृतार्थताम् ।
 तेषां निहीनं सच्चिन्त्यप्रावोचं प्रब्रवीत्वयम् । १४८।
 ततः सुतनुनामा स बालोऽबालोऽभ्युवाच माम् ।
 मम मन्दायते वाणो प्रश्नैः स्वल्पेस्तव द्विज ! ।
 तथापि यच्चि मां यस्मान्निहीनं मन्यते भवान् । १४९।

उन ब्राह्मणों ने कहा—हे ब्राह्मण देव ! आप अपने प्रश्नों को बोलिए । हम लोग उनको सुनकर उनके विषय में व्याख्यान करेंगे । यह तो हमारा परम लाभ का अवसर प्राप्त हो गया है कि आप हम तीनों से कतिपय प्रश्न पूछ रहे हैं । १४४। उस समय में ये सब ब्रह्महमिषा की भावना से परस्पर में एक दूसरे को निरोध करने लगे थे और पहले में ही इसके प्रश्नों का उत्तर दूँगा—इस तरह से 'मैं पहिले-मैं नहिले' वह कर एक दूसरे से बहने लगे थे । जिस तरह बीर लोग रणस्थल में युद्ध करने के लिए स्वयं ही सर्वप्रथम जाने के लिए प्रस्तुत हुमा करते हैं । १४५। इसके अनन्तर मैंने अपने वे ही बारह पहिले बताये हुए प्रश्नों को कहा था । उन्होंने उन बारह में से किये हुये प्रश्नों का ध्वण करके उन मुनियों ने सीला सी करते हुए मुझसे कहा था—हे द्विज ! इन बहुत ही छोटे २ बालकों के समान प्रश्नों के करने से आपका क्या अभिप्राय है ? क्या आपने हम सबको इतना हीन थोड़ी का मान दिया है । इन प्रश्नों का उत्तर तो यह एक बालक ही दे देगा । इनके पश्चात् मैं अत्यन्त ही विस्मित हो गया था और मैं अपने आपसे परम कृतार्थ मानने लगा था । उनमें जो सबसे बिहीन मैंने बोला था उगी से मैंने कहा था—यह ही मेरे प्रश्नों का उत्तर देवे । इनके अनन्तर एक सुतनु नाम बाला बालक जो जानाबिनाय वे बारण भवान् था मुझसे बोला था—हे द्विज ! आपके प्रति स्वतः प्रश्नों से मेरी वाणी मन्द हो रही है

तो भी मैं बोलता हूँ जिससे कि आप मुझसे बिहीन न मान लेंगे ।
१४६-४६।

अक्षरास्तु द्विपञ्चाशन्मातृकायाः प्रकीर्तिताः । १५०।
 छंकारः प्रथमस्तत्र चतुर्दश स्वरास्तथा ।
 स्पर्शाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च । १५१।
 विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च ।
 उपष्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमो स्मृताः । १५२।
 इति ते कथितासंख्याभ्यं त्रैपां शृणु द्विज ।
 अस्मिन्नर्थे चेतिहासंतत्त्ववक्ष्यामि यः पुरा । १५३।
 मिथिलायां प्रवृत्तोऽमूदब्राह्मणस्य निवेशने ।
 मिथिलायां पुरा पुनर्ब्राह्मणः कौथुमाभिधौ । १५४।
 येन विद्याः प्रपठितावतन्ते भुविः सा द्विज ।
 एकत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणां स कृतादरः । १५५।
 क्षणमप्यनवच्छिन्नं पठित्वागेहवानभूत् ।
 ततः केनाऽपि कालेन कौथुमस्याऽभवत्सुतः । १५६।

सुतनु ने कहा—कुल अक्षर वाचन हैं जो मातृका के प्रकीर्तित किए गये हैं । उनमें छंकार सबसे प्रथम अक्षर होता है तथा चौदह उनमें स्वर ह्रस्व करते हैं और तेतीस स्पर्श सज्ञा वाले वर्ण होते हैं तथा अनुस्वार, विसर्जनीय, जिह्वा मूलीय और उपष्मानीय भी होते हैं—ये सब पचास ही वाचन अक्षर हैं । हे द्विज । यह पूरी संख्या तो मैंने आपको बतला दी है अब इनके अर्थ का जो आप मुझसे श्रवण कीजिये । इस अर्थ में एक इतिहास जो पहिले का है उसे मैं पहले आपको बतलाऊँगा । १५०-१५३। यह इतिहास एक ब्राह्मण के घर में मिथिला में प्रवृत्त हुआ था । पहिले मिथिला में पुरीका एक कौथुम नाम वाला ब्राह्मण था । हे द्विज ! उसने जो भी भूमण्डल में विद्यमान थीं वे सभी विद्याएँ पढ़ ली थी । उसने इकतीस सहस्र वर्षों तक आदर पूर्वक विद्या का

अध्ययन किया था । एक क्षण भी उसने गृष्ट नहीं किया था । समस्त विद्या पढ़कर फिर वह गेह वाला हुआ था । इसके उपरान्त किसी काल मे उस कौशुम विप्र के घर में पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । १४।१५।१६।

जड्वद्वर्त्तमानः स मातृकां प्रत्यपद्यत ।
पठित्वा मातृकामन्यन्नाद्येति स कथञ्चन । १७।
ततः पिता खिन्नरूपी जडं तं समभाषत ।
अधीष्यपुत्रकाधीष्यत्तववास्यामिमोदकान् । १८।
अथाऽन्यस्मै प्रदास्यामि कर्णावुत्पाटयामि ते । १९।
तात किं मोदकार्थं पठ्यते लोभहेतवे ।
पठनं नाम यत्पुत्रां परमाहं तन्मयापि । २०।
एवं ते वदमानस्य आयुर्भवेत् । २१।
साध्वी बुद्धिरियं तेऽस्तु कुतोनाद्येऽन्यत् । परम् । २२।
तात सर्वं परिजयेज्ज्ञातमग्रेव वै यतः ।
ततः परं कण्ठशोषः किमर्थं क्रियते वद । २३।
विविघ्नं भाषसे बालज्ञातोऽप्रापंश्चकस्त्वया ।
ग्रूहिग्रूहिपुनर्वत्सश्रोतुमिच्छामितेगिरम् । २४।

वह पुत्र एक जड की भाँति ही रहा करता था । उसने बड़ी कठिनाई से मातृका का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । बस, केवल मातृका को पढ़कर वह किसी भी प्रकार से सम्य कुछ भी नहीं पढ़ता था । इसके अनन्तर उसका पिता बहुत ही खिन्न हो गया था । उस कौशुम ने उस अपने जड पुत्र से कहा था—हे पुत्र ! पढो-पढो, मैं तुमको खाने के लिए मोदक दूँगा । यदि तुम नहीं पढोगे तो वे मोदक मैं किसी अन्य को दे दूँगा और तुम्हारे कान उखाड़ डालूँगा । १७।१८।१९। पुत्र ने अपने पिता से कहा—हे तात । क्या लोभ के ही कारण वे मोदकों, वे पान के लिये अध्ययन किया जाया करता है । गद् अध्ययन तो पुण्यों का परमापं कहा गया है । कौशुम ने कहा—इस प्रकार से बोलने वाले तुम्हारी

आयु ब्रह्मा की आयु जैसी हो जावे । यह तो तुम्हारी बुद्धि भीतर साज्जी है फिर तुम भागे क्यों नहीं पड़ते हो ? । पुत्र ने उत्तर दिया या—हे तात ! इसी में सभी कुछ परिजोय ग्रन्थि जानने के योग्य मैंने जान लिया है । इससे आगे कुछ प्रयोजन के लिए व्यर्थ ही कण्ठ का शोषण किया जाता है ? आपही मुझे बतलाइये । ६०। ६१। ६२। पिता ने कहा—हे बालक ! तुम तो भ्रमस्थ ही विचित्र बात कह रहे हो । बतलाओ, तुमने इसी में क्या ज्ञान बिद्या है ? हे बरह ! बतलाओ, बोओ, मैं तुम्हारी बाणी के श्रवण करने की उत्कट इच्छा रखता हूँ । ६३।

एकत्रिंशत्सहस्राक्षं द्वात्रिंशत्सहस्रं पितृमापितः ।
 नानातर्कान्नास्ति ह्यत्रात्मनोऽपि स्वकः । ६४।
 अयमयं चायमिति यो यो दर्शनोदितः ।
 तेषु वातायते चैतस्तय तन्नाशयामि ते । ६५।
 उपदेशं पठस्येव नैवार्थज्ञोऽसितत्त्वतः ।
 पाठमात्रा हि ये विप्रा द्विपदाः पशवो हि ते । ६६।
 तत्ते श्रवीमि सद्वाक्यं मोहमार्तण्डमदभुतम् । ६७।
 अकारः कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुश्च पते ।
 मकारश्च स्मृतो हृदयश्च ते गुणाः स्मृताः । ६८।
 अर्धमात्रा च या भूध्निरपरमः स सशशिवः ।
 एवमोकारमाहात्म्यं च त्रिरेषा सनातनी । ६९।
 अकारस्य च माहात्म्यं याचात्म्येन न शक्यते ।
 वर्षाणाममुतेनाऽपि ग्रन्थकोटिभिरेव वा । ७०।

पुत्र ने कहा—हे पिताजी ! आपके इकतीस सहस्र वर्ष पर्वत प्रदेक तर्कों की पढ़कर भी माने मन में भ्रान्ति की हो संशित किया है । दशान शास्त्रों के द्वारा कहा गया यह-यह जो धर्म है । उन पदों में आपका चित्त आयु की भाँति अभित्त ही रहा है । उसका मैं प्रष्ट बिनाश करता हूँ । आप उपदेश करना ही पड़े हुए हैं । तात्पर्य रूप से आप

अर्धों के ज्ञाता नहीं हैं । जो विघ्न केवल का पाठ ही का ज्ञान रखा करते हैं वे द्विपद होते हुए भी पशु ही हुमा करते हैं । [इसीलिए मैं आपको अद्भुत मोह के भण्डकार के नाश करने वाले मार्शाण्ड रूपी धाम्य को बतलाता हूँ । यह प्रकार ब्रह्मा कहा गया है और अकार विष्णु कहा जाता है । मकार रुद्र कहा गया है । ये तीन गुण ब्रतसाधे गये हैं । जो यह अर्ध मात्रा भूर्धा में हैं वह परम सदाशिव है । इस प्रकार ते पत अकार का माहात्म्य है । यही परम सनातनी श्रुति है । इस अकार का माहात्म्य अशुनों यवों में करोड़ों ग्रन्थों के द्वारा भी यथार्थ रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता है । १४—७०।

पुनर्यत्सारसर्वस्य प्रोक्तं तच्छ्रूयतां परम् ।

अकाराणां अकाराणां मनवस्ते चतुर्दश । ७१।

रवायम्भुवश्च स्वरोचिरीत्तमोरैवतस्तथा ।

तामसश्चाणुपः पष्ठस्तथा वैश्वतोऽधुना । ७२।

सावर्णिग्रंक्षसावर्णि रुद्रसावर्णिरेव च ।

दक्षसावर्णिरेवाऽपि धर्मसावर्णिरेव च । ७३।

रोक्ष्यो भोत्यस्तथा चापि मनवोऽमी चतुर्दश ।

द्वेतेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः । ७४।

कृष्णः स्यामस्तथा धूम्रः सुपिण्डः पशङ्गकः ।

त्रिवर्णः श्वलोवर्णः कंकणुरइतिक्रमात् । ७५।

वैश्वतः क्षकारश्च ताव कृष्णः प्रदृश्यते ।

ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशश्च देवताः । ७६।

ककाराद्याहकारान्ता आदित्याद्वादशस्मृताः ।

घातामित्रोर्ज्यमाशकोवर्णश्चांशुरेव च । ७७।

भगो विवस्वान्पूषा च सविता दशमस्तथा ।

एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादशतन्वते । ७८।

फिर भी जो सार का सर्वस्व है वह मैंने बतला दिया है । इसके भी प्राये आप और श्रवण कीजिए । घञ्कार है आदि में जिनके और "घा" यह है अन्त में जिनके ऐसे जो ये चौदह स्वर हैं वे ही चौदह मनुगण हैं । उन चौदह मनुष्यों के ये नाम होते हैं—स्वायम्भुव, स्वरोचिष, उत्तम, रैवत, तामस, चाक्षुष छटा है । इस समय में वैवस्वत मनु वर्तमान है । सावर्णी, ब्रह्म सावर्णी, रुद्र सावर्णी, दस सावर्णी, धर्म सावर्णी, रोक्य और भोक्य ये ही चौदह मनुगण हुषा करते हैं । इक्षेत, पाण्डु, रक्त, ताम्र, पीत, कापिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, सुपिशङ्ग पिशङ्ग, त्रिवर्ण, वर्णों से सबन और कर्कशुर इस क्रम से उन चौदहो मनुष्यों के वर्ण होते हैं । हे तात ! वैवस्वत और छकार कृष्ण दिखलाई देता है । ककार जिनके आदि में है वे सब हकारान्त पर्यन्त सेतीस देवता हैं । ककार से आदि लेकर डकार के अन्त पर्यन्त द्वादश भावित्व कहे गये हैं । उन बारहों भावित्वों के नाम ये होते हैं—धृ, मित्र, धर्ममा, शक्र, वरुण, अश्वि भग, विवस्वाम्, पूषा, दशर्षा सविता, एकादशर्षा स्वहा और बारहवीं विष्णु नाम कहा जाता है । ७१-७८।

अध्वयजः स सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः ।

डकाराद्यावकारान्तः रुद्राश्चैकादशैवतु । ७९।

कपाली पिङ्गली भीमो विष्णुपाक्षो तिलोहितः ।

अजकः शासनः शास्ता धम्मश्रृण्डो भवस्तथा । ८०।

भकाराद्यां पकारान्तावष्टौ हि वसधो मताः ।

ध्रुवो धीरश्चसोमश्च आपश्चैव नलोऽनिलः । ८१।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च अष्टौ ते वसवः स्मृताः ।

सो हृश्चेत्यश्विनोरुपातो त्र्यस्रिप्तदिमे स्मृताः । ८२।

अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च ।

उपध्मानो य इत्येते जरायुजास्तथा ण्डजाः । ८३।

स्वेदजाश्चोदिमजाश्चेति तत जीवाः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थः कथितश्चायं तत्त्वायं शृणु सा प्रतम् । ८४।

वह इन समस्त आदित्यों में जघन्यज भर्ता सबसे अन्त में समुत्पन्न होने वाला है किन्तु जघन्यज होते हुए भी गुणों में सबसे अधिक है। डकार से आदि लेकर बकारान्त पद्यन्त एकादश छद्म होते हैं। उन एकादश छद्मों के नाम ये होते हैं—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजरु, लासन शास्ता, शम्भु, चण्ड, भव। भकार से आरम्भ करके पकार के अन्त तक आठ वयुगण कहे गये हैं। दोनों प्रकार और हकार ये दो मन्त्रिणी कुमार प्रसिद्ध हैं। इस रीति से ये सैंतीस देवगण कल्पाये गये हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय ये चारो जरायुज, अश्रुज, स्वेदज और रुद्धिमज ये चार प्रकार के जीव कीर्त्तिन किये गये हैं। यह मैंने इसका माभार्य कह दिया है। अब इसका तरवार्य भी आप श्रवण कीजिये। ७६—८४।

ये पुर्मासस्त्वमूर्धेवाप्तमाश्रित्य क्रियापराः ।

अर्धमात्रात्मकेनित्यैपदेलीनास्तएवहि ॥८५॥

चतुर्णां जीवयोनीनां तत्रैव परिमुच्यते ।

यदाभून्मनसा वाचा कर्मणा च यजेत्सुरान् ॥८६॥

यस्मिञ्छास्त्रे त्वमी देवा मानिता नैव पापिभिः ।

सञ्छास्त्रं हि न मर्त्यव्यं यदि ग्रह्या स्वयं वदेत् ॥८७॥

अमीचदेवाः सर्वत्र श्रुते मार्गे प्रतिष्ठिताः ।

पापण्डशास्त्रे सर्वत्र निषिद्धाः पापकर्मभिः ॥८८॥

तदमन्ये व्यतिक्रम्य तपो दानमथो जपम् ।

प्रकुर्वन्ति दुरात्मानो वेपथ्वे मरुतः पथि ॥८९॥

बहोमोहस्यमाहात्म्यं पश्यताऽविजितात्मनाम् ।

पठन्तिमातृकां पापान्मन्यन्तेनसुरानिह ॥९०॥

जो मनुष्य न देवों का समाश्रय ग्रहण करके क्रिया में परायाण रहा करते हैं वे अर्धमात्रात्मक नित्य पद में तीन ही होते हैं। चार प्रकार की जीवों की योनियों का परिमोचन उसी समय में हुमा करता

है जबकि मन, वाणी और कर्म के द्वारा सुरी का यजन होता है । जिस शास्त्र में ये सब देवगण हैं । पापियों के द्वारा ये सब देवगण नहीं माने गये हैं । ऐसा शास्त्र भी कभी नहीं मानना चाहिये चाहे उसको साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न कहते हों । ८५।८६।८७। ये देवगण सर्वत्र ध्योत (वैदिक) मार्ग में प्रतिष्ठित होते हैं । पापण्ड शास्त्र में सब जगह पाप कर्म करने वालों के द्वारा निविद्ध किये गए हैं । जो जो लोग इन देव वृन्दों का विशेष रूप से प्रतिकर्मण करके तब, यन् तथा यप किया करते हैं वे दुष्ट प्रात्मा वाले पुण्य जपु के मार्ग कल्पित हुमा करते हैं । बड़े ही भ्राष्ट्र्य की बात है जबकिव पाश्चात्तों जाने पुण्यो के मोह के इस माहात्म्य को देखिए । ये लोग मातृका का पाठ तो किया करते हैं मर्याद इसका अध्ययन करते हैं किन्तु पाश्चात्ता लोग इनमें सुरी को नहीं मानते हैं । ८८-९०।

इति तस्यवचः श्रुत्वा पितःश्रूयतिविस्मितः ।

पप्रच्छच्चब्रूहप्रदानांसोप्यवादीत्तथातथा । ९१।

मयापि तव प्रोक्तोऽयं मातृकाप्रश्न उत्तमः ।

द्वितीयं शृणु त प्रश्नं पञ्चपवाद्भुतं गृहम् । ९२।

पञ्चभूतानि पर्वव कमंशानेन्द्रियाणि च ।

पञ्च पचाऽपि विषया मनोबुद्ध्यहमेव च । ९३।

प्रकृतिः पुष्पचैव पञ्चविशः सदाशिवः ।

पञ्चपञ्चभिरेतैस्तु निष्पन्नं गृहमुच्यते । ९४।

देहमेतदिदं वेद तत्त्वतो यात्यसोशिवम् ।

बहुधा स्त्रियं प्राहुर्वृद्धि वेदान्तवादिनः । ९५।

सा हि नानार्यभजनाग्रानार्यः प्रपद्यते ।

यमंर्यकस्य संयोगाद्बहुधाऽप्येकैव सा । ९६।

इति यो वेद तत्त्वार्थनाऽग्रे नरकमाप्नुयात् ।

मुनिभिर्वच न प्रोक्तंयत्त मय्येतद्वचनम् । ९७।

वचनं तद्वबुधाः प्राहूर्वन्धंचित्रकथं त्विति ।

यच्चकामान्वितंवाक्यपचमंवाप्यतः शृणु ॥८८॥

सुतनु ने कहा—उम अपने पुत्र के इस वचन का श्रवण करके पिता प्रत्यन्त विस्मय हो गये थे । फिर पिता ने उससे बहुत से प्रश्नों को पूछा था सो वे भी उसने ठीक २ बतला दिए थे । मेरे द्वारा भी आपका यही उत्तम मातृका प्रश्न कहा गया है । अब आप अपना दूसरा प्रश्न सुनिये जो कि पञ्च पञ्चादभुत गृहम् है ॥८१॥८२॥ पाँच तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच भूत होते हैं और पाँच ही इन्द्रियाँ हैं जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । इनके पाँच-पाँच ही विषय होते हैं । मन, बुद्धि, महत्कार, प्रकृति और पुण्य ये भी पाँच हैं इस प्रकार से पञ्चीस तत्त्वों में परिपूर्ण सब जिव हैं । इन्हीं पाँच-पाँचों से निरक्ष गृह कहा जाया करता है ॥८३॥८४॥ इसको देख जानते हैं और तद्व से यह शिव को प्राप्त किया करता है । वेदान्त वाली मोक्ष हम बुद्धि को ही बहुत से रूपों वाली स्त्री कहा करते हैं ॥८५॥ वह प्रत्येक प्रकार के भयों का सेवन करने से नाना भौति के स्वरूप को प्राप्त कर नियंत्र करती है । केवल एक धर्म का जब इनके साथ संयोग प्राप्त हो जाया करता है तो यह बहुत प्रकार की भी एक ही हो जाती है । इस प्रकार से जो भी कोई तत्त्वार्थ को जान लिया करता है वह फिर कभी भी नरक की प्राप्ति नहीं किया करता है । जिसको मुनियों ने नहीं कहा है कि वैश्याँ को नहीं मानना चाहिये । बुध पुरुष चित्र क्या युक्त यन्त्र वचन को धोना करते हैं । जो कामान्वित वाक्य है अथवा पञ्चन है । इसलिए उसका श्रवण करो ॥८६॥८७॥८८॥

एको लोभो महान्प्राहोलोभात्पापं प्रवर्त्तते ।

लोभात्क्रोधः प्रभवतिलोभात्कामः प्रवर्त्तते ॥८९॥

लोभाद्भोहश्च माग च मानः स्तम्भः परेष्वुता ।

अविद्याप्रज्ञता चैव सर्वे लोभात्प्रवर्त्तते ॥९०॥

हरणं परचित्तानां परदाराभिमर्शनम् ।
 साहसानां च सर्वेषामकार्याणां क्रियास्तथा ॥१०१॥
 स लोभः सह मोहेन विजितव्योजितात्मना ।
 दम्भोद्रोहश्च निन्दाचपैः सुन्यमत्सरस्तथा ॥१०२॥
 भयभ्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम् ।
 सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः ॥१०३॥
 छेत्तारः संशयानां च लोभग्रस्तान्नजन्त्यघः ।
 लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृता ॥१०४॥
 अन्तः क्षुरावाङ्मधुराः कृपाव्ययत्रास्तृणरिव ।
 कुर्वते ये बहून्मार्गास्तास्ताहेतुबलान्विताः ॥१०५॥

यह एक लोभ ही महान् ग्राह है । इस लोभ से पाप प्रवृत्त हुमा करता है । लोभ से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है । लोभ ही से काम समुत्पन्न होता है । लोभ से ही मोह, माया, मत्त, स्तम्भ, परेष्मता, अविद्या, अप्रज्ञता ये सभी एक मात्र लोभ से ही प्रवर्तित हुमा करते हैं ॥१०१॥ पराये धनो का हरण, पराई स्त्रियों का अभिमर्शन, सभी प्रकार के साहसों का तथा अकार्यों की क्रियायें भी लोभ के ही कारण से हुमा करते हैं अतएव जित्तात्मा पुरुष के द्वारा यही लोभ मोह के सहित जीत लेना चाहिये । दम्भ, द्रोह, निन्दा, पैसुन्य तथा मत्सरता ये सभी अकृतात्मा लुब्धक पुरुषों को ही हुमा करते हैं । यह श्रुत लोग अर्थात् ऐसे पुरुष जिन्होंने बहुत कुछ सुन रखा है बड़े २ शास्त्रों को हृदय में धारण किया करते हैं । ये लोग सभी तरह के संशयों का छेदन करने वाले होते हैं किन्तु जब ये लोभ से ग्रस्त हो जाते हैं तो इनका अघः पतन हो जाया करता है । काम और क्रोध में प्रसक्त, शिष्ट पुरुषों के आचार से बहिष्कृत हुए—जिमको अन्तर्करण तो उत्तरे के समान कर्त्तन करने वाला होता है तथा बाणी बहुत मधुर हुमा करती है जिस तरह से कूप वृत्तों से समाच्छादित होवे । ऐसे

लोग जो होते हैं वे बल से समन्वित होकर उग-उन बहुत से मार्गों को किया करते हैं । १०१—१०५।

सर्वमार्गं विलुम्पन्ति लोभाज्जातिषु निष्ठुरा ।

धर्मावतसकाः क्षुद्रा मुष्णान्त ध्वजिनो जगत् । १०६।

एतेऽतिपापिनोज्ञेया नित्य लोभसमन्विताः ।

जनको युवनाश्रश्च वृषादर्भिः प्रसेनजित् । १०७।

लोभक्षयाद्दिवप्राप्तास्तथैवाग्न्येजनाधिपा ।

तस्मात्त्यजति येलोभन्तेऽतिक्रामतिसागरम् । १०८।

ससारारुममताऽग्न्ये ये ग्राहप्रस्ता न सशयः ।

अथ ब्राह्मणभेदास्त्वमष्टौ विप्रावधारय । १०९।

मानश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततः परम् ।

अनुचानस्तथा भूण ऋषिकल्प ऋषिर्मुनि । ११०।

एते ह्यष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणा प्रथम श्रुती ।

तेषां पर परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तिविशेषतः । १११।

ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमानोऽदाभवेत् ।

अनुपेतः क्रियाहीनो मात्र इत्यभिधीयते । ११२।

लौभ से जातिमें में महान् निष्ठुर सभी मार्गों को विलुप्त कर दिया करते हैं । ये धर्मावतसक, क्षुद्र क्षत्री लोग इन जगत् को ठगा करते हैं अर्थात् योसे मे डाल दिया करते हैं । इन लोगों को अत्यन्त अधिक पापी समझना चाहिए क्योंकि ये लोग नित्य ही लोभ से समन्वित रहा करते हैं । जनक, युवनाश्र, वृषादर्भि और प्रसेनजित् ने लोग लोभ के लय होने से ही दिव लोक को प्राप्त हो गए थे । इसी भाँति अग्न्य भी बहुत से अनाधिपों ने एकमात्र लोभ का परित्याग करके स्वर्गलोक को प्राप्ति की है । इसलिए जो लोग इस लोभ का परित्याग कर दिया करते हैं वे इस संसार रूपी सागर को पार करके तैर जाया करते हैं । मह संसार नाम वाला सागर है । जो अग्न्य पुरुष होते हैं वे इसमें ग्राह से

हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम् ।
 साहसनां च सर्वेषामकार्याणां क्रियास्तथा । १०९।
 स लोभः सह मोहेन विजेतव्योजितात्मना ।
 दम्भोद्रोहश्च निन्दाचर्पण्यमत्सरस्तथा । ११०।
 भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम् ।
 सुमहात्स्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः । १११।
 छेत्तारः सशयानाश्च लोभप्रस्तावजन्त्यधः ।
 लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृताः । ११२।
 अन्तः क्षुरावाङ्मधुराः कृपाश्छास्त्रृणरिव ।
 कुर्वन्ते ये बह्व्रभागास्तास्ताहेतुबलान्विताः । ११३।

यह एक लोभ ही महात्मा चाह है । इस लोभ से पाप प्रवृत्त हुआ करता है । लोभ से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है । लोभ ही से काम समुत्पन्न होता है । लोभ से ही मोह, माया, मान, स्तम्भ, परेसुना, भविष्य, अप्रज्ञता ये सभी एक मात्र लोभ से ही प्रवर्तित हुआ करते हैं । ११३। १००। पराये धनो का हरण, पराई स्त्रियों का अभिमर्शन, सभी प्रकार के साहसों का तथा अकार्यों की क्रियायें भी लोभ के ही कारण से हुआ करते हैं अतएव वित्तात्मा पुरुष के द्वारा यही लोभ मोह के सहित जीत लेना चाहिये । दम्भ, द्रोह, निन्दा, चर्पण्य तथा मत्सरता ये सभी अकृतात्मा लुब्धक पुरुषों को ही हुआ करते हैं । वह श्रुत लोग भवित् ऐसे पुरुष जिन्होंने बहुत कुछ सुन रखा है बड़े २ शास्त्रों को हृदय में धारण किया करते हैं । ये लोग सभी तरह के सशयो का छेदन करने वाले होते हैं किन्तु जब ये लोभ से अस्त हो जाते हैं तो इनका अर्थ पतन हो जाया करता है । काम और क्रोध में प्रसक्त, शिष्ट पुरुषों के आचार से बहिष्कृत हुए—जिमका अन्तःकरण तो चस्ते के समान कर्त्तन करने वाला होता है तथा बाणी बहुत मधुर हुआ करती है जिस तरह से बूध तृणों से समाच्छादित होये । ऐसे

लोग जो होते हैं वे बल से समन्वित होकर उन-उन बहुत से मागों को किया करते हैं । १०१—१०५।

सर्वमार्गं विलुम्पन्ति लोभाज्जातिषु निष्ठुराः ।

धर्मावतंसकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत् । १०६।

एतेऽतिपापिनो ज्ञेया नित्यं लोभममन्विताः ।

जनको युवनाश्वश्च वृषादग्निः प्रसेनजित् । १०७।

लोभक्षपाद्विप्रप्राप्तास्तथैवाग्नयेजनाधिपाः ।

तस्मात्स्यर्जतियेलोभन्तेऽतिक्रामन्ति सागरम् । १०८।

संसारः ह्यमतोऽग्नये ये ग्राह्यप्रस्ता न संशयः ।

अथ ब्राह्मणभेदांस्त्वमष्टौ विप्रावधारय । १०९।

मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रीत्रियश्च ततः परम् ।

अनूचानस्तथा भ्रूण ऋषिकल्पः ऋषिर्मुनिः । ११०।

एते ह्यष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रुताः ।

तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तिविशेषतः । १११।

ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमाश्रोयदाभवेत् ।

अनुपेतः क्रियाहीनो मात्र इत्यभिधीयते । ११२।

लोभ से जातियों में महान् निष्ठुर सभी मागों को विलुप्त कर दिया करते हैं । ये धर्मावतंसक, क्षुद्र ध्वजी लोग इन जगत् को ठगा करते हैं प्रपात् धोखे में डाल दिया करते हैं । इन लोगों को अत्यन्त अधिक पापी समझना चाहिए क्योंकि ये लोग नित्य ही लोभ से समन्वित रहा करते हैं । जनक, युवनाश्व, वृषादग्नि और प्रसेनजित् ने लोग लोभ के क्षय होने से ही दिव्य लोक को प्राप्त हो गए थे । हमी भर्ति ग्रन्थ भी बहुत से जनाधियों ने एकमात्र लोभ का परित्याग करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की है । इसलिए जो लोग इस लोभ का परित्याग कर दिया करते हैं वे इस संसार छोड़ो सागर को पार करके तैर जाया करते हैं । यह सागर नाग वाला सागर है । जो अन्य पुरुष होते हैं वे इसमें ग्राह से

प्रस्त हो रहा करने हैं—इसमें तोसमात्र भी संशय नहीं है । इसके अनन्तर हे विप्रदेव ! आषष्ठ्य षष्ठ्य षष्ठ्य प्रकार के जो ब्राह्मणों के भेद होते हैं उनका व्यवधारण कर लो । मात्र, ब्राह्मण, योगिन, इसके घामे धनु-
 • ज्ञान, धर्म, ऋषि, ऋषि, और मुनि ये भाठ ब्राह्मणों के भेद होते हैं जोकि ब्राह्मण समुद्रिष्ट किए गए हैं । श्रुति में प्रथम ही इनको बत-
 लाया गया है । इन भाठ प्रकार के भेदों में जो घामे-घामे बतलाया गया है वह ही प्रपिक श्रेष्ठ होता है और विद्या तथा चरित्र से युक्त होने वाला विशेष रूप से श्रेष्ठ माना गया है । जो ब्राह्मणों के कुल से समुत्पन्न हुआ है और केवल जाति में ही जन्म ग्रहण करने वाला होता है तथा सब प्रकार से धनुषेय एवं किया से हीन हुआ करता है वह ब्राह्मण 'मात्र' इस नाम से कहा जाया करता है । १०६—११२।

एकोद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याऽऽचारवानृजुः ।

स ब्राह्मण इति प्रोक्तो निभृतः सत्यवाग्मृणी । ११३।

एकां साक्षां सकल्पां च पदभिरङ्गैरधीत्य च ।

पट्कमनिरतो विप्र श्रोत्रियो नाम धर्मवित् । ११४।

वेदवेदांगतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः ।

श्रेष्ठः श्रोत्रियवान्प्राज्ञः सोऽनूचान इति स्मृतः । ११५।

अनूचानगुणोपेतो यज्ञस्वाध्यायश्रितः ।

अरूढ इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजी जितेन्द्रियः । ११६।

वैदिकं लौकिकं चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः ।

आश्रमस्थो वसो नित्यमृषिकल्प इति स्मृतः । ११७।

ऊर्ध्वरेता भवत्यग्न्यो नियताक्षी न संशयी ।

सायानुग्रहयोः शक्तः सत्यसधो भवेदपि । ११८।

निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविजितः ।

• ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुत्यमृत्काञ्चनो मुनिः । ११९।

एकोद्देश्य का अतिक्रमण करके जो वेद के आचार वाला होता है और परम सरल हुआ करता है वह 'ब्राह्मण' इस नाम से कहा गया है। जो परम निभृत, सत्य वचन बोलने वाला, धुणी तथा वेद की किसी एक शाखा को कल्प के सहित एवं छै भङ्गो ॥ समुत्त अध्ययन करके पट् कर्मों में जो धर्म का वेत्ता सदा निरत रहा करता है हे विप्र ! उसको 'धोत्रिय' कहा जाता है ॥ ११३।११४॥ जो वेदों और वेदों के भङ्ग शास्त्रों के तत्त्वों का पूर्ण ज्ञाता होता है, शुद्ध आत्मा वाला, पापों से रहित, परम श्रेष्ठ, श्रोत्रियवान्, प्राज्ञ होता है वह 'भनूवान्' कहा गया है। जो भनूवान् में रहने वाले समस्त गुणों से गुणम्पन्न तथा यज्ञ और दशदश के यज्ञिक करने करने के लिये है उसको 'अणू' इस नाम से शिष्टों के द्वारा कहा जाता करता है। जो शेष भोजी इन्द्रियों के अपने वश में रखकर जीत लेने वाला, वैदिक और लौकिक सभी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त कर लेने वाला, आश्रम में संस्थित, निश्चय वशी अर्थात् सदा शपने आश्रम पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाला होता है वह 'ऋषिकल्प' इस नाम से कहा गया है। जो ऊर्ध्वरेता, अग्नि, निपत अशान करने वाला, समय से रहित तथा शप देने में एवं अनुग्रह करने में पूर्ण शक्ति रखने वाला, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला होता है वह 'श्रुति' इस नाम से कहा जाता करता है। जो सभी प्रकार की प्रवृत्तियों से निवृत्त रहने वाला, सब प्रकार के तत्त्वों का पूर्ण ज्ञाता है, काम और क्रोध से रहित है, ध्यान में स्थित रहने वाला, निष्क्रिय, परम दमनशील तथा मिट्टी और सुवर्ण दोनों में समान भावना रखने वाला होता है वह 'मुनि'— इस नाम से कहा जाता करता है ॥ ११५—११६॥

एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः ।

त्रिशुवनानामविप्रेन्द्राः पूज्यन्ते सवनान्निपु ॥ १२०॥

इत्येवंविधविप्रत्वमुक्तं शृणु युगादयः ।

नवमी कार्तिके शुक्ला कृत्तादिः परिकीर्तिता ॥ १२१॥

वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते ।

माघे पञ्चदशीनाम द्वापरदिः स्मृतायुर्वः । १२२।

त्रयोदशी नभस्येव कृष्णासाहिकलेः स्मृतः ।

युगावयः स्मृताह्येतावत्स्याक्षयकारकाः । १२३।

एनाश्रतस्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतं चाऽक्षयमाशु विद्यात् ।

युगे युगे वर्तमानेन दानं युगादिकाले दिवसेन तत्फलम् । १२४।

युगाद्याः कथिता ह्येता मन्वाद्याः ऋणु साम्प्रतम् ।

अश्वयुज्युक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा । १२५।

तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ।

फाल्गुनतस्यैवमात्रास्याषोषस्यैकादशीतथा । १२६।

इस रीति से वषा और विद्या तथा चरित्र से जो समुच्छिन्न होठे हैं वे ही त्रिशुक्ल अर्थात् तीनों प्रकार से शुक्ल विभ्रेन्द्र सवन प्रभृति में पूजा करने के योग्य हुआ करते हैं । इस तरह से विषो की किये मने भाषको वतला दी है । पञ्च युगादि के विषय में भाष श्रवण करिये । कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की जो नवमी तिथि होती है जिसको मक्षय नवमी कहते हैं वही कृतयुग के आदि का दिन कीर्तित किया गया है अर्थात् नवमी से ही कृतयुग का आरम्भ होता है । वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की जो तृतीया तिथि है जिसको मक्षय तृतीया कहते हैं उसी दिन से त्रेता युग का आरम्भ होता है अर्थात् वही त्रेता का आदि दिन है । माघ मास की पञ्चदशी तिथि अर्थात् पूर्णिमा द्वार युग का आदि दिवस है जिसको युधो के द्वारा कहा गया है । नभस्य नाम की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि कलिपुग का अदि दिवस है । इस तरह से युगों के आदि दिवस जगना दिए गये हैं जो कि दिये हुए दानों के मक्षय करने वाले होते हैं । ये चार तिथि । युगों के आदि दिन हैं । इन तिथियों में दिया हुआ दान, हवन शीघ्र ही अश्वयत्ता को प्राप्त हो जाया करता है—ऐसा जान लो । युग-युग में लगे वर्ष तक जो दान का फल

होता है वह युगों के आदि दिवस में दिए हुए दान का फल हुआ करता है । ये युगों के आदि दिवस तो कह दिए गये हैं । अब मनुष्यों के भी आदि दिवस सुन लीजिए । आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तथा कार्तिक मास की द्वादशी, चैत्र मास की तृतीया तथा भाद्रपद मास की तृतीया, फाल्गुन मास की अमावस्या और पौष मास की एकादशी ।
॥१२०-२२६॥

आषाढस्याऽपि दशमीमाघमासस्य सप्तमी ।
आवणस्याष्टमीकृष्णा तथा पाढी च पूर्णिमा ॥१२७॥
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठे पञ्चदशीसिता ।
मन्वन्तरादयश्चैतादत्तस्याक्षयकारकाः ॥१२८॥
यस्यां तिथौ रथं पूर्वं प्राप देवो दिवाकरः ।
सा तिथिः कथिता विप्रैर्मधिगारथगप्तमी ॥१२९॥
तस्यां दत्तं हुतं चेष्टं सबमेवाऽक्षयं मतम् ।
सर्वदारिद्र्यघ्नमनं भास्करप्रीतये मतम् ॥१३०॥
नित्योद्वेजकमाहुयं बुधास्तं शृणुत त्वतः ।
यश्च याचनिको नित्येन स स्वर्गस्य भाजनम् ॥१३१॥
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरास्तथैव सः ।
नरकं याति पापात्मानित्योद्वेगकरस्त्वसौ ॥१३२॥
इहोपपात्तममं केन कर्मणा न च प्रयातव्यमितो मयेति ।
विचार्य चैवं प्रतिकारकारी बुधैः ॥ चोक्तो द्विज ! दक्षदक्षः ॥१३३॥

आषाढ मास की दशमी, माघ मास की सप्तमी, आवण मास की अष्टमी, आषाढी पूर्णिमा, कार्तिकी, फाल्गुनी, चैत्री और ज्येष्ठ मास की सिता पञ्चदशी ये सब तिथियाँ मन्वन्तरों की आदि तिथियाँ हैं । इन तिथियों में दिया हुआ दान फलवान करने वाला होता है । जिस तिथि में सबसे पूर्व दिवाकर ने रथ की प्राप्ति की थी वह विप्रों के द्वारा माघ

गास में जो रथ सप्तमी होती है वही कही गयी है । उस तिथि का भी बड़ा अधिक महत्व होता है । उस रथ सप्तमी के दिन में दिया हुआ दान, हवन तथा अन्य भी इष्ट आदि की उपासना सभी कुछ प्रक्षय हो जाया करता है । यह समस्त प्रकार की दरिद्रता के क्षय करने वाला होता है क्योंकि इसमें कुछ भी पुण्य कर्म करने भगवान् भास्कर देव परम प्रमत्त हुआ करते हैं । जिसको कुछ पुरुष नित्य ही उद्देश्य उत्पन्न करने वाला कहा करते हैं उसके विषय में भी अब प्रायः नास्तिक रूप से श्रवण करिए । जो नित्य ही याचना करने वाला होता है वह कभी भी स्वर्ग प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हुआ करता है । यह समस्त भूतो को उद्दिष्ट किया करता है जिस तरह से चौर उद्देश्यक होते हैं वैसे ही यह भी हुआ करता है । ऐसा व्यक्ति अत्यन्त वापःस्मा होता है और नरक में गमन किया करता है क्योंकि यह नित्य ही उद्देश्य के करने वाला होता है । यहाँ संसार में भरी किस कर्म के द्वारा उत्पत्ति होगी और मुझे यहाँ से कहाँ पर प्रयाण करना चाहिये इस तरह से जो विचार करके प्रतिकार करने वाला पुरुष होता है बुद्धि के द्वारा वही पुरुष हे द्विज ! यहाँ में भी परम दक्ष कहा गया है । १२७ — १३१।

मासेरष्टाभिरह्ना च पूर्वेषु वयसाऽऽपुषा ।
 तत्कर्म पुरुषः कुर्याद्येनास्तेसुखमेधते । १३४।
 अविधूँमश्च मागौ द्वाबाहुर्वेदान्तवादिनः ।
 अचिदा याति मोक्षश्च धूमेनाऽऽवतंतेपुनः । १३५।
 यज्ञं रासाद्यते धूमो नैष्कर्म्येणाचिराप्यते ।
 एतयोरपरो मार्गः पाषण्ड इति कीर्त्यते । १३६।
 यो देवान्मन्यतेनैवधर्माश्चमनुसूचितान् ।
 नन्ती सयातिपश्यानीतत्त्वार्थोऽयं निरूपितः । १३७।
 इतितेकीर्तिताः प्रश्नाः शक्त्यात्राद्वाणसत्तम ।
 साधुवाग्साधुवाग्रूहिस्थापयाऽऽत्मनमेवच । १३८।

पुरुष को आठ मास पूर्व, दिन, क्रय और अपनी प्रायु के द्वारा वही कर्म करना चाहिए जिससे अन्त में सुख का लान होता है । १३४। वेदान्त वादी विद्वान् अर्चि और धूम के दो मार्ग बतलाया करते हैं । अर्चि नामक मार्ग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति किया करता है और धूम मार्ग से पुनः आवर्तन किया करता है । यज्ञों से द्वारा धूम प्राप्त किया जाता है और निष्कर्मता अर्चि का समासादन किया जाता है । इन दोनों मार्गों से प्रतिरिक्त दूसरा मार्ग पाश्चात्त कहा जाता है । जो पुरुष देवों को नहीं मानता है और अनुमूर्च्छित घन्मों को भी नहीं मानता है । वह इन दोनों मार्गों में नहीं जाया करता है —यही सबका तत्पर्य निरूपित कर दिया गया है । इस रीति से ये सब प्रापके किये गए प्रदनों का उत्तर दे दिया गया है । यह उत्तर साधु प्रसाधु हैं—यह हमको बतलाओ और अपने प्रापका भी परिषय प्रदान करो । १३५—१३८।

१६—शिवपूजनमाहात्म्यवर्णन

अथ ते ददृशुः पाथं संयमस्थं महामुनिम् ।
 क्रियायोगसमायुक्तं तपोमूर्तिधरं यथा । १।
 जटास्त्रिवर्णस्नानकपिलाः शिरसातदा ।
 धारयन्तं लोमशाख्यमाज्यसिक्तमिवाऽनलम् । २।
 सध्यहस्ते तृणोषं च कृद्धायार्थं विप्रसत्तमम् ।
 दक्षिणे चाक्षमालां च विभ्रतं मैत्रमार्गम् । ३।
 अहिसयन्दुरुक्ताद्यैः प्राणिनो भूमिचारिणः ।
 यः सिद्धिं मेति जप्येन समं श्रोतुमिरुच्यते । ४।
 यकभूपद्विजोल्कमृध्रकूर्मा विलोक्य च ।
 नेमुः कलापग्रामे तं चिरन्तनतपोनिधिम् । ५।
 स्यागतासनसत्तनारेणामुनातेऽतिमत्कृताः ।
 यपोचितं प्रतोतास्तमाहुः कार्यहृदि स्थितम् । ६।

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—हे पार्व ! इसके अनन्तर उन्होंने संयम में सत्यधन और क्रिया यौग से समन्वित तपोमूर्ति को धारण करने वाले महा मुनि का दर्शन किया था । उस समय में लोमश नाम वाले वे मुनिवर तीनों कालों में सन्ध्या के निमित्त किये जाने वाले स्नान से कपिल वरुण वायी जटाघो को शिर में धारण करने वाले वे जो घुन से सिक्त अग्नि के ही तुल्य दिव्यनाई दे रहे थे । सद्य हस्त में ध्याया के लिए सूख का समूह था, दक्षिण कर में भस्मों की माला धारण किए हुये वे तथा मैत्र मार्ग में गमन करने वाले विप्र थोड़ को देखा था । १।२।३। दुष्ट उक्तियों के द्वारा भूमि पर सञ्चरण करने वाले प्राणियों को हिसिन न करते हुए जो जप्य के द्वारा भिद्रि की प्राप्ति किया करता है वह मैत्र मुनि कहलाता है । बरु, भूप, द्विज, उलूक, गृध्र और कूर्म सब उन निरन्तर तपोनिधि को देखकर कत्ताप ग्राम में प्रणाम किया करते थे । स्वागन, घासन और सरकार के द्वारा इव मुनि से वे सब परमधिक सत्कृत हुये करते थे । यथोचित रूप से ममाश्वस्त होते हुए वे सब अपने हृदय में स्थित कार्य उन महा भुनीन्द्र से रहा करते थे । ४।५।६।

इन्द्रद्युम्नोऽयमवनीपतिः सत्रिजनाप्रणीः ।

कीर्तिलोपाग्निरस्तोऽयं वेधसानाकपृष्ठतः । ७।

मार्बण्डेयादिभिः प्राप्यकीर्त्युद्धारं न सत्तम ।

नार्यकामयतेस्वर्गपुनः पातादिभीषणम् । ८।

भवताऽनुगृहीतोऽपमिहेच्छति महोदयम् ।

प्रणोद्यस्तदयं भूपः शिष्यस्ते भगवन्मया । ९।

स्वत्तत्राशमिहाऽऽनीतो ब्रूहि साध्वस्य वाञ्छितम् ।

परोपकारणं नाम साधूनां यतमाहितम् ।

विशेषतः प्रणोद्याना शिष्यवृत्तिषुपेयुषाम् । १०।

अप्रणोद्येषु पानेषु साधु प्रोक्तमसंशयम् ।

विद्वेषं मरणं चाऽपि कुस्तेऽयतरस्य च । १११।

अप्रमत्तः प्रणोद्येषु मुनिरेष प्रयच्छति ।

तदेवेति भवानेवं धर्मं वेत्ति कुतो वयम् । ११२।

धूम्रं ने कहा—यह भवनी का स्वामी इन्द्रधुम्न सत्री जनो में
अप्रणी है किन्तु कीर्ति के मोप हो जाने से वेधा के द्वारा यह नाक
(स्वर्ग) के पृष्ठ भाग से निरस्त कर दिया गया है । हे सत्ताम ।
माकण्डेय आदि महर्षियों के द्वारा भवनी कीर्ति का उद्धार प्राप्त करके
यह फिर पुनः पात आदि के होने के कारण अतीव भीषण स्वर्ग के पाने
की कामना ही नहीं करता है । आपके द्वारा यह अनुगृहीत होना चाहिये
कि यह यहाँ पर इस महान् उदय को इच्छा कर लेये । इस राजा को
ऐसी प्रेरणा देनी ही चाहिए । यह राजा आपका ही शिष्य है और
मेरे द्वारा आपको समीप में लाया गया है । आप कृपा करके इसको
साधु वाञ्छित बोनिए । दूसरे का उगकार कर देना ही साधु पुरुषों
का व्रत हुआ करता है और विशेष रूप से शिष्य वृत्ति को प्राप्त हुए
अणोद्यो का उगकार करना उनका आदिन धन है । जो प्रेरणा करने
के योग्य नहीं है ऐसे पाण्डित्य के शिष्य में बिना संशय के साधु कहा
है । पाण्डित्य का निर्वहण और मरण भी किया करते हैं । जो प्रणोद्य
है उनके शिष्य में अवश्य यह मुनि यह ही प्रदान किया करते हैं—आप
हैं । इस प्रकार व पूर्ण धर्म को जानने हैं हम लोग इस शिष्य में
प्रतिष्ठा बना जानकारी रख सकते हैं । ७—१२।

कूर्म ! गुह्यमिदं नवं तस्मादभिहितमद्य नः ।

धमशाश्वतोन्नतं तस्मादिताः स्मपुरातनम् । ११३।

यूहि राजगुविश्वस्य गन्धेह हृदयस्थितम् ।

कस्ते किमश्रोच्छ्रेयं यदयाम्यहंनसंशयः । ११४।

भगवत्प्रथमः प्रदत्तस्तावदेव ममोच्यताम् ।

श्रीमानेति मय्यस्तेरयोऽस्मिन्नतस्तथमः । ११५।

कुटोमात्रोऽसि यच्छाया तृणैः शिरसि पाणिगैः । १९६।

मर्त्यव्यमस्त्यवश्यं च काय एष पतिष्यति ।

कस्याऽर्थे क्रियते मेहमनित्यभवमध्यगैः । १९७।

यस्य मृत्युर्भवेन्मित्रं पीतं वाऽमृतमुत्तमम् ।

तस्यैतदुचितं वक्तुमिदं भैश्वोभविष्यति । १९८।

इदं युगसहस्रेषु भविष्यमभवद्दिनम् ।

तदप्यद्यत्त्वमापन्नं का कथा मरणावधेः । १९९।

कारणानुगतं कार्यमिदं शुक्रादभूद्वपुः ।

कथं विशुद्धिमायाति क्षालिताङ्गारवद्वद । २००।

तदस्याऽपि कृते पापं शत्रुपङ्क्वर्गनिजिताः ।

कथङ्कार न लज्जन्ते कुर्वाणा नृपसत्तम । २०१।

महा महर्षि सोमश जी ने कहा—हे कृष्ण ! आज आपने जो यह हमसे कहा है वह बहुत पुण्य है । समुचित है । आपने यह पुरातन धर्म शास्त्र से उपगत बात का हमको स्मरण दिला दिया गया है । हे राजन् ! आप अपने हृदय में स्थित मन्देह को पूर्ण विभ्रम रूप से बोलिये । आपको किसने क्या दिया है ? क्षेप में आपको बतला दूँगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । १९३, १९४। राजा इन्द्रवर्धन ने कहा—हे भगवान् ! मेरा सबसे प्रथम प्रश्न तो यही है उसे आप बतलाइये कि इस महान् घोर ग्रीष्म काल में भी अब कि रवि मध्य में स्थित हैं इस आपके आश्रम में वह क्यों नहीं हैं ? आपके अपने हाथ से रहने वाले तृणों से जो शिर पर हैं आपकी इस कुटी मात्र पर यह छाया कैसे है ? महर्षि सोमश जी ने कहा—मरना तो अवश्य ही है और यह काया अवश्य ही गिर जायेगी । इस अनित्य ससार के मध्य में गमन करने वालों के द्वारा किसके लिए धर किया जाये ? जिसका मृत्यु निश्चय है चाहे उसने उत्तम अमृत हो क्यों न पीया हो उसको यही कहना उचित है कि यह मुझे कल ही हो जायगी । सहस्रों युगों में होने वाला यह

दिन हुआ है वह भी अक्षय को प्राप्त हो गया है । इस भरसु की अवधि के विषय में तो कहना ही क्या है । १५-१६। प्रत्येक कार्य कारण के ही अनुगत हुआ करता है । यह शरीर शुक्र (बीज) से समुत्पन्न हुआ है । प्राय ही बतलाइए, यह खालित मज्जार की भाँति किस प्रकार से विशुद्धि को प्राप्त हो सकता है । तो ऐसे इस अनित्य एवं अविशुद्ध शरीर के ही लिए छे साधुओं के द्वारा निजित हुए मनुष्य पाप किया करते हैं । हे 'नृश्रेष्ठ ! इस तरह पाप कर्मों को करते हुए भी वे मनुष्य कर्मों नहीं लज्जित हुआ करते हैं । २०—२१।

तद्ग्रहण इहोत्पन्नः सिकताद्वयसम्भवः ।
निगमोक्तं पठञ्छृण्वग्निदं जीविष्यतेकथम् । २२।
तथापि वैष्णवी माया मोहयत्यविवेकिनम् ।
हृदयस्थं वेदं न जानन्तिह्यपिमृत्युं शतायुषः । २३।
दन्ताश्चलाश्चला लक्ष्मणोयौवनं जीवितं नृप ।
चलाचलनमतो वेद दानमेवं गृह नृणाम् । २४।
इति विज्ञाय संसारमसारं च चलाचलम् ।
कस्याऽर्थं क्रियते राजकुटजादिपरिग्रहः । २५।
चिरायुर्भगवानेव श्रूयते भुवनत्रये ।
तदर्थमहमावातस्तत्किमेव वचस्तव । २६।
प्रातःकल्पं मच्छरोरादेकरोमपरिक्षयः ।
जायते सवनाशे च मम भावि प्रमापणम् । २७।
पश्य जानुप्रदेश मे द्वाग्रङ्गुलं रोमवर्जितम् ।
जातं वपुस्तद्विभेमिममर्तव्येसति किं गृहेः । २८।

यहाँ पर उम ग्रहा मे सिकता द्वय से सम्भव उत्पन्न हुआ है — निगम के द्वारा कवि इसको पढ़ने एवं श्रवण करते हुए कैसे जीवित रहेगा । तो भी यह वैष्णवी माया ऐसी अद्भुत है कि विवेकहीन पुरुष को मोहित कर दिया करती है । मनुष्य सो वर्ष को प्राप्ति वाले भी

अपने हृदय में स्थित भी मृत्यु का ज्ञान नहीं रखा करते हैं। ये शरीर में रहने वाले दाँत चलायमान अर्थात् अस्थिर होते हैं—यह लक्ष्मी भी चलायमान अर्थात् कभी भी एक के पाम स्थिर रखने वाली नहीं है—यह जीवन और यह जीवन भी चल हैं अर्थात् स्थिरता से रहित ही होते हैं हे नृप ! यह संसार में रहने वाले सभी कुछ घनाचल हैं अतएव मनुष्यों का दान ही गृह होता है। यही ज्ञान प्राप्त करके इस संसार को चला-चल एवं संसार समझकर हे राजन् ! कुटज भादि का परिग्रह कितके लिए किया जावे ॥२२॥२५॥ इन्द्रशुम्भ ने कहा—इस भुवन त्रय में एक भाग ही चिरायु है—ऐसा ही सुना जाता है। इसलिए मैं यही पर समापात हुआ हूँ तो भागका यह ध्वन क्यों है ? ॥२६॥ महर्षि सोमश जी ने कहा—प्रत्येक कल्प में इस मेरे शरीर से एक रोम का परिणय होता है। सर्वनाश होने पर मेरा यह भावी होने वाला प्रमापण होता है। आप मेरे इस जानुओं के भाग को देखो—यह वो अङ्गुल तक रोमों से रहित है। मेरा यह शरीर जब ऐसा हो गया है तो मैं डरता हूँ कि मरना ही है तो फिर गृहों से अपना क्या प्रयोजन है ॥२७-२८॥

इत्थं निशम्यतद्वाक्यसप्रहस्याऽतिविस्मितः॥

भूपालस्तस्य पप्रच्छकारणतादृशायुः ॥२९॥

पृच्छामि त्वामहं ब्रह्मण्यवायुरिदमीदृशम् ।

तव दीर्घप्रभावोऽमीदानस्यतपसोऽयवा ॥३०॥

शृणु भूप ! प्रवक्ष्यामि पूर्वंजन्मसमुद्भवाम् ।

शिवधर्मयुतां पुण्याकथा पापप्रणाशनीम् ॥३१॥

अहमासं पुरा शूद्रो दरिद्रोऽस्तीवभूतले ।

अमामि वसुधापृष्ठे दृशनापीडितो भृशम् ॥३२॥

ततो मया महत्लिङ्गं जालिमध्यगतं तदा ।

मध्याह्नेऽस्य जलाधारो दृष्टश्चैवाऽविदूरतः ॥३३॥

ततः प्रविश्य तद्वारि पीत्वा स्नात्वा च शाम्भवम् :

तल्लिङ्गं स्नापितं पूजा विहिता कमलैः शुभैः ।३४।

अथ क्षुत्क्षामकण्ठोऽहं श्रोकण्ठं तं नमस्य च ।

पुनः प्रचलितो मार्गे प्रसीतो नृपसत्तम ।३५।

देवर्षि नारद जी ने कहा—इस रीति से लोमश महर्षि के उस वचन का अवलम्ब करके यह राजा हैसकर अत्यन्त ही विस्मय से मुक्त हो गया था । फिर उस राजा ने उनसे उस तरत की प्राप्ति का कारण पूछा था । इन्द्रधुम्न ने कहा—हे राजन् ! मैं मापने यह पूछता हूँ कि मापकी यह ऐसा प्राप्ति कैसे है ? क्या मापके परम विद्यालवान् अपवा सप का यह महान् प्रभाव है ? महर्षि लोमश जी ने कहा—हे राजन् ! अब मैं आप ने पापों के प्रणाम करने वाली, शिव धर्म से मुक्त, पूर्व जन्म में होने वाली परम पुण्य कथा का वर्णन करूँगा उसे आप सब अवलम्ब कीजिये । मैं पहिले सुद्र या श्रीर इय भूख में अत्यन्त ही दरिद्र का । मैं इस भूमि के पृष्ठ पर भोजन के लिए भी अत्यन्त पीड़ित होकर भ्रमण किया करता हूँ । इसके उदरान्तर उस समय में मैंने जालि के मध्य में स्थित एक महान् शिव लिङ्ग का दर्शन प्राप्त किया था । मध्याह्न के समय में इसका जलाधार समीप में ही मैंने देखा था । इसके पश्चात् उगके द्वार में मैंने प्रवेश किया था । वहाँ पर मैंने उस क्षत्रिय भगवान् के परम पवित्र जल का पात्र किया था तथा स्नान किया था । फिर उस शिव लिंग का भी स्नान कराया और परम युग कमल के पुष्पों से शिव लिंग की अर्चना की थी । हे नृपश्रेष्ठ ! इसके अनन्तर लघा से लाम कण्ठ वाला मैं भगवान् श्री कठ को नमस्कार कर फिर प्रसीत होना हुआ मार्ग में चला दिया था ।२६-३५।

ततोऽहं ब्राह्मणगृहे जाता जातिस्मरः सुतः ।

स्नापनाच्चिद्वलिङ्गस्पर्शकृत्कमलपूजनात् ।३६।

स्मरन्विलसितं मिथ्या सत्याभासमिदं जगत् ।
 अविद्यामयमित्येवं ज्ञात्वा मूकत्वमास्थितः ।३७।
 तेन विप्रेण वार्धक्ये समाराध्य महेश्वरम् ।
 प्राप्तोऽहमिति मे नामईशानइतिकल्पितम् ।३८।
 ततः स विप्रो वात्सल्यादगदान्मुबहून्मम ।
 चकार व्यपनेष्यापि मूकत्वमितिनिश्चयः ।३९।
 मन्त्रवादान्वहून्वेद्यानुपायानपरानपि ।
 पित्रोस्तथा महामायासम्बद्धमनसोस्तथा ।४०।
 निरीक्ष्य भूढतां हास्यमासोऽग्निसमेतदा ।
 तथा यौवनमासाद्यनिशिहित्वानिजंगृहम् ।४१।
 सम्पूज्य कमलैः शम्भुं ततः शयनमभ्यगाम् ।
 ततः प्रमीते पितरि भूढइत्यहमुन्मिक्तः ।४२।

इसके पश्चात् भगवान् शिव के स्नापन कराने से तथा केवल
 एक ही बार कमल को पुष्पो के द्वारा पूजन करने से मैं एक ब्राह्मण के
 घर में जातिस्मर का पुत्र होकर समुत्पन्न हुआ था । मैंने इस माता-पिता
 विलास को पूर्णतया मिथ्या स्मरण करते हुए तथा इस असत्य जगत्
 को सत्य का आभास मात्र जानकर और यह सब अविद्यामय ही है—
 ऐसा ज्ञान प्राप्त करके मूकत्व में समास्थित हो गया था अर्थात् मैं किसी
 से भी न बोलकर एकदम मूक बन गया था । उस ब्राह्मण ने वृद्धावस्था
 में भगवान् महेश्वर की समाराधना करके ही मुझे प्राप्त किया था । इस-
 लिए मेरा नाम “ईशान”—यह कल्पित किया गया था । इसके अनन्तर
 उस विप्र ने वात्सल्य भाव होने के कारण से मेरी बहुत सी प्रीति-प्रीति
 की थी और उनका ऐसा निश्चय हो गया था कि इस भानक को इस
 मूकता की मैं दूर कर दूँगा । ३६-३९। महामाया से सम्बद्ध मन वाले
 उन माता-पिता के मन्त्र वादों, बहुत से वैद्याँ और दूसरे उपायों को देख-
 कर जोकि एक महा भूढता से परिपूर्ण थे उस समय मेरे मन में

हास्य हो रहा था इसके उपरान्त मैं अपनी यौवन की अवस्था पर पहुँच गया था और उस समय मैं रात्रि में अपने गृह का त्याग करके बाहिर चला गया तथा कमल पुष्पों से शम्भुदेव का पूजन करके पुनः शयन पर प्राप्त हो गया था । इसके उपरान्त पिता के प्रमोद होने पर मुझे 'भूद' यह कहकर त्याग दिया था । ४०—४२।

सम्बन्धिभिः प्रतीतोऽथ फलाहारमवस्थितः ।

प्रतीतः , पूजयामोऽमरजैर्बहुविधैस्तथा । ४३।

अथ वर्षशतस्याऽन्ते वरदः शशिशेखरः ।

प्रत्यक्षो याचितो देहि जगमरणसंक्षयम् । ४४।

अजरामरता नास्ति नामरूपभृतो यतः ।

ममाऽपि देहपातः स्यादवधि कुरु जीविते । ४५।

इति शम्भोर्वचः श्रुत्वा मया वृत्तमिदंतदा ।

कल्पान्ते रोमपातोऽस्तु मरणं सर्वसंक्षये । ४६।

ततस्तव गणो भूयामिति मेऽभीप्सितो वरः ।

तथैत्युक्त्वा स भगवान्हरश्चाऽदर्शनं गतः । ४७।

अहं तपसिनिष्ठश्च ततः प्रभृति चाऽभवम् ।

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते शिवपूजनात् । ४८।

ब्रह्माजैरितरर्वाऽपिकमलेर्नाऽप्रसंशयः ।

एवंकुसु तताराजत्वमप्याप्स्यसिवाञ्छितम् । ४९।

समस्त सम्बन्धिओं के द्वारा मेरी भूढ़ना की प्रतीति हो गई थी और मेरा परित्याग भी कर दिया गया था । इसके पश्चात् मैं फनो के आहार पर ही अवस्थित हो गया था । मैं पूर्णतया प्रतीत होकर बहुत तरह के कमलों में ईश की पूजा किया करता था । इसके पनन्तर जब तो वर्ष पूरे हो गये तो भगवान् शशि शेखर वरदार देने वाले मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गये थे । मैंने भी उनके अजर-मरण का भलो-भाति दाय प्रदान करो— ऐसी ही याचना की थी । भगवान् ईश्वर ने कहा—

नाम और रूप को धारण करने वाले को प्रजरता और प्रमरता नहीं हुआ करता है क्योंकि मेरे देह का पात होगा इसलिये जीवित में कोई प्रवधि करो । इस प्रकार के इस भगवान् शम्भु के वचन का ध्यान करके उस समय में मैंने यही वरदान माँगा था कि कहर के घन्ट में मेरे एक रोम का पात होवे और जब सबका संशय हो जावे तो मरण होवे । इसके अनन्तर मैं फिर थापका गण हो जाऊँ—यही मेरा अभीप्सित वरदान है । तपास्तु भर्षात् ऐसा ही होया—यह कहकर वह भगवान् हर प्रदर्शन को प्राप्त हो गये थे । ४३-४७। सभी से लेकर मैं तपः श्रुषा में निष्ठा धाला हो गया था । भगवान् शिव के पूजन से ब्रह्म हत्या आदि महापापों से मनुष्य छुटकारा पा जाता करता है । ब्रह्माज्ञों के द्वारा भगवा इतर कमलों के द्वारा हे महाराज ! इस प्रकार से प्राप भी शिव का पूजन करें । प्राप भस्मा अभिशञ्जिष्ठम प्रश्य ही प्राप्य कर लगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ४८-५१।

हरभक्तस्य लोकस्य त्रिलोक्या नास्ति दुर्लभम् ।
 वहिः प्रयुतिं स गृह्य शानकमेन्द्रियाणि च । ५०।
 लयः सदाशिवे नित्यमस्तयोंगोऽयमुच्यते ।
 दुष्करत्वादबहिर्योगोऽशिव एव स्वयंजयी । ५१।
 पञ्चभिश्चाऽर्चनं भूतैर्विशिष्टफलदं ध्रुवम् ।
 वलेशकर्मविपाकाद्यैराशयैश्चाऽप्यसंयुतम् । ५२।
 ईमानभाराध्य जपप्रणवं मुक्तिमाप्नुयात् ।
 सर्वपापक्षये जाते शिवे भवति भावना । ५३।
 पापोपहतबुद्धीनां शिवे वार्ताऽपि दुर्लभा ।
 दुर्लभं भारते जन्म दुर्लभं शिवपूजनम् । ५४।
 दुर्लभं जाह्नवीस्नानं शिवे भक्तिः सुदुर्लभा ।
 दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूजनम् । ५५।
 अल्पपुण्यञ्च दुष्प्रापं पुरुषोत्तमपूजनम् । ५६।

भगवान् हर के भक्त लोक के लिए इस जिनोकी में कुछे भी दुर्लभ नहीं है । यह बहिः प्रवृत्ति का तथा ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों का प्रयोग करके निरूप ही भगवान् सदाशिव में तप को प्राप्त हो जाता यह अन्तर्योग कहा जाता है । यह भगवान् शिव ने ही स्वयं गान किया था क्योंकि वहिर्भोग अत्यन्त दुष्कर होता है । पाँचों भूतों के द्वारा जो भर्चन किया जाता है वह निश्चय ही विशिष्ट कल प्रदान करने वाला होता है । घरेलू कर्म विषाकादि भाषणों से असंयुक्त ईशान का समा-
राधन करके तथा प्रणव का जाप करता हुआ मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है । समस्त प्रकार के पापों के क्षय हो जाने पर भग-
वान् शिव में जावना उत्पन्न करती है । जिनकी बुद्धि पापों के कारण लुप्त होती है उन मनुष्यों को तो सिर के विषय में बातें करना भी परम दुर्लभ होती है । इस महा पुण्य में भारत देश की भूमि में जन्म ग्रहण करना ही अत्यन्त दुर्लभ होता है उसमें भी भगवान् शिव का पूजन करने का अवसर प्राप्त करना परम दुर्लभ होता है । प्रभामयी पापों के प्रणाश करने वाली जाल्पि में स्थान दुर्लभ है और भगवान् शिव में भक्ति करना भी महान् दुर्लभ हुआ करता है ब्राह्मण को दान देना तथा वह्निदेव का पूजन करना इस संसार में दुर्लभ है । अत्यल्प पुण्यों के द्वारा पुण्योत्तम प्रभु का भर्चन करना महान् दुष्साध होता है ।
१५०—५६।

लक्ष्मण धनुषा योगस्तदर्थेन कृताशनः ।

पात्रं शतसहस्रेण रेखा रुद्रश्च पश्चिभिः ॥१७॥

इतीदमुक्तमखिलं यथा तव महोपते ! ।

यथायुरभवद्दीर्घं ममाराध्य भूभरम् ॥१८॥

न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चाऽप्राप्यमाहात्मनाम् ।

शिवभक्तिरुक्तांपुंसां त्रिलोक्याभिततिनिश्चितम् ॥१९॥

नन्दीश्वरस्य तेनैव वपुषा शिवपूजनात् ।
 सिद्धिमालावयको राजञ्छङ्कर न नमस्यति । ६०।
 श्वेतस्य च महीपस्य श्रीकण्ठच नमस्यतः ।
 कालोऽपि प्रलययातः कस्तमीशं न पूजयेत् । ६१।
 यदिच्छया विश्वमिदं जायते अवतिष्ठते ।
 तथा सत्स्वीयते चान्ते कस्तं न शरणं व्रजेत् । ६२।

एतद्रहस्यामिदमेव नृणां प्रधानं

कर्तव्यमत्र शिवपूजनमेव भूप ! । ६३।

यस्याऽन्तरायपदवीमुयान्ति लोकाः

सद्यो नरः शिवनतः शिवमेति सत्यम् । ६४।

एक लक्ष धनुषों से योग होता है उसके अर्ध भाग से हताशन तथा दान सहस्र से मात्र और साठ से रेखा और द्वाद्व हुमा करता है । हे महीपते ! मैंने आपके आगे यह सब कहकर बतला दिया है । जिस प्रकार से प्रायु दीर्घ हुई है वह महेश्वर भगवान के समारोह के करने से ही हो गई है । १५७।१८। भगवान शिव की भक्ति करने वाले महारमा पुरुषों के लिये इस समारोह में क्या विशेषी में भी कुछ भी दुर्लभ दुष्प्राप्य और अमाध्य नहीं है — यह परम निश्चित ही है । १५८। नन्दीश्वर की उसी शरीर से भगवान शिव के पूजन करने से मिद्धि को देखकर हे राजन् ! ऐसा कौन सा पुरुष है जो शङ्कर को नमन नहीं करेगा ? भगवान श्री कण्ठ को नमस्कार करने जाने श्वेत महीप काल भी प्रलय को प्राप्त हो गया था ऐसे उस ईश का कौन पूजन नहीं करेगा ? जिसकी इच्छा से ही यह सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न होता है, विशेष रूप से भवस्थित रहा करता है तथा अन्तर्लय को प्राप्त हुआ करता है ऐसे उस ईश्वर की धरणावधि में कौन आकर प्राप्त नहीं होगा ? हे भूप ! यह एक परम रहस्य है और मनुष्यों के लिए परम प्रधान है । यहाँ पर भगवान शिव का पूजन ही करना चाहिये जिसकी अन्तराय पदवी को लोक

प्राप्त हुआ करते हैं। मनुष्य शिव को नमन करने वाला तुरन्त ही भगवान् शिव की सन्निधि को प्राप्त कर लिया करता है—यह सत्य है। ६०-६४।

॥ विविध शिव क्षेत्रों का शक्ति सहित वर्णन ॥

स्थानं त्वया मुने पृथमस्ति माहेश्वराग्रणि ।
चराचराणां सर्वेषां भूतानामपिशर्मणो ।१।
प्रवर्त्तिष्यते हि देवेन तत्सत्कर्मनुगुण्यत ।
दारीरभाजा जनन तामुतास्वपि योनिषु ।२।
त्वया शुश्रूषित तेषां हिताय महते ह्यलम् ।
अन्यथा सगृतेर्हानिः कल्पाकोटिशतैर्नहि ।३।
स्वल्पैर्हि यमभिर्जनैरपि प्राप्ता पुनः पुनः ।
घटीयन्मनयाञ्जन्ममरणो नैव शाम्भतः ।४।
यथ तु विरतो देही गर्भं मोक्षसमागमात् ।
विश्रान्तये प्रकल्पेन विशुद्धज्ञानतो विना ।५।
प्रदेशां ययिता पूर्वं प्रसन्नवशतो मया ।
श्रुतिभेदादिकं तेषु निवामः कृत्तिवासस ।६।
वेचित्तीरेषु गङ्गाया वेचित्सारस्वतेतटे ।
पालिन्दीतीरयोरन्येति निविष्टोऽसौ पति ।७।

गणेशदेव ने कहा—ह मुने ! आप तो महेश्वर भगवान् के भक्तों में प्रथम हैं। इन समस्त चराचर भूतों के कल्याण के लिए जो धारण स्थान प्राप्त है। देव न उन सब जनों के आनुगुण्य से दारीर पारियों का जगमग उन योनिग में पानिज किया है ।१।२। आपने उतरे महान द्विज के लिए पर्वण्य शुश्रूषा की है अन्यथा इन सगृति का हानि हो जाती जो सैर हो बरीट वस्त्रों में भी पूर्ण नहीं होती ।३। स्वयं जनों में तथा स्वयं जातों से भी पुनः-पुन प्राप्त वे घटी यन्त्र के मयाप में ये जन्म तथा मरण सभी भी हम को प्राप्त नहीं होते हैं ।४।

गर्भ के मोरु के यथावन मे विरन हुआ यह देहधारी विमुक्त ज्ञान के
 बिना कैसे विश्रान्ति के त्रिप् प्रकल्पन हो सकता है ? पहिले मैंने प्रसङ्ग
 बसा होने के कारण से प्रदेय कवित कर दिए गये हैं । श्रुति भेदादि
 धीर उनमें कृत्तिवास (निव) का निवास होना है । उनमे कुछ तो
 भागीरथी गङ्गा के तीरे मे निवास किया करते हैं — कुछ सरस्वती
 नदी के तटो पर रहते हैं — अन्य कानिन्दी (यमुना) के तीरे पर
 और कुछ शोण के तट पर निवास किया करते हैं । १४-७।

अपरे नमंदातीरे परे गोदावरीतटे ।
 कतिचिद्गोमतीतीरेष्वन्ये हैमवतीतटे । १५।
 समुद्रपाश्वर्ष्यतरे द्वीपेष्वन्ये सरस्वताम् ।
 मुनेषु पंचित्तिमन्धूनां मम्भेदेऽपि केचन । १६।
 कृष्णावेगीतटे पंचित्तद्भभ्रान्तिके परे ।
 उरवेण्यां कतिरये परे दावस्यापमान्तिके । १७।
 कावेरीतीर इतरे पंचित्तेगवतीतटे ।
 अन्ये तु ताम्रपण्यां कतिचिन्मुरनातटे । १८।
 त्रैविदरावतीतीरे त्रिभरे मातुलङ्गिके । १९।
 गन्धातटेषु त्रिचिद्विषिष्टुमागेतीरे
 परे च तमगावहणान्तिरेऽन्ये ।
 मन्दार्द्रानोमग्निगोरिगरे पत्रेऽपि
 नित्रातटे परिगरेषु परे सरस्वाः । २०।
 निषामात्रातटे दावद्भिनते परे ।
 यमपञ्चमुषातटेऽन्ये पंचिद्भोगरीतटे । २१।

करते हैं । कुछ कृष्ण वैष्णो के तट पर, दूसरे पुङ्गव भद्रा के समीप में रहा करते हैं । कृतिपय उपवैष्णो में भीरू दूसरे शक्तवगण के समीप में निवास करते हैं । इतर कावेरी के तट पर, कुछ वेगवती के तीर पर, अन्य तोत्रपर्णी के तट पर भीरू कुछ मुरला नदी के तीर पर रहा करते हैं । ११०।११। कुछ ऐशवती के तीर पर, इतर यातुका के समीप में, कतिचित् कन्या के तट पर, कुछ कुमारी के तीर पर अन्य सप्तमा भीरू वरुणा के तटो पर हो रहा करते हैं । इतर मन्दाकिनी के समीप वात्सि क्षेत्रों में, दूसरे शिवा के तट पर एवं सरयू के परितरों में निवास किया करते हैं । १२।१३। इतर विषाखा के समीप में रहते हैं । भीरू दूसरे सतप्रति नदी के तट पर निवास किया करते हैं । कुछ धर्मपवती के उपकण्ठ में भीरू अन्य भीमरथी नदी के तीर पर रहते हैं । १४।

केचिद्विन्दुसरोऽभ्यर्णोपरेपम्पासरस्तट ।
 अभ्यर्णोऽपिर्भरव्याः कतिचित्कोणिकीतटे । १५।
 अपरे मालिनीतीरे परे गन्धवतीतटे ।
 कतिचिन्मानसोपास्ते केचिदच्छोदरोधसि । १६।
 इन्द्रधन्मसरस्याय एके तु मणिकर्णिके ।
 परे तु वरदातीरे ताप्या कतिचनाऽपरे ।
 पातालगंगासविधे शरवत्यन्तिके परे । १७।
 लोह्रिष्पाकूलयोः केचित्कतिचित्कालमातटे ।
 वितस्तोपान्तिके स्वर्ग्ये चन्द्रभागान्तिके परे । १८।
 मुरलीपान्तिके केचित्पयोष्णीतीरयोः परे ।
 केचिन्मधुमतीतीरेकेचनाऽनुपिनाकिनीम् । १९।
 उक्तं वाराणसीक्षेत्रं क्रोशपञ्चकपावनम् ।
 देवस्तत्राऽविमुन्याप्योविशालाख्यासमर्चितः । २०।
 कपालमोचनं यत्र यत्राऽस्तेकालभीरवः ।
 मृतानां यत्र रुद्रस्य नाशीवद्धि हि ता मुने । २१।

बुध बिन्दुवर के समीप में, दूसरे गन्गा गरीर के तट पर, कतिपय भैरवों के निकट में घोर कनिष्ठि नदी के तट पर रहते हैं । दूसरे भातिनी नदी के तीर पर, बुध गन्धवती के तट पर, बुध मानस के उपान्त में घोर कतिपय घोष के तीर पर रहा करते हैं । बुध धन्य इन्द्रचुम्न के नाम धाने मर पर घोर धन्य मल्लिकार्जुन पर, दूसरे वरदा के तीर पर तथा दूसरे बुध तापी नदी पर रहा करते हैं । बुध पाताल गङ्गा के समीप में, दूसरे बुध दारावती के समीप में, बुध लोहिती के समीप पर, बुध कानमा के तट पर, धन्य विनस्ता के उपान्त में तथा दूसरे चन्द्रभागा नदी के समीप में निवास किया करते हैं । १५-१८। बुध गुरला के समीप में, दूसरे पयोष्णी नदी के तटों पर रहते हैं । कतिपय मधुमती नदी के तीर पर घोर बुध पिताकिनी नदी के साथ २ रहते हैं । इस प्रकार से वाराणसी का क्षेत्र पाँच कोष का परम पावन क्षेत्र कह दिया है । वही पर विमानाशी के द्वारा मन्वित मन्विमुक्त नामधारी क्षेत्र विराजमान रहने हैं । कपान मोचन जहाँ पर हैं घोर जिस क्षेत्र में बाल भैरव रहा करते हैं । हे भुने ! जहाँ पर मृग हुए प्राणियों की द्रव्य की प्राप्ति हुआ करती है उसको काशी मन्त्रवा चाहिए । १६। २०। २१।

गयाप्रयागावपि ते कथितौ सर्वसिद्धिदौ ।
यत्र पिण्डप्रदानेन तुष्यन्ति पितरः किल । २२।
आर्कणितं च केदार यस्मिन्महिषरूपधृक् ।
देवोऽपच हतोदेव्यासर्वश्रेयस्करोनृणाम् । २३।
सर्वसिद्धकरं पुंसां क्षेत्रवदरिकाश्रमम् ।
यत्राऽऽस्ते त्र्यम्बका देव्या नरनारायणचितः । २४।
श्रुतं हि नैमिष क्षेत्रं त्वया यत्र महेश्वरः ।
देवदेवाभिषः पुण्यो देवो सारङ्गधारिणी । २५।

अमरेशमिति स्यान् प्रोक्तंमर्त्यं साधकम् ।

ॐकारनामातत्रेशश्चण्डिकास्यामहेश्वरी ॥२६॥

पुष्कराख्य महास्थानं श्रुतं ते कथितं मया ।

यत्र देवो रुजोमन्विः पृच्छता महेश्वरी ॥२७॥

आपादोनाम ते स्थानं पावनं कथितं मया ।

आपादेशो हरस्तत्र रतोशा परमेश्वरी ॥२८॥

सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले वे योग्य और प्रयाग भी कथित कर दिए गये हैं जहाँ पर पिण्डों के प्रदान करने से पितृगण परम तुष्ट हुमा करते हैं । केदार का भी समाकर्णन किया है जिसमें महिष के स्वरूप को धारण करने वाले देव भी देवी के द्वारा निहृत हुए हैं जो मनुष्यों के सब तरह के श्रेय को करने वाले हैं ॥२२॥२३॥ चवदिकाधम क्षेत्र पुरुषों की सभी सिद्धियों का करने वाला है जहाँ पर नर-नारायण के द्वारा समर्पित देवी का अम्बक प्रभु विराजमान है । आपने नैमिष क्षेत्र का श्रवण किया ही होगा जहाँ पर देवदेव नामधारी पुण्य रूप भगवान महेश्वर हैं और सारङ्ग धारिणी देवी विराजमाना हैं ॥२४॥२५॥ अमरेश—इस नाम वाला एक स्थान है जो सभी ब्रह्मों का साधक कहा गया है वहाँ पर ॐकार नाम वाले ईश विराजमान हैं और चण्डिका नामधारिणी महेश्वरी है ॥२६॥ पुष्कर नाम वाला एक परम भक्त स्थान है जिसे मेरे द्वारा आपने कहा हुआ श्रवण किया ही होगा जहाँ पर रुजोमन्वि देव हैं और पुरु हुता नाम वाली देवी महेश्वरी हैं । आपादो नाम वाला एक पावन स्थान है जो आपकी मने कहा है वहाँ पर आपादेश देव विराजमान रहते हैं और रतोशा नाम वाली परमेश्वरी है ॥२७—२८॥

दण्डिमुण्डोसमाख्यां च स्थानं ते कथितं मया ।

यत्र मुण्डो महादेवो दण्डिका परमेश्वरी ॥२९॥

लाकुलनाम ते स्थानं संशुद्धं कथितं मया ।

लाकुलीशो हरोयस्मिन्नङ्गा सर्वमङ्गला ॥३०॥

भारभूतिरितिस्थानं भवतोऽभिहितंमया ।
 यत्रभाराभिघः शम्भुभूत्याख्यामूधरात्मजा ।३१।
 अरालकेश्वरंनाम स्थान ते कथितंमया ।
 यत्र सूक्ष्माभिघः शूलीसूक्ष्माख्याशीलनन्दिनी ।३२।
 गयानाम महाक्षेत्रं तव प्रस्तावितं मया ।
 मगलाख्या शिवा यत्र शङ्करः प्रपितामहः ।३३।
 कुक्षेत्रमिति स्थान भवते विनिवेदितम् ।
 यत्र स्याणुप्रियादेवोदेवः स्याणुसमाह्वयः ।३४।
 उक्तं कनखलं नाम मया ते स्थानमुत्तमम् ।
 उग्रो यत्र पुरारातिरुग्रा गिरिवरारामजा ।३५।

मैंने आपको दण्डी-मुण्डी नाम वाला एक स्थान बतलाया था जहाँ पर मुण्डी नाम वाले श्री महादेव हैं और दण्डिका नाम वाली देवी परमेश्वरी विराजमान रहा करती हैं ।२६। मैंने आपको एक लाकुल नाम वाला परम सद्युद्ध स्थान बतलाया था जिस स्थान में लाकुलीश श्री हर हैं और सर्वमंगला घनङ्गा देवी हैं ।३०। भारभूति — इस नाम वाला एक स्थान है जो मैंने आपको बतलाया है जहाँ पर भार नाम वाले शम्भु हैं और भूति नाम वाली भूधरात्मजा देवी हैं ।३१। एक अराल-केश्वर — इस नाम वाला स्थान है जिसकी मैंने आपको पहिले हरि बतला दिया है जहाँ पर सूक्ष्म नाम वाले भगवान शूली हैं तथा सूक्ष्मा नाम धारिणी देवी शील नन्दिनी विराजमान रहती हैं । गया नाम वाला एक महा क्षेत्र है मैंने जिसके विषय में प्रस्ताव किया है जिस क्षेत्र में मगला नाम वाली देवी शिवा हैं और प्रपिता मद् भगवान शङ्कर विराजमान हैं । एक कुक्षेत्र नाम वाला स्थान है जिसके बाबत मैंने आपसे पहिले निवेदन किया था जहाँ पर स्याणु प्रिया नाम वाली भगवती देवी हैं और स्याणु नामधारी भगवान देव विराजमान रहते हैं । मैंने आपसे एक कनखल नाम वाले परमोत्तम स्थान के विषय में भी

कहा था जिस स्थान में उग्र नाम वाले भगवान् पुरासक्ति विद्यमान रहा करते हैं और उग्रा नामधारिणी साक्षात् गिरिवरात्मजा देवी विराजमाना है । ३२ - ३५।

तालकारय महाक्षेत्र माकण्डेयमयोदितम् ।
 देवी स्वायम्भुवी यत्र स्वयम्भू परमेश्वर । ३६।
 बट्टहासमिति प्रोक्त महास्थान मया तव ।
 यत्राऽर्कं पूजयित्वेशमासीत्पूणमनोरथ । ३७।
 कृत्तिवासाभिध क्षात्रमुक्त तेवेदवित्तम । ।
 य कैलासादपिशलाध्योनिवास कृत्तिवासस । ३८।
 भ्रमराम्बिकया दद्या महेशा मल्लिकार्जुन ।
 ध्याशैले सृष्टिसिद्ध्यर्थं पूजित परमेश्वर । ३९।
 सुवर्णमुखरीतीरे कालहस्तीति क्षाङ्कर ।
 व्यासनाराधितो भृङ्गमुखरालकयाऽभ्यया । ४०।
 काञ्चामेकाग्रमूलस्य कामाख्या कामशायन ।
 तपस्यन्त्याऽभिमतिलिखी बलयेनाऽङ्कितऽभवत् । ४१।

तालक नाम वाला एक महाक्षेत्र है । हे माकण्डेय । मैंने इसकी भी प्रापकी बनलाया है जिस क्षेत्र में स्वायम्भुवी देवी हैं और स्वयम्भू परमेश्वर हैं । मैंने एक बट्टहास नाम वाला महान् स्थान आपकी वहाँ था जहाँ पर भगवान् भास्कर न ईश्वर का पूजन करके अपना मनोरथ पूरा किया था । ३६। ३७। हे क्षेत्रों के धेताओं में परम श्रेष्ठ । मैंने आपकी सेवा में एक कृत्तिवास नाम वाले क्षेत्र की वर्ण की थी जो कैलासगिरि से भी प्रसिद्ध प्रथमोप है और कृत्तिवासा प्रभु का निवास स्थान है । वहाँ पर भ्रमराम्बिका नाम वाली देवी के सहित यलिनार्जुन महेश्वर की श्री दीन में सृष्टि की निधि के लिए परमेश्वरी ब्रह्माजी के द्वारा पूजा की गयी थी । सुवर्ण मुखरी क सीर पर कालहस्ती—इस नाम वाले भगवान् गङ्कर है जिनकी भृङ्ग मुखरालका देवी के सहित श्री ब्रह्मा दश

ने धारापना की थी । ३८।३९।४०। काशी में कामाक्षी के साथ एकाममूनस्य काम धासन प्रभु विराजमान रहते हैं जो तप करती हुई के द्वारा अग्नि संश्लिष्ट होते हुए वलय से अद्भुत हो गये थे । ४१।

अस्ति व्याघ्रपूरं नाम तिलिकाननमध्यगम् ।

यत्र नृत्यन्तमीशानं पयुं पास्ते पतञ्जलिः । ४२।

इवेतारण्यमिति स्थानमुच्यते तत्र मया पूरा ।

भग्नमेरावतोदन्तं गेजे यत्र शिवार्चनात् । ४३।

सेतुबन्धमिति स्थानमवोचं तत्र राघवः ।

रामनाथाख्यया देवमहोष्णं प्रत्यतिष्ठित् । ४४।

गतप्रत्याह्वयस्थानं विद्यते वृषभध्वजः ।

यत्र जम्बूतरोर्मूले जगद्रक्षार्थमाश्रितः । ४५।

मणिमुक्तानदीमन्वनक्षत्रे वृद्धाचलाह्वये ।

निरयं सन्निहितो देव इत्याकर्णित एव ते । ४६।

श्रीमन्मध्याजुर्ननाम श्रुतं स्थानमनुत्तमम् ।

यस्मिन्ध्वरप्रदो नित्यं गौरोत्तहचरो हरः । ४७।

आस्थितं सोमनाथेन सोमतीर्थं त्वया श्रुतम् ।

यत्र त्ववतवतां देहं न भूयो भवबन्धनम् । ४८।

तिलिक नामक जंगल के मध्य में रहने वाला व्याघ्रपुर नाम वाला स्थान है जहाँ पर नृत्य करते हुए ईशान की पतञ्जलि ने पयुं पासना की थी । ४२। एक इवेतारण्य नाम वाला स्थल है जिसके विषय में मैंने पहिले ही भाषकी वतलाया था जिसमें भगवान शिव के अर्चन के करने से ऐरावत ने अपना भग्न हुमा दन्त प्राप्त कर लिया था । ४३। एक सेतुबन्ध नामक स्थान है जिसको मैंने भाषकी बोला था कहाँ पर श्री राघवेन्द्र प्रभु ने रामनाथ—इस नाम से पाषो के नायक देव की प्रतिष्ठा की थी जो रामेश्वर नाम से अब विख्यात है । एक यत्र प्रत्याह्वय नामक स्थान विद्यमान है जहाँ पर वृषभ ध्वज प्रभु जम्बु (जामुन) तट के भूत में इस जगत् की रक्षा करने के लिए आश्रय ग्रहण करके विराजमान ।

रहते हैं । ४४।४५। वृद्धाचल नाम वाले क्षेत्र में मणि-मुक्ता नदी के साथ देव नित्य ही सन्निहित रह्ना करते हैं—यह तो आपने सुना ही है । श्री मग्मध्याजुंन नाम वाला भतीव उत्तम स्थान आपने श्रवण किया ही होगा जहाँ पर नित्य ही भगवती गौरी के साथ सञ्चरण करने वाले भगवान हर परों के प्रदान करने वाले होते हैं । भगवान सोममाय के द्वारा सनास्थित सोम तीर्थ आपने सुना ही है जिसकी ऐसी महिमा है कि जो प्राणी उस स्थान पर अपने देह का त्याग किया करते हैं उनको फिर इस संसार का बन्धन रहता ही नहीं है । ४६—४८।

आरुणितं हि गवताक्षेत्रं सिद्धवटाह्वयम् ।

यत्र सिद्धाः समर्चन्ति ज्योतिर्लिङ्गमनुत्तमम् । ४९।

अधावि खलु ते क्षेत्रं कमलालयसञ्ज्ञकम् ।

वल्मीकेशाचं नाल्लेभे यत्र श्रीर्जीविता हरैः । ५०।

श्रुतवानसि कङ्काद्रि यत्र सन्निहितो हरः ।

इदानीमप्युपासाते मोक्षाय ब्रह्मकेशवौ । ५१।

श्रोमद्द्रोणपुरं वेत्ति यस्मिन्कलियुगक्षये ।

नोकामारुद्धवानब्धोधुमिते पावंशीपतिः । ५२।

श्रुतं ब्रह्मपुरं नाम क्षेत्रं यत्रैन्द्रजित्पुरा ।

आर्यपुङ्गरिणीतीरे स्थापयामास धूर्जटिम् । ५३।

श्रीकोटिकाख्यं ज्ञानाभिषेधं यत्रैन्दुक्षेत्रः ।

समाराधयतां गुप्तां वाकोटोऽयं पोहति । ५४।

आरुणितं च गोकुणं शिवं यत्र सन्निधानतः ।

आरिराधयिषुः स्वर्गं जामदग्न्यो न काङ्क्षति । ५५।

आपने सिद्ध वट नामक क्षेत्र के विषय में श्रवण किया ही होगा जहाँ पर सिद्ध पुरा सर्वोत्तम भगवान ज्योतिर्लिङ्ग का समर्चन किया करते हैं । आपने कमलायन संज्ञा वाले क्षेत्र के विषय में भी श्रवण किया ही होगा जिसमें भगवान बलिकेश की धर्चना से श्री ने हरि की

जीविता का लाभ प्राप्त किया था । ४६।१०। आपने कट्वादि को सुना होगा जहाँ पर सन्निहित भगवान् हर की ब्रह्मा घोर केशव भ्राज भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए उपासना किया करते हैं । भ्राज श्रोमान् द्रोणपुर को जानते ही है जिसमें कलिपुग के क्षय होने पर समुद्र के क्षोभ से युक्त होने पर पार्श्वी के पति भगवान् शम्भु नौका पर समधि रुढ़ हुए थे । ब्रह्मपुर नामक क्षेत्र के विषय में आपने श्रवण किया ही होगा जहाँ पर पहिले इन्द्रजित् ने भ्राय्यं पुष्करिणी के तट पर भगवान् धूर्जरि की स्थापना की थी । ५१।५३। श्री कोटिक नाम वाला ज्ञान की प्रभिक्षेत्र है जहाँ पर भगवान् इन्द्र दोस्तर समाराधन करने वाले पुरुषों के पार्श्वों की कोटि का विहारण कर दिया करते हैं । ५४। आपने गोकण्ठ नामक स्थान को सुना ही होगा जहाँ पर आराधना करने वाले जामदग्न्य ऋषि शिव के सन्निधान में रहते हुए वहाँ से स्वर्ग जैसे परमोत्तम स्थान में जाने की भी आकांक्षा नहीं किया करते हैं । ५५।

त्रिपुरान्तकमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र त्रियम्बकः ।

निराकरोति निरादभयं दृष्टवतां नृणाम् । ५६।

उक्तं कायाध्वनं क्षेत्रं यद्वासीकालकन्धरः ।

निर्वापयति भक्तानां पोरसंसारसंज्वरम् । ५७।

प्रियालवणमाख्यातं क्षेत्रं यत्राऽम्बिकापतिः ।

पमोर्ध्विनेपयः सिन्धुं विततारोपमभ्यवे । ५८।

क्षेत्रं प्रभासमुक्तं ते यत्र खण्डेन्दुशेखरः ।

पूजितः शीरिरीरिभ्यां दत्तवानक्षयं फलम् । ५९।

वेदारण्यं विजानीषेयस्मिन्प्रमथनायकः ।

अभ्यर्चितोऽभून्मोक्षार्थदक्षेणप्राक्कृतायता । ६०।

हेमकूटं त्वमश्रोषीः स्थानं विषमचक्षुषः ।

पुंसां तपस्यतां यत्र पुनर्जननतो न भीः । ६१।

क्षेत्रं वेणुननंताम विद्यते पापनाशनम् ।

यत्र वंशलतागर्भज्जातो मुक्तामणिः शिवा । ६२।

जालधरमिति स्थानन्धकारेस्त्वयाश्रुतम् ।

लेभे गणपता तत्र तपस्याभिर्जलन्धरः । ६३।

मैंने त्रिपुरान्तक क्षेत्र के विषय में आपसे कहा था जहाँ पर त्रियम्बक भगवान दर्शन प्राप्त करने वाले मनुष्यों का नरक से भय का निराकरण कर दिया करते हैं । मैंने आपसे कालाञ्जन नाम वाले क्षेत्र के विषय में आपको बतलाया था जिस क्षेत्र में काल कन्धर प्रभु निवास किया करते हैं और अपने भक्तों के घोर ससार के सज्जर को निर्धारित कर दिया करते हैं । मैंने प्रिया लवण नामक क्षेत्र के विषय में आपको कहा था जहाँ पर अम्बिका पति प्रभु ने पय के पथों उपमन्यु के लिए पयः सिन्धु विचार कर दिया था । ५६। ५७। ५८। प्रभात नामक क्षेत्र के वास्तव मैंने आपको बतलाया था जिस क्षेत्र में सण्डे-दुक्षेखर भगवान शिव शौरि और भीरि इन दोनों भाईयों के द्वारा पूजित होकर इनको चम्होने प्रलय फल प्रदान किया था । वैशारथ्य नामक स्थल को आप भली-भाँति जानते ही हैं जिसमें प्रमथ नामक प्रभु की पहिले किए हुये अपराध वाले प्रजापति दक्ष ने अपने मोक्ष की प्राप्ति के लिये अभ्यर्थना की थी । ५९। ६०। आपने हेमकूट के विषय में अवण किया ही होगा जो स्थान भयदुःख विष है और जहाँ पर तपश्चर्चा करने वाले पुरुषों का पुनर्जन्म पारण करने का भय संबंधा रहता ही नहीं है । ६१। एक वेणु वन नाम वाला उत्तम क्षेत्र है जो समस्त पापों का नाश करने वाला है जहाँ पर वंशलता के गर्भ से मुक्तामणि शिवा समुत्पन्न हुआ था । ६२। एक जालन्धर नामक स्थान है जो धन्धकार से है आपने इसके विषय में सुना ही होगा । वहाँ पर जलन्धर ने घोर तपश्चर्चा के द्वारा गणों के पति का पद प्राप्त कर लिया था । ६३।

ज्वालामुखमिति स्थानमज्ञासीः कथितं मया ।
 यत्र ज्वालामुखी देवी कालरुद्रमपूजयत् ॥६४॥
 अस्ति भद्रवटोनाम क्षेत्रमुक्तं श्रुतं त्वया ।
 अयम्बकं यत्र हेरम्बः सम्पदे पर्यपूजयत् ॥६५॥
 न्यग्रोधारण्यमुक्तं ते यत्रोद्योनिर्ममे किल ।
 उच्चण्डिताण्डवकात्पासाकंसङ्घर्षमेयिवान् ॥६६॥
 गन्धमादनसञ्ज्ञं तत्क्षेत्रमाकर्णितं त्वया ।
 आञ्जनेयेन रचितं यत्र मृत्युञ्जयाचनम् ॥६७॥
 गोपर्वतमिति स्थानं शम्भोः प्रख्यापितमया ।
 यत्र पाणिनिनालेभेवैवाकरुणिकाग्रयता ॥६८॥
 वीरकोष्ठमिति क्षेत्रस्थानं नन्दवधारितम् ।
 यत्र प्रचेतसा लेभे तपसा कविमुत्थयता ॥६९॥
 महातीर्थमिति प्रोक्तं जानोषेयत्र शम्भुता ।
 अध्यापितास्तुपर्वाणः सर्वेऽपि ब्रूहिणादयः ॥७०॥

एक ज्वालामुखी नाम वाला स्थान है । मैंने इसके बाद तभी
 कहा था । भाप इसका ज्ञान रखते ही होंगे । जिस क्षेत्र में ज्वालामुखी
 देवी ने कालरुद्र का पूजन किया था ॥६४॥ एक भद्र वट नाम वाला क्षेत्र
 है । मेरे द्वारा कहा हुआ भापने इसके वाक्व भद्रम् ही अर्थ लिया
 होगा । जहाँ पर हेरम्ब ने भगवान् अयम्बक ही सम्पदा की प्राप्ति के
 लिए घर्षणा की थी ॥६५॥ एक न्यग्रोधारण्य नामक उत्तम क्षेत्र है जिसे
 मैंने भापको बतला दिया है जहाँ पर उग्र ने ही निर्माण किया है । वहाँ
 प्रभु काली के साथ उच्चण्ड ताण्डव करते हुए परम सङ्घर्ष को प्राप्त
 हो गये थे ॥६६॥ एक गन्धमादन संज्ञा वाला क्षेत्र है जिसको भापने सुन
 रक्खा है जहाँ पर आञ्जनेय ने भगवान् मृत्युञ्जय का घर्चन किया था
 ॥६७॥ एक गो पर्वत स्थान भगवान् शम्भु का है जिसको मैंने प्रख्यापित
 किया था जिस पर महान् विद्वान् पाणिनि महर्षि ने व्याकरण शास्त्र के

विद्वानो मे प्रमुखता प्राप्त की थी । एक वीर कोष्ठ नामक क्षेत्र स्थान है इसका मापने अवधारण किया ही होगा । जिस पर प्रचेता ने तप-थर्पा के द्वारा कवियों में प्रधानता प्राप्त की थी । महातीर्थ यह कहा गया है । इसे माप जानते ही हैं जहाँ पर भगवान् शम्भु ने सुपर्वियों को घोर समस्त ब्रूहिणादि को प्रस्थापित किया था । १८५६६७०१

मयूरपुरमुक्तं ते क्षेत्रं माहेश्वरं मया ।

लेभे यत्र व्रतस्थेन ह्लादिनी वज्रगणिना । ७१।

श्रीसुन्दरमिति क्षेत्रमुक्तं वेगवतीतटे ।

कलावपि युगे यस्मिन्देवदेवेन दीप्यते । ७२।

कुम्भकोणमिति स्थानं शम्भार्चयित्वा हि यत्र सा ।

गङ्गाऽपि माघे सान्निध्यं कुरुते स्वाध्यासात्मये ॥७३॥

वनुगोदावरीतीरं त्र्यम्बकनाम ते श्रुतम् ।

शक्तिं यत्र गुह्यं लेभे तारकासुरपातिनीम् । ७४।

श्रीपाटलं व्याघ्रपुरमाख्यातं वेदवित्तम ।

त्रिशङ्कुना जाविशुद्ध्यं यत्र गङ्गायरोर्ध्वतः । ७५।

क्षेत्रं कदम्बपुष्पाख्यभवता चाश्वधारितम् ।

त्वत्कृतेयत्रमूलेन कृतान्तशम्भुरक्षिणोत् । ७६।

अविनाशाहामुक्तं ते क्षेत्रं यत्र वृषध्वजः ।

सान्निध्यं पडिकण्डाययिततारप्रसेदिवान् । ७७।

मैंने स्वयं माहेश्वर मयूरपुर क्षेत्र के विषय में आपसे कहा है जहाँ पर व्रत में प्रस्थित होने वाले वज्रगणि इन्द्रदेव ने ह्लादिनी के प्राप्त करने का नाम दिया था । ७१। श्री सुन्दर इस नाम वाला क्षेत्र वेगवती के तट पर बताया जा चुका है जिसमें इस महा घोर कलियुग में भी देवों के देव दीप्यमान हुआ करते हैं । ७२। कुम्भ कोण नामक एक शम्भु का स्थान है जिसे माप जानते ही हैं जहाँ पर वह गङ्गाजी माघ मास में अपने पाशों की शक्ति के लिये सान्निध्य किया करती है

१७३। गोदावरी नदी के तट के साथ २ त्र्यम्बक नाम का स्थान है जो आपने सुना ही होगा जहाँ पर भगवान् गुह्य ने तारका मुर के पत करने वाली शक्ति का लाभ किया था । हे वेद विद्वान् ! श्री पाटल व्याघ्रपुर मारुयात किया गया है जहाँ पर विशङ्कु ने प्रपत्नी-प्रपत्नी जति की शुद्धि के लिए भगवान् गङ्गाधर का समर्पण किया था । एक फदम्बपुरी नामक क्षेत्र है जिसका प्रवधारण किया ही होगा जहाँ पर प्राप हो के लिये दूल के द्वारा भगवान् शम्भु ने कृपान्त को क्षीण किया था । प्रापको मैंने एक प्रविनाश नाम वाला क्षेत्र बतलाया था जहाँ पर भगवान् वृषभवाज ने प्रसेदिवान् होकर पडितृष्ठ के लिए साविध्य को स्थापित किया था । ७४—७७।

रक्तकाननमारुयातं मया क्षेत्रं तवाऽनघ ।

मित्रावरुणयोर्मित्रं रुद्रोऽजनि वरप्रदः । ७८।

श्रीहृत्केश्वरं क्षेत्रं पातालस्थं त्वया श्रुतम् ।

यत्र चरोचनिर्देवं स्वपदप्रामयेऽर्चति । ७९।

वेत्ति शम्भोः प्रियावासं कैलासं निरयसेवकः ।

यथायक्षेत्रस्थश्चक्षुमस्य चंयति भक्तितः । ८०।

स्यात्तानि स्रष्टुः परशोरित्युक्तानि मया पुरा ।

त्वयाप्यवधृताग्येवाकिम्भूयः श्रोतुमिच्छसि । ८१।

इत्युचिवा नेष शिलावगन्दनो

मुनेर्मृकण्डोस्तानयं मुनीश्वरम् ।

भक्त्या न भक्तं पदयोः करेण

पस्पर्श मौली करुणारसाद्रः । ८२।

हे भगवन् ! मैंने प्रापको एक रक्त कानन नामक क्षेत्र बतलाया था जहाँ पर भगवान् रुद्र मित्रावरुण दोनों के लिये वरदान करने वाले हो गये थे । ७८। श्री हृत्केश्वर नाम वाला एक क्षेत्र है जो पाताल लोक में स्थित है । प्रापने उक्त विषय में श्रवण किया ही है जिस क्षेत्र

महा महर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा—हे भगवान् आपके चरणों में ही एक मात्र प्रवर्ण होने वाले मेरे विषय में वञ्जन न कीजिये । यह आपका शिष्य किस प्रकार का है उसकी तो एक मात्र साक्षिणी यहाँ पर उनकी कृपा ही है । १। आपके द्वारा पहिले कहे हुए स्थानों में पृथक् २ फल होते हैं । हे विभो ! जिस स्थान पर सभी प्रहार के फलों की प्राप्ति होती है वही स्थान सब आप कृपा बतलाइये । २। हे देशिक ! चर घोर घचर प्राणियों को जो जानते हैं घोर जो सर्वथा ज्ञान ही नहीं रखते हैं उनको जिसके केवल स्मरण से ही मुक्ति हो जाया करती है उसे ही सब बतलाइये । ३। आप देखिए, यह मेरे एक के ही द्वारा भगवान् की आराधना नहीं की जा रही है । इस समाराधना करने के लिए सभी मुनियों के द्वारा ऐसा अनुरोध किया जा रहा था । ४। उन सब मुनियों के नामों का परिगणन करके बतलाता हूँ—पुलह के द्वारा—पुलस्त्य, वशिष्ठ, मरीचि, अगस्त्य के द्वारा, दधीच, नक्र, भृगु, अत्रि, जाबालि, जैमिनि, घौम्य के द्वारा तथा जमदग्नि के द्वारा, उपमाज, राज, भरन, अर्षरीवान, पिप्पलाद, कण्व, कुमुद, उपमन्यु, कुमुदास, क्रम, वरम और वरतन्तु के द्वारा भी इस समाराधना के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया जा रहा है । ५। ६। ७।

विभाण्डकेन व्यासेन वण्वरीणेण कण्डुनः ।

माण्डुयेनमतङ्गेनकुक्षिणामाण्डकर्णिना । ८।

चण्डकौशिकशाण्डिल्यशाकटायनकौशिकः ।

शातापतमधुच्छन्दोगर्गसीभरिरोमगैः । ९।

आपस्तम्बपृथुस्तम्बभार्गवोदङ्गवर्तः ।

भारद्वाजेन दाल्भ्येन दान्तेन श्वेतकेतुना । १०।

कौण्डिन्यपुण्डरीकाभ्यां रैभ्येण तृणविन्दुना ।

वाल्मीकिना नारदेन वह्निना दृढमन्युना । ११ः

नरनारायणाभ्यां च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिभिः ।

मत्प्रश्नोत्तरशुश्रूषातत्परैः प्रत्यवेक्ष्यसे । २०।

माहेश्वराग्रगण्यस्त्वं समस्यागमपारगः ।

व्याप्तश्च सर्वलोकेषु यस्मात्तदनुसावि नः । २१।

अथ मृग, एक पात्, क्रीञ्च, दृढ़, गोमुख, देवल, भगिरा, वाम-
देव, वपुतञ्जलि, कमिञ्जल, सन कुमार, सनक सनन्दन, सनातन, हिरण्य-
नाभ, सत्याश्व, वाताशन, सुहोता, मन्त्रेय, पुष्पजित्, सत्य, तपः शालीव्य,
शैशिर, निदाघ, उग्रध्व, सम्यत्त, शौल्कायनि, पराशर, वैशम्पायन,
कौशल्य, शारद्वन, कमिञ्ज, कुश, स्वाचिरु, कैवल्य, याज्ञवल्क्य, अश्व-
लायन, कृष्णा तप, उत्तम, अनन्त कश्यपमलक प्रिय, चरक, पवित्र,
कविल, कणाशी, नर, नारायण और अन्य दिव्य महर्षियों के द्वारा
ऐसा ही अनुरोध किया जा रहा है। ये सभी मेरे प्रश्नोत्तर की शुश्रूषा
में तत्पर होकर प्रत्यवेक्षण कर रहे हैं। आप तो महेश्वर के परम
भक्तों में अग्रगण्य हैं और समस्त आगमों के पारगामी विद्वान् महापुरुष
हैं। आप समस्त लोको में भी व्याप्त हैं इसी कारण से आप हम सबको
अनुशासित कीजियेगा । १५ — २१।

त्वन्मुखादेव भगवन्वयमेते सुशिक्षिताः ।

पूर्वमेव त्वया देव किं वाऽन्यदुपपद्यते । २२।

दिव्यआगमपुराणानि द्रष्टव्यः परमेश्वरः ।

कात्यायनीवास्कन्दोवाभगवान्वाथवाभवान् । २३।

त्वयि यद्यस्मि नो भक्तिर्दया चाऽस्मासु ते यदि ।

रहस्यमिदमुद्धाट्य प्रसादं कर्तुं महसि । २४।

इत्थं मृकण्डुतनयेन स नन्दिकेशो ।

विज्ञापितः सत्रिनयं स्मयमानवक्त्रम् । २५।

तं प्राह चोन्नततरं शिवभक्तिमत्सु ।

प्राग्भक्तितोषितशिवाप्तशरीरसिद्धिम् । २६।

हे भगवन् ! हम सब लोग आपके हाँ मुख से निकले हुए वचना-
मृत के द्वारा सुशिक्षित होंगे । हे देव ! आपने पहिले ही हमकी शिक्षा
प्रदान की है अथवा कुछ धन्य उपरम होता है । दिव्य आगम, पुराण,
परमेश्वर, कात्यायनी अथवा स्कन्द या भगवान् किम्बा आप कोन
देखने के योग्य हैं ? आपके चरणों में यदि हम सबकी भक्ति है और
यदि हम सबके ऊपर आपका दयाभाव है तो इस परम गोपनीय रहस्य का
उद्घाटन करके हम सबके ऊपर आप प्रसन्नता करने के योग्य होते हैं ।
इस प्रकार से महर्षि मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय के द्वारा जब विनय पूर्वक
विज्ञापित किए गये थे तो विनीत भाव से समन्वित स्मयमान मुख वाले
तथा शिव की भक्ति वाले मे परम उद्यत और प्रथम भक्ति के द्वारा
सन्तुष्ट किये हुए भगवान् शिव से सम्प्राप्त शरीर की सिद्धि वाले मार्क-
ण्डेय ऋषि नन्दीश्वर ने कहा था । १२—२६।

१६—अरुणाचलस्थानमाहात्म्यवर्णन

मुनेमनः परीक्षार्थं तथा त्वं भाषितोमया ।
तव चेन्नाभिधास्याभिकल्पवान्यस्य कथ्यते । १।
एवाह गन्धोऽस्ति किलोके शिवधर्मं परायणः ।
येन स्वल्पायुषोऽप्येवानित्येनाभाविभक्तितः । २।
कस्मात्स्य कृते देव स्वस्यैवाज्ञा करयामम् ।
क्रुद्धो नियन्त्रयामास चरणाङ्गुष्ठपोडितम् । ३।
त्वमेव शङ्करा न्धर्मन्सर्वान्विद्धिरहस्यतः ।
योऽप्रेऽसि कालवद्भ्रान्तः परिपक्वोऽसि चेतसा । ४।
त्वमेवाऽप्येन केनाऽहमेव शूद्रपितृश्रितम् ।
त्वयो व कस्मिन्नन्यस्मिन्ममापि प्रीतिरीदृशो । ५।
उपदेक्ष्यामि ते क्षेत्रं गुप्तं तद्धर्मशासने ।
भवत्याऽवधारणीयं यद्भक्तिकैवल्यकाङ्क्षिभिः । ६।

आदरादनुयुञ्जानंशिष्यंयोदेशिकः स्वयम् ।

उपदेशेन सन्तुष्टं न करोति स किमुक्तः ।७।

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे मुने ! मैंने आपके मन की परीक्षा करने के ही लिए इस प्रकार से आपके नातचीत की थी । यदि ऐसा रहस्य मैं आपको ही नहीं बतलाऊंगा तो फिर अन्य ऐसा कौन है जिससे यह कहा जा सकता है ।१। इस लोक में आपके तुल्य शिव के धर्म में परायण अन्य कौन है जो अपनी स्वरा भाग्य वाला होकर भी इस नित्य धर्म से भक्ति-भाव पूर्वक युक्त हो गया था । किस अन्य के लिए देव ने क्रुद्ध होकर चरण के अङ्गुष्ठ से पीड़ित अपनी ही प्राजा को करने वाले यम को नियमित किया था ।२।३। आप ही एक रहस्यपूर्वक सम्पूर्ण शास्त्र धर्मों का ज्ञान रखते हैं । जो आपके काल के समान भ्रान्त है वह चित्त से परिपक्व हो ।४। अन्य किसी ने भी नहीं, केवल आपने ही इस प्रकार से चिरकाल पर्यन्त मेरी सुधूपा की है । आपके समान अन्य किता में मेरी भी ऐसी प्रीति होगी अर्थात् आपके प्रतिरिक्त ऐसी प्रीति अन्य किसी में भी नहीं हो सकती है । मैं आपको उम क्षेत्र का उपदेश दूंगा जो उस धर्म के शासनो के द्वारा भी गुप्त है । भक्ति से ही कंवल्प की इच्छा रखने वालों को भक्ति की भावना ही से उनका अवधारण करना चाहिये ।५। आदर से अनुयुञ्जान शिष्य को जो आचार्य स्वयं उपदेश के द्वारा सन्तुष्ट नहीं किया करता है वह क्रुशित ही गुह होता है ।७।

समाहितमनाभूत्वा विश्वासं कुरु शाश्वतम् ।

मयोपादिश्यमानेऽस्मिन्नहस्ये पारमेश्वरे ।८।

स्मर स्मरान्तकं देवं वन्दस्वाध्याय शाङ्करीम् ।

उपांशूच्चारयोद्धारं श्रेयस्ते महदागतम् ।९।

अस्ति दक्षिणदिग्भागे द्वाविडेपु तपोधन ।

अवणाय महाक्षेत्रं तरुणोदुशिखामणोः ।१०।

योजनत्रयविस्तीर्णमुपास्यं शिवयोगिभिः ।

तद्भूमेहृदयं विद्धि शिवस्य हृदयङ्गमम् । ११।

तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः ।

अरुणाचलसञ्ज्ञावानस्तिलोकहितावहः । १२।

आवासः सर्वसिद्धानां महर्षीणां सुपर्वणाम् ।

विद्याधराणायक्षाणां गन्धर्वाण्यरसामपि । १३।

सुमेरोरपि कंलासादप्यसौ मन्दरादपि ।

माननीयो महर्षीणां यः स्वयं परमेश्वरः । १४।

समाहित मन वाला होकर द्वास्वत विश्राम करो । जो मेरे द्वारा यह पारमेश्वर रहस्य उपदिश्यमान किया जा रहा है इसमें पूर्ण विश्वास करना चाहिये । १२। कामदेव को भस्मीभूत करने वाले देवोत्तर का स्मरण करो और अभ्यास धासूरी की शयना करो । उभाधु होकर ओङ्कार का उच्चारण करो, आचको महान श्रेष्ठ समागत ही है । १३। हे तपोधन ! वसिष्ठ दिशा के भाग में द्वाविड देशों में एक भद्रगु नाम वाला महान क्षेत्र है जो वरुणेन्दु शिखा मणिरुका का ही क्षेत्र है । १४। यह क्षेत्र तीन योजन के विस्तार से युक्त है और शिव के योगियों के द्वारा उपासना करने के योग्य है । यह इस भूमिका हृदय ही जान जो तथा भगवान् शिव के हृदयङ्गम है । वहाँ पर देव शम्भु स्वयं ही एक पर्वत के आकार को प्राप्त हुए हैं । यह 'अरुणाचल'—इस सञ्ज्ञा वाला है और लोको के हित का आह्वान करने वाला है । यह सब सिद्धों का निवास स्थान है और इसमें सर्वसुपर्वा तथा महर्षिणः का आवास होता है । यह विद्याधरों, यक्षों, गन्धर्वों और अप्सराओं का भी स्थल है । यह सुमेरु से भी, कंलास से भी और मन्दराचल से अधिक मानवीय है तथा महर्षिओं का भी मानवीय है क्योंकि यह तो स्वयं ही माहात् परमेश्वर है । ११—१४।

स्पृहयन्ति यदीयेभ्योजन्तुभ्योऽपि दिवौकसः ।
 अयत्नलभ्यमुक्तिभ्यो दिवावासप्रवञ्चिताः । ११५।
 न कल्पवृक्षाः सदृशाः यत्र त्यानानाम्महीरुहाम् ।
 पत्रपुष्पफलैर्नित्यं येऽचयन्ति गिरीहरम् । ११६।
 हिंसैकरुचयो व्याधा अपि रूपानुसारतः ।
 अनन्ता यत्र देवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम् । ११७।
 यदुद्देशचरामेघाः शिखराण्यभिवन्धकाः ।
 गगावतो हिमवतोऽप्यधिकं स्वं विजानते । ११८।
 कलारावाः सगा यत्र ध्वणस्ते कीचका अपि ।
 यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्लभ्यते दुर्लभं पदम् । ११९।
 स्मरन्तो यत्र खद्योताः कृष्णपक्षे निश्चागमे ।
 आरात्तिकप्रदातृणां देवस्याऽऽनुवते पदम् । १२०।
 निष्प्रत्यूहकृताश्लेषा नित्यं यत्तटिनीरुहाः ।
 सोभान्यगवन्तो देवीमण्यमिव मन्वते । १२१।

इसमें निवास करने वाले सब जन्तुओं से भी स्वर्ग के निवास करने वाले देवगण भी स्पृहा करते हैं क्योंकि यहाँ के सभी निवासी बिना ही किसी यत्न के मुक्ति का लाभ प्राप्त करने वाले हैं । देवगण तो यहाँ पर दिवा आवास से भी वञ्चित रहा करते हैं । ११५। यहाँ पर रहने वाले वृक्षों के सदृश साक्षात् कल्प वृक्ष भी नहीं हैं क्योंकि जो वृक्ष नित्य ही भरने पत्र-पुष्प और फलों के द्वारा इस पर्वत में भगवान् हर का अर्चन किया करते हैं । एकमात्र हिंसा करने की रुचि रखने वाले व्याध भी रूपों के अनुसार अनन्त हैं जहाँ पर देव के प्रादक्षिण्य फल के आस्पद (स्नान) होते हैं । जिसके उद्देश में सचरणा करने वाले मेघ जो शिखरों के अभिवन्धक हैं वे यज्ञा वाले और हिमवान् ये भी अधिक अपने आपको समझा करते हैं ? जहाँ पर कीचक भी (बाँस भी) कल ध्वनि वाले सगो जैसी ध्वनि वाले होकर ध्वजन किया करते हैं । यश,

कितार गन्धर्वों के द्वारा दुर्लभ पद का लाभ प्राप्त किया जाता है ।
जहाँ पर कृष्ण पक्ष में निशा के आगम होने पर स्मरण करते हुए
सद्योत देव की भारती देने वाले लोगों के पद का प्रदान किया करते
हैं । जहाँ के लटिनी बह बिना किसी विघ्न तथा अट्ठवन दाइलेप कर,
पाते होते हैं । ये अपने सौभाग्य के सर्व से देवी अर्पणा का भी प्रव-
धान किया करते हैं । ११६—११।

गस्योत्प्लव्य शृङ्गाप्रसङ्गमाप्रितारकाः ।
आत्मनोत्प्लव्यसामान्याश्चन्द्रेण बहुमन्वते । १२।
मृगाः सर्वेऽपि सततं चरन्तो यत्र सानुषु ।
पाणिप्रगुणिनं दाम्भोरेणमप्यवजानते । १३।
यस्य पादान्तिकचरैः प्रायेण शवरैरपि ।
निष्कुम्भकुम्भसादृश्यमयत्नादुपलभ्यते । १४।
किं बह्वरयाभ्यसूयन्ते द्वैमातुरकुमारयोः ।
यदङ्गरुढास्तरवस्तिर्यञ्चः शवरा अपि । १५।
सिहव्याघ्रद्विषायस्मिन्कालेत्यक्तकलेवराः ।
दासप्रदत्तान्माग्यन्तेध्रुवक्षोणाद्रिदाम्भुना । १६।
अस्यभास्करनामाद्रिः पूर्वस्यां दिशि दृश्यते ।
यत्रस्थितः सदावज्योसेवतेशोऽणुपर्वतम् । १७।
प्रयोच्यां दिशि दण्डाद्रिरिति कश्चिन्महोदधरः ।
प्राचितमस्तदगगः सेवतेऽहणुपर्वतम् । १८।

जिस उन्नत गिरि के शृङ्ग (चोटी) के मध्य भाग के साथ में
गङ्गाप प्राप्त करने वाले भी तारे सामान्य रूप से दमकी प्राप्त करते हुए
अपने प्राणकी अग्निमा से भी अविष्ट मानते थे । जिस गिरि पर चोटियों
में निरन्तर चरण करने वाले मृग भी दाम्भु के पाणि वा प्रणयों जो
मृग वा उगरी भी अवमानित किया करते थे अर्थात् अपने प्राणकी
उपलेखनी भी दया में कम नहीं समझा करते थे । जिस गिरि के पाद

के समीप में सञ्चरण करने वाले शवरो ने भी बिना ही किसी प्रयत्न के मिकुम्भ-कुम्भ की सदृशता प्राप्त कर लिया था । अधिक कथन से क्या लाभ है इस गिरि के शृङ्ग में समाच्छिन्न होने वाले तरुवृन्द, त्रिपेक्ष, योनि वाले प्राणि वर्ग और शवर भी भगवान् शिव के साक्षात् पुत्र गणेश और स्वामी कार्तिकेय को भी कुछ नहीं समझा करते हैं । जिस गिरि में काल के प्राप्त होने पर अपने कलेबरो के त्याग करने वाले सिंह व्याघ्र और हाथी उस गिरि में वास के प्रदान होने के कारण से शोणाद्रि शम्भु के द्वारा द्रुव माने जाया करते हैं । १२२—१२६। मास्कर नाम वाला पर्वत इस गिरि की पूर्व दिशा में दिखलाई दिया करता है जहाँ पर सदा अवस्थित हुमा वज्जी (इन्द्र) शोण पर्वत का सेवन किया करते हैं । इसकी पश्चिम दिशा में कोई दण्डाद्रि नाम वाला पर्वत स्थित है । उसकी शिखर पर समवस्थित होकर प्राचेनस धरुण पर्वत की सेवा किया करते हैं । १२७—१२८।

दक्षिणस्यां च शोणाद्रेरद्विरस्त्यमराचलः ।

कालः शोणाद्रिसेवार्थमध्यास्ते सदधित्यकाम् । १२९।

उत्तरेऽस्मिन्ह्रिदभागे सिद्धाध्यासितकन्दरः ।

विराजतेत्रिशूलाद्रिः श्रीदेनपरिपालितः । १३०।

तत्स्पर्शन्तप्रभूतानामभ्येपामपि भूभृताम् ।

तटकेष्वपरे चैव दिक्पालाः पर्युपासते । १३१।

धारिता येन सततं सर्वेऽपि धरणीरुहाः ।

आराधनादप्यधिकमधिगच्छति वैभवम् । १३२।

यस्मिन्निरीक्षेसदृष्टे मेनातुहिनभूभृतोः ।

समानसम्बन्ध तया प्रमोदो वर्द्धतेतराम् । १३३।

तत्पल्लवलक्षेण लक्ष्यमाणजटाधरः ।

स्थावरोऽयं स्वयं शम्भुरिदृशः इव जङ्गमः । १३४।

ज्योतिष्मत्तोयशृङ्गस्य द्विपाश्व स्येन्दुभास्करः ।

व्यनवित स्वस्य लोकेभ्यस्तेजस्त्रितयनेत्रताम् । ३५।

वर्षासुशिशिराघस्तादभिनीलवलाहकः ।

विराजते यः कण्ठेन कालकूटमिवोदहन् । ३६।

शोणाद्रि की दक्षिण दिशा में एक घमराचल नाम वाला अद्रि है । काल इसकी अधित्यका में शोणाद्रि का सेवन करने के विराजमान रहा करना है । ३५। इसके उत्तर दिशा के माग में सिद्धों के द्वारा मध्या-सित कन्दरामो वाला श्रीद के द्वारा परिपालित त्रिशूलाद्रि विराजमान है । हमके पठ्यन्त भाग में होने वाले मन्व जो पर्वतों के सम्प्रदेशों में दूसरे दिक्पाल उपासना किया करते हैं । जिसने निरन्तर सभी घरणी रहो को धारण किये हैं वे धाराघना से भी अधिक वैभव को प्राप्त किया करते हैं । भगवान गिरीश के द्वारा जिसके देखे जाने पर समान सम्बन्ध होने के कारण मेना श्री हिमवान् पर्वत का प्रमोद और अधिक बढ जाया करता है । तदयो के पल्लवों के लक्ष से लक्ष्यमाण जटाधर स्पा-धर यह शम्भु स्वयं यहाँ पर जङ्गम ईश की भाँति विराजमान हैं । ज्योति से समुत्त तोय शृङ्ग के दोनों पार्श्व भागों में स्थित चन्द्र और भास्वर वाला उगका भगना तेज लोको के लिए तीन नेत्रों का होना व्यक्त दिया करता है । ३०— ३६।

सहस्रपादः साहस्रशीर्षो यः पर्वतेश्वरः ।

उक्तो न केवलं श्रुत्या साक्षादप्युपलक्ष्यते । ३७।

शिरोलीनामरसरिस्त्रोताः प्रागिति नाद्भुतम् ।

गिरीशोऽद्याऽपि यः शृङ्गलीनानेकसरिङ्गणः । ३८।

आसादिनापकटकः पारदैर्यः पयोधरैः ।

विडम्बयति गोश्रेष्ठमास्त्वृषपुङ्गवम् । ३९।

यत्र शृङ्गाग्रसंलग्नसंलग्ननीललोहितः ।

स्याणुत्वं स्यावरत्वेन गहनत्वेन भीमताम् । ४०।

सुदुर्गमत्वादुग्रत्वमपि घत्ते न नामतः ।

धुद्रा सरोसृषा यत्र कटकेषु कृतास्पदाः ।४१।

तक्षकानन्तसर्पद्यैः स्पर्धन्तेभुजगेश्वरैः ।

अष्टाभिर्योऽभितः कोर्लं राविभूतो विभूतिभिः ।४२।

वर्षा काल के भवसरो में इसके शिखर के नीचे के भाग में अभिनील बलाहक विराजमान रहा करता है जो कंठ के द्वारा कालकूट विष्णु को ही उद्धृत करने वाला प्रतीत हुआ करता है । सहस्र पादों वाला श्रीर सहस्र क्षीपों वाला जो यह पर्वतेश्वर है वह केवल श्रुति के द्वारा ही नहीं कहा गया है यहाँ पर यह साक्षात् उल्लिखित हुआ करता है । अमरों की सरिता भागीरथी गंगा भगवान् शिव के शिर में लीन हैं और पहिले स्नोत भी थे—यह बात कुछ भी अद्भुत नहीं है । आज भी गिरीश जो हैं उनके शृंगों में अनेक सरिताओं के समुदाय लीन हैं । ।३६।३७।३८। सरस्वती के मेघों से जो आसक्तित अभिप्रेरक वाला होता है वह समारूढ़ वृषों में वरिष्ठ गोश्रेष्ठ की ही विदम्बना किया करता है ।३९। जिसमें शृंगों के अग्रभाग में नील लोहित संलग्न रहते हैं उस समय में स्थावरता होने से स्थाणुत्व और गहनता होने से भीमता और सुदुर्गम होने के कारण उग्रता की यह धारणा किया करता है । केवल नाम से ही नहीं प्रयुक्त वस्तुतः इसका स्वरूप उग्र हो जाता करता है । जहाँ पर धुद्र सरो सृष (सर्प) कटकों में आस्पद बनाने वाले हैं जो कि भुजगेश्वर तक्षक एवं अनन्त सर्प आदि के साथ स्पर्धा किया करते हैं । जो दोनों और आठ कोणों से और विभूतियों से आविभूत रहा करता है ।४०।४१।४२।

सुस्पष्टं विशिनष्टीव स्वकीयामष्टभूतिताम् ।

येष्यां (आद्या) शक्तिरङ्गिष्योरिडापिङ्गलयोः स्वयम् ।४३।

शिवस्यष्टङ्गतो मध्येसुषुम्नाकमलापगा ।

ज्योतिः स्तम्भस्वरूपस्यभूताग्रेयस्यवीक्षतुम् ।४४।

कोलहंसाकृतीनाल'ब्रह्माविष्णुब्रह्मवतुः ।
 ताम्बाचप्रार्थितः शम्भुस्तस्मिन्सानिष्यवानभूत् ।४५।
 अरुणाचलनाथाख्य प्रपन्नः प्रमदं समम् ।
 गीतमस्तत्र योगोन्द्रः सहस्रं परिवत्सरात् ।४६।
 तप्या तपांसि तोत्राणि साक्षात्तुक्रै सदाशिवम् ।
 प्रालेयशैलकन्यापितृकृत्वातपः पुरा ।४७।
 अलब्धवामदेहाद्वं मन्मथारेः प्रसेदुषः ।
 गीर्वा प्रतिष्ठितं तत्र प्रवालाद्रीश्वराभिधम् ।४८।
 लिङ्गं भोगप्रदं पुंसां कैवल्याय प्रकल्पते ।
 तत्र गौरीनिदेशेन दुर्गा महिषमर्दिनी ।४९।

बहुत ही स्पष्ट रूप से यह घणनी ग्रन्थ मूर्तियों वाला होना मानों प्रकट किया करता है । आधा शक्ति तरंगिणी ये दोनों स्वयं इडा और पिंगला है । शिव के शृंग से मध्य में कमला प्राप्या (नदी) सुपुम्ना है । जिस ज्योतिः स्तम्भ स्वरूप के मूलाग्र में देखने के लिए है ।४३।४४। वहाँ पर कोल और हंस की आकृति वाले ब्रह्मा तथा विष्णु हुए थे । उनके द्वारा प्रार्थना किए हुये भगवान् शम्भु ने उसमें सांनिध्य किया था ।४५। वहाँ पर योगोन्द्र गीतम श्रुति भ्रमदो के साथ अरुणाचल नाथ घाम'वाले प्रभु के कारण से सहस्र परिवत्सर तक प्रपन्न हुआ था । इतने शक्ति पीत्र तपश्चर्या करके भगवान् सदाशिव प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त किया था । वहाँ पर पहिले प्रालेय शैल की अर्थात् हिमशाल पर्वत की कन्या ने तप करके समवस्थित काम के नाशक शिव के वामदेह के अर्धे भाग को प्राप्त किया था । वहाँ पर प्रवाल से ईश्वर नामधारी की गौरी ने प्रतिष्ठा की थी । यह भगवान् शिव का लिंग पुष्पों को भोगों का प्रदान करने वाला था और कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए भी प्रकल्पित होता है । वहाँ पर गौरी के निदेश से दुर्गा महिषासुर के मर्दन करने वाली हुई थी ।४६-४९।

साक्षाद्भूय गता दत्ते मन्त्रसिद्धिमविघ्नतः ।
 खड्गतीर्थमितिख्यातं तत्र गौर्याश्रमेनवम् । १५०।
 सकृन्निमज्जनान्मृगा पञ्चपातकनाशनम् ।
 दुर्गया चाचितं लिङ्गं पापनाशननामकम् । १५१।
 सकृत्प्रणाममात्रेण सर्वपापप्रणाशनम् ।
 तत्र वज्राङ्गदो राजा वित्तमारो व्यतिक्रमात् । १५२।
 पुनस्तदभक्तिमाहात्म्याच्छिवसायुज्यमाप्तवान् ।
 तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरो । १५३।
 विद्याघरेश्वरो मुक्तो दुर्वासः शापबन्धनात् ।
 नास्ति शोणाद्रितः क्षेत्र नास्ति पञ्चाक्षरान्मनुः । १५४।
 नास्ति माहेश्वरादमो नास्ति देवो महेश्वरात् ।
 नास्ति ज्ञानं शिवज्ञानान्नास्ति श्रीवद्वतः श्रुतिः । १५५।
 नास्ति सैवाग्रणीविष्णोर्नास्ति रक्षा विभूतितः ।
 नास्ति भवतेः सदाचारो नास्ति रक्षाकरादगुरुः । १५६।

यह देवी साक्षात् होकर सत्पुरुषों को बिना किसी विघ्न बाधा के मन्त्रों की सिद्धि प्रदान किया करती है । वहाँ पर उस गौरी के आश्रम में नूतन संग तीर्थ इस नाम से विख्यात हुआ था । १५०। वहाँ पर एक ही द्वार निभज्जन करने से मनुष्यों के पाँच पातकों का विनाश हो जाया करता है । दुर्गादेवी के द्वारा भर्चना किया हुआ वह लिंग पाप नाशन नाम वाला होता है । एक ही बार प्रणाम कर देने मात्र से यह सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला होता है । वहाँ पर वज्राङ्गद राजा वित्तसार व्यतिक्रम से फिर उनकी भक्ति के माहात्म्य से भगवान् शिव की सायुज्यता को प्राप्त करने वाला हो गया था । उसकी प्रदक्षिणा से ही कान्तिशाली और कलाधर ये दोनों विद्या घरेश्वर दुर्वासा के शाप के बन्धन से मुक्त हो गए थे । शोणाद्रि से अधिक उत्तम कोई भी क्षेत्र नहीं है और पञ्चाक्षरी (श्री नमः शिवाय) मन्त्र से अधिक कोई

भी अन्य मन्त्र नहीं है । ५१—५४। माहेश्वर से अधिक उलाम मन्त्र कोई भी मन्त्र नहीं है । और देव महेश्वर से बड़ा अन्य कोई भी देव नहीं है । शिव के ज्ञान से बड़ा अन्य कोई भी ज्ञान नहीं है और श्री गुरु से बड़ी अन्य कोई भी श्रुति नहीं है । ५५। विष्णु से बड़ा अन्य कोई अप्रणी दीव नहीं है और विभूति से अधिक कोई भी रक्षा नहीं है । भक्ति से बड़ा कोई अन्य सदाचार नहीं है और रक्षा करने वाले से बड़ा कोई अन्य गुरु नहीं । ५५—५६।

नास्ति रुद्राक्षतो भूपा नास्ति शास्त्रं शिवागमात् ।
 नास्ति बिल्वदलात्पत्रं नास्ति पुष्पं सुवर्णं कात् । ५७।
 नास्ति वैराग्यतः सोख्यं नास्ति मुक्त्यै परं पदम् ।
 नाहणाद्रेः समो मेरुर्न कैलासो न मन्दरः । ५८।
 ते निवासा गिरिध्याप्ताः सोऽयन्तु गिरीशः स्वयम् । ५९।
 इति वदति शिलादनन्दने मुदितमनाः स मृकण्डनन्दनः ।
 पुनरपि बहुशः प्रणम्य तं चकितमना भवता व्यजिज्ञपत् । ६०।
 किं किं नृणां कर्म भवाय जायते ।
 कथं नु तत्तत्प्रकारं श्रूयते ।
 तेषां च तेषां च कथं प्रतिक्रिया
 कथं न तत्तन्मम कथ्यतामिति । ६१।

रुद्राक्ष के समान अन्य कोई भी भूपा (पाभूषण) नहीं है और शिव के आगम से अधिक बड़ा कोई भी शास्त्र नहीं है । बिल्व दल से अधिक महिमा शाली कोई भी पत्र नहीं है और सुवर्णक से अधिक कोई महान पुष्प नहीं है । ५७। इस जगत् के वैराग्य से अधिक अन्य कोई भी मुक्त नहीं है और जन्म-मरण के बारम्बार आवागमन से छुटकारा दिलाने वाली मुक्ति से बड़ा अन्य कोई भी परम पद नहीं है । इस अरुण पर्वत के समान न मेरु है, न कैलास है और न मन्दराचल ही है । ५८। वे सभी पर्वत भगवान गिरीश के निवास स्थान होने के

कारण इतने अधिक महत्त्वशाली हुए हैं और यह धरणाचल तो स्वयं ही साक्षात् गिरीश है । ५६। इस तरह से शिला नन्दन के यह कहने पर वह मृकण्ड के पुत्र धाम्यन्त ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे और फिर भी उनको बहुत बार प्रणाम करके चकित मन वाले होते हुए उनसे मार्कण्डेय मुनि ने जिज्ञासा की थी । ६०। हे भयबन् ! कौन-कौन से कर्म ऐसे हैं जो मनुष्यों को ससार के बन्धन में जल देने वाले होते हैं और कौन से कर्म ऐसे होते हैं जो मनुष्यों को छल-छल नरकों में डाल दिया करते हैं । उन कर्मों की क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं जिनके करने से उन समस्त घोर कष्टों से मनुष्यों का छुटकारा हुआ करता है—यह सभी आप महती कृपा करके मुझे सलाह दे । ६१।

॥ माहेश्वर खण्ड समाप्त ॥

स्कन्द पुराण

तैष्णत खण्ड

२०—वेङ्कटाचल माहात्म्य

पावनेनैमिपारण्ये शौनकाद्या महर्षयः ।
चक्रिरे लोकरक्षार्थं सत्रं द्वादशवापिकम् ।१।
तानभ्यगच्छत्कथको व्यासशिष्यो महामतिः ।
मुनिषप्रश्रवा नाग्र रोमहर्षणसम्भवः ।२।
सम्यग्भ्याचितस्तेपासूतः पीराणिकोत्तमः ।
कथयामास तद्दिव्यपुराणंस्कन्दनामकम् ।३।
सृष्टिसंहारवंपानावंशानुचरितस्य च ।
कथामन्वन्तराणां च विस्तरात्स व्यवेदयत् ।४।
कथास्तीर्थप्रभावाणां श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः ।
ऊचरे वशिनसूतंकथाश्रवणकाङ्क्षया ।५।
रोमहर्षण सर्वज्ञ पुराणार्थविशारदः ! ।
माहात्म्यंश्रोतुमिच्छामोगिरीन्द्राणां महोत्तले ।६।
ब्रूहि त्वं नो महाभाग ! के प्रधाना महोदराः ।
एतमेव पुरा प्रदत्तपृच्छं जाह्नवीतटे ।
व्यासं मुनिवरश्रेष्ठं सोऽब्रवीन्मे गुरुत्तमः ।७।

लोकों की रक्षा के लिए बारह वर्ष में पुराण होने वाला एक
सत्र किया था ।१। उनके समीप में श्री व्यास देव का शिष्य महान

मतिमान् कथायै कहने वाले, रोमहर्षण से समुत्पन्न उषधवा मुनि
 समागत हुए थे । २। पौराणिकों में परम श्रेष्ठ मूलजी उनके बहुत
 अधिक प्रशंसित हुए थे । फिर उन श्री सूतजी ने अत्यन्त दिव्य स्कन्द
 नामक पुराण को कहा था । ३। सृष्टि, संहार, वंशों का वर्णन तथा वंशों
 के अनुश्रुति का कथन और मन्वन्तरो का विस्तार पूर्वक वर्णन उनसे
 निवेदित किया था । ४। उन मुनि पुद्गरो ने तीर्थों के प्रमाणों की कथा
 का श्रवण करके उन वंशी श्री मूलजी से विशेष रूप से श्रवण करने की
 इच्छा से यह कहा था । ५। ऋषि वृन्द ने कहा—हे रोमहर्षण, प्राय
 तो सर्वज्ञ हैं और पुराणों के भयं के ज्ञान के महान मनीषी हैं । हम लोग
 सब इस महीनस में गिरीन्द्रो के माहात्म्य को श्रवण करने की इच्छा
 करते हैं । हे महाभाग ! प्राय आपको यह बतलाइए कि कौन से महीपर
 प्रधान हैं ? श्री सूतजी ने कहा पहिले पाल्हावी नदी के तट पर यह ही
 प्रधान मुनिवरो में परम श्रेष्ठ श्री व्यास देव जी से पूछा था । उन गुह्यदेव
 ने मुझसे कहा था । ६। ७।

पुरा देवयुगे सूत नारदो मुनिसत्तमः ।
 सुमेधशिवरं गत्वा नानारत्नमुशोभितम् । ८।
 तन्मण्डयेविपुलं शीघ्रं ब्रह्मणो दिव्यमालयम् ।
 दृष्ट्वा तस्योत्तरे देशे पिप्पलद्रुममुत्तमम् । ९।
 सहस्रयोजनोच्छ्राय विस्तीर्णं द्विगुणं तथा ।
 तामूलेमण्डपदिव्यनानारत्नसमन्वितम् । १०।
 पद्मरागमणिस्तम्भः सहस्रः समलंकृतम् ।
 वैद्वयमुक्तामणिभिः कृतस्वस्तिकगालिकम् । ११।
 नवरत्नसमाकीर्णं दिव्यतोरणशोभितम् ।
 मृगपक्षिभिराकीर्णं नवरत्नमयैः शुभैः । १२।
 पुष्परागमहाद्वारं सप्तभूमिकगोपुरम् ।
 सन्दीपयच्चसुकृत्कवाटद्वयशोभितम् । १३।

प्रविश्याऽसौ ददर्शान्तदिव्यमौक्तिकमण्डपम् ।

वैदूर्यवेदिकं तुङ्गमधरोह महामुनिः ॥१४॥

श्री महर्षि व्यास जी कहा था—हे सूत ! पहिले पुरातन समय में मुनिगण में परम श्रेष्ठ देवर्षि नारद जी उस देव युग में नाना भाँति सुन्दर रत्नों से सुशोभित सुमेख पर्वत की शिखर पर जाकर उसके मध्य में विशाल एवं दीप्तिमान ब्रह्माभो का एक दिव्य भालय उन्होंने देखा था उसके उत्तर दिग्भाग में एक उत्तम पीपल का द्रुम था । उस पीपल के वृक्ष की ऊँचाई एक सहस्र योजन थी तथा इससे दुगुना उसका विस्तार था । उस वृक्ष के मूल भाग में एक परम दिव्य मण्डप था जो अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त था वह मंडप सहस्रों ही पद्मराग मणियों से भली-भाँति झलङ्कृत था और वैदूर्य मणि और मुक्ता (मोती) यों से उसकी स्वस्तिक मालिका की हुई थी । ८—११। नी प्रकार के रत्नों से वह समकीर्ण था और दिव्य तोरणों से परम शोभा युक्त था । नवरत्नों से परिपूर्ण प्रति शुभ मृग और पक्षियों से भी वह संकुल था । १२। पुष्कराग मणियों से उसका महा द्वार निर्मित हो रहा था और उसका गोपुर सह भूमिक था । भली-भाँति दीप्ति से युक्त वज्र (हीरा) अच्छे सुरचित दी किवाड़ों से यह भी शोभा वाला था । १३। उनने उसमें अन्दर प्रवेश करके उस परम दिव्य मौक्तिक मण्डप को देखा था जिसमें वैदूर्य मणियों से एक वेदिका बनी हुई थी । उस उच्च स्थान पर वह महामुनि बद्ध गये थे । १४।

तन्मध्ये तुङ्गमतुलं चासुपादविराजितम् ।

ददर्श मुक्तासङ्कीर्णं सिंहासनं महाद्युति ॥१५॥

तन्मध्ये पुष्करदिव्यसहस्रदलशोभितम् ।

एवेतंचन्द्रसहस्राभंकणिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥१६॥

तस्य मध्ये समासीनं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ।

पलासपर्वताकारं सुन्दरं पुरुषाकृतिम् ॥१७॥

चतुर्बाहुमुदारार्द्धं वराहवदनं शुभम् ।
 सहस्रचक्राभयवराश्विभ्राणं पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
 पीताम्बरधरं देव पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
 पूर्णचन्द्रसौम्यवदनं धूपगन्धिसुखाम्बुजम् ॥१९॥
 सामध्वनिं यज्ञमूर्तिं स्तुवतुण्डं स्रवनासिकम् ।
 क्षीरसागरसङ्घातं किरीटोच्चवसिताननम् ॥२०॥
 श्रीवत्सवक्षसं शुभ्रयज्ञसूत्रविराजितम् ।
 कौस्तुभश्रीसमुद्योतं समुद्रतमहोरसम् ॥२१॥

उसके मध्य भाग में मधुचूच, प्रतुल, मुक्ताम्री हैं संकीर्ण, महान
 धृति से सुसम्पन्न प्राठ पादों से विराजित एक मिहासन देखा या । उसके
 मध्य में एक महत्त दलों से शोभा वाला परम दिव्य पुष्कर था जो
 सहस्र द्यौत चन्द्रों की आभा के सहस्र आभा वाला था और कणिका की
 केसरी से शरीर समुज्ज्वल था । उसके मध्य में मयुत पूर्ण चन्द्रों की
 प्रभा से युक्त, कैलास पर्वत के सहस्र आकार वाले, परम सुन्दर पुष्प
 के तुल्य प्राकृति वाले की समासीन देखा या । उाके चार बाहुयें थी—
 परम उदार मङ्गल था और परम शुभ वराह के जैसा मुख था । सहस्र,
 चक्र और अभय दान के वर को धारण करने वाले परम उत्तम पुरुष
 थे ॥१५—१८॥ वह महापुरुष पीताम्बर धारी थे और वह देव पुण्डरीक
 (कमल) के समान विशाल नेत्रों वाले थे । पूर्ण चन्द्र और तुल्य सौम्य
 मुख से युक्त तथा धूप की गन्ध से समन्वित मुख कमल वाले थे ॥१९॥
 साम वेद की ध्वनि से युक्त, यज्ञ मूर्ति, स्तुवतुण्ड वाले और स्तुवा के
 समान नासिका वाले थे । क्षीर सागर के समान तथा किरीट में समुज्ज्व-
 लित आनन (मुख) वाले थे । उनके वक्षः स्थल पर श्री वत्स का
 शुभ चिह्न था और शरीर शुभ्र यज्ञ सूत्र से शोभायमान थे । कौस्तुभ
 मणि की श्री की समुद्योति से सम्पन्न थे तथा समुद्रतम एव महान उरः
 स्थल वाले थे ॥२०—२१॥

जाम्बूनदमयैर्दिव्यैः सुरस्नाभरणैर्गुतम् ।
 विद्युन्मालापरिक्षिप्तशरन्मेषमिवोज्ज्वलम् । १२२।
 वामपादतलाक्रान्तपादपीठविराजितम् ।
 कटकांगदकेयूरकुण्डलोज्ज्वलितं सदा । १२३।
 चतुर्मुखवसिष्ठात्रिमाकण्डेयैर्मुनीश्वरैः ।
 भृग्वादिभिरनेकैश्च सेव्यमानमर्हनिशम् । १२४।
 इन्द्रादिलोकपालैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
 सेवितं देवदेवेश प्रणिपत्यार्जभिगम्य च । १२५।
 दिव्यैरुपनिपद्भागैरभिष्टूय घराघरम् ।
 नारदः परमप्रीतः स्थितो देवस्य सन्निधौ । १२६।
 एतस्मिन्नन्तरेचाभूद्दिव्यदुन्दुभिनिः स्वनः । १२७।

जाम्बूनद (सुवर्ण) से पूर्ण, परम दिव्य और सुन्दर रत्नो
 वाले आभरणो से शोभा वाले थे उस समय उनकी शोभा
 ऐसी ही हो रही थी जैसे विद्युन्मालाओं से परिक्षिप्त
 शरकाल का उज्ज्वल मेष ही विराजमान हो । वामपाद से
 समाक्रान्त पादपीठ पर विराजमान थे और सर्वदा सुवर्ण रचित कटक,
 अङ्गद, केयूर और कुण्डलो से समुज्ज्वलित थे । ब्रह्मा, वसिष्ठ, अत्रि
 और मार्कण्डेय मुनीश्वरों से तथा भृगु आदि अनेक महापुरुषों के द्वारा
 अर्हनिश सेव्यमान थे । इन्द्र प्रभृति लोकपालों के द्वारा तथा गन्धर्व और
 अप्सरार्यों के गणों के द्वारा वे देवों के भी देवेश्वर सेवित थे जो उनको
 बारम्बार अभिगमन करके प्रणाम कर रहे थे । उन घराघर देव की
 देवपि नारद जी ने दिव्य उपनिपद्भागों से स्तवन किया था । यह परम
 प्रसन्न होते हुए उन देव की सन्निधि में ही स्थित हो गये थे । इस बीच
 मे परम दिव्य दुन्दुभियों की ध्वनि वहाँ पर हुई थी । १२२—१२७।

दत्तस्समागता देवो घरणी ससिसमुता ।

सरत्नसागराकारदिव्याम्बरसमुज्ज्वला । १२८।

मुनेरुमन्दरागारस्तनभारावनामिता ।
 नवदूर्वादलश्यामा सर्वाभरणभूषिता । २६।
 दलया धै पिगलया सखीभ्यां च समन्विता ।
 ततस्ताभ्यां समानीतं पुष्पाणां निचयं मही । ३०।
 श्रोमद्वराहदेवस्य पादमूले विकीर्य च ।
 प्रणम्य देवदेवेशं कृताञ्जलिपुटा स्थिता । ३१।
 तां देवीं श्रीवराहोऽपि ह्यालिङ्गायाऽङ्कं निधाय च । ३२।
 पप्रच्छ कुशलं पृथ्वीं प्रीतिप्रवणमानसः । ३३।
 त्वां निवेश्यमहीदेवि ! शेषक्षीर्षेतुलावहे ।
 लोकां स्वयिनिवेशयेत्स्वस्सहायाधराधरान् ।
 द्वाहाऽऽगताऽस्म्यङ् देवि ! किमर्थं स्वमिहाऽऽगता । ३४।

इसके अनन्तर वहाँ पर सखियों से समन्वित धरणी देवी समा-
 गत हो गई थी जो रत्नों के सहित सागर के समान आकार वाली तथा
 दिव्य मन्थरों से समुग्गम्य वेप वाली थी । सुमेरु और मन्दर पर्वतों के
 आकार वाले स्तनों के भार से वह धरणी देवी अब नमित्र हो रही थी ।
 नवीन दूर्वा दल के समान वणुं वाली श्यामा और सब प्रकार के भाषू-
 पणों से विभूषित थी । २८—२९। इना और पिगला नामधारिणी दो
 सखियों के साथ थी । इसके अनन्तर वह मही उन दोनों सखियों के द्वारा
 पुष्पों के निचय के समीप में प्राप्त की गई थी अर्थात् सखियों के द्वारा
 पुष्पों का समूह उस धरणी देवी के समीप में उपस्थित किया गया था ।
 उस पुष्पों के समूह को धरणी देवी ने श्रीमान् वराह देव के चरणों के
 मूल में विकीर्ण कर दिया था और उन देवी के देवदेवर प्रभु को वह
 प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़कर वहीं पर स्थित हो गई थी । श्री
 वराह देव ने भी उस देवी का समाभिगमन करके उसको अपनी गोद में
 बिठा लिया था । फिर परम प्रीति से प्रवण मन वाले देवदेवर ने उस
 धरणी से कुशल पूछा था । श्री वराह देव ने कहा—हे देवि ! परम

सुखावह शेष के मस्तक पर निवेशित करके और तेरे ऊपर लोक को निवेशित करके तथा तेरे सहायक धराधरो को निवेशित करके हे देवि ! मैं यहाँ पर समागत हो गया हूँ । अब आप यहाँ पर किस प्रयोजन से आई हैं । ३०—३४।

मा समुद्धृत्य पातालात्सहस्रफलशोभिते ।
रत्नपीठे इवोत्तुङ्गे सरत्नेऽनन्तमूर्धनि ।
कृत्वा मा सुस्थिरा देव ! भूधराभ्यनिवेश्य च । ३५।
मद्वारणक्षमान्पुण्यास्त्वमयाप्सुपुत्तम ।
तेषु मुह्यामहाबाहो मदाधारान्वदस्व मे । ३६।
सुमेरुहिमवान्विष्णोमन्दरो गन्धमादनः ।
सालग्रामश्चित्रकूटो मात्ययान्पारियात्रकः । ३७।
महेन्द्रो मलयः सह्यः सिन्धुद्रिःपि रवतः ।
मेरुपुत्रोऽञ्जनो नाम शैलः स्वर्णमयो महान् । ३८।
एते शैलवराः सर्वे त्वदाधारा वसुन्धरे ।
ये मया देवसङ्घेऽपि सङ्घेऽपि सेविताः । ३९।
एतेषु प्रवरान्वक्ष्ये तत्त्वतः शृणु मामविः ! ।
सालग्रामश्चसिन्धुद्रिश्चैलेन्द्रोगन्धमादनः । ४०।
एते शैलवरा देवि दिशः हैमवती श्रिताः ।
वक्षिणस्यां प्रतीतास्तु वक्ष्ये शैलान्वसुन्धरे । ४१।
अरुणाद्रिर्हस्तिशैलो गृध्राद्रिर्घटिकाचलः ।
एते शैलवराः सर्वे क्षीरनद्यास्समीपगाः । ४२।

पृथिवी ने कहा—आपने मुझको पाताल से समुद्धृत करके सहस्रों फलों से शोभा वाले रत्न निर्मित पीठ की भाँति अति उत्तुङ्ग (उन्नत) रत्न सहित अनन्त के मस्तक पर हे देव ! आप मुझको सुस्थिर करके तथा भूधरो को मेरे ऊपर निवेशित कर चुके हैं । हे पुद्गोत्तम ! ये भूधर परम पुण्यमय हैं—मेरे धारण करने के क्षम हैं और आपसे

परिपूर्ण' हैं । हे महाबाहो ? उनमें अब प्राप मेरे प्राधार भूत मुख्य जो भी हों उनको मुझे बतलाने का कृपा कीजिए । ३५।३६। श्री वराह देव ने कहा—हे वसुन्धरे ! सुमेरु, हिमवान्, विन्ध्य, मन्दर, गन्धमादन, सालग्राम, चित्रकूट, आत्यवान्, पारिपात्रिक, महेन्द्र, भलप, मङ्ग, सिन्हाद्रि, रंमत, मेरुपुत्र, अञ्जन नाम वाला शील जो स्वर्ण मय घोर महात् है । ये सब परम वरिष्ठ शील हैं जो कि प्रापके प्राधार हैं । ये वे शील हैं जिनका सेवन मैंने स्वयं तथा देवों के समुदायो ने एवं ऋषियों के समूह ने किया है । हे मापवि ! इनमें भी जो परम प्रवर हैं उनको मैं तारिष्य रूप से बतलाऊँगा, उनका प्राप धन ग्रवण करो । सालग्राम, सिन्हाद्रि घोर गन्धमादन दोनेन्द्र हैं । हे देवि ! ये वरिष्ठ शील हैं जो हैमवती दिशा में समाश्रित हैं । हे वसुन्धरे ! दक्षिण दिशा में जो प्रतीत होता है उन दोनों को भी बतलाता हूँ—प्रह्लाद्रि, हस्ति शील, गृध्राद्रि, घटिकाचल ये सब श्रेष्ठ शील हैं जो क्षीर नदी के समीप में गमन करने वाले हैं । ३७—४२।

हस्तिशीलादुत्तरतः पञ्चयोजनमात्रतः ।
 सुवर्णमुखरीनाम नदीनाम्प्रवरा नदी । ४३।
 तस्या एवोत्तरे तीरे कमलाख्यं सरोवरम् ।
 तत्तीरे भगवानास्ते शुक्लस्य वारदो हारः । ४४।
 वलभद्रेण संयुक्तः कृष्णोभक्तातिनाशनः ।
 बैलानसंभुर्निगणनित्यमाराधिताम्भलः । ४५।
 कमलाख्यस्य सरस उत्तरे काननोत्तमे ।
 क्रोशद्वयार्धमात्रे तु हृदिचन्दनशोभिते ।
 श्रीवेङ्कटाचलो नाम वामुदेवालयो महान् । ४६।
 सप्तयोजनविस्तारः शैलेन्द्रोयोनोच्छ्रितः ।
 अस्तिस्वर्णमयोदेविरत्नसामुभृदायतः । ४७।
 इन्द्राद्या दैवतगणा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः ।

सिद्धाः सा याश्चमस्तोदानवादैत्यराक्षसाः ।

रम्भाद्या अप्सरः सङ्घा वसन्ति नियतं घरे ! १४८।

हास्ति शैल के उत्तर दिशा में पाँच योजन परिमाण वाली सुवर्ण
मुखरी नाम वाली नदियों में बरिष्ठा एक नदी है । उसी नदी के उत्तर तट
पर एक कमल नाम वाला सरोवर है । उसके तीर पर शुक को वरदान
प्रदान करने वाले हरि भगवान हैं । वचभद्र से संयुक्त भक्तों की प्रार्थि
का नाश करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण हैं । वे वहाँ पर नित्य हो वैष्णव-
नस (सम्प्राप्त) और परम विमल मुनिगणों के द्वारा समाराधित होते
हैं । उस कमलाक्ष्य सरोवर के उत्तर दिग्भाग वाले उत्तम वन में केवल
दाई कोश की दूरी पर हरि चन्दन के वृक्षों से सुशोभित वन में श्री
वेङ्कटाचल शुभ नाम वाला एक महान् भगवान् वासुदेव का प्राणय है
है १४३-१४६। वहाँ पर मात्र योजन विस्तार वाला और एक योजन ऊँचा
एक शैलेन्द्र है । हे देवि ! यह परम आयत रत्नों की शिखरों से सम-
न्वित वह स्वर्णमय है । हे घरे ! वहाँ पर इन्द्र आदि देवगण, वसिष्ठ
प्रभृति, मुनिगण, सिद्ध, माध्य, मरुद्गण, दानव, दैत्य, राक्षस, रम्भा
आदि अप्सराओं के समुदाय ये सब नियत रूप से वहाँ पर निवास
क्रिया करते हैं १४७-१४८।

तपश्चरन्ति नामाश्च गहवा. किप्तरास्तथा १४९।

एतैराध्विनास्तत्रसर्तित पुष्पवर्शनाः ।

सरासिधिविधान्यत्रसन्ति दिव्यानिमाधवि ।

तीर्थानाञ्चैव सर्वेषां शृणुष्व प्रवराणि वै १५०।

चक्रतीर्थेन्दैवतीथ विगद्गङ्गा तथैव च ।

कुमारधारिका तीर्थम्पापनाशनमेव च ।

पाण्डव नामतीर्थं च स्वामिपुष्करिणी तथा १५१।

सप्ततानि वराण्याहुर्नारायणगिरी शुभे ।

एतेषु प्रवरा देवि स्वामिपुष्करिणी शुभा १५२।

अस्यास्तु पश्चिमे तीरे निवसामि त्वया सहः ।
 आस्तेऽस्या दक्षिणे तीरे श्रोनिवासो जगत्पतिः ॥५३॥
 गंगाद्यैः सकलेस्तीर्थैः समासासागराम्बरे ।
 त्रैलोक्येयानितीर्थानिसरांसिसरितस्तथा ।
 तेषां स्वामित्वमापन्नं घरे ! स्वामिसरोवरे ॥५४॥
 स्वामिपुष्करिणीपुण्यासेवितुं दिव्यभूधरे ।
 वसन्ति सर्वतीर्थोन्नितेपासख्यावदामिते ॥५५॥
 पट्पष्टिकोटितीर्थानि पुण्येऽस्मिन्भूधरोत्तमे ।
 तेषु चात्यन्तमुख्यानि पट् तीर्थानि वसुन्धरे ॥५६॥
 पञ्चानां तीर्थं राजानां तुभ्योगर्भसमोमहान् ।
 गर्भवासभयवसो स्नातानाम्भूधरोत्तमे ॥५७॥

वहाँ पर नाग, गरुड तथा किन्नर गण तपश्चर्या किया करते हैं ।
 इनसे अधिकृत वहाँ पर परम पुण्य वहाँ वालो सरितायें हैं । हे
 माधवि ! वहाँ पर अनेक दिव्य सरोवर हैं । हे देवि ! अब समस्त तीर्थों
 में जो परम श्रेष्ठ हैं उनका भी श्रवण कर लो ॥४६ ५७॥ चक्र तीर्थ,
 वैव तीर्थ, विषद् गङ्गा, कुमार धारिका, ये तीर्थ पापा के नाश करने
 वाले हैं । पाण्डव नाम वाला तीर्थ तथा स्वामि पुष्करिणी—ये सात
 उस शुभ नारायण गिरि में अति श्रेष्ठ तीर्थ हैं । हे देवि ! इन सबमें
 भी परम शुभा एवं प्रवर स्वामि पुष्करिणी तीर्थ है । इसके पश्चिम तट
 पर मैं तुम्हारे साथ में निवास किया करता हूँ । इसके दक्षिण तीर पर
 जगत् के पनि श्रोनिवास निवास किया करता हूँ ॥५१—५३॥ वह गंगा
 आदि समस्त तीर्थों के समान मागराम्बर में है । इस धिनोकी में जो
 भी तीर्थ हैं, सरोवर हैं और सरितायें हैं हे घरे ! स्वामी सरोवर में
 उन सबका स्वामित्व प्राप्त हो गया है अर्थात् इसने सम्पूर्ण तीर्थों के
 स्वामी होने का पद प्राप्त कर लिया है । हे दिव्य भूधरे ! परम पुण्य
 स्वरूपिणी स्वामि पुष्करिणी की सेवा करने के लिए सभी तीर्थ वहाँ

पर निवास किया करते हैं । अब मैं उनकी सख्या भी आपको बतलाता हूँ । इस परम पुण्यमय भूधरोत्तम मे स्यासठ करोड तीर्थ हैं । उनमें भी जो अत्यन्त मुख्य है वे हे वसुन्धरे ! केवल छह ही तीर्थ हैं । ५४-५६। हे भूधरोत्तमे ! इन पाँच तीर्थों राज्यों में सुम्भ महान् गर्भ के समान है । इसमें जो स्नान करने वाले मनुष्य हैं उनके गर्भवास के भय को दूर करने वाले हैं । ५७।

पट्तीर्थानिमहाबाहो ! त्वयोक्तानि महीधरे ।
माहात्म्यवदतेषामे यथाकाल यथानिधि ।
फलानि तेषु स्नाताना नारायण्वद भूधर । ५८।
नारायणाद्रिमारात्म्य वदामि शृणु माधवि ।
देवाश्च ऋषयश्चैव योगिनः सनकादयः । ५९।
कुनेऽञ्जनार्द्रि त्रेताया नारायणगिरि तथा । ६०।
द्वापरे सिंहशलच्च कलौ श्रीवङ्कटाचलम् ।
प्रवदन्तीह विद्वांसः परमात्मा लयगिरिम् । ६१।
योजनाना सहस्रान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा ।
यो नगेद्भूधरेन्द्र तद्दिशमुद्दिश्य भक्तितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति । ६२।
तास्तन्यद्तीयमाहात्म्यं यथाकालं वदामि ते । ६३।

धरणी ने कहा — हे महाबाहो ! महीधर पर आपने तैं तीर्थ बतलाये हैं । जान गीर विधि के अनुसार उन छह तीर्थों का मुझे माहात्म्य बतलाने की कृपा कीजिए । ५८। हे भूधर ! उन छह प्रमुख तीर्थों में जो मनुष्य स्नान किया करते हैं उनकी क्या फल प्राप्त होते हैं यह भी आप कृपा करके मुझे बतलाइये । ५९। श्री बराह भगवान ने कहा — हे माधवि ! मैं अब नारायणाद्रि का माहात्म्य तुमको बतलाना ॥ उनका प्रवण करो । समस्त देवगण, सब ऋषि वृन्द, सम्पूर्ण योगीजन गीर सनक आदि शृंगुण में भोजनाद्रि की, त्रेता में नारायण गिरि को,

द्रापर में सिंह शैल की घोर बलिपुण में थी वेङ्कटाचल को बतनाया करते हैं । यहाँ पर विद्वान् लोग विरि की परमात्मा भालय करते हैं । एक सहस्र योजनो के भी अन्त में तथा अन्य द्वीप में भी रहते हुए जो कोई इस भूधरेन्द्र को उसकी दिशा मात्र का उद्देश्य ग्रहण करके भक्ति भाव से नमस्कार किया करता है वह समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर सीधे विष्णु लोक को चले जाया करते हैं । उसमें छे तीर्थों का माहात्म्य भी मैं यथाकाल आपको बतलाऊँगा । ६०—६३।

शृणुष्ववहितभद्रैः सर्वपापप्रणाशनम् ।
 कुम्भसंस्थेरधौमाधे पौर्णमास्याभनहातिथी । ६४।
 मघानक्षत्रयुक्तायां भूधरेन्द्रे वसुधरे ।
 कुमारघारिकाराम सरसो लोहपावनी । ६५।
 यत्रास्तेषां वती मृतुः कार्तिकेयोऽग्निसम्भवः ।
 देवसेनासमायुक्त श्रीनिवासाचंकोऽमले । ६६।
 तस्यां यः स्नाति मग्न्याह्ने तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 गङ्गादिसर्वं तीर्थेषु यः स्नाति नियमादरे । ६७।
 द्वादशाब्द जगद्धात्रि ! तत्फलं समवाप्नुयात् ।
 योऽत्र ददाति तत्तीर्थं शक्यया दक्षिणयान्वितम् ।
 स तावत्फलमाप्नोति स्नाने तूक्तं फलं यथा । ६८।
 मीनसंस्थे सवितरि पौर्णमासीतिथी धरे ।
 उत्तराफाल्गुनी युक्ते चतुर्थे काल उत्तमे । ६९।
 पञ्चानामपि तीर्थानां तुम्होऽथ गिरिगह्वरे ।
 यः स्नाति मनुजो देवि पुनर्गर्भे न जायते । ७०।

हे भद्र । अब आप बहुत ही सावधान होकर श्रवण करो जो सब प्रकार के पापों का विनाश कर देने वाला है । हे वसुधरे ! भूमरेन्द्र में कुम्भ राशि पर रवि ॥ संस्थित होकर, माघ मास में, पूर्णिमा महातिथि में जोकि मघा नक्षत्र से समन्वित हो ऐसे सुयोगी

के प्राप्त होने पर कुमार धारिका नाम वाली सरस्ती ररम लोक पावनी है १६४-६५। जहाँ पर पार्वती के पुत्र, अग्नि से सम्भूत होने वाले कात्तिकेय विराजमान रहा करते हैं । देव सेना ॥ समायुक्त होकर हे समसे ! यह भगवान् श्रीनिवास की प्रार्थना करने वाले हैं । उसमें जो भी मध्याह्न के समय में स्नान किया करता है उसके पुण्य-फल का प्रायः सब भ्रवण करो । हे धरे ! गङ्गा आदि समस्त तीर्थों में जो नियम पूर्वक स्नान किया करता है हे जगदात्रि ! जो बारह वर्ष तक स्नान करता है उसी फल को यह प्राप्त कर लेता है जो कोई उस तीर्थ में दक्षिणा से युक्त भक्षण का दान किया करता है और अपनी शक्ति के अनुसार करता है वह भी उतना ही फल प्राप्त किया करता है जो फल हमने स्नान करने का बतलाया है १६६।६७।६८। हे धरे ! सूर्य के मीन राशि पर सरिषत हो जाने पर बीस मानी तिथि में जोकि उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र से युक्त हो अथवा उत्तम काल में पक्षी तीर्थों में प्रमुख गिरि गङ्गा तन्त्र तीर्थ में जो स्नान किया करता है हे देवि ! वह मनुष्य पुनः गर्भ में नहीं जाया करता है १६९-७०।

अग्निवाहस्यतो भानीचित्रानक्षत्रसमुत्ते ।

पूर्णिमाद्येतिथीपुण्ये प्रातःकालेतथीवच ॥७१॥

आकाशगङ्गासरितिस्नातो मोक्षवाप्नुयात् ॥७२॥

वृषभस्थे रवी राधे द्वादशमार्गविवामरे ।

शुक्लेवाप्यथवा कृष्णे पक्षेभीमममन्विते ॥७३॥

शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे भानुवारेण संयुते ।

पुष्यनक्षत्रसमुक्ते हस्तक्षेपे युतेऽपिवा ॥७४॥

तीर्थे पाण्डवनाम्यत्र सङ्गवे स्नाति यो नरः ।

नेहदुःखमवाप्नोति परत्र सुखमश्नुते ॥७५॥

शुक्ले पक्षेऽथवा कृष्णे याङ्गवारेण सप्तमी ।

पुष्यनक्षत्रसंयुक्ताहस्तक्षेपयुतापिवा ॥७६॥

तस्यां तिथौ महामागे पापनाशनसंज्ञके ।

तीर्थेयः स्नाति नियमाद्भूधरेन्द्रस्य मस्तके ।

कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स नरोत्तमः ॥७७॥

अग्नि बाह (मेष) राशि पर सूर्य के आ जाने पर हे धरे !
चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा परम पुण्य तिथि मे प्रातःकाल के समय
मे जो आकाश गंगा सरिता में स्नान किया करता है वह मनुष्य निम्न
ही मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है ॥७१॥७२॥ वृषभ राशि पर सूर्य के
संस्थित होने पर अनुराधा नक्षत्र मे रविवार से युक्त द्वादशी तिथि मे,
शुक्ल पक्ष हो अथवा कृष्ण पक्ष हो भीम वार से युक्त, शुक्ल अथवा
कृष्ण पक्ष में रविवार से युक्त में, अथवा पुण्य या हस्त नक्षत्र से युक्त
मे पाण्डव नाम वाले तीर्थ मे सङ्गव मे जो मनुष्य स्नान किया करता
है वह यहाँ लोक मे किसी भी तरह का कोई दुःख नहीं प्राप्त किया
करता है और मृत्यु के पीछे परलोक मे भी वह सुखो का ही उपभोग
करता है । शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो जो रविवार से युक्त सप्तमी
तिथि हो और वह पुण्य या हस्त नक्षत्र से समन्वित हो तो उस तिथि मे
हे महामागे ! इस पापों के विनाश करने वाले तीर्थ मे जो भी स्नान
कर लेता है और भूधरेन्द्र के मस्तक में नियम मे स्नान किया करता
है वह नरों मे परम श्रेष्ठ करोडो जन्मो मे अर्जित किए हुए पापों से
विमुक्त हो जाया करता है ॥७३-७७॥

शृणु देवि परङ्गुह्यमनन्ताख्ये महागिरी ।

महिव्यालयवायव्ये शिखरे गिरिगह्वरे ।

देवतीर्थमितिख्यातं तटाकमतिशोभनम् ॥७८॥

तस्मिन्पुण्यतमे देवि ! स्नानकालम्बुदामि ते ॥७९॥

गुरुपुण्ये व्यतीपाते सोमश्रवणके तथा ।

दिनेष्वेतेषु यः स्नाति तस्यपुण्यफलं शृणु ॥८०॥

यानि कानीह पापनिजानाज्ञानकृमानिच ।
 तानि सर्वाणि नश्यन्ति देवतीर्थेऽतिपावने ॥८१॥
 पुण्यान्यपि च वधन्ते देवतीर्थं निमज्जनात् ।
 दोषं मायुरवाप्नोति पुत्रपोत्रसमन्वितः ।
 भ्रन्ते स्वर्गं सामासाद्य चन्द्रलोके महीयते ॥८२॥
 तद्दिनेष्वग्नदो देवि यावज्जीवाग्नदो भवेत् ।
 अतिगुह्यतमं देवी प्रोक्तन्तुभ्य वसुन्धरे ॥८३॥
 ध्रुत्वाऽयं पृथिवी देवी प्रीतिप्रवणमानसा ।
 इष्टाभिर्वाग्भिरतुलं तुष्टाव घरणीधरम् ॥८४॥

हे देवि ! अब आप परम गोपनीय विषय का प्रवण करो । इस भ्रन्त नात वाले मग्नान गिरि मे मेरे इस दिव्य आनन्द के वागम्य कोण वाले शिखर मे गिरि गह्वर में एक देवतीर्थं निरुपात है । वहाँ पर एक भक्ति शोभा से युक्त तणुक है । हे देवि ! उस परम पुण्यतम तीर्थ में जो स्नान करने का काल है उसे मैं आपको बतलाता हूँ ॥७८॥७९॥ गुह्यशर युक्त पुण्य क्षेत्र मे, व्यतीपात मे, सोमवार से समन्वित श्रवण नक्षत्र मे, इन दिनों मे जो भी कोई मनुष्य है । तीर्थ मे स्नान किया करता है उसके पुण्य-फल का अब श्रवण करो — जो भी कोई पाप होते हैं चाहे वे ज्ञान पूर्वक दिए गये हों या अज्ञान से लिए गये हों वे सभी पाप इस अति पावन देव तीर्थ मे नष्ट हो जाया करते हैं । इस देव तीर्थ मे निमज्जन करने से केवल पापी का ही विनाश नहीं होता प्रत्युत पुण्यो की भी वृद्धि हुआ करती है मनुष्य इस तीर्थ मे स्नान करने ने पुत्र-पोषो से समन्वित होकर दीर्घ आयु की भी प्राप्ति किया करता है । इस संसार को छोड़कर मृत्यु होने पर भ्रन्त मे स्वर्ग-लोक मे पहुँचकर फिर चन्द्र-लोक मे प्रतिष्ठित हो जाया करता है ॥८०॥८१॥८२॥ हे देवि ! उपर्युक्त दिनों मे जो अन्न का दान करने वाला है वह यावज्जीवन अन्न का दाता होता है । हे देवि ! मैंने यह प्रत्यन्त गुह्यतम आपको हे वसुन्धरे !

बतला दिया है । ८३। श्री व्यास देव जी ने कहा—इसके अनन्तर इसका श्रवण करके पृथिवी देवी प्रीति से गरम प्रवण मन धाली हा गई थी । फिर धरणी ने उन प्रतुल धराणीधर देव इष्ट वाणियों के द्वारा स्तवन किया था । ८४।

नमस्ते देवदेवेश ! वराहवदनाऽभ्युत ।
 क्षीरसागरसङ्काश वज्रशृङ्ग ! महाभुज ! । ८५।
 उदधृताऽस्मि स्वया देव ! कल्पादौ सागराम्भस ।
 सहस्रबाहुना विष्णो ! धारयामि जगन्त्यहम् । ८६।
 अनेकदिव्याभरणयज्ञसूत्रविराजित ।
 अवणारुणाम्बरधर दिव्यरत्नविभूषित । ८७।
 वद्यद्भानुप्रतीकाक्ष पादपद्म नमोनमः ।
 बालचन्द्राभ दद्याग्रमहाबल पराक्रम । ८८।
 दिव्यचन्दनलिप्ताग ! तप्तकाञ्चनकुण्डल ।
 इन्द्रनीलमणिद्योति हेमागदविभूषित । ८९।
 वज्रदद्याग्रनिभिश्च हिरण्याक्ष महाबल ।
 पुण्डरीकाभिरामाक्ष ! भामस्वनमनोहर । ९०।
 श्रुतिसीमन्त भूपात्मन्सर्वात्मश्चाक्षविक्रम ! ।
 चतुरानशम्भुभ्या चन्दिताऽऽपतलोचन । ९१।

धरणी देवी ने कहा—हे देवी के भी देवेश्वर ! आपको नमस्कार है । आप वराह के समान मुख वाले हैं । हे अभ्युत ! आप क्षीरसागर के तुल्य वर्ण वाले हैं । हे वज्रशृङ्ग ! आप महान् भुजाधी वाले हैं । हे देव ! आपने ही मेरा उद्धार किया था जबकि कल्प के प्रादि काल में मैं सागर के जल में निमग्न थी । हे विष्णो ! आप तो सहस्र बाहुओं वाले हैं । मैं अब इन जगत्ों धारण करती हूँ । ८५। ८६। आप अनेक दिव्य आभरणों तथा यज्ञ सूत्र से शोभा सम्पन्न होकर विराजमान हैं आप भरण वर्ण वाले वस्त्रों के धारण करने वाले हैं और परम

दिव्य रत्नो से विभूषित हैं । आप उदीयमान सूर्य के सदृश तेज से युक्त हैं आपके चरण कमलों में बारम्बार नमस्कार है । आप बाल चन्द्रमा की भाँसा के तुल्य भाँसा बाने हैं और आप अपनी दाढ़ के अग्र भाग में महान बल और पराक्रम से युक्त हैं । आपके भङ्ग, परम दिव्य चन्दन से लिप्त हैं तथा आप तप्त सुवर्ण के निर्मित कुण्डलो को धारण करने वाले हैं । आपके अंग की दीप्ति इन्द्र नील मणि के तुल्य है । हे देव ! आप सुवर्ण रचित भगवो की सोभा वाले हैं । आपने वज्र के तुल्य दाढ़ के अग्रभाग से हिरण्याल को निभिन्न कर दिया था । हे महाबल ! आपके नेत्र पुण्डरीक (कमल) के समान परम सुन्दर हैं और आप साम वेद की छवि से परम मनोहर हो रहे हैं । हे श्रुति सीमन्त भूपात्मन् ! आप सभी की आत्मा हैं और आपका विक्रम अनीव सुन्दर है । अहो और दाम्भु इन दोनों के द्वारा आपकी श्रन्दना की गई है । आपके परम विशाल नेत्र हैं । ५७—६१।

सर्वविधामयाकार शब्दातीत नमो नमः ।
 आनन्दविग्रहाऽनन्त कालकाल नमोनमः ॥६२॥
 इति स्तुत्वाऽचला देवो यद्यप्ये पादयोर्विभुम् ।
 यन्दमाना समुद्वीक्ष्य देवः फुल्लविलोचनः ॥६३॥
 उद्घृष्य धरणी देवीमालिलिङ्गैऽयवाहृभिः ।
 आघ्रायधरणीवक्त्रवामाङ्कुसन्निवेश्य च ॥६४॥
 कारुण्य गरुडेशान जगाम वृषभाक्षतम् ।
 मुनीन्द्रं नरिदासं च स्तूयमानो महोपतिः ॥६५॥
 स्वामिपुष्करिणी तीरे पश्चिमे लोचनपूजिते ।
 भास्ते वराहवदनो मुनीन्द्रस्तत्रपूजितः ।
 वंत्सानसमं हाभागेऽह्यतुल्यं मंदात्मभिः ॥६६॥
 त दृष्ट्वा नारदः मूढः मुनीनामुक्तवाचुरा ।
 वदेतदहमश्रीपं तत्र वं भूनासंसदि ॥६७॥

यत्पृष्टोऽह त्वयासूतमाहात्म्यं धरणीभृताम् ।

मया तूतं यथावद्वि नारदाच्चपुराश्रुतम् । ६८।

हे भगवन । आप समस्त विद्याधो से परिपूर्ण आकार वाले हैं और शब्दों से परे की वस्तु हैं अर्थात् शब्दों के द्वारा आपका वर्णन नहीं किया जा सकता है । आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार है । आपका कोई भी यन्त्र नहीं है और आपका यह विग्रह पूर्ण आनन्दमय है । आप इस महान् काल के भी बान हैं । आपको पुनः-पुनः मेरा प्रणाम है । ६२। इस प्रकार से उस भवला देवी देवेश्वर वराह भगवान की स्तुति करके फिर उसने विष्णु के चरणों में वन्दना की थी । उस वन्दना करती हुई धारणी देवी को देखकर भगवान वराह देव के लोचन प्रफुल्लित हो गए थे । ६३। फिर वराह भगवान उस देवी को अपनी बाहुओं से उठाकर उनके सम लीगन किया था । वराहेश्वर ने धरणी के मुख का आघ्राण करके उसे अपने ही वाम भाग की गोद में बिठा लिया था । इसके अनन्तर वह गरुडेशन पर समाकूट होकर वृषभाचल को चले गए थे । नारद आदि महा मुनीन्द्रों के द्वारा स्तवन किये गए तथा मुनिगणों के द्वारा पूजित होते हुए वराह के समान मुख वाले मही के स्वामी लोकी के द्वारा पूजित उस पश्चिम दिग्भाग वाले स्वामि पुष्करिणी के तट पर विराजमान हैं । वहाँ पर बड़े २ वैखानस, महा-भाग ब्रह्मा के तुल्य महात्माधो के द्वारा वे पूजित होते हैं । ६४। ६५। ६६। श्री व्यास दक्ष जी ऋषि-हे सून । देवर्षि नारद जी ने पहिले मुनियों से यह कहा था । वही पर मुनियों की सभा में यह मैंने भी श्रवण किया था । ६७। हे सून । तुमने जो भूमि धरणी धारण करने वालों पर्वतों का माहात्म्य पूछा था वह मैंने जो पहिले नारद जी से श्रवण किया था यथावत् सब तुमको बतला दिया है । ६८।

य इदं धर्ममम्बादमावया, सूत ! पावनम् ।

पटेद्वा देवपुरतो ब्राह्मणानां पुरस्तथा । ६९।

सर्वेषामपिवर्णानां शृण्वतां भवितपूर्वकम् ।
 स प्रतिष्ठामवाप्नोति पुत्रपौत्रैः समन्वितः । १००।
 शृण्वतामपि सर्वेषां यदिष्टं तदभविष्यति । १०१।
 इति मे भगवान् व्यासः प्रोवाच मुनिसेवितः ।
 यथाश्रुतं मया पूर्वं कृष्णद्वैपायनादगुरोः । १०२।
 तत्तया सर्वमेवाऽऽन मयाप्युक्तं मुनीश्वरा ।
 श्रुत्वा सूतवचस्त्विदमथ ते प्रीतमनसोऽभवन् । १०३।
 सून ! त्वयोपतं भुवि पर्वतेषु

पुण्येषु पुण्यस्य महोदरस्य ।

माहात्म्यमस्माकमहोदरनाम्नः

पापापहं मोक्षफलप्रदायकम् । १०४।

ततो वृषाद्रिं सम्प्राप्य वराहोदरणीयुतः ।

किमुक्तवान्धरण्यं स तन्नो ब्रूहि महामते । १०५।

हे सून ! हमारे घापने दोनो के इस घर्म के सम्वाद की जो कि परम पावन है जो कोई देवी भगवा याज्ञानो के पागे पड़ेगा या सभी वणों के द्वारा भक्ति भाव के साथ श्रवण करेगा वह पुत्र-पौत्रों से समन्वित होकर परम प्रतिष्ठा की प्राप्ति किया करता है । जो इसको सुना करते हैं उन सबको भी उनके प्रमीष्ट की प्राप्ति हो जाया करती । ६६। १००। १०१। श्री सूनजी ने कहा—यह मंत्र मुनियों के द्वारा सेविता भगवान् व्यासदेव ने कहा था । मैंने जैसा भी श्रवण किया है पहिले अपने गुरुदेव कृष्ण द्वैपायन व्यास जी से वह सभी उगी प्रकार से हे मुनीश्वरो ! मैंने कहकर घापनी बतला दिया है । इस भाँति सूनजी के वचन की सुनकर समस्त मुनीश्वर परम प्रसन्न मन वाले हो गये थे । श्रुतिगण ने कहा—हे सूनजी ! घापने इस मूमण्डन में परम पुण्यमय पर्वतों में भी धार्मिक पुण्यशाली महोदर का जिनका अक्षीन्द्र नाम है, माहात्म्य कहा है । यह माहात्म्य पागो से दूर कर देते वाला घोर मोक्ष

ने फल की प्रदान करने माना है । १०२।१०३।१०४। हे महामते ! इसके अनन्तर फिर वे भगवान् वराह देव घरणी से युक्त होकर वृष पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने घरणी देवी से क्या कहा था वह सब आप हमको बतलाने की कृपा करें । १०५।

२१-श्री वाराह मन्त्राराधन विधि वर्णन

शृणुष्व मुनयः सर्वे कथाम्पुण्या पुरातनीम् ।
 वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं कृते पुण्यतमे युगे । १।
 नारायणाद्रो देवेश निवसन्त क्षमापतिम् ।
 वाराहरूपिण देव घरणी सखिभिवृत्ता । २।
 प्रणम्य परिपप्रच्छ रक्तपद्मायतेक्षणम् । ३।
 आराध्य केन मन्त्रेण भवान्प्रीतो भविष्यति ।
 त मे वद स्व देवेश यः प्रियो भवतः सदा । ४।
 जपता सर्वसम्पत्तिकारक पुनर्पीनदम् ।
 सावभौमत्वदश्चैव कामिना कामद सदा । ५।
 अन्ते यस्त्वत्पदप्राप्तिं ददाति नियमात्मनाम् ।
 एवम्भूत वद प्रीत्यामयिवाराहमानद । ६।
 इ त पृष्ठस्तथा भूम्या प्राह प्रीतिस्मिताननः । ७।

श्री सूत जी ने कहा—हे मुनिगणों ! अब आप सब लोग परम पुरातनी पुण्यमयी कथा का श्रवण कीजिए । पहिले परम पुण्यतम कृत युग में वैवस्वत मन्वन्तर में नारायण नामक पर्वत में निवास करने वाले भूमि के स्वामी वराह रूपधारी देवेश्वर से जिनके नेत्र रक्त-प्रायत और पद्म के तुल्य थे सखियों से परिवृत घरणी देवी ने विनय पूर्वक प्रमाण करके पूछा था । १।२।३। घरणी ने कहा हे भगवन् ! किस मन्त्र के द्वारा आराधित हाकर आप परम होशे ? हे देवेश्वर ! जो आपको सदा परम प्रिय हो उसी मन्त्र को आप मुझे बतला

दीजिए । वह ऐसा मन्त्र होना चाहिए जिसके जाप करने वाले मनुष्यों को वह सम्पत्ति कर देने वाला हो, पुत्र, पौत्रो को देने वाला हो, साध्व-
भोग्य के पद को प्रदान करने वाला हो और जो कामो हों उनकी
सदा कामना के देने वाला हो । नियत भास्मा वाले पुरुषों को अष्ट
समय सम्प्राप्त होने पर आपके ही चरणों के पद की प्राप्ति प्रदान करने
वाला हो । हे मान के प्रदान करने वाले । हे वाराह देव । मुझ पर
परम प्रीति करके इस प्रकार के मन्त्र को वनसाइये । ४।५।६। श्री मूल
जी ने कहा—इस रीति से धरणी देवी के द्वारा पूछे गये भगवान् वाराह
देव ने प्रीति से स्मितयुक्त मुख वाले होते हुए कहा था । ७।

शृणु देवि परं गुह्यं सद्यः सम्पत्तिकारकम् ।
भूमिदं पुत्रदं गोप्यमप्रकाश्यंकदाचन । ८।
किं च शुश्रूषवे धात्र्य भक्त्या नियतात्मने । ९।
ॐ नमः श्रीवाराहाय धरण्युद्धरणाय च ।
वह्निजायासमायुक्तः सदाजप्योऽमुमुक्षुभिः । १०।
अयं मन्त्रो धरादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
ऋषिः सङ्कर्षणः प्रोषतोदेवता त्वहमेव हि । ११।
छन्दः पटुक्तिः ममाश्रयाता श्रीबीजं समुदाहृतम् ।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं सद्गुरोर्लब्धतन्मनुः । १२।
जुहुयात्पायसाग्रम्रैलौद्रसपिः समन्वितम् ।
अध्यानाभ्यवश्यामिमनः शुद्धिप्रदायकम् । १३।

श्री वाराह भगवान् ने कहा—हे देवि । परम गोपनीय, सुरक्षित
ही सम्पत्ति के कर देने वाले, भूमि प्रदान करने वाले, पुत्र देने वाले
मन्त्र का अथवा वरा । किन्तु यह प्राप्त करने ही गुप्त रखने के योग्य है और
किसी भी मन्त्र के प्रकाशित करने के योग्य नहीं है । जो परम श्रद्धा
से श्रवण करने वाला, नियत भास्मा वाला और प्रसन्न हो उगो को
धनमाना चाहिये । ८।९। १०। श्री मूल की प्राप्ति करने के इच्छुक हो कहें

परम समायुक्त होकर सदा—“ॐ नमो श्री वराहाय धरण्युद्धरणाय वह्नि जाय”—इस मन्त्र का जाप करना चाहिए । हे घरादेवि ! यह मन्त्र सब तरह की सिद्धियों का प्रदान करने वाला इस मन्त्र के श्रुति सङ्कपण कहे गये हैं और इसका देवता मैं ही हूँ । इसका छन्द पवित है और श्री इसका बीज है । इस मन्त्र का चार लाख जाप करना चाहिए और किसी सद्गुरु से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करे । १०।११। १२। शहद और घृत से युक्त पायसाक्ष (खीर) का हवन करे । इसके उपरान्त मैं इसका ध्यान बतलाता हूँ जो मन की शुद्धि का प्रदायक होता है । १३।

शुद्धिस्फटिकशलाभा रक्तपद्मदलेक्षणम् ।
 वराहवदनं सौम्यञ्चतुर्बाहुं किरीटिनम् । १४।
 श्रीवत्सवक्षसं चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम् ।
 वामोरुस्थितयायुक्तं त्वया मां सागराम्बरे । १५।
 रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम् ।
 श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषमूर्त्यञ्जसंस्थितम् । १६।
 एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सदा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
 सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षञ्चाऽग्रे व्रजेद् ध्रुवम् । १७।
 प्रोक्तंमया ते धरणि यत्पृष्टोऽहत्त्वयाऽमले ।
 अतः किन्ते व्यर्वासितम्ब्रूहि तद्विमलानने । १८।
 एतच्छ्रुत्वा ततो भूमिः पप्रच्छ पुनरेव तम् ।
 केन वाऽनुष्ठितं देव पुरा प्राप्तम्फलञ्च किम् । १९।
 इति पृष्ठः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवीदिदम् ।
 पुरा कृतयुगे देवि धर्मो नाम मनुर्महान् । २०।
 ब्रह्मणोऽमुं मनुं लब्ध्वा जप्त्वाऽस्मिन्धरणीधरे ।
 माञ्च दृष्ट्वा वरं लब्ध्वा प्राप्तोऽभून्मामकम्पदम् । २१।

विशुद्ध स्फटिक के शैल की आभा के सदृश आभा से युक्त, रक्त कमल के दल के तुल्य नेत्रों वाले, वराह के मुख के समान मुख वाले, चार बाहुओं से सम्पन्न, किरीट धारी, परम सौम्य वक्षःस्थल में श्रीवराह का चिन्ह धारण करने वाले, चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, अभय और अम्बुज ग्रहण किये हुए, वाम ऊरु पर स्थित तुम से युक्त सागरा-म्बर में विराजमान, पीताम्बरधारी, रत्न वस्त्रों के आभरणों से भूषित, श्री कूर्म के पृष्ठ के मध्य में स्थित, शेष की मूर्ति एवं अञ्ज पर समवस्थित मेरा इस प्रकार से ध्यान करके सदा ही एक माला अष्टोत्तर दशत का जप करना चाहिए । ऐसा करने वाला अनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं का प्राप्त कर सता है और अन्त समय में मोक्ष को प्राप्त हो जाया करता है । यह निश्चित ही है । हे धर्म ! धरणि ! धारणे जो मुझसे यह पूछा है वह मैंने तुम को बतला दिया है । हे विमलानने ! इसलिए अब तुमने क्या निश्चय किया है यह मुझे बतला दो । १४।१५। १६।१७।१८। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके इसके पश्चात् उस भूमि ने फिर भी उनसे पूछा था—हे देव ! इसका अनुष्ठान किसने किया था और पहिले इसका क्या फल प्राप्त किया था ? इस भाँति पुनः पूछे गये देव वर श्री वराह ने यह कहा था—हे देवि ! पहिले घृणयुग में धर्म नाम वाला एक महान् मनुष्य था । उसने ब्रह्माजी से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करके इस धरणी धर पर उसका जाप किया था । इसका फल उसे यह मिला था कि उसने मेरा दर्शन प्राप्त किया, वरदान प्राप्त किया और अन्त में वह मेरे ही स्थान को प्राप्त हो गया था । १९।२०।२१।

इन्द्रोदुर्वाससः क्षापात्पुराअष्टस्त्रिविष्टपात् ।

अनेनेष्ट्वाऽथ मां देवि पुनःप्राप्तस्त्रिविष्टपम् । २२।

अग्रेऽपि मुनयो भूमे ! जप्त्वा प्राप्ताः पराङ्गतिम् ।

अनन्तः पद्मगाधोऽथ ह्यमुं सङ्ख्याऽय कश्यपात् । २३।

श्वेतद्वीपे जपित्वैव बभूव धरणीधरः ।

तस्माज्जाप्यः सदा चेह मनुष्यैश्च घरायिभिः । २४।

एतच्छ्रुत्वाऽय सुप्रोता पुनः प्राह घराधरम् । २५।

वेङ्कटाख्येमहाशैले श्रीनिवासोजगत्पतिः ।

कदाह्यामातिदेवेश श्रीभूमिसहितोऽमलः । २६।

कथं कल्पान्तरस्यायी भविष्यति जनार्दनः ।

एतद्ग्रूहि वराहात्मन्महत्कीर्तुहर्ल मम । २७।

पुरातन समय में एक बार इन्द्र दुर्वाणा ऋषि के शप से त्रिनिष्ठप (स्वर्गासन) से भ्रष्ट हो गया था। हे देवि ! इस इन्द्र ने यहाँ पर मेरा यजन करके पुनः अपने स्वर्गासन को प्राप्त कर लिया था। हे भूमे ! अन्य भी मुनिगणों ने इस मेरे मन्त्र का जाप करके परम गति को प्राप्त किया है। यह पद्मगो का अधीश्वर धनन्त ने भी इस मन्त्र की दीक्षा कक्षप ऋषि से ग्रहण की थी और श्वेतद्वीप में उसने इसका जप किया था और धरणीधर हो गया था। इसलिए इस मन्त्र का सदा ही जाप करना चाहिए। जो मनुष्य घरा की चाहना करने वाले हैं उनको यहाँ अवश्य अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए इस मन्त्र का जप करना चाहिए। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके वह धरणी पर नाधिक प्रसन्न हुई थी और वह फिर घरा के धारण करने वाले प्रभु से बोली—धरणी ने कहा—हे देवेश ! अगत् के स्वामी श्री निवास श्रीभूमि के सहित अमल स्वरूप वाले वेङ्कटर नाम धारी शैल पर कब आया करते हैं और कब वहाँ पर कल्पान्तर पर्यन्त स्थायी भगवान् जनार्दन होंगे ? हे वराह स्वरूपधारी प्रभो ! आप मुझे यह बतलाइये मेरे हृदय में इसकी जानने के लिए महान् कीर्तुहर्ल है । २४। २५। २६। २७।

२२-रामानुजाख्यद्विजवृत्तान्तवर्णन

भोभोस्तपोधनाः सर्वनैमिषारण्यवासिनः ।
 आकाशगङ्गातीर्थस्यमाहात्म्यप्रददाम्यहम् ॥१॥
 आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
 रामानुज इतिख्यातोविष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥२॥
 तपश्चकार धर्मात्मावैखानसमतेस्थितः ।
 ग्रीष्मेपश्चाग्निमध्येस्थोविष्णुध्यानपरायणः ॥३॥
 जपस्रष्टाक्षर मन्त्र ध्यायन्हृदि जनार्दनम् ।
 वर्षास्वाकाशगो नित्य हेमन्तेषु जलेशयः ॥४॥
 सर्वभूतहितोदान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
 वर्षाणि कतिचित्सोऽयजीर्णपर्णाशनोभवत् ॥५॥
 कञ्चित्काल जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ॥६॥
 अथ तत्तपना तुष्टोभगवानम्भवत्तत्सलः ।
 प्रत्यक्षतामगात्तस्य सङ्ख्यचक्रगदाधरः ॥७॥

महामहर्षि श्री सूत जी ने कहा—हे सब नैमिषारण्य के निवास करने वाले तपोधन तपस्वियो ! अब मैं आकाश गङ्गा नाम वाले तीर्थ का माहात्म्य आप लोगों को बतलाता हूँ ॥१॥ आकाश की गंगा के निकट में आपूर्ण शास्त्रों के अर्थों का पारगामी महान् विद्वान् रामानुज इस नाम से विख्यात द्विज ने तप किया था । यह विप्र परम विष्णु का भक्त था और जितेन्द्रिय था । यह धर्मात्मा वैखानस मत में स्थित रहा करता था । ग्रीष्म ऋतु में भी पाँच अग्नियों के मध्य में तपस्थित होकर यह भगवान् विष्णु के ध्यान में परायण रहा करता था । “श्री कृष्ण. पारण मय”—इस पाठ अक्षरों वाले मन्त्र का जप करता हुआ हुआ अपने हृदय में जनार्दन प्रभु का ध्यान किया करता था । वर्षा के बाल में नित्य ही आकाश में गमन करने वाला रहता

था भीर हेमन्त ऋतु में जल में स्थित होकर तपश्चर्या किया करता था । यह समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला, परम दान्त भीर सब प्रकार के द्वन्द्वों से रहित था । इस रीति से वह कितने ही वर्ष तक जीणों पत्तों के भक्षण करने वाला रहा था । कुछ समय तक केवल जल का ही आहार कर के रहा था कुछ वर्षों तक सिर्फ वायु का ही भक्षण करके इसने तप किया था । इसके अनन्तर भक्तों पर वात्सल्य रखने वाले प्रभु इस पर परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गये थे । फिर वे शङ्ख भीर चक्र के धारण करने वाले भगवान् ने प्रत्यक्ष होकर उसकी दर्शन प्रदान किया था । २-७।

विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ।
 विततानन्दनाऽऽरूढदध्नचामरशोभितः । ८।
 हारकेयूरमुकुटः कटकादिविभूषितः ।
 विष्वक्सेनसुगन्दादिकिङ्कुरः परिवारितः । ९।
 वीणावेणुमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः ।
 गीयमानः सुनिभः पीताम्बरविराजितः । १०।
 लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघनिभच्छविः ।
 सनकादिमहायोगिसेवितः पार्श्वयोर्द्वयोः । ११।
 मन्दस्मितेन सकलं मोहयन्भुवनत्रयम् ।
 स्वभासा मानयन्सर्वाविक्षोदक्ष विराजयन् । १२।
 सुभवतसुलभो देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः ।
 पुनः सन्निदधे तस्य रामानुजमहामुनेः । १३।
 आविर्भूतं तदा दृष्ट्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम् ।
 पीताम्बरधरं देवं तुष्टिं प्राप महामुनिः । १४।
 भक्त्या परमया युक्तस्तुष्टाव जगदीश्वरम् । १५।

अब रामानुज तपस्वी के समस्त प्रकट होकर दर्शन देने वाले प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है — विकसित कमल के दल के समान उनके परम सुन्दर एवं विशाल नेत्र थे, करोड़ों सूर्यों की प्रभा के तुल्य उनकी प्रभा थी, विनता के पुत्र गरुड पर वे समा रह्य थे और अन्न एवं जल से सुशोभित थे । हार केयूर और मुकुट धारण किये हुए थे । उनके कानों में सुन्दर कटक विराजमान थे । उनके साय में विष्वक्सेन और सुनन्द आदि पार्षद विद्यमान थे । धौला, वेणु, मृदङ्ग प्रभृति वाद्यों के बजाने वाले नारद आदि के द्वारा उनके गुण-गणों का गान किया जा रहा था । सुन्दर विभव से सम्पन्न, पीताम्बर धारण करने वाले थे । जिनके उरः स्थल में लक्ष्मी देवी विराजमान थी । नीलमेघ के तुल्य अग्नि से युक्त थे । उनके दोनों पार्श्व भागों में सनक प्रभृति सद्गान् योगीजन सेवा कर रहे थे । ८९।१०।११। भगवान् मुख पर ऐसी मन्द मुस्कराहट थी जिससे तीनों भुवनो को मोहित कर रहे थे । अपने अङ्ग की दिव्य कान्ति से सभी दिशाओं को प्रकाशपुष्प फरसे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो सर्वत्र विराजमान हो रहे हो । जमा की छान भगवान् वेङ्कटेश देव सुन्दर भक्तों को ही सुलभ होने वाले हैं । इस के अनन्तर वे रामानुज महामुनि के सतिष्ठत में प्राप्त हुए थे । १२।१३। उस महामुनि रामानुज ने उस समय में प्रायस्त प्रकट हुए वृषा के निधि पीताम्बरधारी श्री निवास देव का दर्शन प्राप्त किया तो उसकी अत्यधिक लुब्धि हुई थी और परम भक्ति से युक्त होकर उसने जगदीश्वर प्रभु की स्तुति की थी । १४।१५।

नमो देवाधिदेवाय शङ्खचक्रगदामृते ।
 नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः । १६।
 नमो भवतातिहृष्टे हव्यकव्यस्वरूपिणे ।
 नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे । १७।

नमः परेशाय नमोऽतिभूम्ने नमोऽस्तु सक्ष्मीपतये विधात्रे ।
 नमोऽस्तु सूर्येन्दुविलोचनाय नमो विरिश्वाद्यभिन्दिताय । १८।
 यो नाम जात्यादिविकल्पहीनः समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ।
 समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशकाय । १९।
 वेदान्तवेद्याय रमेध्वराय वृषादिवासाय विधातृपित्रे ।
 नमोनमः सर्वजनातिहारिणे नारायणायाऽमितविक्रमाय । २०।
 नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ।
 भूयोभूयो नमस्तुभ्यं वैष्णवादिनिवासिने । २१।

रामानुज ने कहा—सब भोर चक्र के धारण करने वाले देवों के भी अधिदेव की सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है । नित्य, शुद्ध वैष्णवेश भगवान् आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है । १८। भक्तों की भक्ति के हनन करने वाले, हव्य, बभ्य के स्वरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार है । इस विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहति के करने वाले त्रिमूर्तिधारी आपके लिए नमस्कार है । परेश की नमस्कार है, 'अतिभूमा प्रभु की नमस्कार है और लक्ष्मी के स्वामी विधाता की सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है । सूर्य और चन्द्र के नेत्रों वाले आपके लिए प्रणाम है । ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा अभिषि-
 न्दित आपको मेरा नमस्कार है । १७। १८। जो जाति धाति विकल्पो से रहित है और सभी प्रकार के दोषों से जो वर्जित है उन समस्त संसार के भयों के हृय हरण करने वाले तथा दैत्यों के विनाशकारी भगवान् के लिए मेरा प्रणाम समर्पित है । १९। वेदान्त के द्वारा जानने के योग्य रमादेवों के स्वामी के लिए, वृष आदि पर वाम करने वाले के लिए तथा परमेष्ठी विधाता के लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है । अपरिमित बल, विक्रम वाले तथा समस्त भक्त जनो की भक्ति के हरण करने वाले भगवान् नारायण के लिए मेरा नमस्कार है । शार्ङ्ग-

घारो, वेङ्कट धदि पर निवास करने वाले भगवान् वासुदेव आपके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है । २०।२१।

इतिस्तुत्वावेङ्कटेशंश्रीनिवासंजगद्गुरुम् ।

रामानुजोमुनिस्तूष्णीमास्तेविप्रवरोत्तमः । २२।

श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखा स्तुतस्तस्य महात्मनः ।

अवापपरमंतोषं वेङ्कटाचलनायकः । २३।

अथालिङ्ग्य मुनिं शीरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा ।

बभाषे प्रीतिसंयुक्तोवरंवेन्नियतामिति । २४।

तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्यस्तोत्रेणाऽपिमहामुने ।

नमस्कारेणचप्रीतोवरदोऽहन्तवागतः । २५।

नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय ।

जनार्दन जगद्धाम गोविन्द नरकान्तक । २६।

त्वद्दर्शनात्कृतार्थोऽस्मिन्वेङ्कटाद्रिशिरोमणे ! ।

एवां नमस्यन्ति घर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः । २७।

य न वेत्ति भवोग्रह्मायनवेत्तित्रयीतथा ।

स्वावेक्षिपरमात्मानं किमस्मादधिकं परम् । २८।

वह विप्रवरो मैं परम वरिष्ठ रामानुज मुनि इस प्रकार पि जगत् के गुरु श्रीनिवास भगवान् वेङ्कटेश की स्तुति करके चुप हो गया था । उस महान् आत्मा वाले के द्वारा की गई कानो की परम सुख प्रदान करने वाली स्तुति का श्रवण करके भगवान् वेङ्कटाचल के नायक को परम तोष प्राप्त हुआ था । उग समय में भगवान् शीरि ने अपनी चारो बाहुओं से मुनि का आनिङ्गन करके परम प्रीति से समन्वित होकर 'वरदान माँग लो'—यह बोले थे । आज मैं तुम्हारे इस परमोप तप-श्र्पों से बहुत अधिक सन्तुष्ट हो गया हूँ । हे महामुने ! आपके इस स्तवन के स्तोत्र से भी मुझे परम तोष प्राप्त हुआ है । मैं आपकी नमस्कार से भी अत्यधिक प्रसन्न हो गया हूँ । इस समय मैं आपको वरदान प्रदान करने के

लिए ही यहाँ पर तुम्हारे समीप में समागत हुआ है । १२२-२५। रामानुज ने कहा—हे नारायण ! हे रमा के स्वामिन् ! हे श्री निवास ! आप जगन्मय है । हे जनो की पीडा के भर्दन करने वाले ! आप इस जगत् के धाम है । हे गोविन्द ! आप तो नरकों के भन्त कर देने वाले हैं । १२६। हे वैष्णव पर्वत के शिरोमणि ! मैं तो आपके दर्शन से ही कृतार्थ हो गया हूँ । आपको तो जो घम्मिष्ठ लोग होते हैं वे नमन किया करते हैं क्योंकि आप घम्म के पूर्णतया परिपालन करने वाले हैं । १२७। जिन आपको भव (शिष) नहीं जान पाते हैं—जिन आपके सच्चे स्वरूप को ब्रह्मा नहीं पहिचान सकते हैं तथा वेदत्रयी भी आपको सही स्वरूप में नहीं जान पाती है उन परमात्मा आपको मैं जान सका हूँ—इससे अधिक और क्या बरवान होगा । १२८।

योगिनोर्यं नपश्यन्तिर्यनपश्यन्तिकर्मठाः ।
 पश्यामिपदमात्मानकिमस्मादधिकम्परम् । १२६।
 एतेन च कृतार्थोऽस्मि वैष्णवेश जगत्पते ! ।
 यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपि च । १२७।
 मुक्तिं प्रयान्ति मनुजास्तं पश्यामि जनार्दनम् ।
 त्वत्पादपद्मयुगले निम्नलाभक्तिरस्तु मे । १२८।
 मयि भक्तिर्दृढा तेऽस्तु रामानुजमहामते ! ।
 शृणु चाऽप्यपरं वाक्यमुच्यते ते मया द्विज । १२९।
 मेपसङ्क्रमणोभानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते । १३०।
 पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानं कुर्वन्ति ये जनाः । १३१।
 ते यान्ति परमं धाम पुनरावृत्तिर्वाजितम् ।
 वियद्गङ्गासमीपे त्वं वस रामानुज ! द्विज ! । १३२।

जिन आपको बड़े २ योगीजन भी नहीं देख पाते हैं और जिन आपको बड़े २ कर्मठ लोग नहीं देख सकते हैं उन आपको मैं इस समय

मे साक्षात् आपके दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ—इससे अधिक और क्या वर-
दान होगा । हे जगत् के स्वामिन् ! हे चेन्नूटेश देव ! इतने ही से मैं तो
परम कृतार्थ हो गया हूँ । जिसके शुभ नाम के स्मृति मात्र से ही महान्
पातक करने वाले लोग भी मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं उन प्रभु
को मैं इस समय में ताशात् देख रहा हूँ । मैं तो आपकी सेवा में यही
प्राप्तना कहूँगा कि आपके चरण कमलों में मेरी निम्नल भक्ति हो
जावे । २६।३०।३१। श्री भगवान ने कहा—हे महामति वाले रामानुज !
मुझमें तेरी परम दृढ भक्ति होगी । हे द्विज ! तुम श्रवण करो । मैं एक
दूसरा वाक्य भी तुमसे कहता हूँ—जो मनुष्य भातु के मेष राशि पर
सङ्क्रमण करने पर जबकि पूर्णमासी तिथि के दिन चित्रा नक्षत्र विद्य-
मान हो गंगा में हे द्विज ! स्नान किया करते हैं वे लोग उस परम धाम
को प्राप्त हो जाया करते हैं जहाँ पहुँच कर इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं
होना करती है । हे रामानुज द्विज ! अब तुम विषदुर्गता के समीप में
ही निवास करो । ३२-३५।

एतत्प्रारब्धदेहाप्ते यत्स्वरूपमवाप्स्यसि ।
बहुना किमिहोवतेन विषदुर्गताजने शुभे । २६।
स्नान्तिये वै जनाः सर्वेते वै भागवतोत्तमाः ।
भवन्तिमुनिशार्दूल ! नात्रकार्याविचारणा । ३०।
किलक्षणा भागवता ज्ञायन्ते केन कर्मणा ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कीतूहलपरो यतः ।
लक्ष्म भागवतानां तु शृणुष्व मुनिसत्तम ! । ३०।
वचतुं तेषा प्रभाव तु शक्यते नाज्जदकोटिभिः । ३१।
येहिताः सर्वजन्तूनांगतासूयाविमत्सराः ।
ज्ञानिनोनिः स्पृहाः शान्तास्तेवैभागवतोत्तमाः । ४०।
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते ।
अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः । ४१।

सत्कथाश्रवणो येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ।

मत्पादाम्बुजभक्तायेतेवैभागवतोत्तमाः । ४२।

इस प्रारम्भ देह के अन्त हो जाने पर जिस स्वरूप को तुम प्राप्त करोगे—इस विषय में बहुत अधिक कथन करना व्यर्थ ही है । इस परम शुभ विषयगंगा के जल में जो जन स्नान किया करते हैं वे सभी भागवतो में परम उत्तम होते हैं । हे मुनिशार्ङ्ग ! इस विषय में तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है । ३६।३७। रामानुज ने कहा—भागवतो के क्या लक्षण हुआ करते हैं और वे किस कर्म के द्वारा जाने जाया करते हैं—यह मैं आपके ही श्री मुख से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ और मुझे इसमें बड़ा भारी कौतूहल होता है । भगवान् श्री वेङ्कटेश ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप भागवतो के लक्षण का श्रवण करो । जैसे भागवतो का जो प्रभाव होता है वह तो करोड़ों वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता है । ३८।३९। जो समस्त जीवधारियों की भलाई करने वाले तथा चाक्षुषेय होते हैं—जिनके हृदय में असूया की भावना लेशमात्र भी नहीं रहा करती है—जो मात्सर्य दोष से पूर्णतया रहित हुआ करते हैं, जो बिल्कुल निःस्पृह होते हैं, जो ज्ञान वाले हैं, जो परम शान्त होते हैं वे ही उत्तम कोटि के भागवत हुआ करते हैं । भागवत जन मन, कर्म और वचन से किसी भी प्रकार से दूसरों को पीडा नहीं दिया करते हैं । भागवत जन परिग्रह करने के स्वभाव वाले नहीं होते हैं, ऐसे जो पुण्य होते हैं वही उत्तम श्रेणी के भागवत जन हुआ करते हैं । जिनकी सत्पुरुषों की कथा के श्रवण करने में सात्त्विकी मति होती है और मेरे चरण कमल में जिनकी सुदृढ भक्ति होती है वे ही उत्तम भागवत जन होते हैं । ४०—४२।

मातापित्रोश्च शुश्रूषा कुर्वते ये नरोत्तमाः ।

ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः ।

पूजा दृष्टा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः । ४३।

वर्णिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ।
 परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमाः । ४४।
 सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ।
 योगुणग्राहिणो लोकेतेवै भागवतोत्तमाः । ४५।
 आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ।
 तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु तेवै भागवताः स्मृताः । ४६।
 धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये ।
 तेषां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः । ४७।
 व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ।
 तद्वक्तारि च भक्तायेतेवै भागवतोत्तमाः । ४८।
 ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नराः ।
 तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः । ४९।

जो पुरुषों में गरम श्रेष्ठ अपने माना-गिता की सेवा किया करते हैं और जो सर्वदा देवों के प्रर्चन में रति रखते हैं जो मनुष्य उनकी साधना करने वालों में होते हैं और जो पूजा को देखकर प्रसन्न होते हैं वे भागवतोत्तम हुमा करते हैं । ४३। वर्णों पुरुषों की तथा यतियों की परिचर्या करने में जिनकी रति हुमा करती है और सर्वदा तत्पर रहा करते हैं जो पराई निन्दा नहीं किया करते हैं वे भागवतोत्तम हुमा करते हैं । जो उत्तम नर सभी के हित करने वाले वाक्य बोला करते हैं और जो इस लोक में गुणों के करने वाले होते हैं वे ही पुरुष उत्तम कोटि के भागवत हुमा करते हैं । जो नरोत्तम सदा सभी प्राणियों को अपने ही समान देखा करते हैं और जो शत्रुता रखने वाले तथा मित्रों में तुल्य भावना रखते हैं वे ही भागवत कहे गये हैं । जो धर्मशास्त्र के प्रवक्ता होते हैं और जो सत्य वचनो में रति रखते हैं तथा जो उनकी शुश्रूषा करने वाले हुमा करते हैं वे ही भागवतोत्तम हुमा करते हैं । जो पुराणों की व्याख्या किया करते हैं प्रथवा जो पुराणों का श्रवण किया करते

हैं तथा जो पुराणों के वक्ता पुरुष में भक्ति-भाव रखते हैं वे ही उत्तम भागवत होते हैं । जो गौ और ब्राह्मणों की धुधूपा सदा किया करते हैं और तीर्थाटन करने में तत्पर रहते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं । १४४-४६ ।

अभ्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ।

हरिरामपरये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥५०॥

आरामारोपणरतास्तटाकपरिरक्षकाः ।

कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥५१॥

ये वै तटाककर्तारो देवसन्धानि कुर्वते ।

गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥५२॥

येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहृषिताः ।

रोमाश्वितशरीराश्वतेर्वभागवतोत्तमाः ॥५३॥

तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः ।

तत्काष्ठाङ्कितकर्णं ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥५४॥

तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये ।

तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥५५॥

स्वाश्रमाचारनिरतास्तथैवाऽतिथिपूजकाः ।

ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥५६॥

जो दूसरों का अभ्युदय देखकर उसका हार्दिक अभिनन्दन किया करते हैं तथा जो केवल श्रीहरि के ही नाम में परायण होते हैं वे उत्तम भागवत जन कहे जाते हैं । जो उद्यानों के समारोण करने की रति रखते हैं तथा तटाकों के जो परि रक्षक होते हैं एवं कासार और कुंभों के जो बनवाने वाले होते हैं वे भागवतोत्तम हूमा करते हैं । १५०।५१। जो तटाकों के निर्माण कराने वाले एवं देवालियों को बनवाने वाले होते हैं और गायत्री मन्त्र में जो निरत रहा करते हैं वे ही भाग-

वतोत्तम होते हैं । जो श्री हरि के शुभ नामों का अभिनन्दन किया करते हैं और भगवन्नाम का श्रवण कर जो ग्रन्थन्त हर्षित होते हैं एवं श्रवण करके और उच्चारण करके जिनके अङ्ग पुलकित हो जाया करते हैं वे ही उत्तम भागवत हुमा करते हैं । जो तुलसी के वन की देखकर नमस्कार किया करते हैं और तुलसी के काष्ठ से जिनके कर्ण अङ्कित रहते हैं वे भागवतोत्तम होते हैं । जो तुलसी की मन्थ का घ्राण करके परम सन्तोष प्राप्त किया करते हैं जो तुलसी के मूल की मृत्तिका को मस्तक पर धारण किया करते हैं वे ही उत्तम भागवत हुमा करते हैं जो अपने आश्रम और आचार से निरत रहते हैं तथा सर्वदा प्रति-यियों की पूजा एवं सत्कृति किया करते हैं और जो वेदों के अर्थों को बोला करते हैं वे ही उत्तम श्रीछी के भागवत हुमा करते हैं । ५२-५६।

विदितानि च शास्त्राणि परार्थप्रवदन्ति ये ।

सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः । ५७।

पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये ।

एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः । ५८।

गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ।

मदर्यं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः । ५९।

मन्मानसाश्च मदभक्ता ये मदभजनलोलुपाः ।

मन्नामस्मरणसक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः । ६०।

बहुनाऽव किमुक्तेन संक्षेपात् श्रवीम्यहम् ।

सद्गुणायप्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः । ६१।

एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।

ममाऽपि गदितुं शक्या नाऽब्दकोटिघातैरपि । ६२।

रामानुज ! महाभाग ! मदभक्तानां च लक्षणम् ।

मयिभक्तेत्वयिप्रीत्यायुक्तकिलमहामते । ६३।

एवं चः कथितं विप्राः शौनकाद्यामहोजसः ।

वृषाद्रीचवियद्वग्ज्जातीर्थं माहात्म्यमुत्तमम् ॥६४॥

जो हमरो को अपने जाने हुए शास्त्रों को बतलाया करते हैं और जो सर्वत्र गुणों का ही सेवन करने वाले होते हैं वे ही उत्तम भागवत पुरुष हुमा करते हैं ॥५७॥ पानीय के दान करने में जो निरत रहते हैं तथा जो अन्न के दान देने में रति रखने वाले हैं एवं एकादशी व्रत में जो तत्पर रहा करते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं ॥५८॥ जो गोघो के दान करने में रति रखते हैं तथा जो कन्याघो के दान कराने में रत रहा करते हैं और सभी, कर्म जो भी कुछ थे किया करते हैं वे सब मेरे ही लिए करते हैं अर्थात् मुझे ही अर्पण कर दिया करते हैं वे उत्तम भागवत जन कहे जाया करते हैं ॥५९॥ जो सर्वदा मुझ में ही अपना मन लगाये रहने वाले हैं, मेरे ही परम भक्त हैं तथा मेरे ही भजन करने में लोभुषा हैं एवं मेरे नामों के स्मरण करने में आसक्त रहते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं । यहाँ इस विषय में अत्यधिक कहा कहूँ, मैं संक्षेप में तुमको बतलाता हूँ जो सर्वदा सद्गुणों के प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त रहा करते हैं वे ही उत्तम कोटि के भागवत हुमा करते हैं । हे विप्रगण ! यहाँ पर मैंने कुछ भागवतों के विषय में संक्षेप बतला दिये हैं । भागवतों के पूरे लक्षण तो मैं भा संकट करूँ क्योंकि संक्षेप करने पर भी नदी मुक्तसे भी बतलाये जा सकते हैं ॥६०॥ ६१॥ ६२॥ हे रामानुज ! हे महामाया ! मेरे मनो के लक्षण असीम एवं अपार हैं । हे महामते ! मेरे भक्त तुममें मेरी अत्यधिक प्रीति है ॥६३॥ श्री सूतजी कहा—हे विप्रगण ! हे शौनव आदि महान धोखे वाले ! मैंने आप लोगों को वृषादि में वियद्वग्गा का जो तीर्थ है उसका उत्तम माहात्म्य बतला दिया है ॥६४॥

२३-श्रीवेङ्कटाचल सर्वपुण्यतीर्थाधारत्ववर्णन

वेङ्कटाद्रो महापुण्ये सर्वसङ्कटनाशने ।
 सन्ति वै कति तीर्थानि सूतपोराणिकोत्तम ! ॥१॥
 तेषां संख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानि तत्र वै ।
 तत्राप्यत्यन्तमुख्यानि वद मे मुनिसत्तम ॥२॥
 सद्धर्मरतिदाय्यत्र कति मुख्यानि तानि च ।
 कानि ज्ञानप्रदाय्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च ॥३॥
 मुक्तिप्रदानि काव्यत्र तानि मे वद सुव्रत ! ॥४॥
 पट्पट्टिकोटितीर्थानि पुण्याण्यत्र नगोत्तमे ।
 अष्टोत्तरसहस्राणि तेषु मुख्यानि सुव्रत ! ॥५॥
 सद्धर्मरतिदाय्यत्र सन्ति चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
 सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्च तानि च ॥६॥
 भक्तिवैराग्यदाय्यत्र पट्टिरष्टोत्तरे शते ॥७॥

ऋषिगण ने कहा—हे पोराणिकों में सर्वोत्तम ! हे सूत जी !
 समस्त सङ्कटों के नाश करने वाले, महान् पुण्य मय उस वेङ्कट पर्वत
 में कितने तीर्थ हैं ? उन तीर्थों की संख्या आप हमको बतलाइये । उन
 समस्त तीर्थों में भी किनने तीर्थ प्रमुख कहे जाते हैं और उन प्रमुखों में
 भी अत्यन्त मुख्य कौन से हैं ? हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको आप कृपया हमको
 बतलाइये ॥१॥ सद्धर्म में रति प्रदान कराने वाले उनमें कौन से परम
 प्रमुख तीर्थ हैं और कौन-से ऐसे परम प्रमुख हैं जो केवल ज्ञान के ही
 प्रदान करने वाले हैं तथा वैराग्य की भावना को उत्पन्न करा देने वाले
 हैं ? ऐसे कितने प्रधान तीर्थ हैं जो मानवों के हृदय में भक्ति की भावना
 पैदा करा देते हैं ? हे सुव्रत ! कौन से ऐसे तीर्थ हैं जो मुक्ति के प्रदान
 करने वाले हैं ? आप हमको अब यह बतलाइये ॥३॥ श्री सूतजी ने
 कहा—हे सुव्रत ! इस उत्तम अक्षय में विश्वास ठ बरोह परम पुण्यमय

तीर्थ हैं । उन सब में एक सहस्र आठ परम मुख्य तीर्थ हैं । इस पर्वत में एक सौ आठ तो ऐसे तीर्थ हैं जो सद्धर्म में रति उत्पन्न कर देने वाले हैं । ये उन एक सहस्रो से भी पृथक् परम मुख्य हैं । जो भक्ति प्रीति वरामय के प्रदान करने वाले हैं वे एक सौ साठ तीर्थ हैं । १५।६।७।

मुक्तिदान्यत्र षट् चैववेङ्कटाचलमूर्धनि ।
 स्वामिपुष्करिणी चैव विषदगङ्गा ततः परम् । ८।
 पश्चात्पापविनाश च पाण्डुतीर्थमतः परम् ।
 कुमारधारिकातीर्थं तुम्बोस्तीर्थमतः परम् । ९।
 कुम्भमासे पीणमास्या मघायोगो यदा भवेत् ।
 कुमारधारिका याति सर्वतीर्थानि हे द्विजाः । १०।
 तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफल लभेत् ।
 मुक्तिश्च भविता तत्र नात्र कार्या विचारणा । ११।
 अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः ।
 उत्तराकल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि । १२।
 तुम्बोस्तीर्थं मोनसस्यं रवी तीर्थानि सर्वशः ।
 अपराह्णे समायान्ति तत्र स्नातो न जायते । १३।
 मौञ्जीबन्ध विवाह च कारयेद्द्रव्यदानतः ।
 मेघसङ्क्रमणे भानौ चित्रानक्षत्रसयुते । १४।

इस वेङ्कटाचल की शिखर पर छँ ऐसे तीर्थ हैं जो केवल मुक्ति के प्रदान करा देने वाले हैं । वे छँ तीर्थ ये हैं—एक उनमें स्वामी पुष्करिणी तीर्थ है । इसके पश्चात् विषदगङ्गा तीर्थ है । फिर पाप विनाश नामक एक तीर्थ है । इसके आगे एक पाण्डु तीर्थ है । फिर कुमार धारिका नाम वाला तीर्थ है और उनके बाद है तुम्बो तीर्थ है । कुम्भ मास में पीणमासी तिथि में जिस में मघा नक्षत्र का योग आकर पड़े उस अवसर पर सभी तीर्थ हे द्विज गण ! कुमारधारिका तीर्थ में जाया करते हैं । ८।९।१०। हे विप्रेन्द्रो ! उस अवसर पर

जो भी वहाँ पर स्नान किया करता वह राजसूय यज्ञ करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है । वहाँ पर मुक्ति तो अवश्य ही हो जाया करती है—इसमें कुछ भी विचारणा करने की आवश्यकता नहीं है । १११। हे द्विज कृन्द ! उत्तर फाल्गुनी मघात्र से पुष्य शुक्ल के पर्व दिन में वहाँ पर दक्षिणा के साथ भक्ष्य के दान कर देने की विधि है । तुम्हो नामक तीर्थ में भीन राशि पर जब सूर्य सस्थित होते हैं तब समस्त तीर्थ सभी ओर से अपराह्न के समय में वहाँ पर समागत होते हैं । वहाँ पर उस समय में जो स्नान करता है वह फिर जन्म नहीं लिया करता है । मौज्जी वन्य ओर विवाह द्रव्य क दान की देकर जो वहाँ करता है । जब कि मेघ राशि पर सूर्य का सञ्चरण हो ओर बिज मघात्र से सप्त हो, इससे भी पुनर्जन्म नहीं होता है । १२। १३। १४।

पोणमास्यां समायाग्नि विपद्गङ्गां तपेय च ।

तत्र स्नात्वा नरः सद्यः सततमुपलभेत् । १५।

सुपर्णं तत्र दातव्यं वर्यादानं विदोषतः ।

मृषभस्ये रथो विप्रा द्वादश्यां हरिषासरे । १६।

शुक्ले याज्यम कृष्णे वा भीमेनाश्वि सगन्धिते ।

पाण्डुतीर्थं समायाग्नि गङ्गादीनि जगत्त्रये । १७।

तत्र स्नात्वा च गोदत्त्वामुच्यते प्रतिवर्षकात् ।

आश्विपुष्यशुक्लपक्षे सप्तम्यामानुषासरे । १८।

उत्तराषाडशुक्लायां तथा पापविनाशनम् ।

उत्तराभाद्रपदायां द्वादश्यां वा समागतः । १९।

दातव्यमार्गमा दत्त्वा स्नात्वा षविधिपूर्वकम् ।

मुख्यतस्तर्पणार्थं यन्मरोटिगगादभयेः । २०।

धनुर्मासं गिरे पक्षे द्वादश्यामरणोदये ।

आयाग्निगर्भं गोपीनिस्सामिदुपरिणात्रते । २१।

पौर्णमासी तिथि के दिन समस्त तीर्थ विदग्धज्ञा में आया करते हैं। उस अवसर पर वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य तुरन्त ही सौ कृतघ्नो के करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। वहाँ पर सुवर्ण का दान और विशेष कर कन्या का दान करना चाहिए। वृष राशि पर सूर्य के समायात होने पर हे विप्रो ! द्वादशी तिथि में हरिवासर में चाहे वह शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो किन्तु भीम वार से समन्वित होना चाहिए। उस अवसर जगन्नाथ में गङ्गा आदि समस्त तीर्थ पाण्डु तीर्थ में आया करते हैं। उस पर वहाँ स्नान करके और गौ का दान करके भानव प्रति धर्मिक से मुक्त हो जाया करता है। अश्वयुक् शुक्ल पक्ष में सप्तमी तिथि तथा रविवार में जबकि उत्तराषाढा नक्षत्र से युक्त हो पाप विनाशन की भी उसी प्रकार से सब तीर्थ आया करते हैं। अथवा उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र से युक्त द्वादशी में समागत होवे। वहाँ पर शालग्राम शिला का दान करके तथा विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य सैकड़ों करोड़ जन्मों में किये हुए सब प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है। धनुर्मास में, शुक्ल पक्ष में, द्वादशी तिथि में, अश्लेषा के समय में वहाँ पर सम्पूर्ण तीर्थ पाते हैं और उग स्वामि पुष्करिणी के जल में आकर एवमित्त हुआ करते हैं। ११-२१।

तत्र स्नात्वा नरः सद्योमुक्तिमेति न संशयः ।
 यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवार्जितं पुरा । २२।
 तस्य स्नानं भवेद्विप्रा नाग्यस्य त्वकृतात्मनः ।
 विभवानुगुणं दानं कार्यं तत्र यथाविधि । २३।
 शालिग्रामशिलादानं वा दद्याच्च विशेषतः । २४।
 ये शृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम् ।
 ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि । २५।
 यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम् ।
 मुहूर्तं वातदर्शं वाक्षणावाविष्णुसत्कथाम् ।

यः शृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि ।२६।
यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ।
सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ।२७।
कलो युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ।
नाऽस्ति धर्मः परः पुंसां नाऽस्तिभुक्तिप्रदंपरम् ।२८।

उस अक्षर पर उस तीर्थ में स्नान करके तुरन्त ही मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जिसके पहिले सहस्रो जन्मों में पुण्य ही अर्जित किया हुआ हो । हे विप्रो ! उभी का वही पर स्नान हुआ करना है और अन्य अकृतारणा का स्नान कभी नहीं हो सकता है । वही पर अपने वैभव के अनुसार यथाविधि दान करना चाहिए ।२२।२३। शालग्राम की शिला का दान और विशेष रूप से गो का दान वहाँ देवे ।२४। जो लोग भगवान् विष्णु की परम-प्रीति कथा का श्रवण किया करते हैं । एक मुठ्ठी मात्र, इससे भी आधे समय तक अथवा सम मात्र भी जो श्री विष्णु की स्तुति का सुनता है और सदा इस भुवन पावनी कथा के श्रवण करने में अमर्याद रहता है तथा भक्ति से एक क्षण भी सुन लेता है तो उस मनुष्य की कभी दुर्गति नहीं हुआ करती है ।२५। जो विष्णु भगवान् की सेवा ही भुवन पावनी कथा को सुनते हैं वे इस मनुष्य लोक में विष्णु के भक्त हुआ करते हैं ।२६। जो फल सभी यज्ञों के करने में होता है और जो पुण्य-फल सभी प्रकार के दानों के देने में होता है वही पुण्य-फल मनुष्य एक ही बार पुराणों के श्रवण करने पर प्राप्त कर लिया करता है । विशेष करके इस कमियुग में पुराण श्रवण के बिना पुरुषों का परम धर्म है ही नहीं जो कि मुक्ति के जैसे परम पद का प्रदान करने वाला होता है ।२७।२८।

पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसङ्कीर्तनं परम् ।
उभे एव मनुष्याणां पुण्यद्रुममहाफले ।२९।

समाप्ति पर्यन्त उसे किसी को भी नमस्कार नहीं करना चाहिए चाहे भले ही वहाँ गुरुदेव ही क्यों न उपस्थित हो गये हों ॥३०॥३१॥३२॥ ॥३३॥३४॥ सुधी पुरुष का कर्त्तव्य है कि जो स्थल दुर्जनो से समाकीर्ण हो तथा दूदो और आपदो से समावृत हो एव ओ छूत फोटा का घर हो वहाँ पर कभी भी भूल कर पुराणो की परम पुण्यमयी कथा को न पढ़े ॥३५॥

मुष्णामे मुजनाकीर्णं सुक्षेत्रे देवतालये ।
पुण्ये वाऽथ नदीतीरे च देतुपुण्यकथासुधीः ॥३६॥
अद्वामक्तिससायुक्ता नाऽप्यकार्येषु लालसाः ।
चाग्यताः शुचयोऽभ्यग्रा श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥३७॥
अभक्ष्या ये कथा पुण्या शृण्वन्ति मनुजाधमाः ।
तेषां पुण्यफल नाऽस्ति दुःख जन्मनि जन्मनि ॥३८॥
पुराणं ये तु सम्पूज्यमान्मूलार्थस्वायनैः ।
शृण्वन्ति च कथा भक्त्यानन्दरिद्रानपापिनः ॥३९॥
कथाया कथ्यमानायायेगच्छन्त्यन्यतो नराः ।
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥४०॥
सोऽप्लीवमस्तका ये च कथा शृण्वन्ति पावनीम् ।
ते बालका प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥४१॥
ताम्बूल भक्षयन्तो ये कथा शृण्वन्ति पावनीम् ।
श्रविष्ठाभक्षयन्त्येते नरके च पतन्ति हि ॥४२॥

जो अति सुन्दर ग्राम हो और जो स्थल मुजन पुरुषो से समाकीर्ण हो, सुन्दर क्षेत्र या देवालय हो यथा कोई परम पुण्य नदी का तट हो वही पुराणो की पुण्य कथा को कहना चाहिए । जो अन्न पचने वाले श्रोता गण थोड़ा एवं भक्ति से समावृत्त हो और जिनकी लाल भ्रष्ट सासारिक बाणों से नहीं होवे, वाग्वत (मौन या कम बोलने वाले), शुचिता से पूर्ण, व्यपता से रहित होते हैं वे परम पुण्य के

मागी हुषा करते हैं । ३६।३७। जो प्रथम मनुष्य बिना ही भक्ति की भावना के पुण्य कथा का श्रवण किया करते हैं उनको कोई भी पुण्य फल नहीं हुआ करता है और जन्म-जन्म में दुःख ही होता है । ३८। जो ताम्बूल आदि उचित प्रार्थना के उपचारों के द्वारा पुराण की मन्त्री भाँति पूजा किया करते हैं और फिर भक्ति पूर्वक उनकी कथा का श्रवण करते हैं वे कभी दरिद्र एवं पापी नहीं होते हैं । कथा के नश्यमान होने पर धर्मात् धारम्भ हो जाने पर जो मनुष्य कहीं-उत्ते छोड़ कर अश्वत्थते जाया करते हैं उनके भोगान्तर में दारार्थ और सम्पत्तियाँ विनष्ट हो जाया करती हैं । जो मरुतक पर उष्णीष (पयस्वी आदि) धारण किये हुए पावनी कथा का श्रवण करते हैं वे महाभूत बालक महात् पापी और मनुष्यों में परम अथम हुआ करते हैं । ३९-४१। ताम्बूल का भक्षण करते हुए जो पावनी कथा को सुनते हैं वे कुलो की विद्या का भक्षण करते हैं और नरक में जाकर गिरा करते हैं । ४२।

ये च तुङ्गासनाह्विताः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ।

अक्षय्याभरकाम्भुवःवा ते भवन्त्येव यावसाः । ४३।

ये च वीरासनाह्विता ये च सिंहासनस्थिताः ।

शृण्वन्ति सत्कथां तैव भवन्त्यजुनपादपः । ४४।

असम्प्रणम्य शृण्वन्तो विपवृक्षा भवन्ति हि ।

तथा शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगराहिते । ४५।

यः शृणोति कथां वक्तुः समानासमर्त्तस्थितः ।

गुस्तत्पसर्मपापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत् । ४६।

ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथां प्रापहारिणाम् ।

ते वं जननमशर्त्तमर्त्याः शनकाश्च भवन्ति हि । ४७।

कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुष्टतरम् ।

ते गदंभाः प्रजायन्ते कृकसास्तास्ततः परम् । ४८।

कदाचिदपि ये पुण्या नशृण्वन्तिक्रयानरा. - ।

ते भुवत्वानरकान्घोरान्भवन्तिवनसूकराः । ४६।

जो मानी पुरुष ऊँचे किसी आसन पर बिराजमान होकर परम धार्मिक कथा का श्रवण किया करते हैं वे असत्य नरकों को भोगकर मृत्यु में मायस (कोमल) की योगिनी प्राप्त किया करते हैं । ४६। जो बीरासन पर समाच्छ्रित हैं या सिंहासन पर बैठकर सरस्वती का श्रवण किया करते हैं वे प्रजुन पादय होते हैं । जो कथा को प्रणाम, न करके ही श्रवण करते हैं वे दूसरे जन्म में किसी विष के वृक्ष होकर उत्पन्न होते हैं । जो शयन करते हुए ही कथा को सुनते, रहा करते हैं वे प्रजगर की योगिनी प्राप्त करते हैं । जो यत्ना के समान आसन पर ही संस्थित होकर कथा सुना करते हैं उनको गुरुतुल्य के नमन करने के समान ही पाप होता है और वे नरकगामी हुमा करते हैं जो पुराणों के ज्ञाता पुरुष की निन्दा किया करते हैं तथा पापों के हरण करने वाली सरस्वती की निन्दा किया करते हैं वे मनुष्य भी जन्मों तक सुनते हुमा करते हैं । कथा के कीर्त्यमान होने पर अर्थात् कथा के कहे जाने पर दुष्टतर कहा करते हैं वे पहिले तो गधे की योगिनी प्राप्त करते हैं और फिर कुकलास होते हैं । जो नर कभी भी पुण्य कथा का श्रवण नहीं किया करते हैं वे घोर नरकों को भोग कर मृत्यु में वन के (जङ्गली) सूकर हुमा करते हैं । ४४—४६।

कथाया कीर्त्यमानायां विघ्न कुर्वन्ति ये नराः ।

कोट्यब्दं नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः । ४७।

ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानानरोत्तमाः ।

अशृण्वन्तोऽपि तेयान्तिशाश्वतपदमव्ययम् । ४८।

ये श्रावयन्ति मनुजाः पुण्यापीराणिकीकथाम् ।

कलकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे । ४९।

आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ।

कम्बलाजिनवाससि तथामञ्चकमेव वा । ५०।

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
 स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥५४॥
 पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवं वरम् ।
 भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्तेभवन्तिभवेभवे ॥५५॥
 ये महापातकयुक्ता ह्युपपातकिनश्च ये ।
 पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमम्पदम् ॥५६॥
 वेङ्कटाद्रिस्तु माहात्म्यंश्रुत्वातच्छ्रयस्ततः ।
 व्यासप्रसादसम्पन्नं सूतंपौराणिकोत्तमम् ।
 पूजयित्वा यथान्यायं महर्षंभुलं गताः ॥५७॥

पौराणिक कथा के कोट्यं मान होने पर जो मनुष्य उसमें विघ्न उत्पन्न किया करते हैं वे एक करोड़ वर्षों तक नरकों की यातनाओं को भोगकर मग्न में ग्राम सूकर की योनि में जन्म लिया करते हैं । जो उत्तम कर कीर्त्यमान कथा का अनुमोदन किया करते हैं वे कथा का श्रवण न करते हुए भी अथर्व शास्त्र पद को प्राप्त किया करते हैं । जो मनुष्य परम पुण्यमयी पौराणिकी कथा का श्रवण कराया करते हैं वे ब्रह्मा के पद पर जो साधु एवं परमोत्तम है सतकोटि कल्पों तक स्थित रहते हैं । जो मनुष्य पुराणों के शास्त्रा विद्वान के लिए प्रासन के वास्ते कम्बल, अजिन और चक्र समर्पित किया करते हैं तथा भस्त्रक ही दान में देते हैं वे स्वर्गलोक की प्राप्ति कर यथेप्सित भोगों के सुख का उपभोग करके तथा ब्रह्मादि लोकों में स्थित होकर फिर निरामय पद को प्राप्त किया करते हैं । ॥५०—५४॥ जो पुराण ग्रंथ के लिए नूतन एवं परमोत्तम सूत्र प्रदान किया करते हैं वे जन्म-जन्म में भोगी और ज्ञान से सुसम्पन्न हुमा करते हैं । जो महा पातकों से युक्त होते हैं तथा जो उपपातकी हुमा करते हैं वे केवल पुराणों के श्रवण करने ही से परम पद की प्राप्ति कर लिया करते हैं ॥५५—५६॥ इसके अनन्तर वे समस्त श्रुतिगण वेङ्कटाद्रि के माहात्म्य का श्रवण करके फिर श्री व्यासी देव जी के प्रसाद से सम्पन्न

श्री पौराणिकों में परम श्रेष्ठ सूतजी का उन सबने पूजन किया था जैसा कि शास्त्रोक्त विधान है फिर वे सब परम हर्ष को प्राप्त हो गये थे । १५७।

२४—ब्रह्मा को प्रार्थना पर विष्णु का प्रकट होना

नारायणं नमस्कृत्य नरश्चैव नरोत्तमम् ।
 देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदोरयेत् । १।
 भगवत्सर्वसास्त्रज्ञ ! सर्वतीर्थमहत्स्ववित् ।
 कथितं यत्त्वया पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने ।
 गुरुपोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम् । २।
 यत्राऽऽस्ते दारवतनुः श्रीशोमानुपलीलया ।
 दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः । ३।
 सप्तो विस्तरतोद्बुद्धितक्षेत्रं केन निर्मितम् ।
 ज्योतिः प्रकाशो भगवान्साक्षान्नारायणः प्रभुः । ४।
 कथं दाहयस्व तस्मिन्नास्ते परमपूष्यः ।
 वद त्वं वदतांश्रेष्ठ ! सर्वलोकगुरो मुने ! । ५।
 श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मण्यरं कीर्तनं हि नः ।
 शृणुष्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमं हि तत् । ६।
 अवैष्णवानां श्रवणे भक्तिस्तत्र न जायते ।
 यस्य सङ्कीर्तनादेव सकलं लीयते तमः । ७।
 यद्यप्येष जगन्नाथः सर्वगः सर्वभावनः ।
 स्कन्देन कथितं पूर्वं श्रुत्वा शम्भो मुखाम्बुजात् ।
 सन्ति क्षेत्राणि चान्यानि सर्वपापहराणि वै । ८।

भगवान् नारायण को प्रणाम करके फिर नरोत्तम नर को नमस्कार करे । देवी सरस्वती को प्रणाम करके श्री व्यास देव जी को नमन करे । इसके पश्चात् जय शब्द का उच्चारण करना चाहिये ।

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेष्वितान् ।
 स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥५४॥
 पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवं वरम् ।
 भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्तेभवन्तिभवेभवे ॥५५॥
 ये महापातकैयुक्ता ह्युपपातकिनश्च ये ।
 पुराणश्रवणादेव ते याप्सि परमम्पदम् ॥५६॥
 वेङ्कटाद्रेस्तु माहारम्यंश्रुत्वातच्छ्रयस्ततः ।
 व्यासप्रसादसम्पन्नं सूतंपौराणिकोत्तमम् ।
 पूजयित्वा यथान्यार्थं महर्षमतुलं गताः ॥५७॥

पौराणिक कथा के कीर्त्यमान होने पर जो मनुष्य उसमें विघ्न डालना
 किया करते हैं वे एक करोड़ वर्षों तक नरकों की यातनाओं को भोगकर प्रत
 में ग्राम सूकर की योनि में जन्म लिया करते हैं । जो उत्तम कर कीर्त्य-
 मान कथा का अनुमोदन किया करते हैं वे कथा का श्रवण न करते हुए
 भी अमय शाश्वत पद को प्राप्त किया करते हैं । जो मनुष्य परम पुण्य-
 मयी पौराणिकी कथा का श्रवण कराया करते हैं वे ब्रह्मा के पद पर
 जो साध एवं परमोत्तम है शतकोटि कल्पों तक स्थित रहते हैं । जो
 मनुष्य पुराणों के शांता विद्वान के लिए आसन के वास्ते कम्बल, मज्जिन और
 वस्त्र समर्पित किया करते हैं तथा मञ्जक ही दान में देते हैं वे स्वर्गलोक
 को प्राप्त कर येष्वित्त भोगों के सुख का उपभोग करके तथा ब्रह्मादि
 लोकों में स्थित होकर फिर निरामय पद को प्राप्त किया करते हैं ।
 ॥५०—५४॥ जो पुराण ग्रंथ के लिए नूतन एवं परमोत्तम सूत्र प्रदान
 किया करते हैं वे जन्म-जन्म में भोगी और ज्ञान से सुसम्पन्न हुमा करते
 हैं । जो महा पातकों से युक्त होते हैं तथा जो उपपातकी हुमा करते हैं
 वे केवल पुराणों के श्रवण करने ही से परम पद को प्राप्त कर लिया
 करते हैं ॥५५—५६॥ इसके अनन्तर वे समस्त श्रुतिगण वेङ्कटाद्रि के
 माहारम्य का श्रवण करके फिर श्री व्यासी देव जी के प्रसाद से सम्पन्न

श्री पीराणिकों में परम श्रेष्ठ सूतजी का उन सबने पूजन किया था जैसा कि शास्त्रोक्त विधान है फिर वे सब परम रूप की प्राप्त हो गये थे । १५७।

२४—ब्रह्मा की प्रार्थना पर विष्णु का प्रकट होना

नारायणं नमस्कृत्य नरस्वैव नरोत्तमम् ।
 देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् । १।
 भगवत्सर्वंशास्त्रं ! सर्वंतीर्थमहत्त्ववित् ।
 कथितं भस्वया पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने ।
 पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम् । २।
 भद्राऽऽस्ते दारवतनुः श्रीशोभानुपलीलया ।
 दर्शनामुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः । ३।
 सप्तो विस्तरतो ब्रूहि तत्क्षेत्रं केन निर्मितम् ।
 उद्योतिः प्रकाशो भवन्साक्षात् नारायणः प्रभुः । ४।
 कथं दाहयस्तस्मिन्नास्ते परमपूरुषः ।
 खदस्व भवतां श्रेष्ठ ! सर्वलोकगुरो मुने ! । ५।
 श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कीतूहलं हि नः ।
 शृणुष्व मुनयः सर्वे रहस्यं परमं हि तत् । ६।
 श्रवणैर्गुणानां श्रवणे भक्तिस्तत्र न जायते ।
 यस्य सङ्कीर्तनादेव सकलं लीयते तमः । ७।
 यद्यप्येष जगन्नाथः सर्वगः सर्वभावनः ।
 स्कन्देन कथितं पूर्वं श्रुत्वा शम्भो मुं साम्बुजात् ।
 सन्ति क्षेत्राणि चाज्यानि सर्वपापहराणि वै । ८।

भगवान् नारायण को प्रणाम करके फिर नरोत्तम नर को नमस्कार करे । देवी सरस्वती को प्रणाम करके श्री व्यास देव जी को नमन करे । इसके अनन्तर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिये ।

मुनि वृन्द ने कहा—हे भगवन् ! आप- तो समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं और सम्पूर्ण तीर्थों के महत्त्व के भी वेत्ता हैं । तीर्थों के कीर्तन करने के प्रस्ताव के प्रस्तुत होने पर पहिले आपने पुरुषोत्तम नाम वाले परम पावन सुमहान् क्षेत्र के विषय में कहा था । १।२। जिस क्षेत्र में भगवान् श्रीश मानव लीला से काष्ठ भयी मूर्ति धारण करके विराजमान हैं । उनके दर्शन मात्र से ही वे मुक्ति का प्रदान कर देने वाले हैं और साक्षात् समस्त तीर्थों के पुण्य-फल को देने वाले हैं । ३। हे भगवन् ! कृपा करके उसे ब्रह्म थोड़ा सा विस्तार के साथ हमको बतला दीजिये कि उस क्षेत्र का निर्माण किसने किया था ? साक्षात् भगवान् नारायण प्रभु तो दिव्य ज्योति के प्रकाश स्वरूप हैं वह परम पुरुष वहाँ पर यद्यपि और किस रीति से दाहमय होकर विराजमान हो रहे हैं ? आप- तो इसके बनलाने वालों में परम श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ हैं और हे मुने ! आप सब लोकों के गुरु भी हैं अतः आप हमको यह बतलाइये । हे ब्रह्मन् ! हम सब सुनने की उत्कट इच्छा रखते हैं और हमारे हृदय में इसके श्रवण करने को बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है । ३। ४। महर्षि प्रवर जैमिनी ने कहा—हे मुनिगण ! आप सब सुनिये, यह एक बड़ा भारी रहस्य है । ६। जो लोग वैष्णव नहीं है उनकी इसके श्रवण करने में भक्ति नहीं होती है । जिसके संकीर्तन करने मात्र से ही सब तम लीन हो जाया करता है । यद्यपि यह जगत् के नाश हैं—सर्वत्र गमन करने वाले और सब पर दया भाव रखने वाले हैं । पहिले भगवान् दाम्भु कमल से श्रवण करके स्वामी स्कन्द ने कहा था । और भी समस्त पापों के हरण करने वाले क्षेत्र विद्यमान हैं । ७—८।

एतत्क्षेत्रं परञ्चाऽस्यवपुर्भूतं महात्मनः ।
 स्वयं वपुष्मांस्तत्रास्ते स्वनाम्नाख्यापितं हितम् । १६।
 तत्र ये स्थातुमिच्छन्ति तेऽपि सर्वे हताहमः ।
 किंपुनस्तत्र तिष्ठन्तो ये पश्यन्ति गदाधरम् । १७।

अहोतत्परमं क्षेत्रं विस्तृतं दशयोजनम् ।
 तीर्थराजस्य सलिलादुत्थितं बालुकाचितम् ॥११॥
 नीलाचलेन महता मध्यस्थेन विराजितम् ।
 एकस्तनमिव पृथ्व्याः सुदूरात्परिभाविमम् ॥१२॥
 वाराहरूपिणा पूर्वं समुद्घृत्य वसुध्वराम् ।
 सर्वतः सुप्तमा कृत्वा पर्वतः सुस्थिरकृताम् ॥१३॥
 सृष्ट्वा चराचरं सर्वं तीर्थानि सरिदब्धिकान् ।
 क्षेत्राणि च यथास्थानं संनिवेश्य यथा पुरा ॥१४॥

यह क्षेत्र इन महान् पुरुष का वपुर्भूत अर्थात् शरीरधारी सर्व-
 श्रेष्ठ है और वक्षों पर स्वयं वपुष्मान् विराजमान रहा करते हैं और
 अपने ही नाम से इस क्षेत्र को लोक में स्थापित भी किया है । वक्षों पर
 जो भी स्थित होने की इच्छा किया करते हैं वे भी निराप ही होते हैं
 और उनके विषय में तो कहा ही क्या जावे जो वहाँ पर अपनी स्थिति
 रखते हैं और भगवान् गदाधर का निश्चय दर्शन प्राप्त किया करते हैं ।
 महो ! यह सर्वोत्तम क्षेत्र है जो दश योजन के विस्तार से युक्त है ।
 तीर्थराज के जल से यह उत्थित हुआ है जो बालुका से बित है । मध्य
 में स्थित महान् नीलाचल से यह क्षेत्र विराजित है । बहुत दूर से ही
 पृथ्वी देवी के एक स्तन के समान परिभाषित होता है । पहिले वाराह
 के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् ने इस वसुध्वरा देवी उद्धार
 करके इसे सभी ओर से सुप्तमान किया था और पर्वतों से इसको सुस्थिर
 बनाया था । सभी चर और अचर सृष्टि का सुप्न करके समस्त तोम्र,
 नदियाँ, समुद्र और क्षेत्रों को पहिले यथोचित स्थान पर संनिवेशित
 किया था । ६—१४।

ब्रह्मा विचिन्तयामास सृष्टिभारनिषीडितः ।

पुनरेता क्रिया गुर्वी नारभेयकथन्तिवतिः ॥१५॥

तापत्रयाभिभूताहि मुच्यन्ते जन्तयः कथम् ।
 एव निन्तयमानस्यमतिरासीत्प्रजापतेः । १६।
 भुवत्येककारणं विष्णुं स्तोष्येऽहं परमेश्वरम् ।
 नमस्तो जगदाधार ! बाह्यचक्रगदाधर । १७।
 यन्नाभिपङ्कजादेव जातोऽहं विश्वसृष्टिकृत् ।
 परमार्थं स्वरूपं ते त्वं वं वेत्तिजगन्मय । १८।
 यन्माययाजगत्सर्वं निमित्तं महदादिकम् ।
 यन्निःश्वाससमुद्भूतं शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत् । १९।
 उपजीव्यतदेवाऽहं सृजन्भुवनानि वै ।
 त्वत्तोनाऽन्यः स्थूलसूक्ष्मदायं ह्रस्वादिकिञ्चन । २०।
 विचारभेदभंगवस्त्वमेवेदं चराचरम् ।
 कटकादि यथा स्वर्णं गुणत्रयविभागतः । २१।

सृष्टि के भार से भरवन्त अणिक पीडित ब्रह्माजी ने विचार किया था कि इस बड़ी भारी क्रिया को पुनः कैसे प्रारम्भ करूँ । तीन प्रकार के तापी से अभिभूत ये अस्तुगुण विचारे किस तरह से छुटकारा पावेंगे । इस तरह वेत्तिगता में मग्न हो रहे थे कि अचानक प्रजापति के हृदय ऐसी मति समुत्पन्न हो गई थी कि मुनि का एक कारण तो भगवान विष्णु ही है प्रत्यक्ष मैं उसी परमेश्वर प्रभु का स्तवन करूँगा । ब्रह्माजी ने कहा—हे इस जगत् के आधार ! हे बाह्य, चक्र और गदा के धारण करने वाले ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है । जिसके नाभि में स्थित कमल से ही मेरी उत्पत्ति हुई है जो इस विश्व की सृष्टि को करने वाला है । हे जगन्मय ! आपके परमार्थ स्वरूप को आप ही जानते हैं । जिसकी माया से यह सम्पूर्ण जगत् तथा गह्वर आदिक निमित्त हुए हैं । जिसके निःश्वास से समुत्पन्न यह शब्द ब्रह्म तीन स्वरूपों वाला हो गया है । हे देव ! मैंने तो इन भुवनों की सृष्टि करदी है आप इनको उपजीव्य करिये । आपसे अतिरिक्त अन्य कोई भी स्थूल,

सूक्ष्म, योषं और, ह्रस्व आदि नहीं है। विकारों के भेदों के द्वारा हे भगवन् ! यह सब चराचर आप ही स्वयं हैं। तीन गुणों के (सत्त्व, रज, तम) विभाग से यह सभी कुछ घायका ही स्वरूप है जैसे स्वर्ण कटक आदि के विभिन्न रूपों में रहता है। ११५—११।

अष्टासृज्यं त्वमेवाऽत्र पोष्टा पोष्यञ्जगत्प्रभो ।
 आधारी ध्रियमाणश्च घर्ता त्वपरमेश्वर । १२।
 त्वत्प्रेरितमतिः सर्वं श्रते च शुभाऽशुभम्
 ततः प्राप्नोति सदृशो त्वयैव विहिता गतिम् । १३।
 जगतोऽस्य गतिर्भर्ता साक्षी त्वं परमेश्वर ! ।
 चराचरगुरो । सर्वजीवभूतकृपा मय ।
 प्रसीदाऽऽद्यजगन्नाथ ! नित्यं त्वच्छरण्यस्य मे । १४।
 एवं संस्तूयमानश्च ब्रह्माणा गहडध्वजः ।
 नीलजीभूतसङ्काशः शङ्खचक्रादिविह्वितः । १५।
 पद्मगोत्रसमारूढः स्फुरद्वदनपद्मजः ।
 आविरासीद् द्विजश्रेष्ठा विबभूवुः स्फुरिताधरः । १६।
 यदर्थं मा स्तुपे ब्रह्मन्नशक्यः प्रतिभाति सः । १७।
 अनाद्यविद्यामुदृढा दुश्छेद्याकर्मबन्धनैः ।
 प्रभवन्त्या कथं तस्या ह्रीयेते मृतिजन्मनी । १८।

हे प्रभो ! यहाँ पर आप ही तो इस जगत् के सृजन करने वाले हैं और आप ही सृज्य धर्यात् करने के योग्य वस्तु जात हैं। इस जगत् पोषण करने वाले तथा पोषण के योग्य भी आप ही हैं। इस जगत् के आधार और आधेय दोनों ही आप स्वयं हो हैं। हे परमेश्वर ! हमारी धारण करने वाले भी आप ही हैं। आपके द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके ही जो गति होती है उसी से सब शुभ और अशुभ कर्मों किया करते हैं। इसके अनन्तर आपके द्वारा ही जो हुई सदृश गति को प्राप्त किया करता है। १२—१३। हे परमेश्वर ! इस जगत् की आप ही गति है, आप ही

इसके भरण करने वाले हैं और प्राण ही इसके साधो हैं । हे चराचर के गुरुदेव ! प्राण तो ममस्व जीवभूत कृपामय है । हे जगन्प्राण ! प्रब प्राण प्रसन्न होइये । मैं निरय ही शरण्य प्राणकी ही शरणागति में रहने वाला ॥ १२४ ॥ महर्षि जैमिनी ने कहा—हे द्विजयेष्ठो ! इस रीति से ब्रह्मा के द्वारा सन्तवन किये गये भगवान् गुरुद्वयज, नीलमेघ के समान कान्ति वाले, शय, चक्र आदि के बिन्दुओं से युक्त, पतयेन्द्र (गुरु) पर समाकृत, स्फुरमाण मुख कमल वाले, स्फुरित पंथरों से युक्त बोलने की इच्छा वाले वहीं पर आविर्भूत हो गये थे । श्री भगवान् ने कहा— हे ब्रह्मन् ! जिसके लिए प्राण मेरा स्तवन कर रहे हैं वह प्रशक्य ही प्रतीत होता है । यह मनाचयिद्या परम सुदृढ है और कमं बन्धनों द्वारा यह छेदन करने के योग्य नहीं है । उसके होते हुए यह मृत्यु और जन्म कैसे क्षीण हो सकते हैं ? ॥ १२५—१२८ ॥

तथाऽपि चेदङ्कुरेव्यवसायस्तवाऽनघ ।

क्रमेण येन हि भवेत्तत्ते वक्ष्यामि कारणम् ॥ १२९ ॥

अहं त्व त्वमहं ब्रह्मन्मन्मयश्चाखिललक्षणत् ।

रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्यथेतिविचारय ॥ १३० ॥

सागरस्योत्तरेतीरे । महानद्यास्तु दक्षिणे ।

स प्रदेश पृथिव्या हि सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ १३१ ॥

तत्र ये मनुजा ब्रह्मन्निपसन्ति सुबुद्धयः ।

जन्मान्तरकृतानाञ्च पुण्याना फलभागिनः ॥ १३२ ॥

नाऽल्पपुण्या प्रजायन्ते नाऽभवता भयिषद्वज ।

एकाऽभकाननाद्यावद्दक्षिणोदधितोरभूः ॥ १३३ ॥

पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः क्रमात्परमगावनः ।

सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मघ्राजते नीलपर्वतः ॥ १३४ ॥

पृथिव्या गोपित स्थान तव चाऽऽपि सुदुर्लभम् ।

सुरासुराणा दुर्ज्ञेय भावयाऽऽच्छादित मम ॥ १३५ ॥

हे अनन्त ! तो भी इसके लिए आपका यदि व्यवसाय है तो जिसके द्वारा कर्म से यह हो जावे उस कारण को मैं आपको बतलाता हूँ । मैं जो हूँ वही तुम हो और जो तुम हो वही मैं हूँ । यह पूर्ण जगत् मन्मथ ही है । जहाँ आपकी रुचि है वही मेरी भी रुचि अवश्य ही है । इसमें मन्मथा कुछ भी नहीं है—इसे विचार लो । इस सागर के उत्तर तीर पर महा नदी के दक्षिण भाग में इस पृथिवी में ही वह प्रदेश विद्यमान है जो समस्त तीर्थों के पुण्य-फल का प्रदान करने वाला है । हे ब्रह्मन् ! वहाँ पर जो मनुष्य सुन्दर बुद्धि वाले निवास किया करते हैं वे दूसरे जन्मों में किए हुए पुण्यों के फल भागी हुआ करते हैं । हे पद्म ! वहाँ पर अल्प पुण्यों वाले उत्पन्न नहीं हुआ करते हैं और जो मुझमें भक्ति रखने वाले नहीं हैं वे भी वहाँ उत्तम नहीं होते हैं । एकाग्र कानन से छे लेकर जहाँ तक दक्षिण गागर के तट की भूमि है पर्व से पर्व परम श्रेष्ठतम और इसी क्रम से वह परम पावन है । हे ब्रह्मन् ! त्रिभु के तट पर जो नील पर्वत शोभा देता है वह पृथिवी में परम गोपित स्थान है और वह आपको परम दुर्लभ ही है । वह मेरी माया से समाज्ज्यादित है मतएव सुरतया ममुर सबके द्वारा दुर्लभ अर्थात् न जानने के योग्य ही है । १२६-३५।

सर्वसङ्गपरिस्त्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहमृत् ।
क्षराक्षरावतिक्रम्य वर्त्तिहं पुरुषोत्तमे । ३६।
सृष्ट्यालयेननाक्रान्तक्षेत्रम्पुरुषोत्तमम् ।
यथामां पश्यसिब्रह्मरूपं ब्रह्मादिचिह्नितम् । ३७।
ईदृशं तत्र गत्त्वैव द्रक्ष्यसे मां पितामह ! ।
नीलाद्रेरन्तरभुवि कल्पन्यग्रोधमूलतः । ३८।
वाष्प्यां दिशि यत्कुण्डं रौहिणं नाम विश्रुतम् ।
तत्तीरे निवसन्तं प्रश्यन्तश्चर्मचक्षुषा । ३९।

तदम्भसाक्षोणपापा मम सामुज्यमाप्नुयुः ।

तत्र व्रज महाभाग दृष्ट्वा मां ध्यायतस्तव ॥४०॥

प्रकाश यास्यते तस्य क्षेत्रेऽत्र महिमाऽपरः ।

आश्चर्यभूतः परमस्तवाऽपि च भविष्यति ॥४१॥

श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं

मन्मायया तन्न हि कस्य गोचरम् ।

प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाऽधुना

प्रकाशमायास्यति सर्वगोचरम् ॥४२॥

अहनिवासात्लभतेऽत्र सर्वं निःश्वासवासात्क्षु

चाऽऽश्चमेधिकम् ॥४३॥

इत्यादिष्व विधिं विप्रास्तदाऽसौ पुरुषोत्तमः ।

पश्यतस्तस्य तत्रैव प्रभुरन्तरधीयत ॥४४॥

सब प्रकार के सङ्ग से परित्यक्त होकर मैं वहाँ पर देवधारी होकर स्थित रहता हूँ। क्षर और भक्षर को अतिक्रमण करके मैं पुरुषोत्तम मे वर्तमान रहता हूँ। सृष्टि और सब से मेरा वह प्राक्रान्त पुरुषोत्तम क्षेत्र है। हे महावृ ! जिस प्रकार से मुझको इस समय में अक्षादि से चिह्नित रूप भाप देख रहे हैं। हे पितृमह ! वहाँ पर जाकर भी आप ऐसा ही मुझको देखेंगे। नीनादि के अन्तर भूमि में बहर स्पर्श के मूल से वाष्णी दिशा में जो एक रोहिण इस नाम से विख्यात है ऐसा एक कुण्ड है। उसके तट पर निवास करने वाले मुझको चर्म वस्त्र से देखने वाले हैं उसने जल से शीण पारो पाले पुरुष मेरे सामुज्य को प्राप्त किया करते हैं। हे महाभाग ! आप भी वही पर चले जाइये वहाँ पर मेरा दर्शन प्राप्त करके मेरा ध्यान करते हुए आप प्रकाश को प्राप्त करेंगे। यह उस क्षेत्र की एक अपर महिमा है। वह परम आश्चर्यभूत वहाँ पर आपको भी होवा। समस्त श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणों में भी परम गोपित है और वह मेरी माया से किसी को भी गोचर नहीं

होता है । मेरे प्रसाद से आपके इस स्तवन करने पर अब आपको वह प्रकाश सर्वगोचर हो जायगा । ३६—४२। व्रतो मे, तीर्थों में, यज्ञ और दानों में जो विमल आत्मा वालों का पुण्य बताया गया है वह एक दिन निवाप्त करने से यहाँ पर सब प्राप्त होता है । निःश्वास की भाँस से निश्चय ही अभ्यर्थेय यज्ञ के करने का फल होता है । हे विप्रो ! उस समय में पुरुषोत्तम प्रभु ने इस तरह से ब्रह्माजी को इसका आदेश प्रदान किया था और फिर ब्रह्माजी के देखते २ ही वे प्रभु वही पर अन्तर्हित हो गये थे । ४३—४४।

२५—रथनिर्माणवर्णन

इत्युषते नारदः सोऽथ यथाशास्त्रं विचार्य वै ।

आलेख्यक्रमशः पत्रं राज्ञेतस्मै ह्यवेदयत् । १।

राजाऽपि पत्रं लब्ध्वा त्वासोऽवघातं पुनः पुनः ।

प्रवदोपपन्ननिघ्नेलिसिताभ्यग्नयानिवै । २।

सम्पादय पद्मनिघ्नेशालां स्वर्णमयीं कुश ।

ग्रह्मणाः सदनं दिव्यं ग्रह्मणीणां च निर्मलम् । ३।

इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धानां मर्त्यवासिनाम् ।

मुनीन्द्राणां निवासाय राज्ञां पातालवासिनाम् । ४।

तथा च नागराजानां निधे । श्रेलोक्यवासिनाम् ।

यथायोग्यासनं युक्तं गृहगृहमतग्द्वितः । ५।

कारयाऽऽनु निधे । द्रव्यसम्भारं यावदेव तु ।

विश्वकर्माऽपि च तव साहाय्यं रचयिष्यति । ६।

इत्यादिश्रुन्तं स भुनिरिन्द्रद्युम्नमुवाच वै ।

सम्भाराभ्युपगते तां कर्तव्यं व्यवधानतः । ७।

महर्षि जैमिनि ने कहा—इतना कहने पर यह देखि नारद ने शास्त्र के अनुसार इसके अनन्तर विचार करके आलेख्य के रूप में पत्र

तदम्भसाक्षीणवापा मम सामुज्यमाप्नुयुः ।

तत्र यज महाभाग हृष्टा मां ध्यायतस्तव । ४०।

प्रकाशं यास्यते तस्य क्षेत्रस्य महिमाऽपरः ।

आश्रयंभूतः परमस्तवाऽपिचमविध्यति । ४१।

श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं

मन्मायया तन्न हि कस्य गोचरम् ।

प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाऽधुना

प्रकाशमायास्यति सर्वगोचरम् । ४२।

अहर्निवासास्लभतेऽत्र सर्वं निष्प्रासवासात्त्वलु

चाऽऽश्वमेधिकम् । ४३।

इत्यादिष्व विधिं विप्रास्तवाऽसौ पुष्पोत्तमः ।

पश्यतस्तस्य तत्रैव प्रभुरन्तरधीयत । ४४।

सब प्रकार के मन्त्र से परित्यक्त होकर मैं वहाँ पर देहधारी होकर शिगत रहा करता हूँ। क्षर और अक्षर को प्रतिफलण करके मैं पुद्गलोत्तम मे वर्त्तमान रहता हूँ। सृष्टि और लय से मेरा वह आक्रान्त पुद्गलोत्तम क्षेत्र है। हे ब्रह्मा ! जिस प्रकार से मुझको इस समय मे चक्रादि से विहित रूप प्राप्त देख रहे हैं। हे पितामह ! वहाँ पर जाकर भी आप ऐसा ही मुझको देखेंगे। नीलाद्रि के अन्तर भूमि मे रहकर त्वष्टा के भूत से वादणी दिशा में जो एक रोहिण इस नाम से विख्यात है ऐसा एक कुण्ड है। उसके तट पर निवास करने वाले मुझको चर्म चक्षु से देखने वाले हैं उसके जल से नीले पानी वाले पुरुष मेरे सामुज्य को प्राप्त किया करते हैं। हे महाभाग ! आप भी वही पर चले जाइये वहाँ पर मेरा दर्शन प्राप्त करके मेरा ध्यान करते हुए आप प्रकाश को प्राप्त करेंगे। यह उस क्षेत्र की एक अपर महिमा है। वह परम आश्रयभूत वहाँ पर आपको भी होगा। समस्त श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणों में भी परम गोपित है और वह मेरी माया से किसी को भी गोचर नहीं

होता है । मेरे प्रसाद से आपके इस स्तवन करने पर अब आपके वह प्रकाश सर्वगोचर हो जायगा । ३६—४२। अतो मे, तीर्थों में, यज्ञ भोर धामों में जो विमल आत्मा वालों का पुण्य बताया गया है वह एक दिन निवास करने ॥ यहाँ पर सब प्राप्त होता है । निःश्वास की वास से निश्चय ही अश्वमेध यज्ञ के करने का फल होता है । हे विप्रो ! उस समय में पुरुषोत्तम प्रभु ने इस तरह से ब्रह्माजी को इसका आदेश प्रदान किया था और फिर ब्रह्माजी के देखते २ ही वे प्रभु वही पर अस्तित्व हो गये थे । ४३—४४।

२५—रथनिर्माणवर्णन

इत्युक्ते नारदः सोऽथ यथाशास्त्रविचारवै ।
आलेख्यक्रमशः पत्रे राज्ञेतस्मै श्यवेदयत् । १।
राजाऽपि पत्रं तच्छ्रुत्वासोऽप्यर्थं पुनः पुनः ।
प्रददौ पद्मनिघ्नेलिखिताभ्यश्रयानिवै । २।
सम्पादय पद्मनिघ्नेशाला स्वर्णमयी कुक्ष ।
ब्रह्मणः सदनं दिव्य ब्रह्मर्षीणां च निर्मलम् । ३।
इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धानां मर्त्यवासिनाम् ।
मुनीन्द्राणां निवासाय राज्ञा पातालवासिनाम् । ४।
तथा च नागराजानां निधे ! श्रैलोक्यवासिनाम् ।
यथायोग्यासन्नयुक्तं गृहगृहमतद्भितः । ५।
भारयाऽऽशु निधे ! द्रव्यसम्भारयावदेवतु ।
विश्वकर्माऽपि च तव साहाय्यरक्षयिष्यति । ६।
इत्यादिशन्त स मुनिरिन्द्रश्च मुमुवाच वै ।
सम्भाराभ्युपगताऽहं वर्तम्य व्यवधाननः । ७।

महर्षि जैमिनि से कहा—इतना कहो पर वह देवर्षि नारद ने शास्त्र व अनुसार इसके धन तर विचार करने आलेख्य क समय से पत्र

मैं उस राजा से निवेदन किया था—उस राजा ने भी पथ को सुनकर
 और पुनः-पुनः अवधारण करके उसने इसमें जो निधि हुए थे उनको
 पथ निधि के लिए दे दिया था । हे पथनिधि ! सत्ता का सम्पादन करो
 और उसको स्वर्णभूषी कर दो । ग्रहाजी का परम दिव्य सदन बना दो
 ग्रहापियों के लिए अति निर्मल सदन का निर्माण कर दो । इन्द्रादि देवों
 का, सिद्धों का, मह्यंलोक में निवास करने वाले मुनीन्द्रों का निवास
 स्थान निर्मित करो तथा पानाल लोक में वास करने वाले राजाओं के
 निवास करने के लिए सदन बना दो । १-४॥ हे निधि ! उसी भाँति
 त्रिलोक्य में निवास करने वाले नागराजों के लिए सदन का निर्माण
 करो तुम अतन्द्रित होकर यथा योग्य भू-सन्तो से युक्त गृह-गृह निर्मित
 करो । हे निधि ! द्रव्य का सम्भार जितना भी लगे इन सबका निर्माण
 अति शीघ्र कर दो । आपके इस कार्य के सम्पादन करने में विश्वकर्मा
 भी सहायता करेंगे । वह भुनि इस प्रकार से आदेश प्रदान करने वाले
 इन्द्रधुम्न से बोले—सम्भारों को व्यवधान से यह पृथक् ही करना
 चाहिये । ५-७।

स्वर्णैः सुघटितं साधुरथत्रयमलङ्कृतम् ।

दुकूलरत्नमालाद्यैर्बहुमूल्यैर्दृढं महत् । ५।

श्रीवासुदेवस्य रथो गण्डध्वजचिह्नितः ।

पद्मध्वजः सुमद्राया रथमूर्द्धनि धार्यताम् । ६।

रथः षोडशचक्रस्तु विष्णोः कार्यः प्रयत्नतः ।

चतुर्दश बलस्यैव सुमद्रायास्तु द्वादश । १०।

हस्तषोडशविस्तारो रथप्रक्रपरस्य तु ।

चतुर्दश बलस्यैव सुमद्रायास्तु द्वादश । ११।

आसनं जगतां भूयः स्वयं स्वासनविग्रहः ।

यथानि जगतां नाशस्ततो यानं न विद्यते । १२।

पश्येच्चराचरं विश्वं ज्ञानादथ सुनिर्मले ।

स्थितो हस्ततले नित्यं निर्मलस्तस्यदर्पणः । १३।

तलस्थत्वादसौ तालः सदा तेनाङ्कितः प्रभुः ।

ततः स एव शेषस्य बलभद्रावतारिणः । १४।

सुवर्णों से सुघटित जति सुन्दर समलङ्कृत तीन रथ, बनाओ जो दुकूल (बख्त्र) और रत्नों की माला आदि से जो कि वेश कीमती हो उन्हें महान और परम सुरङ्ग बनाइये । १३। श्री वासुदेव भगवान का रथ गरुडध्वज के चिह्न से युक्त करो । सुभद्रा के रथ के मस्तक पर पद्म ध्वज बनाओ अर्थात् धारण करो । भगवान विष्णु का रथ सोलह पहिये वाला प्रमत्त पूर्वक बनाना चाहिए । बनराम जी का रथ चौदह पहियों वाला और सुभद्रा के रथ के बारह पहिले बनाने चाहिए । चक्र-धर का रथ सोलह हाथों के विस्तार वाला होना चाहिये । बल के रथ का विस्तार चौदह हाथों का और सुभद्रा के रथ का विस्तार बारह हाथों का होना चाहिये । अपने आसन के विग्रह वाले स्वयं जगत्तों के पुनः प्राप्ति है । उनके यान में जगत्तों का नाश होता है अतएव यान नहीं है । १६—१२। इस चराचर विश्व की ज्ञान में देखो । सुनिर्मल हस्त-तल में उसका निर्मल दर्पण नित्य ही स्थित रहता है । स्वस्थ होने से यह ताल है उससे गहा प्रभु अङ्कित है । इसी से वही बलभद्रावतारी शेष का है । १३—१४।

अथवासीरिणः कार्यंसीरमेवञ्जोत्तमम् ।

ध्वजः सुनिर्मलः कार्यस्तस्मात्तालध्वजोमतः । १५।

न वासितव्यो देवोऽसावप्रतिष्ठे रथे नृप । ।

प्राप्तादेमण्डपे वापिपुरेतिप्रिप्फलंभवेत् । १६।

तस्मात्प्रतिष्ठा प्रथमं हरेः कार्यारथस्य वै ।

सम्भारः क्रियतां तस्य ह्यनुष्ठेयमयातुषा । १७।

इत्याज्ञांमत्पितुलंब्ध्वा शीघ्रमायाम्यहं नृप ! ।
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा घटितस्यन्दनत्रयम् । १८।
 निधिसम्पादितैर्द्रव्यैरेकाह्लाद्विश्वकर्मणा ।
 स्वक्षं सुचक्रं सुस्तम्भं सुविस्तोर्णं सुतोरणम् । १९।
 सुध्वजं सुपताकं च नानाचित्रमनोहरम् ।
 विचित्रबन्धमिथुनपुत्तलीवलयाश्रितम् । २०।
 अर्द्धहाटकनिष्पूङ्कं साक्षाद्भविष्योपमम् ।
 मेघगम्भीरनिर्घोषं दृष्ट्वा कर्पंगुणैर्युतम् ।
 वातरंहोहयैर्युक्तं शतसङ्ख्यैः सितप्रभैः । २१।

अथवा सीरि (बलभद्र) का सीर ही उत्तम ध्वज करना चाहिये । सुनिर्मल ध्वज करना चाहिए । इसलिए ताल ध्वज माने गये हैं । हे नृप ! यह देव अप्रतिष्ठ रथ में कभी भी निवास इनका नहीं करना चाहिए । प्रासाद मण्डप में अथवा पुर में भी नहीं करे क्योंकि वह निष्फल हो जायगा । १५।१६। इस कारण से सर्वप्रथम श्रीहरि के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । उसका सम्भार सब तैयार करो । वह प्रतिष्ठा मेरे द्वारा ही करनी चाहिये यह आज्ञा मेरे पिता की मैंने प्राप्ति की है । हे नृप ! मैं शीघ्र ही आया हूँ । उसके इस वचन का ध्वज करके तीन स्पन्दन (रथ) घटित किए गये हैं । १७—१८। विश्वकर्मा के द्वारा एक ही दिन में निधि से सम्पादित द्रव्यों से सुन्दर प्रसो वाला, मनोहर पहियों से समन्वित, अज्ज्ञे स्तम्भों से युक्त, सुन्दर विस्तर वाला, सुतोरण, सुध्वन, सुपताक और अनेक प्रकार के चित्रों से मनोहर, विचित्र बन्ध वाली पुत्तलियों के जोड़ों और वलयों के सहित, अर्ध हाटक (सुवर्ण) से निष्पूङ्क साक्षात् सुवर्ण के रथ के तुल्य मेघ के गम्भीर निर्घोष वाले और कर्पं गुणों से युक्त देखकर जो धाम्यु के समान वेग वाले, सित प्रभा से युक्त सो सख्या वाले अश्वों से युक्त था । १९—२१।

यथाशास्त्रविधानेन नारदेन प्रतिष्ठितम् ।
 सुलग्ने सुगुहूर्त्तं च सुतिथौ ज्योतिषोदिते ।२२।
 भगवद्धर्मिने ! ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ।२३।
 विधिना केन हि रथः प्रतिष्ठाप्योहरेरयम् ।
 यथावद्वद नोयेनजानीमोविधिविस्तरम् ।२४।
 यथाप्रतिष्ठितं तेन नारदेन महात्मना ।
 तद्वो वदिष्यामि विधिं यथा दृष्टं पुरा मया ।२५।
 रथस्येशानदिग्भागेशालांकृत्वासुशोभनाम् ।
 तन्मध्येमण्डपंकृत्वावेदिनत्रमुनिर्मलाम् ।२६।
 चतुरस्रां चतुर्हस्तमितां हस्तोच्छ्रितां द्विजाः ।
 प्रतिष्ठापूर्वादिपसेरान्नाद्युत्तरतः शुभे ।२७।
 मुहूर्त्तं स्वस्तिवाच्याऽप्य कारयेदङ्गराणाम् ।
 द्वात्रिंशद्देवताभ्यश्चर्चतिष्ठत्वायथाविधि ।२८।

जात्र के विधान के अनुसार सुलग्न में, ज्योतिष में कहे हुए सुगुहूर्त्त में और सुतिथि में नारद ने प्रतिष्ठा की थी । मुनिगण ने कहा - हे भगवन् ! हे जैमिने ! भगवन् आप हमको बनलाइये ज्योतिष हम लोग तो आपकी सर्वज्ञ ही मानते हैं । यह हरिनाथ रथ किस विधि से प्रतिष्ठित करना चाहिये । आप इसको यथाविधि बतलाइये जिससे हम लोग इसकी विधि के विस्तार को जान लें । २२, २३, २४। महर्षि जैमिनि ने कहा - जिस रीति से उन महात्मा नारद जी ने उसकी प्रतिष्ठा की थी उस विधान को मैं आपकी बनलाता हूँ जैसा कि मैंने पहिले देखा था । रथ के ईशान दिशा के भाग में एक परम शोभन शाला का निर्माण करके उसके मध्य भाग में मण्डप की रचना की गई थी जिसमें मुनिर्मल वेदी थी । वह वेदी चौहोर थी और चार हाथ विस्तार में युग्म एवं हे द्वित्रगण ! एक हाथ ऊँची थी । प्रतिष्ठा होने के एक दिन पूर्व रात्रि में उत्तर की ओर शुभ मुहूर्त्त में स्वस्ति वाचन करके षड्भुजों

का अर्पण बराना चाहिए । फिर बत्तीस देवों को यथाविधि बलि देनी चाहिए । २५ — २८।

प्रातस्ततो वेदिकायां मध्ये मण्डलमालिखेत् ।
 पद्मं वा स्वस्तिकं वाऽपि कुम्भं तत्र निधापयेत् । २९।
 पञ्चद्रुमकपायं च तन्मध्ये पूरयेत्सुधीः ।
 गङ्गादिपुष्पतोयानि पल्लवान्स समृत्तिकाः । ३०।
 सर्वगन्धान्पञ्चरत्नवोपधिगणं तथा ।
 पूरयित्वा विधानेन आचार्यः प्राङ्मुखः शुचिः । ३१।
 विष्णुं स्मरन्पञ्चगव्यं पश्चादपि प्रपूरयेत् ।
 दुक्कलवेष्टितंकण्ठे माल्यैर्गन्धैः सुशोभनं । ३२।
 फलपल्लवसंयुक्तं कृतकोतुकमञ्जलम् ।
 पूरयेत्तत्र देवेशं नरसिंहमनामयम् । ३३।
 मन्त्रराजेन विधिवदुपचारैस्तथान्तरैः ।
 प्रार्थयित्वा प्रसादाय तस्मिन्नावाह्यं तं हरिम् । ३४।
 बाह्योपचारविविधौ पूजयेद्विधिवद्विजा ।
 द्वायव्यांतस्य कुम्भस्य समिदाज्यचरंतथा । ३५।

इसके उपरान्त प्रातःकाल के समय में उस वेदिका में मध्य भाग में मण्डल का मालिखन करे, पद्म, स्वस्तिक अथवा वहाँ पर कुम्भ निधापित करना चाहिए । २९। सुधी पुष्प को चाहिये कि पाँच द्रुमों का कपाय ग्रहण करके उसके मध्य में पूरित कर देगे । गङ्गा आदि के परम पवित्र जल, पल्लव, मृत्तिका, सर्वगन्ध, पञ्चरत्न और सर्वोपधि गण को विधि-विधान से पूरित करके आचार्य को प्राङ्मुख अर्थात् पूर्व दिशा में मुख वाला तथा शुचि होकर वहाँ पर स्थित होना चाहिये । भगवान् श्री विष्णु का स्मरण करते हुए पीछे पञ्चगव्य को पूरित करे । वस्त्र से वेष्टित करे । सुन्दर गन्ध वाले परम शोभन माल्यों से कण्ठ में वेष्टन करे । फल एवं पल्लवों से संयुक्त, ऊन कोतुक मञ्जल वाले देवेश

मनाभय नरसिंह को वहाँ पर पूरित करे । विधि पुरुषक मन्त्र राज के द्वारा तथा अन्तर उपचारों से प्रसाद के लिए प्रार्थना करके उन श्रीहरि का उसमें स्थापन करना चाहिए । हे द्विजगण ! विधि के सहित विविध बाह्य उपचारों के द्वारा उनका भजन करे । उस कुम्भ के बायव्य दिशा में ममिषा, धृत घौर चरु स्थापित करे । ३०—३५।

अष्टोत्तारसहस्रं च जुहुयाद्विधिवद्गुरुः ।

सम्पातान्प्रापयेत्तत्र कुम्भमध्ये तदग्नतः । ३६।

रथं सुशोभनं कृत्वा पताकागन्धमाल्यकैः ।

सर्वाङ्गसेचयेत्तस्यगन्धचन्दनवारिभिः । ३७।

धूपयेत्कालागुरुणा शङ्खकाहातनिस्वनैः ।

ध्वजे तस्य तृप्तिहस्य प्रतिष्ठाप्य समीरणम् । ३८।

पूजयित्वा विधानेन रक्तस्रग्गन्धमाल्यकैः ।

ह्रमं मन्त्रं समुच्चार्य सुपर्णप्रार्थयेत्ततः । ३९।

यो विश्वप्राणहेतुस्तनुरपि च हरेर्यनिर्केतुस्वरूपो,

यं सञ्चिन्त्यैव सद्यः स्वयमुरगवधूवर्गगर्भाः पश्यन्ति ।

चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपञ्चाकितास्थ,

वशदे छन्दोमयं त खगपतिममलं स्वर्णवर्णं सुपर्णम् । ४०।

ब्रह्मघोषः शङ्खनादैर्नावाद्यमुविस्तरैः ।

रथमूर्ध्नि स्थापयेत्त चारुमूक्तं समुक्तरत्नम् । ४१।

तस्यापरिष्ठातं कुम्भं समन्तात्स्तावययम् ।

त्रिसत्तरमन्त्रराजं सेचयेद्ब्रह्मणा सहः । ४२।

गुरु का वहाँ पर स्तब्ध है कि एक सौ आठ बार विधि के सहित हवन करे । वहाँ पर उसके अन्त में कुम्भ के मध्य भाग में सम्पातो को प्रगाथ करावे । परम शोभा से सुशोभन पताका सुगन्धित माल्यों से रथ को सुशोभित करके उसके सम्पूर्ण प्रज्ञो को गन्ध वाले चन्दन के जल से सेचन करना चाहिये । फिर शङ्ख का हान ध्वनियों के

सहित कालागुरु निर्मित धूप देवें उन भगवान नृसिंह के ध्वज में वायु को प्रतिष्ठापित करके रक्त, स्रक्, भोर गन्ध भात्यों से विधिपूर्वक पूजन करके इस निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करके सुपर्ण देव की प्रार्थना करे । ३६-३९। जो विश्व के प्राणों का कारण भूत है और तनु होते हुए भी श्री हरि के यान का केतु स्वरूप वाला है — जिस सचिन्तन करके ही तुरन्त ही स्वयं उरग वधुओं के समुदाय के गर्भ गिर जाया करते हैं, जो चञ्चल चण्ड और ऊरु त्रुटित फणियों के वसा एवं रक्त के पंक से प्रकृति मुख वाले हैं उन छन्दोमय, स्वर्ण के समान वर्ण वाले, समल खर्गों के स्वामी सुर्ण की मैं वन्दना करता हूँ । ४०। ब्रह्म घोषों से, शंखों की ध्वनियों से और अनेक भाँति के सुविस्तर बाधों से उनको सुन्दर सूक्तों का समुच्चारण करते हुए रथ के मूर्धा पर स्थापित करे । उसके ऊपर उस कुम्भ को चारों ओर से रथ को सम्प्लावित करते हुए देवों के तीर बार मन्त्रराज का उच्चारण करते हुए सेवन करना चाहिये । ४१-४२।

ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा ब्रह्मणीदक्षिणां ददेत् ।
 आचार्यदक्षिणां दद्याद्येन तुष्यति तद्गुरुः । ४३।
 ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते पायसं मधुसर्पिषा ।
 द्वादशाक्षरमन्त्रेण बलभद्रस्य कारयेत् । ४४।
 लांगलं च परिवरन्मन्त्रः स्यात्लाङ्गलध्वजे ।
 अथवा द्विपङ्कवर्णोऽपि मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः । ४५।
 लक्ष्मीसूक्तेन भद्रायाः प्रतिष्ठाप्योरथस्तथा ।
 नाभिहृदागमुरारेस्त्वं ब्रह्माण्डावलिरूपधृक् । ४६।
 आसनं चतुरास्यस्य श्रियो वास ! स्थिरो भव ।
 इमं मन्त्रं समुच्चार्य ध्वजपद्मं समुच्छ्रयेत् । ४७।
 इयान्विशेषो हविषा त्रयाणां च पृथक्पृथक् ।
 पञ्चपञ्चभिर्होतव्यमेकैकं तु विभागशः । ४८।

इत्थं रथान्प्रतिष्ठाप्यसुवर्णं गांचवस्त्रकम् ।

धान्यचक्षुःसादद्यात्साम्यन्देवस्यभविततः । ४६।

इसके अनन्तर पूर्ण ह्वनि समर्पित करके ब्राह्मण को दक्षिणा देवे । याचार्य को दक्षिणा देनी चाहिए जिससे वह सदगुण पूर्ण तथा सन्तुष्ट हो जावे । इस सब विधान के अन्त में मधु और घृत से संयुक्त गायसाक्ष के ब्राह्मणों को मोक्षन कराया चाहिए । हावस मक्षरों वाले मन्त्र से बलमन्त्र का कराना चाहिए । ४३। ४४। साङ्गल ध्वज में साङ्गल परिवर्ण मन्त्र होता है अथवा द्विषद्वर्ण वाला भी पूज्यमन्त्र कीर्तित किया गया है । लक्ष्मी सूक्त के द्वारा भद्रा के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । मुरारि के नामि रूपी हृद से आर इस ब्राह्मण के अर्चाल रूप को धारण करने वाले हैं । हे श्री के वास । यह चतुरानन का धामन है इस पर प्राप स्थिर होवें—इस मन्त्र समुच्चारण करके ध्वज पद्म को समुच्चित्र करें । ४५-४७। इन तीनों के हवि से पृथक्-पृथक् यह इतना ही विशेष है । एक-एक को विभाव से पवि-गविक के द्वारा हवन करना चाहिए । इन रीति से रथों की प्रतिष्ठा करके फिर सुवर्ण, वस्त्र, गी, धान्य और दक्षिणा भलो-भाति देव की भक्ति-भावना से देने चाहिये । ४८ - ४९।

एवं प्रतिष्ठिते तत्र स्यन्दनेऽथ मुभूयिते ।

आरोप्य देव विधिवद्ब्रह्मपापपुरः सरम् । ५०।

जयमङ्गलशब्दश्च नानावाद्यपुरः सङ्घः ।

चामरान्दोतनेधूपः पुष्पवृष्टिभिरेव च । ५१।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्नारियते स्म रथं प्रति ।

हवैः सुलक्षणदन्तिवलोवर्द्धेरयाणि वा । ५२।

पुरुषं विष्णुमकृतं वा जेतव्या ह्यप्रमादतः ।

प्रीणयित्वा जनं सर्वं मध्यभोज्यादितेपनैः । ५३।

रथस्योपरि देवेभ्यो बलिमन्त्रेणभोद्विजाः ।

बलिगृह्णन्तुभोदेवाभादित्यावयवस्तथा । १५५।

मरुतश्चाश्विनो रुद्राः सुपर्णाः पक्षगा ग्रहाः ।

असुरायातुधानाश्च रथस्यादचैव देवताः ५५।

दिवपाला लोकपालाश्चयेचविघ्नविनायकाः ।

जगतः स्वस्तिकुर्वन्तुदिक्तामहर्षयस्तथा । १५६।

इस भाँति वहाँ पर सुगतिष्ठित रथ में जो अच्छी तरह ने धूपित किया गया हो देव को विधि पूर्वक ब्रह्म घोष के (वेद इत्यादि के) उत्तम समारोहित करना चाहिए जय मञ्जुल घोषों से, अनेक भाँति के बाघों से, चमरों के झान्दोलनों से, धूप दानों से और पुष्पों की वृष्टियों से वह रथ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के द्वारा ले जाया जाता है अच्छे लक्ष्मणों वाले अश्वों, दमनशील बली बच्चों के द्वारा भी उस रथ का वहन किया जाता है । या विष्णु के परमभक्त जनों के द्वारा बिना प्रमाद के वे रथ वहन कर ले जाने चाहिए । भक्ष्य भोजन और लेपन आदि के द्वारा सब जनों को प्रसन्न करके रथ के ऊपर हे द्विजगण ! बलि के मन्त्र के द्वारा देवों को बलि देवे । हे देवगणों ! आदित्यों ! वसुगणों ! हे मरुद्गणों ! हे अश्विनीकुमारों ! रुद्रगणों ! सुपर्णों ! पक्षगणों ! ग्रह गणों ! असुरों ! यातुधानों ! और रथ में स्थित देवताओं ! दिवपालों ! भोक्ताओं ! विघ्न विनायकों ! दिव्य महर्षि गणों ! आप सब लोग इस जगत् का स्वास्ति (कल्याण) करिये । ॥१५०-१५६॥

अविघ्नमाचरन्त्वेतेमा सन्तु परिपन्थिनः ।

सोम्या भवन्तुतृप्ताश्चदेत्याभूतगणास्तथा । १५७।

ततस्तु नीयते देवः सभभूमौ समुच्चरन् ।

मन्त्रं वैष्णवगायत्री विष्णोः सूक्तं पवित्रकम् । १५८।

वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोत्र्यं रथस्तरैः ।

ततः पुण्याहघोषेणकृतवादित्रनिः स्वनम् ॥५६॥

दानैः शनैरयो नेयो रथःस्नेहात्तचक्रिणः ।

तत्रोत्पातान्प्रवक्ष्यामिरथेऽत्रद्विजसत्तमाः ॥६०॥

ईवाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽश्वे क्षत्रियक्षयः ।

तुलाभगे वैश्यभाषाः क्षम्या दूद्रभयं भवेत् ॥६१॥

धुराभगे त्वनावृष्टिः पीठभगे प्रजाभयम् ।

परचक्रागमं विद्याचक्रभगे रथस्य तु ॥६२॥

ध्वजस्य पतने विप्रा नृपोऽन्यो जायतेध्रुवम् ।

प्रतिमाभङ्गतायांतुराजोमरणमादिशेत् ॥६३॥

हे विप्रो ! यन्वस्त रथ मे ये परिपन्थी गण तब अविघ्नी को करे घोर घाँस्य हो जावें । तमस्त वैश्यगण घोर भूतगण वृत्त हो जावें । इसरु उपरान्त ममतल भूमि मे देव की साया जाता है । मन्त्र, वैष्णव गायत्री, पवित्र वैष्णव सूक्त, पवित्र वायु देव्यों, मनस्तोत्रों, रथन्तरी से घोर इससे उपरान्त पुण्याह घोष के द्वारा वादित्रों के निःस्वन पूर्वक भगवान् श्री के रथ को स्नेह से धीरे-धीरे से जाना चाहिए । हे द्विज सत्तमो ! यहाँ रथ पर जो उत्पात होते हैं उनकी मैं बतलाता हूँ । ईवा के भङ्ग हो जाने पर द्विजों को भय होता है, अश्व के भङ्ग होने पर दानियों को भय होता है । तुला के भंग होने पर वैश्यों का नाश होता है, क्षम्या के भङ्ग होने पर दूधों को भय होता है । रथ के धुरा के भङ्ग हो जाने पर अनावृष्टि होती है । पीठ के भंग होने पर प्रजा को भय होता है । रथ के भंग होने पर परचक्रागम जानना चाहिए । हे विप्रो ! ध्वज के पतन होने पर निश्चय ही अग्न्य नृप हुआ करता है । प्रतिमा के भंग होने पर राजा का मरण हुआ करता है ॥५७ ६१॥

पयस्ते तु रथे विप्राः सर्वजानपदक्षयः ।
 उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वपुभेषु च । ६४।
 बलिकर्म पुनः कुर्याच्छान्तिहोमं तथैवच ।
 ग्राह्याणां भोजयेद्भूयो दद्याद्वाघ्नानि च वहि । ६५।
 पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याऽग्निं प्रकल्पयेत् ।
 समिद्धिष्टं तमध्वाज्यमूलाग्राभिश्च होमयेत् । ६६।
 पालाशमिद्विजश्रेष्ठो मन्त्रराजेन दीक्षितः ।
 सोमायाऽग्नये प्रजाभ्यः प्रजानां पतये तथा । ६७।
 ग्रहेभ्यश्च ग्रहणो च दिक्पालेभ्यस्तद्व्यततः ।
 यत्र यत्र रथे दोषास्तत्र तत्र च दीक्षितः । ६८।
 जुहुयात्प्रतिष्ठामन्त्रेण विद्योपः सर्वतो भवेत् ।
 ग्राह्याणो सहितः कुर्याद्वामान्ते शान्तिवाचनम् । ६९।
 स्वस्ति भवतु विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यशः ।
 गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यस्तु भगतः शान्तिरस्तु वै । ७०।
 स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे ।
 श प्रजाभ्यस्तथैवाऽस्तु श तथाऽऽत्मनि चास्तु नः । ७१।
 शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुवः स्वः शिवं तथा ।
 शान्तिरस्तु शिवं चाऽस्तु सर्वतः स्वांस्तरस्तु नः । ७२।
 त्वं देव ! जगतः ऋषापोष्टाचैव त्वमेव हि ।
 प्रजाः पालय देवेश ! शान्तिकुशं जगत्पते । ७३।
 यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते ! ।
 दुष्टान्महास्तु विजायग्रहशान्तिं समाचरेत् । ७४।

हे विप्रगणो ! अशुभो के उत्पन्न होने पर तथा इस तरह के
 उत्पातो के होने पर बर्षास्त रथ मे सम्पूर्ण जनपदो का क्षय हुआ
 करता है । अतएव पुनः बलि वर्ध्म करना चाहिए तथा उसी भांति
 शान्ति होम करे । फिर ग्राह्याणों का भोजन कराना चाहिये यथा

प्रज्ञो का दान करना चाहिए । रथ के पूर्वोत्तर दिग्भाग में अग्नि की प्रवर्धना करे । घृत, मधु और समिधाओं से होम करना चाहिए । १६४।६५।६६। हे द्विज श्रेष्ठो ! मन्त्र राज की दीक्षा से संयुक्त होकर पलाश की समिधाओं से सोम के लिए—अग्नि, प्रजाजन, प्रजामों के पति, महर्गण, मह्मा और दिवपात्रो के लिए उसके अन्न में जहाँ-तहाँ पर रथ में क्षीप हो वही पर क्षीपित होकर प्रतिष्ठा मन्त्र से हवन करना चाहिए । सभी ओर विशेष होता है । ब्राह्मणों के सहित होकर होम के अन्त में शान्ति वाचन करना चाहिये । १६७।६८।६९। विप्रों का बह्मण होवे और निरथ हो राजा का मगल होवे, गौर्माँ का तथा प्रजा का बह्मण हो एवं सम्पूर्ण जगत् को शान्ति प्राप्त होवे । ७०। द्विपदों में निरथ हो शान्ति होवे तथा चतुष्पदों में शान्ति हो उषी भाँति प्रजामों को मगल होवे और हमारी आत्मा में शान्ति होवे । देव को शान्ति होवे तथा भूभुवः स्व. शिव हो । शान्ति हो और शिव हो । हमारा सभी ओर मगल होवे । ७१।७२। हे देवेभ्यः ! आप ही इस जगत् के स्रष्टा-पोष्टा हैं । हे देव ! आप इस प्रजा का पालन करें । हे जगत्पते ! आप शान्ति करें । हे भूपते ! जहाँ पर अक्षरण भूत पुष्टर के दुष्टग्रह हों उन्हें जानकर ग्रहशान्ति का समाचरण करें । ७३।७४।

२.—रथयात्रामहोत्सवविधिकथन

अतर्क्यं प्रवक्ष्यामि महाघेदी महोत्सवम् ।
 अशान्तिमिराम्घोऽपि येन भास्वत्पदं व्रजेत् । १।
 वंशास्रस्याऽमले पदो तृतीयापापनाशिनो ।
 स्वयमाविष्कृता चैवाप्राजापत्यक्षंसंयुता । २।
 तस्यां सपरूप्य नृपतिराचार्यवरये चतुर्भिः ।
 एकं प्रीनय तथा एण दृष्टकर्माणमादरात् । ३।
 घृणुमाद्वनमागवस्त्रान्सूरणादिभिः ।
 सप्तशालाढं वनं गत्वा साधुघृणगणानुनम् । ४।

तन्मध्ये बलिमाघायमन्त्रराजेनमन्त्रश्रित् ।

अष्टोत्तरशतंहुत्वासम्पाताज्यविमिश्रितम् । १५।

आज्यं तरूणां मूलेतुप्रत्येकमभिधारयेत् ।

दिनपालेम्योत्रलिदत्त्वाक्षेत्रपालपशूस्तथा । १६।

वनस्पतये जुहुयात्क्षीरोदनशताहुतिम् ।

ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै । १७।

श्री जैमिनि महर्षि ने कहा—इसके आगे मैं महावेदी के महोत्सव का वर्णन करता हूँ जिससे अज्ञान के तिमिर से अंधा भी पुरुष भास्कर के पद को प्राप्त कर लिया करता है । वैशाख मास के भ्रमर (शुक्ल) पक्ष में तृतीया तिथि पार्थी के नाश करने वाली हुमा करनी है । यह आजापत्य मक्षत्र से संयुक्त स्वयं ही आविष्कृत हुई है । उसमें मञ्जुला करके राजा आचार्य का वरण करे और परम शुचि होकर एक तीन तक्षाघो का भी वरण करे जिनका कि काम पहिले देख लिया गया हो । बहुत ही आदर के साथ वनयात्र के लिए वस्त्र तथा भोजन आदि से इनका वरण करना चाहिए । बहुत अच्छे वृक्षों के गण से सकुल वन में तक्षा के साथ गमन करे । उनके मध्य में मन्त्रवेत्ता को मन्त्रराज के द्वारा बलि का आधान करना चाहिए । वहाँ पर सम्पाताज्य से विमिश्रित आज्य की एक सौ आठ बार आहुतियाँ देवे । तक्षाघो के मूल में प्रत्येक को अभिधारण करे । दिक्पालों को बलि समर्पित करके तथा क्षेत्रपाल पशुघो को बलि देकर एक सौ आहुतियाँ क्षीरोदन की वनस्पति के लिये देवे । इसके अनन्तर वृक्षमूलों की दिक्षाघो में परशु ग्रहण करके नमन करना चाहिए । १२-७।

आज्यसंस्कृतिदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन् ।

किञ्चित्किञ्चित्छेदयेद्दं चिन्तयन्मरुदध्वजम् । १८।

नदस्सु तूर्यघोषेषु गीतमञ्जलवादिषु ।

नियोज्य वदन्किं तत्र आचार्यः स्वगृहं व्रजेत् । १९।

अथवास्थानलब्धानिदारुणिरथकर्मणि ।
 उक्तसस्कारविधिनासस्कुर्यात्कल्पितेऽनले ॥१०॥
 आरभेत रथ कृत्वा विघ्नराजमहोत्सवम् ।
 षोडशारैः षोडशभिश्चक्रैर्लोहमयेर्दंढैः ॥११॥
 युक्त विष्णो रथ कुर्याद्दृढाक्षं दृढकूबरम् ।
 विचित्रघटनाकक्षपुशालीपरिवेष्टितम् ॥१२॥
 नानाविचित्रबहुलमिधुस्रण्डविराजितम् ।
 चतुस्तोरणसयुक्त चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१३॥
 नानाविचित्रबहुल हेमपट्टविराजितम् ।
 द्वाविंशतिकरोच्छ्राय पताकाभिरलङ्कृतम् ॥१४॥

भाचार्य्यं घर को प्राण्य से सस्कृति सम्पन्न देशों में मन्त्र का उच्चारण करते हुए भगवान् बहदम्बन की चित्ता करते हुए कुछ कुछ छेदन करना चाहिए । ८। तूयों की ध्वनियों के बजने पर गीत भगलों के होने पर वहाँ पर बसों की नियुक्त करके अचाट्य पर को अपने घर पर चले जाना चाहिए । ९। प्रथवा रथ के कर्म में स्थान में प्राप्त काष्ठों का उक्त सस्कार विधि से बलिगत मनस में सस्कार करे । रथ को बना कर विघ्न राज के महोत्सव का समारम्भ करना चाहिए । सोलह प्रारम्भों वाले लोहमय मध्य त सुदृढ सोलह चक्रों (पहिए) वाले दृढाक्ष और सुदृढ कूबर रथ भगवान् का बनवावे । वह रथ विचित्र घटना कक्ष और पुत्तलिकाओं से परिवेष्टित होना चाहिए । वह अनेक प्रकार की विचित्र बाहुल्यों से समन्वित तथा इधु दण्ड से शोभित होवे । चार तरफों वाला, चार द्वारों से युक्त, मध्यन्त शोभन, नाना मदभुज यस्तुमों की बहुसंख्या से सयुक्त, हम परले विराजित बनवाने यह रथ यत्तीस हाथ ऊँचाई वाला और पताकाओं से समनद्भुत हो ना चाहिए

गारुडं च ध्वजं कुर्याद्रक्तचन्दननिर्मितम् ।
 दीर्घनासंस्थूलदेहंकुण्डलाम्बाविभूषितम् ॥१५॥
 चञ्चलप्रदण्डभुजगसर्वालङ्कारभूषितम् ।
 वितत्य पद्मतीव्रयोम्नि उड्डीयन्तमिवोदितम् ॥१६॥
 दैत्यदानवसङ्घस्य बलदर्पविनाशनम् ।
 सर्वाङ्गं तस्य कनकैराच्छाद्य परिशोभयेत् ॥१७॥
 रथमेव हरेः कुर्यात्स्वासनं सुपरिष्कृतम् ।
 चतुर्दशरथाङ्गैस्त रथं कुर्याच्च सीरिणः ॥१८॥
 चक्रैर्द्वादशभिः कुर्यात्सुभद्रायारथोत्तमम् ।
 सप्तच्छदमयं कुर्यात्सीरिणोलाङ्गलध्वजम् ॥१९॥
 देव्याः पद्मध्वजं कुर्यात्पद्मकाष्ठविनिर्मितम् ।
 विरचय रथाग्राजाप्रतिष्ठा पूर्ववच्चरेत् ॥२०॥
 यथामन्त्रं यथाशास्त्रविश्वसेद्ब्राह्मणेषु च ।
 ब्राह्मणाजगदीशस्यजङ्गमास्तनवः स्मृताः ॥२१॥

रक्त चन्दन से निर्मित गारुड ध्वज करे, दीर्घ नासा वाले, स्थूल
 देह वाला और कुण्डलो से विभूषित होना चाहिए ॥१५॥ यह गारुड ऐसा
 घनावे जो अपने पक्षों को फैला कर आकाश में उड़ान भरता हुआ सा
 प्रतीत होता हो । दैत्यो और दानवों के सङ्घ के बड़ के दर्प को विनष्ट
 कर देने वाले उसके सर्पाङ्ग को सुवर्ण से समाच्छादित करके परिशोभित
 करे । जिसका अपना आसन सुपरिष्कृत हो ऐसा ही थी हरि के रथ का
 निर्माण करावे । बलभद्र जी के रथ की चौदह रथाङ्गों से युक्त निर्मित
 कराना चाहिए । सुभद्रा देवी के रथ की बारह चक्रों (पहियों) से युक्त
 बनवाना चाहिए । सीरी के साङ्गल ध्वज को सप्त छदमय बाधावे । देवी
 सुभद्रा के पद्म ध्वज को पद्म के काष्ठ से निर्मित कराना चाहिए । इस
 तरह से इन तीनों रथों की विशेष रूप से रचना कराकर राजा का
 मर्त्य्य है कि पूर्व की ही भाँति इनकी प्रतिष्ठा करावे । मन्त्रों और

शास्त्रो के ही अनुसार ग्राहणो मे विश्वास करे । ये ग्राहण भगवान् जगदीश्वर के साक्षात् जगम शरीर ही बननाये गये है । ११६।१७।१८। ११६।२०।२१।

इत्थं सुघटितं चक्रित्रयं देवत्रयस्यैव ।
आपादस्य सिते पक्षे दिने विष्णोः शुभप्रदे । २२।
प्रतिष्ठाप्य समृद्धेन विधिना पूर्ववद्विजाः ।
रक्षणीयं तथा तत्र नाऽऽरोहेत्कश्चनाऽशुभः । २३।
पक्षो वा मानुषो वाऽपि मार्जारिनकुलादयः ।
ततो दिनत्रयादवाप्रयानामुत्तरे कृते । २४।
मण्डपे उत्सवाङ्गे वा प्रकुयादङ्कुरार्पणम् ।
अद्भुतेष्वथ जातेषु क्षान्तिं कुर्यात्पुनरोदिताम् । २५।
रथ्यासु सस्कृताकार्या महावेदी तथा श्रेणु ।
पार्श्वयोर्मण्डलं कुर्यात्पयिगुल्मादिभिः फलैः । २६।
सुमनः स्तवकैर्मर्त्यैर्दुःकृतैश्चामरैस्तथा ।
यथा सुपृष्पिताऽरण्याराजी तत्र विराजते । २७।
भूमिः समा च कार्या वै निष्पङ्का सुखचारणा ।
निर्मला च सुगन्धा च सुदूराद्वजितोत्करा । २८।

इस रीति से भली भाँति निर्मित कराये गए तीन देवों के तीन रथ जब तयार हो जायें तो आपाद भास के सित पक्ष मे भगवान् विष्णु के शुभ प्रद दिन में है द्विजो । पूर्व की ही भाँति समृद्ध विधि से प्रतिष्ठा करके वहाँ पर पूरी सावधानी से रखा करनी चाहिए उन पर कोई अशुभ समारोहण न करे । चाहे वह कोई पक्षी हो, मनुष्य हो, मार्जार हो अथवा न कुल प्रभृति कोई भी हो । इसके पश्चात् तीन दिन पहिले ही रथों के उत्तर मे किए हुए मण्डप में अथवा उत्सवस्थल मे अङ्कुरार्पण करें । इसके अनन्तर अद्भुत होने पर पहिले शान्ति करनी चाहिए । रथ्या को सुन्दर सस्कार से युक्त करे फिर महावेदी पर गमन

करे । दोनों पादों भागों में मण्डल की रचना करे । मागों में गुल्मादि से, कर्णों से, पुष्पों के गुच्छों से, मालाओं से, वस्त्रों से तथा चामरों से ऐमा बना देवे जैसे कोई सुन्दर पुष्पों में युक्त वन की राजि ही वहाँ विराजमान होवे । यहाँ की भूमि समतल, पङ्क से रहित ; भीर सुव पृथक् संवरण करने वाली बना देनी चाहिए जो एकदम निर्मल, सुन्दर गन्ध से युक्त और दूर तक कूड़े-कण्ट से पूर्णतया रहित होवे । १२। १३। १४। १५। १६। १७। १८।

धूपपात्राण्यनुपदं दिशांमोदकराणि च ।
चन्दनाम्भः परिक्षेपो यत्रपातोत्करस्तथा । १९।
यहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्पवृण्टचर्ममेव हि ।
नटनत्तंकमुखाश्च गायना बहवस्तथा । २०।
बह्वी बहुधा तत्र पताकाश्चित्रितान्तराः ।
ध्वजाश्च बहवस्तत्र स्वर्णराजतनिर्मिताः । २१।
वैजयन्त्यो बहुविधाभूमिगावाहनास्तथा ।
हस्तिनश्चहयाश्चैवमुसध्रटाः स्वसङ्कृताः । २२।
एवं सम्भूतसम्भारः क्षितिपातः घुचिप्रतः ।
मुदा भनत्पात्रं परया मृतः कुर्वाणोऽहोरात्रम् । २३।
आपाटस्य सिते पक्षे द्वितीयापुष्पसमुत्तमा ।
अदलोदयवेलायां सस्यां देवं प्रपूजयेत् । २४।
ब्राह्मणैर्वैष्णवैः साद्धै यतिभिश्च तपस्विभिः ।
विशापमेददेवदेव्यानामेवंकृताह्वानिः । २५।

दिशाओं में घामोद देने वाले पूरा पात्र अनुपद रहें पादन के पत्र का परिधेर हो और यत्रपात्र का उत्तर भी होवे । पुष्पों की वर्त्ता करने के लिए ऋतु पुष्पों मणिक माला में जातु पुष्प रहें चाहिये । नट तथा मृत्य करने वाले मनु मयन और घटन में गायन करने वाले जन भी वही पर रहें । हर मोक्षर तथा घनकुओं के विभूति एवं

धीवन के गवः से समन्वित वेष्टाएँ भी उस उत्सव में रहें । अनेक प्रकार के वाद्य जैसे मृदंग, पणव, भेरी और ढक्का आदि वहाँ हों । जिनके अन्तर चित्रित हों ऐसी बहुत प्रकार की बहुत सी पताकाएँ होनी चाहिए । सुवर्ण और रजत (चाँदी) से निर्मित की हुई वहाँ पर प्रविकसिता में प्रज्वाले हों, ज्वलन्ती हों और अनेक तरह के भूमि में गमन करने वाले वाहन भी वहाँ पर रहने चाहिए । हाथी और अश्व सुमग्न एवं भली भाँति समझूत हों । इस प्रकार से सम्भृत सम्भार वाले तथा शुचि व्रत से संयुक्त राजा को बड़ी ही प्रसन्नता और पराभक्ति साथ इस महोत्सव को करना चाहिए । प्रायाग मास के शुक्ल पक्ष में जब द्वितीया तिथि पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन प्रहोदय की वेला में उसमें देव की प्रकृष्ट रूपा से पूजा करे । ब्राह्मण, वैष्णवजन, यति वर्ग और तपस्विनों के साथ संस्काञ्जलि होकर यात्रा के लिए देशों के भी देव प्रभु की सेवा में विज्ञापित करे । २६।
॥३०॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥

२७—भगवदाः शयनोत्सवविधिवर्णन

अतः परम्प्रवक्ष्यामिशयनोत्सवमुत्तमम् ।
अपादोमर्वाधि कृत्वा हरेः स्वापस्तुर्ककटे । १।
वापिकांश्चतुरो मासाग्यावत्स्यात्कार्तिकी द्विजाः ।।
अयं पुण्यतमः कालो हरेराराधनम्व्रति । २।
काश्यां बहुयुगं वासाघ्नियमव्रतसंस्थितः ।
फलं यदुक्तं तद्विद्यात्क्षत्रे श्रोतुं पुण्योत्तमे । ३।
चातुर्मास्यदिनेकेन वसतः सन्निधौ हरेः ।
वापिकाणां चतुर्णां तु याग्यहानिवसन्नेवेत् । ४।
पुण्यक्षेत्रे जगन्नाथसन्निधौ निर्मुक्तान्तरे ।
प्रत्यक्षं वाजिमेघस्य सहस्रस्य लभेरफलम् । ५।

स्नात्वा सिन्धुजले पुण्ये दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।

चातुर्मास्यव्रतेतिष्ठन्नशोचतिकुतश्चन ॥६॥

चातुर्मास्ते निवसति क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।

साक्षाद्दृष्टिर्भगवतस्तद्वयं मुक्तिसाधनम् ॥७॥

महर्षि जैमिनि ने कहा—इससे आगे मैं भगवान का भक्त्युत्तम शपथोत्सव का वर्णन करूँगा । आपाढी भवधि को करके कर्कट में श्रीहरि का स्वाय होता है । हे द्विजगण ! ये वर्ष में चार मास होते हैं और जब तक कार्तिकी होती है तब तक ये मास हुमा करते हैं । यह भगवान श्रीहरि की आराधना करने का परम पुण्यत काल हुमा करता है । ॥१२॥ निधमो और व्रतों की संस्थिति वाले पुरुष को काशी पुरी में बहुत युग पर्यन्त निवास से जो पुण्य फल होता है और बताया गया है वह इस श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र के निवास करने जानना चाहिये । चातुर्मास्य के एक ही दिन तक श्रीहरि की सन्निधि में निवास करने वाले को दायिक चार मासों के जितने दिन होते हैं उनमें वास करते हुए बिताने चाहिए । इस निर्मल अन्तर वाले परम पुण्य क्षेत्र में श्री जगन्नाथजी की सन्निधि में निवास करने वाले पुरुष को प्रत्यक्ष एक सहस्र पद्ममेघ यज्ञों का पुण्य-फल प्राप्त हुमा करता है । सिन्धु के जल में स्नान करके जो परम पुण्य पूर्ण है और श्री पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन करके जो चातुर्मास्य के व्रत में स्थित रहता है वह कही भी शोक से मुक्त नहीं हुमा करता है । जो चातुर्मास्य में श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास किया करता है उस पर भगवान का साक्षाद् दृष्टि होती है और वह मुक्ति का परम साधन होता है । ३—७।

तस्मात्सर्वाणि सन्त्यज्य श्रोतस्मार्त्तानि मानवः ।

प्रयत्नान्निवसेत्पुण्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥८॥

भोगिभोगान्ने सुमश्नातुर्मास्येषु ये प्रभुः ।

सयंक्षेत्रेषुसाध्निर्ध्यानकरोति जगद्गुरुः ॥९॥

अत्र साक्षान्निवसति यथा वैकुण्ठवेश्मनि ।
 द्वादशास्वपि मासेषु भगवानत्र मूर्तिमान् ।१०।
 मुक्तिदञ्चक्षुषा दृष्टश्चातुर्मास्ये विशेषतः ।
 अष्टमासनिवासेन दृष्ट्वा विष्णुं दिने दिने ।११।
 यदाप्नोति फलं तद्धि चातुर्मास्यदिनंकतः ।
 चातुर्मास्यनिवासेन क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।१२।
 दिनं दिनं महापुण्यं सर्वक्षेत्रनिवासजम् ।
 फलं ददाति भगवान्क्षेत्रे वर्षनिवासित ।१३।
 सूर्यपापप्रसक्तोऽपि सर्वाऽऽचारपुतोऽपि च ।
 सर्वधर्मबहिर्भूतो निवसेत्पुरुषोत्तमे ।१४।
 चातुर्मास्यमर्थकं यः कुर्याद्वा पापकृत्तरः ।
 विहाय सर्वपापानि बहिरस्तत्र निमलः ।
 नरसिंहप्रसादेन वैकुण्ठमवमं व्रजेत् ।१५।

इसलिए समस्त श्रोत और स्मार्त साधनों का परिचय करके भक्तों को चाहिये कि वह प्रवृत्तपूर्वक परम पुण्यमय श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में ही जाकर शयन कल्याण प्राप्त करने के लिए निवास करे । ॥ शेष की शायदा पर चातुर्मास्य में शयन करने वाले प्रभु जगत् गुह्य भग्य समस्त क्षेत्रों में साभिप्राय नहीं किया करते हैं । यही एक स्वयं ऐसा है जहाँ पर वैकुण्ठ के घर की भाँति वे साक्षात् निवास किया करते हैं यहाँ वर्ष के बारहों मासों में भगवान् मूर्तिमान् निवास किया करते हैं और भगने तैर्त्रों से दर्शन करने जाने की मुक्ति प्रदान करने वाले होते हैं और चातुर्मास्य में विशेष रूप से कृपा किया करते हैं । अन्य वर्ष के साठ मासों में प्रतिदिन विष्णु के दर्शन करने से जो फल प्राप्त होता है वह चातुर्मास्य के केवल एक ही दिन में दर्शन करने से हूँसा करता है । श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में चातुर्मास्य के निवास से दिन-दिन में समस्त क्षेत्र में निशम से समुत्पन्न महा पुण्य हुआ करता है । वर्ष भर निवास

से क्षेत्र में भगवान् फल देते हैं । सब पापी विप्रसक्त भी, समस्त घावार से ऋत भी सब घर्मों से बहिर्भूत भी जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में एक चातुर्मास्य में पापकारी निवास करता है वह सब पापों को त्याग-कर बाहिर भीतर से निर्मल होता हुआ नरसिंह के प्रसाद से वैकुण्ठ भवन में गमन किया करता है । १८—१५।

तस्मान्नरः सर्वभावेर्विष्णोः शयनभावितान् ।
 वापिकाश्चतुरोमासांशिवसेत्पुरुषोत्तमे । १६।
 कुर्यादश्वत्थं वा कुर्याज्जन्मसाफल्यमृच्छति । १७।
 आपादशुक्ललोकादस्या कुर्यात्स्वापमहोत्सवम् ।
 मण्डपं रचयेत्तत्र शयनागारमुत्तमम् । १८।
 देवस्य पुरतः शय्यारत्नपत्यङ्घ्रिकोपरि ।
 स्वास्तोयं सोपधानात्तु गृध्रवीनोत्तरच्छदाप् । १९।
 कर्पूरधूलिविक्षितासाधुचन्द्रातपाशुभाम् ।
 सर्वतोवेष्टितास्त्रिरहिता चन्द्रनोक्षिताम् । २०।
 साधुद्वारा समा स्निग्धा नानाचित्रोपशोभिताम् ।
 एकं स्वापगृहं कृत्वा निशीथे प्रतिमात्रयम् । २१।
 एह्य हि शयनागारं सुखमत्र स्वप प्रभो ! ।
 इति सम्प्रार्थ्य देवेश स्वापयेत्पुरुषोत्तमम् । २२।
 सुदृढबन्धयेद्द्वारं विष्णोः शयनवेदमनः ।
 स्वापयित्वाजगन्नाथं लभते सुखमुत्तमम् । २३।
 वापिकाश्चतुरोमासान्प्रसुप्ते वै जनार्दने ।
 व्रतैरनेकं नियमैर्मासान्वै चतुरः क्षिपेत् । २४।

इसलिए मनुष्य को सब प्रकार के माधो से भग विष्णु के शयन से भावित वापिक चार मास तक उस श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करना चाहिए । भय कुछ करे भयवा न करे यदि मानव-जीवन की

सफलता चाहता है तो यह श्रवण ही करना चाहिए ११६-१७। प्रापाड शुक्ल पक्ष की एकादशी में इस स्वाय के महोत्सव को करे। वहाँ पर मंडप की रचना करे और उत्तम शयनागार की रचना भी करनी चाहिए। देव के प्राये एक रत्न निर्मित पल्पङ्किका के ऊपर शय्या रखे। उस पर सुन्दर आस्तरण बिछाकर उपधान रखे और अत्यन्त मृदु बारीक उरारच्छद रखे। वह शय्या कर्पूर की धूलि से रक्षित करे तथा साधु चन्दानप वाली बनावे। सब ओर से वेष्टित और छिद्रों से रहित एवं चम्बन से उक्षित करे। उस शय्या में एक बहुत अच्छा द्वार बनावे। शय्या सम, स्निग्ध और अनेक चिह्नों से उपशोभित निर्मित करावे। ऐसा एक, द्वाय गृह बनाकर निजीय में (अथ रात्रि में) तीनों प्रतिभाओं का शयन कराना चाहिए। वहाँ पर शयना करे—हे प्रभो ! इस शयनगार में प्रायः पदार्पण कीजिये और वहाँ पर प्रायः सुखपूर्वक शयन कीजिए। बात तरह से अच्छी तरह शयना करके देवेश, धीपुरुषोत्तम प्रभु को वहाँ पर शयन करावे। वहाँ के द्वार को सुदृढता से बन्धित कर देवे जिसमें कि भगवान् विष्णु का शयन वैरम (गृह) हो। इस प्रकारसे भगवान् अगन्नाथ को सुलाकर परमोत्तम सुख को मनुष्य प्राप्त किया करता है वर्ष में चार मास पर्यन्त भगवान् जन्मदिन के प्रसृत हो जाने पर अनेक नियमों तथा श्रवणों के द्वारा वही पर चार मासों को व्यतीत करना चाहिये ११८-१२४।

कल्पस्यायीविष्णुलोनेनरोभक्तोभवेदध्रुवम् ।

नियमग्रतानि नदतः शृणुष्वमुतयो मम ॥१२॥

पञ्चस्रष्ट्वादशयन वर्जयेभक्तिमाश्रयः ।

अनृत्ती न व्रजेद्भार्या मास मधु परीदनम् ॥१३॥

राजगोपयतीत्यक्त्वा नाऽऽरोहेच्चर्मपादुके ।

वायिकाश्रमुरो मासान्नतेन नयेद्यदि ॥१४॥

जो ऐसा करता है वह मनुष्य विष्णु लोक में एक कल्प तक स्थित रहता है और वह नर निश्चिन रूप से परम भक्त होता है । जो नियम एवं व्रत मँने बतलाये थे उनको भी अब हे मुनिगण ! मुझसे थवएँ कर लो । भक्तिमान् मनुष्य को मन्त्र और खट्वा आदि का शयन घर मास पर्यन्त त्याग देना चाहिये । ऋतुकाल के बिना कभी भी भार्या का गमन न करे । मधु, मांस और पराश्र को त्याग देवे । राज गोप पत्नियों का त्याग करके पमड़े के जूते न पहिने चार मास तक इसी तरह के व्रतों से रहना चाहिये । २५-२७।

तस्य पापस्य शास्त्यर्थं कार्तिके वा व्रती भवेत् । २८।

नमः कृष्णाय हरये केशवाय नमोनमः ।

नमोस्तु नारासिहाय विष्णवे पापजिष्णवे ।

सायम्प्रातर्दिवामध्ये कर्मान्तेषु च योजयेत् । २९।

तस्य पापानि घोरानि चितानि बहुजन्मसु ।

निर्दह्येय सर्वाणि तूलराशिमिवानलः । ३०।

एकाहारो यताहारो विष्णुनिर्माल्यभोजनः ।

आसाढीमर्वाधिकृत्वा कार्तिक्यवधियो भवेत् । ३१।

नक्तभोजी भवेद्दार्पि स्वर्गस्तस्याऽल्पकं फलम् । ३२।

उस पाप की क्षान्ति के लिए भयवा कार्तिका मास में इस रीति से व्रतों वाला होकर रहे । २८। श्रीकृष्ण हरि केशव के लिए बारम्बार नमस्कार है । नारासिंह, विष्णु पापों को जीतने वाले प्रभु के लिए बारम्बार नमस्कार है । इसको सायंकाल, प्रातःकाल और दिवा के मध्य में कर्मान्तों में इस मन्त्र का योजन करना चाहिए । २९। ऐसा करने वाले पुरुष को बहुत जन्मों में संचित पर घोर पापों का भी निःशेष रूप से दहन हो जाया करता है । ये समस्त ऐसे जलकर मस्म हो जाया करते हैं । जैसे सुइ के ढेर को अग्नि जला दिया करता है । एक समय में

आहार करे, नियत भोजन करे, भगवान विष्णु के निर्मल्य का ही भोजन करे । इस तरह से आषाढ मास की एकादशी की अवधि से कार्तिक मास की एकादशी की अवधि तक करना चाहिये प्रभवा केवल एक ही बार रात्रि में भोजन किया करे तो उस पुरुष के लिए स्वर्ग का वास प्राप्त होना तो बहुत ही स्वल्प फल होता है । ३०—३२।

२८—भगवत-प्रसादनिर्मल्यादिमहात्म्यवर्णन

इतिदत्त्वावरंतस्मैश्वेतराजायवैपुरा ।
जगामाङ्गन्तर्हितोविप्राः प्रासादान्तः स्थितोहरिः । १।
समस्तजगदाद्याश्रीः सृष्टिस्थितिबिनाशकृत् ।
वैष्णवीशक्तिरतुलाविष्णुदेहाद्द्वंद्वहारिणी । २।
सुघोषं सुपववाध्रं भुङ्क्ते नारायणः प्रभुः ।
तदुच्छिद्योपभोगो हिसर्वापक्षयकारकः । ३।
नतादृशस्मंपुण्यंनस्त्वस्तिपृथिवीतले ।
[प्रायश्चित्तशेषाणाम्पापानांपरिकीर्तितम् । ४।
भगवत्पादपद्मानुप्रेक्षणोपासनादिभिः] ।
पापसंस्कार कर्तृणा सम्पर्कान् न दुष्मति । ५।
पद्मायाः सन्निधानेन सर्वे तेषुचयः स्मृताः ।
विष्णुबालवगततद्धिनिर्मल्यंपतितोदयः । ६।
स्पृशन्नन्यन्नं न दुष्टंतद्यथाविष्णुस्तथैव तत् ।
स्रतस्याविधवाञ्चैवसर्ववर्णाश्चमास्तथा । ७।

महर्षि जैमिनी ने कहा—हे विप्रगण ! इस तरह से पहिले समय में उस श्वेतराज के लिए इस प्रकार से बरदान देकर आसाद के आन्दर स्थित श्री हरि अन्तर्हित होकर चले गये थे । १। समस्त इस जगत् की माया और मृष्टि, स्थिति और विनाश के करने वाला, अनुमा वैष्णवी शक्ति भगवान विष्णु के देहार्थ की कारण करने वाली है । २।

नारायण प्रभु सुधा के समान और सुपक्व भक्ष को खाया करते हैं । उनके उच्छिष्ट का उपभोग ही समस्त भक्षों के क्षय को करने वाला होता है । इस पृथिवी में उसके समान पुण्य वस्तु अन्य नहीं है । यह श्रीभगवान के प्रासाद का उपभोग समस्त पापों का प्रायश्चित्त कहा गया है । ११।४। श्री भगवान के चरण कमलों का अनुप्रेक्षण और उपासना आदि से पापों के सत्कार करने वालों के सम्पर्क से भी कोई दोष नहीं लगा करता है । ५। भगवती पद्मा के सन्निधान से वे सब शुद्धि ही कहे गये हैं । भगवान विष्णु के आलय में रहने वाला वह निर्माल्य है उसको जो पतित आदि पुरुष स्पर्श किया करते हैं वह भक्ष दुष्ट नहीं होता है और जैसे विष्णु हैं वैसे वह भी होता है । अतो मे स्थित चाहे विधवा हो या किसी भी वर्ण में स्थित रहने वाले तथा किसी भी आश्रम में स्थित हों उस प्रासाद के खाने से पवित्र हो जाया करते हैं । १५।६।७।

तत्प्राशनेन पूयन्ते दीक्षिताश्चाग्निहोत्रिणः ।
 द्रविद्र. कृपणो वाऽपि गृहस्थ. प्रभुरेववा । ८।
 स्वदेश्याः परदेश्या वा सर्वे तत्र समागताः ।
 नाभिमानप्रकुर्वीरन्विष्णोर्निर्माल्यभक्षणे । ९।
 भवत्या लोभात्कोतुकाद्वा क्षुधासशमनेन वा
 आकण्ठभक्षिततद्वि पुनाति सकलाहसः ।

सर्वरोगोपशमनं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्
 दारिद्र्यचहरणं श्रेष्ठं विद्यायुः श्रीप्रदं शुभम् । १०।
 पक्षपातो महास्तत्र विष्णोरभिततेजसः ।
 निगदन्ति ये तदमृतं मूढाः पण्डितमानिनः । ११।
 स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते ताऽपराधिनः ।
 येषामत्र स दण्डश्चेदघ्नुवाते पाहि दुर्गति । १२।

कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे ।

न विक्रयः क्रयो दाऽपि प्रशस्तस्तस्य भो द्विजाः ! ११३।

निर्माल्य जगदीशस्य नाऽशित्वाऽऽनामि किञ्चन ।

इति सत्यप्रतिज्ञो यः प्रत्यहं तच्च भक्षयेत् ॥१४॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः शुद्धान्तः करणो नरः ।

॥ शुद्धं वैष्णवस्थानं क्रमाद्यातिन संशयः ॥१५॥

उस महा प्रसाद के प्राप्ति करने से दीक्षित और भगिन होनी पवित्र हो जाते हैं । दरिद्र हो या कृपण हो, गृहस्थ हो या प्रभु हो, अपने देश के रहने वाले हो या किसी दूसरे देश के निवासी हो सभी वहाँ पर समागत हुए हैं वहाँ पर विष्णु के निर्माल्य के भक्षण करने में अपने जाति वंश और पद आदि अभिमान नहीं करना चाहिए । ॥१३॥ महा प्रसाद की शक्ति से, उदर पूर्ति के लोभ से अथवा क्षुधा के निवारण करने के कारण से किसी भी तरह से वृष्ट पर्यन्त भक्षण किया हुआ वह महा प्रसाद (जगन्नाथ जी का प्रसादी भात) सब प्रकार के पापों से मुक्त कर पवित्र कर दिया करता है । यह सब रोगों का उपशमन करने, बाला, पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाला, दरिद्रता को दूर भगा देने वाला, विद्या, धान्य और श्री की प्रदान करने वाला परम श्रेष्ठ एवं शुभ होता है । १०। अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का वहाँ पर महान् पक्ष-पात है । जो लोग उस समुद्र की निम्ना क्रिया करते हैं वे महान् मूढ़ और पण्डित भावी हुमा करते हैं । स्वयं उनके लिए प्रभु रण्ड घर होते हैं और उनके अपराधों को वे सहन नहीं किया करते हैं । शिनरी यही पर तो वह दण्ड होता है और उनकी निश्चित ही दुर्भति हुमा करती है । ११। १२। वे लोके अत्यन्त धीर कुम्भी पाक नामक नरक में जो अत्यन्त दारुण होता है यातनाएँ भोगा करते हैं । हे द्विजगण ! उस महा प्रसाद का क्रय अथवा विक्रय भी प्रशस्त नहीं हुमा करता है । जगदीश के निर्माल्य को भक्षण करके अग्न्य कुछ भी नहीं खाऊंगा — इस

तरह से सत्य प्रतिज्ञा वाला जो होता है और जो प्रतिदिन उसका ही भक्षण किया करता है वह शुद्ध भन्तः करण वाला मनुष्य सभी तरह के पापों से विनिर्मुक्त हो जाता है तथा वह क्रम से परम शुद्ध वैष्णव स्थान को गमन किया करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ११। १४। १५।

चिरस्थमपि संशुक्लं नीतं वा दूरदेशतः ।
 यथातथोपयुक्तं तत्सर्वं पापापनोदनम् । १६।
 कुबकुरस्य मुखाद्भ्रष्टं नदन्नं पतितं यदि ।
 ब्राह्मणेनाऽपि भोक्तव्यमितरेषातुकाकथा । १७।
 उत्तोष्य तिष्ठता वाऽपि नोपवासं च कुर्वता ।
 अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन् ।
 प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नाऽत्र कार्या विचारणा । १८।
 न वेद्यान्नं जगदभक्तुं गङ्गां चारि समं द्वयम् ।
 दृष्टेः स्वर्गादिसम्प्राप्तिर्भक्षणाच्चाऽप्यनाशनम् । १९।
 जगद्धात्र्या हि यत्पक्वं वैष्णवेऽनौ सुप्तं स्फुटे ।
 भुङ्क्वतेऽन्वहं चक्रपाणियुग्ममन्तरादिषु । २०।
 सप्तदीपधरामध्ये सान्निध्यं नेदृशं हरेः ।
 यादृशं नीलगोत्रेऽस्मिन्व्याजमानुषचेष्टितम् । २१।

बहुत अधिक समय तक रहा हुआ, भली भाँति सूखा हुआ, दूर देश से लाया हुआ और जैसे-तैसे भी प्राप्त होने वाला वह श्री जगदीश भगवान् का महा प्रसाद सब पापों का अपनोदन करने वाला होता है । यदि वह भक्त कुबकुर के मुख से भी भ्रष्ट होकर पतित हो गया हो तो भी उसको ब्राह्मण के द्वारा खा लेना चाहिए अन्यो की वो बात ही क्या है । उपवास करके स्थित रहने वाले तथा उपवास न करने वाले को उसका भक्षण करना चाहिए । अशुचि हो भयवा आचार से हीन हो तथा मन से पापों का समाचरण करने वाला हो किसी भी दशा में क्यों न स्थित हो जैसे ही श्री जगदीश प्रभु का महा प्रसाद प्राप्त हो

यों से ही तुरन्त ही उसका भक्षण कर डालना चाहिए—इसमें तनिक भी विचारणा नहीं करे । १६।१७।१८। जगत् के स्वामी का नैवेद्यान्न घोर गङ्गा का जल ये दोनों ही समान होते हैं । इनके दर्शन मात्र से स्वर्ग प्रादि लोको की प्राप्ति होती है । और इनके भक्षण करने से मोक्षों का नाश हुआ करता है । सुसंस्कृत वैष्णव अग्नि में जिसको जगत् की पात्री के द्वारा गव्व किया गया है और युग मन्वन्तरादि में जिसको भगवान् चक्रमणि स्वयं खाते हैं । इस सात द्वीपो वाली घरा के मध्य में ऐसा श्री हरि का साक्षिष्य नहीं है जैसा कि इस नील गोत्र में भगवान् का ध्याज मानुष चेष्टित है अर्थात् मानव शरीर धारण करके एक बहाने से जैसी भीताएँ यहाँ पर की हैं । १९।२०।२१।

दारुणं परब्रह्म सर्वचाक्षुषगोचरम् ।
 प्रकाशते भो मुनयो न दृष्टं न श्रुतं क्वचित् । २२।
 तस्मै प्रवृत्तिरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
 प्रवृत्तिरूपा शक्तिः श्रीः प्रवर्तयति यद्विः । २३।
 तदवनाति जगन्नाथस्तच्छेद्यं दुरितापहम् ।
 किमत्र चित्रभो विप्रायदुक्तं मुक्तिकारणम् । २४।
 नाऽल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते ।
 वेदाचारप्रधानेषु युगेष्वेतत्प्रकीर्तितम् । २५।
 महिमानं न वेदास्य विशेषाच्छ्रूयता कलौ ।
 घोरे कलियुगे तस्मिन्निपादो धर्मविप्लवः । २६।
 धर्मः स्यादेकपादस्तु क्वचित्तस्य भयाच्चरेत् ।
 सर्वेऽनृतप्रधानाहि दाम्भिकाः शठवृत्तयः । २७।
 प्रायश्च धर्मविमुखा जिह्वोपस्थपरायणाः ।
 न प्यायन्ति तपस्यन्ति व्रतयन्ति कदाचन । २८।

हे मुनि गणो ! दारु (बाछ) के स्वरूप में साक्षात् पर ब्रह्म यहाँ पर सबके चक्षुषों के द्वारा प्रायशः दर्शन देने वाले हैं और प्रकाश

वाले हो रहे हैं—ऐसा कहीं पर भी न कभी देखा ही है और न कहीं पर श्रवण ही किया है । २२। उस प्रवृत्ति के स्वरूप वाले परमात्मा ब्रह्म के लिए प्रवृत्ति स्वरूप वाली शक्ति थी जिस हवि को प्रवृत्त किया करती है । उसी को श्री भगन्नाथ प्रभु भक्षण किया करते हैं । उसका जो शेष है वह, पापों को अपहरण करने वाला है । हे विप्रगण ! इसमें क्या अद्भुत बात है जिसको मुक्ति प्रदान कर देने वाला कारण कहा गया है । जो अति स्वल्प पुण्य वाले पुरुष होते हैं उनका उसमें विश्वास ही नहीं हुआ करता है । वैदाचार प्रधान युगों में यह प्रकीर्तित है । इस कलियुग में हमकी महिमा नहीं जानते हैं और विशेष रूप से सुनिये । इस महान् घोर कलियुग में त्रिषाढ धर्म का विप्लव होता है अर्थात् धर्म के तीन षाढ होते ही नहीं हैं । २३। २४। २५। २६। धर्म केवल एक ही षाढ वाला है तो भी विचार उस के भय से कहीं पर श्रवण किया करता है । इस कलियुग में सभी लोग मिथ्या की प्रधानता वाले हैं—दम्भ से परिपूर्ण है और एक दम घाठला की वृत्ति वाले हैं । इस युग में प्रायः मनुष्य धर्म से विमुख रहने वाले होते हैं, और वे केवल जिह्वा के स्वाद के जाल में तथा उपस्थ (जननेन्द्रिय) के रसा-स्वादन करने में तत्पर रहा करते हैं । न तो ये लोग कभी कुछ ध्यान ही किया करते हैं, न कुछ तपस्वर्षा करने की ओर इनका धोड़ा सा भी झुकाव होता है और न ये कोई व्रत एवं नियमों के ही पालक होते हैं । २७। २८।

अधर्मं बहूलाः सर्वे हिसका लोलुपाः परम् ।

परेषा परिवारेण तुल्यगतिं स्वकृतं विना । २९।

प्रगङ्गातमीनुवाद्वापि निध्नन्ति परकम् वै ।

छुद्रकार्याशयात्स्वस्य परकार्यं प्रवाधकाः । ३०।

धर्मलब्ध्वा श्रियं रम्यामवजाय स्ववेदमनि ।

परयोपिति निन्दार्या प्रसवताः पशुचेष्टिताः । ३१।

अग्निहोत्रादिकं वाऽपि व्रतं नाऽन्यत्क्वचित्क्वचित् ।

जीविका तद् द्विजातीनां येषां वा पारलौकिकम् । ३२।

अन्नताधीतवेदेन अग्न्यायाऽऽप्तघनेन च ।

वित्तशाठ्येन च कृतं न तथा फलदायि तत् । ३३।

प्रायः कलियुगे भूपाः प्रजीवनपराङ्मुखाः ।

करोदानपरानित्यं पापिष्ठाश्चौर्यवृत्तयः । ३४।

वर्णसङ्करिणः सर्वे शूद्रप्रायाः कलियुगे ।

हर्तारः पाण्डिवाः एव शूद्राश्च नृपसेवकाः । ३५।

सभी लोग मति अघर्म करने वाले हैं, सब हिंसक, परम लोलुप और स्वकृत के बिना दूसरो की निन्दा करके ही सन्तुष्ट होने वाले हैं । प्रसङ्ग से भववा योनिक से ही दूसरे के कर्मों का हनन करने वाले हैं । अपने बहुत ही तुच्छ कार्य के सिद्ध करने के विचार से दूसरों के बड़े-बड़े कार्य के बाधक हो जाया करते हैं । घर्म विधि से प्राप्त हुई सुन्दर स्त्री का अपने घर में अग्रमान करके पराई निन्दनीय स्त्री में प्रसक्ति करने वाले पशु के समान चेट्टा वाले हैं । अग्निहोत्र भावि तथा व्रत अग्न्य कही-वही पर नहीं हैं, यही उनकी जीविका है जिनका पारलौकिक भी वही है । बिना व्रत वाले और बिना वेदों के अध्ययन वाले के द्वारा तथा अग्न्याय से प्राप्त किये हुए घन वाले के द्वारा और वित्त शाठ्य वाले के द्वारा जो किया गया है वह फलदायी नहीं हुआ करता है । बहुधा इस कलियुग में राजा लोग अपनी प्रजा के मनुष्यों के विमुख ही हुमा करते हैं । निरय ही वे करो के वसूल करने में तापर, महा पापी और चोरों की वृत्ति वाले होते हैं । कलियुग में वर्णसङ्कर और प्रायः शूद्र ही होते हैं । राजा लोग हरण करने वाले हैं और नृपों के सेवक भी सब शूद्र होने हैं । ३६-३७।

श्रीतस्मार्तादिकं कर्म न तथासदनुष्ठितम् ।

गुणे चतुर्थे भी विप्राः परलोकायवत्पिते । ३६।

दानधर्मः परो ह्येव नाऽन्योधर्मः प्रशस्यते ।
 कर्मणा मनसा वाचा हितमिच्छेद् द्विजग्मनाम् । ३७।
 इतिहोवाचभगवान्ब्राह्मणोमामकीतनुः ।
 ब्राह्मणायस्यसन्तुष्टाः सन्तुष्टस्तस्यचाप्यहम् । ३८।
 उभयत्र समो भूयाद्ब्राह्मणं च जनार्दन ।
 यद्वदन्तिद्विजावाक्यं तत्स्वयंभगवान्वदेत् । ३९।
 यथा तथा वर्तमानो वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
 भगवानपि देवेशः सः साक्षाद् ब्राह्मणप्रियः । ४०।
 सदाऽवतारं कुरुते ब्राह्मणाय जनार्दनः ।
 सत्पालनार्थं दुष्टान्वं निगृह्णाति युगे युगे । ४१।
 ससर्जत्राह्मणानम्रे सृष्ट्यादौ स चनुर्मुखः ।
 सर्वे वर्णाः पृथक्पञ्चात्पि वंशेषु जजिरे । ४२।

हे विप्रो ! जो परलोक के लिये कलित हैं वे श्रीत श्रीर स्मार्त
 आदिक कर्म उस प्रकार से मनी भीति अनुष्ठित नहीं होते हैं वह बीया
 पुग कलिपुग ऐसा ही है । यह दान का धर्म ही सबसे परम है और
 अन्य धर्म कोई भी प्रशस्त नहीं माना जाता है । मन-वचन और कर्म
 ही द्विजगमाद्यो के हित की इच्छा करनी चाहिए । ३६। ३७। भगवान् ने
 यही कहा था कि ब्राह्मण मेरा ही शरीर होता है । जिस पुरुष से ये
 ब्राह्मण सन्तुष्ट होते हैं उनसे मैं भी परम सन्तुष्ट रहा करता हूँ । दोनों
 के प्रति भर्षात् ब्राह्मण तथा भगवान् जनार्दन मे सम भाव वाला होना
 चाहिए । जो वचन ब्राह्मण लोग कहा करते हैं वह समझना चाहिए
 कि उसे स्वयं भगवान् ही कह रहे हैं । जैसा-जैसा भी वर्तमान रहने
 वाला ब्राह्मण सब वर्णों का गुरु होता है । देवेश्वर भगवान् भी माक्षत्
 ब्राह्मणों से प्यार करने वाले होते हैं । भगवान् जनार्दन इन ब्राह्मणों
 के ही हित सम्पादन के लिए ही सदा अवतार ग्रहण किया करते
 हैं । उनके पालन करने के लिए ही युग-युग मे प्रभु दुष्टों का निग्रह

किया करते हैं । चतुर्मुख ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि काल में आगे ब्राह्मणों का ही सृजन किया था । अन्य सब वर्ण पीछे पृथक् उन्हीं के वशों में समुत्पन्न हुए थे । १३८-४२।

तस्मात्कलियुगे तस्मिन्ब्राह्मणो विष्णुरेव च ।

उभौ गतिश्च सर्वेषां ब्राह्मणानां हरिर्गतिः । १४३।

हरिरेवाऽत्र सर्वेषांगतिः प्राप्तेकलीयुगे ।

शालग्रामादिके क्षेत्रे स्मर्यंतेकीर्त्यंतेऽपि च । १४४।

तस्मिन्मोलाचलेपुण्ये क्षेत्रे क्षेत्रज्ञवर्त्मणि ।

जीवभूतः स सर्वेषां दारुव्याजशरीरभृत् । १४५।

कलिकल्मषनाशाय प्रायो दुष्कृतकर्मणाम् ।

दर्शनस्तवनोच्छिष्टभोजनैर्मुक्तिदायकः । १४६।

उच्छिष्टेन सुरेशस्य व्यामंभस्यकलेवरम् ।

तदाहारस्तदात्माहिलिप्यते न सपातकः । १४७।

निवेदनोपमन्यासु मूर्तिष्वीशस्य वर्तते ।

पावनं तदपि प्रोक्तमुच्छिष्टं तु विमोक्षकम् । १४८।

भुङ्क्ते त्वन्नं वभगवान्पश्यत्यन्यत्र चक्षुषा ।

पुरार्ध्यंप्राथितो देवो योगिभिः परिवेष्टितः । १४९।

निर्माल्योच्छिष्टभोगेन तव मायां जयेमहि ।

अत्यन्तस्तिमिताक्षाणामनायासेन मुक्तिदः । १५०।

इसी लिए इस कलियुग में ब्राह्मण ही साक्षात् विष्णु हैं । सबकी ये दोनों ही गति होती हैं अर्थात् उद्धार करने वाले हैं और ब्राह्मणों की भगवान् श्री हरि हुआ करते हैं । १४३। इस कलियुग के आरा होने पर सबकी गति यहाँ पर श्री हरि ही हुआ करते हैं । शालग्राम आदि क्षेत्र में श्री हरि का स्मरण तथा कीर्तन किया जाया करता है । उस पुण्य मय क्षेत्र मोलाचल में जो क्षेत्रज्ञ का वर्त्म है । उसमें वह दाढ़ के व्याज से शरीर की धारण करने वाले सबकी जीव भूत हैं । कलि के

कल्पियों के नाश के लिए जो कि बहुधा दुष्टकृत कर्मों वाले मनुष्यों के होते हैं वह भगवान् अपने वर्चन, स्तवन, उच्छिष्ट भोजनों के द्वारा, मुक्ति के प्रदान करने वाले होते हैं । ४७।४५।४६।-सुरेश प्रभु के उच्छिष्ट से जिस मानव या प्राणी का शरीर व्याप्त रहता है । उसी महा, प्रसाद के आहार करने वाला, तथा उसी में अपनी आत्मा के, स्थान को लगाने वाला पुरुष पातकों से कभी भी वित्त नहीं हूमा करता है । अन्य मूर्तियों में जो निवेदनीय होता है, वह भी ईश का ही होना है । उसको भी परम पावन कहा गया है और वह उच्छिष्ट भी विभोजन करने, वाला होता है । भगवान् यही पर भोजन क्रिया करते हैं और, चक्षु के द्वारा सम्पन्न देखते हैं । पहिले योगियों के द्वारा गरिवेष्टित यह देव, प्रापित किये गये थे—हे भगवान् हम लोग आपके निर्मात्य, उच्छिष्ट, भोज के द्वारा ही आपकी इस, माया पर, विजय प्राप्त किया करते हैं । यह अत्यन्त स्तिमित नेत्र वालों को, अनायास से ही मुक्ति देने, वाला होता है । ४७।४५।४६।५०।

२६-बदरिकाश्रमस्य सर्वतीर्थाधिकत्ववर्णनं

- सूतसूतमहाभाग ! सर्वधर्मविदाम्बर ! ।
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ! पुराणे, परिनिष्ठित ! । १।
 व्यासः सत्यवतीपुत्रो भगवान्विष्णुरव्ययः ।
 तत्प्रयत्निप्रयत्निष्यस्त्वं त्वत्तो वेदानकश्चन । २।
 प्राप्ते कलिगुणे, घोरे, सर्वधर्मवह्निष्कृते ।
 जना वं, दुष्टकर्माणः, सर्वधर्मविवर्जिताः । ३।
 क्षुद्रायुषः, क्षुद्रप्राणबलवो रतपः, क्रियाः ।
 अधर्मनिरताः, सर्वे, वेदशास्त्रविवर्जिताः । ४।
 तीर्थाटनतपोदानहरिभक्तिविवर्जिताः ।
 कथमेषामल्पकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः । ५।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा ।

मुमुक्षूणां कृतः सिद्धिः कृत्रवात्रपिसञ्चयः । ६।-

कृत्रवाऽऽप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिराः ।

कुत्र वा वसतिश्रीमाञ्जगतामीश्वरेश्वरः ।

भक्तानामनुरक्तानामनुग्रहकृपालयः । ७।

श्री शोनक जी ने कहा-हे महाभाग श्री सूतजी ! पाप तो समस्त धर्मों के ज्ञाताओं से परम खेष्ठ हैं । पाप सभी शास्त्रों के धर्मों के तत्त्वों को जानने वाले हैं । आप पुराणों में परिणुष्ठित विद्वान् हैं । १। तत्त्ववती के पुत्र भगवान् भगवत्पुत्र श्री व्यासदेव हैं । उन व्यास जी के आप परम प्रिय शिष्य हैं । आपसे अधिक ज्ञाता अन्य कोई भी नहीं है । २। समस्त धर्मों से बहिष्कृत इस अत्यन्त घोर कलियुग में मनुष्य अत्यन्त दुष्ट कर्मों के करने वाले हैं और सब धर्मों से रहित होते हैं । द्यूद्र प्राणु, प्राणु, बल वीर्य, तप और क्रिया वाले मनुष्य होते हैं । अधर्म में निरत रहने वाले और सब वेद तथा शास्त्रों के ज्ञान से हीन होते हैं । तीर्थों का भटन, तपस्या, दान और श्री हरि की भक्ति से वञ्चित मनुष्य होते हैं । इन अल्पकों विचारों का उद्धार अल्प प्रयत्न से कैसे उद्धार होगा ? ३। ४। तीर्थों में अतीव उत्तम तीर्थ तथा क्षेत्रों में अत्यन्त उत्तम क्षेत्र जोन हैं ? जो मुक्ति के इच्छुक जन हैं उनको पित्त कहाँ पर है भय... श्रुतिधर्मों का सञ्चय कहाँ पर है ? कहाँ पर अत्यल्प प्रयत्न से तप और मन्त्र सिद्धि के प्रदान कर देने वाले होते हैं और वह कौन सा क्षेत्र है जहाँ पर जगत् के ईश्वरेश्वर श्रीमाद स्वयं निवास किया करते हैं ? ६। ७।

एतदप्यथ सर्वं मे परार्थकप्रयोजनम् ।

अहि भद्राय लाकनामनुग्रहविचक्षण ! । ८।

साधुसाधुमहाभाग ! भवात्परहिते रतः ।

हरिभक्तिमतासक्तिप्रदासितमनोमलः । ९।

अथ मे देवकीपुत्रो हृत्पद्ममधिरोहति ।

प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे ! दुर्लभः साधुसङ्गमः । ११०।

हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमलं तनुते तनुमानिनाम् ।

अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः । १११।

हरति हृदयबन्धं कर्मपाशादितानां

वितरति पदमुर्चरत्नजल्पकभाजाम् ।

जननमरणकर्मभ्रान्तविभ्रान्तिहेतुखिजगति

मनुजानां दुर्लभः सरप्रसङ्गः । ११२।

अयं प्रश्नः पुरासाधो ! स्कन्देनाऽकारिसर्वतः ।

कंसाशशिखरेरम्यश्रुषीणापरिश्रृण्वताम् ।

पुरतो गिरिजामतुः कतुं निःश्रेयसं सताम् । ११३।

अनुरक्त भक्तों के ऊपर अनुग्रह एव कृपा के जो स्वयं प्रालय हैं उनके निवास का क्षेत्र कौन सा है ? हे भगवन् ! आप तो लोकों पर अनुग्रह करने में परम विवक्षण हैं । भद्र अर्थात् कल्याण के लिए दूसरों का अर्थ ही जिसका एकमात्र प्रयोजन है ऐसे इस सबको मुझे आप बतलाइये । ॥ श्री सूतजी ने कहा—हे महामाया ! बहुत ही अच्छी बात है कि आप दूसरों के हित करने में रति रखने वाले हैं और श्रीहृदि भगवान की भक्ति में आसक्ति होने के कारण से आपने अपने मन के मल को प्रक्षालित कर दिया है । इसके अगन्तर भगवान देवकीनन्दन भरे हृदय ऊपी पद्म में अधिरोहण किया करते हैं । हे विप्रर्षे ! प्रसङ्ग से आपका साधु-सङ्गम दुर्लभ है । ११०। इस जगत् में साधु पुरुषों का समागम अरमन्त ही दुर्लभ हुआ करता है जो दुरितों के सञ्जय का हरण कर दिया करता है और तनुमानियों की गति को अलङ्कृत कर दिया करता है । यह अवशात्माओं के अत्यधिक पुण्यों में ही होता है । १११। इस जगत् के सत्पुरुषों का संगम मनुष्यों को बहुत ही दुर्लभ हुआ करता है । यह सत्पुरुषों का समागम कर्मों के पाश में अद्विष्ट पुरुषों के हृदय

के वन्धन का हरण कर देता है और जो अत्यन्त प्रल्प-जल्प करने वाले मनुष्य हैं उनको सध्व पद वितरण कर देने वाला होता है । संसार में बारम्बार जन्म ग्रहण करने और मृत्यु प्राप्त करने के कर्म में जो परम ध्यान्त हैं उनको विश्रान्ति प्रदान करने का हेतु होता है । १२। श्रीसूतजी ने कहा—हे साधो ! पहिले यही प्रश्न परम रम्य कैलास पर्वत के शिखर पर समस्त ऋषि वृन्दों के श्रवण करते हुए श्री गिरिजा पति के सामने सत्पुरुषों का निःश्रेय करने के लिए स्वामी स्कन्द ने किया था । १३।

भगवत्सर्वलोकानां कर्त्ता हर्त्ता पिता गुरुः ।
क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसेकृतनिश्चयः । १४।
कलिकाले ह्यनुप्राप्ते वेदशास्त्रविवर्जिते ।
कुत्र वा वसति श्रीमाभगवान्सांभवातां पतिः । १५।
क्षेत्राणि कानि पुण्याणि तीर्थानि सरितस्तथा ।
केन वा प्राप्यते साक्षाद्भगवाम्मधुमूदनः ।
श्रद्धधानाय भगवत्कृपया वद ते पितः ! । १६।
बहूनि सन्ति तीर्थाणि क्षेत्राणि च पठानन । ।
हरिवास निवासैकवराणि परमार्थिनाम् । १७।
काम्यानि कानि चित्सन्ति कानि चिन्मुवितदान्यपि ।
इहाऽमुन्नार्थदान्येव बहुपुण्यप्रदानि वै । १८।
गङ्गा गोदावरीरेवात्पतीयमुनासरित् ।
क्षिप्रा सरस्वतीपुण्या गौतमीकोशिकी तथा । १९।
कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा ।
चित्रोत्पला चेन्नवती सरयूः पुण्यवाहिनी ।
चर्मण्यतो शतद्रूश्च पर्यस्त्विन्यसम्भवा ।
गण्डिका बाह्वदा सर्वाः पुण्याः सिन्धुः सरस्वती । २०।
भुवि न भुवितप्रदाश्चैताः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अयोध्याद्वारिका काशी मथुराऽवन्तिका तथा । २१।

“कुरुक्षेत्रं रामतीर्थं काशी च पुरुषोत्तमम् ।

पुष्करं ददुरं क्षेत्रं वाराहं विधिनिर्मितम् ॥२२॥

वदर्थार्थं महापुण्य क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम् ॥२३॥

स्कन्दजी ने कहा था—हे भगवन ! आप समस्त लोकों की रचना करने वाले पिता, गुरु और सहार कर देने वाले हैं । समस्त जन्तुओं के कल्याण करने के लिए ही आप तपश्चर्या करने को निश्चय करने वाले हैं । इस महान घोर कलि काल के सम्प्राप्त होने पर जोकि वेदों और शास्त्रों से एकदम रहित हैं श्रीगान्ध सात्वतो के स्वामी भगवान् वही पर निवास किया करते हैं ? कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र है तथा कौन से तीर्थ एवं ऐसी सरितायें हैं तथा किसके द्वारा भगवान् श्री मधुसूदन की प्राप्ति की जाया करती है ? हे पिताजी ! मुझे इसके जानने की अत्यधिक श्रद्धा है अतएव हे भगवन् ! आप मुझे कृपा वरके यह बतला दीजिए ॥१४॥१५॥१६॥ श्री महादेवजी ने कहा था—हे पंडितन ! परमाधियों के लिए श्री हरि के वास, निवास में एक ही परायण बहुत से तीर्थ और क्षेत्र विद्यमान हैं । उनमें कुछ तो घामनामों के ही पूर्ण कर देने वाले हैं । कुछ मानवों को जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले हैं । कुछ इस लोक और परलोक दोनों में अर्थों के प्रदान करने वाले हैं तथा अत्यधिक पुण्यों के देने वाले हैं ॥१७॥१८॥ सर्वप्रथम उन पुण्यमयी सरिताओं के नाम मैं बताता हूँ । गंगा, गोदावरी, रेवा, तपती, यमुना सरित्, क्षिप्रा, सरस्वती, पुण्या गोमती, कोशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रमागा, महेंद्रजा, चित्रोत्पला, नेत्रवती, सरयू, पुण्य-वाहिनी, अमावती, शतद्रू, पयस्विनी, अग्नि सम्भवा, शण्डिका, बाहुदा, सिन्धु, सरस्वती—ये सब सरितायें परम पुण्यमयी हैं और ये मुक्ति (सांसारिक सुखों का उपभोग) और मुक्ति (बारम्बार ससार में आवगमन से छुटकारा) दोनों को प्रदान करने वाली हैं जबकि इन नदियों का पुनः पुनः सेवन किया जावे । अब कतिपय पुण्यमय क्षेत्रों

को बतलाता है—अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, प्रवन्तिका (उज्जैन), कुण्डक्षेत्र, रामनीयं, काशी, पुष्पकोटम, पुष्कर, दक्षुर क्षेत्र, वाराह, विविध निर्मित बदरीनाथ वाला महान् पुष्पक्षेत्र है। जो सभी भर्थों का साधन करने वाला है । १७-२३।

अयोध्यां विधिवदृष्ट्वा पुरीं मुक्त्येकसाधनीम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् । २४ ।

विविधविष्णुनिबेपेक्षणपूर्वकाचरितपूजननर्तनकीर्तनाः ।

गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाजितगृहार्जितमृत्युपराक्रमाः । २५।

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः ।

न तस्यकृत्यं पश्यामि कृतकृत्यो भवेद्यतः । २६।

द्वारिकायां हरिः स क्षास्त्रालयं नैव मुञ्चति ।

अद्यापि भवनं कंश्चित्पुण्यवद्भिः प्रदृश्यते । २७।

गोमत्यां तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कृष्णं मुखाम्बुजम् ।

मुवितः प्रजायते पुंसो विना साङ्ख्यं षडानन । २८।

इस अयोध्या पुरी का विधि पूर्वक दर्शन करे जो कि मुक्ति का एकमात्र साधन करने वाली है। इसका दर्शन करने वाले मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पाकर श्री हरि के मन्दिर में प्रयाण किया करते हैं । २४। अनेक प्रकार से भगवान विष्णु का सेवन पूर्वक समाचरण, पूजन, नर्तन और कीर्तन करने वाले, अपने घर का त्याग करके श्री हरि का चिन्तन करने से जिन्होंने गृह में आर्जित मृत्यु को जीत लिया है ऐसे पराक्रमी पुरुष होते हैं । २५। स्वर्ग द्वार में मनुष्य स्नान करके परम शुचि होकर जो श्री राम के आलय का दर्शन किया करता है उसका तो फिर शेष रहने वाला कोई भी कृत्य मैं नहीं देखता हूँ क्योंकि इसी से वह मानव कुनकृत्य हो जाया करता है । २६। द्वारका पुरी में साधारण श्री हरि निवास किया करते हैं और वहाँ पर अपने आलय का कभी भी स्थापन नहीं करते हैं। आज भी कुछ पुण्यात्मा जनों के द्वारा जनक भवन

वहाँ पर देखा जाया करता है । गोमती नदी में मनुष्य स्नान करके तथा श्री कृष्ण भगवान् मुख कमल का दर्शन करता है हे पढानन ! उस पुरुष की बिना ही सांख्य के मुक्ति हो जाया करती है ॥२७॥२८॥

असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चकोश्यां महाफलम् ।
 अमरा मृत्युमिच्छन्तिकाकथाइतरेजनाः ॥२९॥
 मणिकर्ण्यं ज्ञानवाप्यांविष्णुपादोदकेतथा ।
 , हृदे पञ्चनदेस्नात्वावानमातुः स्तनपोभवेत् ॥३०॥
 प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यांपढानन ! ।
 मुक्तिः प्रजायतेपुंसांजन्ममृत्युविर्जिता ॥३१॥
 बहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षेत्रसमं क्वचित् ।
 तपोपवासनिरतो मयुरायां पढानन !
 जन्मस्थान समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३२॥
 विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ।
 पितृनुदधृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रगच्छति ॥३३॥
 यदि कुर्यात्प्रमादेनपातकं तत्र मानवः ।
 विश्रांतेस्नानमासाद्यभस्मीभवति तत्क्षणात् ॥३४॥
 अवस्थां विधिवत्स्नात्वाशिप्रायांमाधवेनराः ।
 पिशाचत्वंनपश्यन्तिजन्मातरशतैरपि ॥३५॥

असी और वरुणा के मध्य में पञ्चकोशी में महान फल होता है । वहाँ पर देवगण भी अपनी मृत्यु होने की कामना किया करते हैं । अन्य दूसरों की तो बात ही क्या कही जावे । मणिकर्ण्य, ज्ञानवापी, विष्णु-पादोदक और पञ्चनदहृद में जो मानव स्नान कर लेता है वह फिर दूसरा इस संसार में जन्म ग्रहण करके माता का स्तन कभी भी नहीं पिया करता है । हे पढानन ! काशीपुरी में किसी अन्य प्रसङ्ग के बश होकर भी जो भगवान् विश्वनाथ जी का दर्शन प्राप्त कर लेता है ऐसे पुरुषों की जन्म और मृत्यु से रहित मुक्ति हो जाया करती है । अत्यधिक हम क्या कथन

करे केवल यही वचन पर्याप्त है कि इसके समान कहीं भी अन्य कोई श्रेष्ठ नहीं है । हे पद्मानभ ! क्या भीरु सपवासों में निरत रहने वाला पुष्प मथुरा पुरी में भगवान के जन्मस्थान को प्राप्त करके समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥२६॥३०॥३१॥३२॥ जहाँ पर कंस को बंध कर भगवान ने विश्राम लिया है उस विश्रामाश्रम में (पद्मानभ) विधि-विधान के साथ स्नान करके तिलोदक जो देता है वह मानव भवने पितरों को नरकी से उद्घुप्त कर दिया करता है और स्वयं सोदा विष्णु-लोक में भजन किया करता है ॥३३॥ यदि कोई मनुष्य वहाँ पर प्रभाव से पातक करता है तो वह विश्राम पर स्नान करने से भवने पितरों को तुरन्त ही मर्यादित कर दिया करता है ॥३४॥ अथर्विका पुरी में जो मनुष्य माघव मास में शिवा में विधि पूर्वक स्नान करता है वह सैकड़ों जन्मान्तों में भी पिशाचस्व नहीं देखा करता है ॥३५॥

कोटितीर्थं नरःस्नात्वाभोजयित्वाद्विजोत्तमान् ।

महाकालं हरद्वष्टासर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३६॥

मुक्तिक्षेत्रमिदं साक्षान्मम लोकैकसाधनम् ।

दानाहरिदत्ताहानिरिहलोके परत्र च ॥३७॥

कृदक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्त्वा स्वशक्तितः ।

सर्वोपरागे विविधस्तं नरो मुक्तिं भागमवेत् ॥३८॥

ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लोभवशङ्कताः ।

पुरुषत्वं न तेषां वैकल्पकोटिदत्तैरपि ॥३९॥

हरिक्षेत्रे हरिद्वष्ट्वा स्नात्वा पादोदके जगः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिणा सह मोदते ॥४०॥

समगत्या विविधा निवसन्त्यहो श्रुतिगणाः फलमूलदलाशनाः ।

पवनसंयमनक्रमजितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्वह ॥४१॥

विष्णुकाञ्च्यां हरिः साक्षाच्छिवकाञ्च्यां शिवः स्वयम् ।

अभेदादुभयोर्भक्त्या मुक्तिः करतले स्थिता ।

विभेदजननात्पुंसां जायते कुरिसता गतिः ॥४२॥

उस अवन्तिका पुरी में मनुष्य कोटि तीर्थ में स्नान करके उत्तम श्रीणी वाले द्विजों को भोजन करावे और महा कालेश्वर शिव का दर्शन करे तो सभी तरह के पापों से छुटकारा पा जाया करता है । यह मेरे लोक के प्राप्त करने का एकमात्र साधन साक्षात् मुक्ति का क्षेत्र है । भक्ति करने से दरिद्रता की हानि इसलोक और परलोक में हुमा जाती है ॥३६॥३७॥ कुरुक्षेत्र में रामतीर्थ में अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर विधि पूर्वक सुवर्ण का दान करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेने का पूर्ण अधिकारी हो जाया करता है । जो मनुष्य लोभ वश में आकर वहाँ पर दान ग्रहण किया करते हैं उनको सैकड़ों करोड़ों रूपों में भी पुरुषत्व नहीं हुमा करता है ॥३८॥३९॥ हरि क्षेत्र में श्री हरि का दर्शन प्राप्त करके और पादोदक में जो स्नान करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर भगवान् श्रीहरि के साथ ही भगवन् प्राप्त किया करता है ॥४०॥ भवो ! वहाँ पर अनेक पक्षीगण निवास किया करते हैं और फल, मूल तथा पत्तों का भक्षण करने वाले ऋषिगण भी रहते हैं । पवन के संवसन के क्रम से निजिन इन्द्रियों वाले तथा पराक्रमशील मुनिगण भी वहाँ पर निवास किया करते हैं ॥४१॥ विष्णु काशी में साक्षात् श्रीहरि विराजमान रहते हैं और शिव काशी में स्वयं भगवान् शिव विराजते हैं । दोनों में अभेद भाव जो भक्ति होती है उससे मनुष्य के करतल में ही मुक्ति देवी स्थित रह जायती है । जब इन दोनों देवों में विभेद की भावना उत्पन्न हो जाती है तो बहुत बुरी कुरिसत गति हो जाती है ॥४२॥

सकृददृष्ट्वा जगन्नाथं मार्कण्डेयहृदे प्लुतः ।

विनाशानेन योगेन न मातुः स्तनपोभवेत् ॥४३॥

रोहिण्यामुदघोस्नात्वा इन्द्रधम्महृदेतथा ।

भुक्त्वानिवेदितविष्णोर्वैकुण्ठेवसतिलभेत् ॥४४॥

दशयोजनविस्तोरां क्षेत्रं शङ्खोपरि स्थितम् ।

चतुर्भुजत्वमायान्तिकीटा अपिनमंक्षयः ॥४५॥

कार्त्तिकयां पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणम्

भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते ॥४६॥

सकृत्स्नात्वाहृदे तस्मिन्पूषं दृष्ट्वासमाहितः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तोजायते द्विजसत्तमः ॥४७॥

पष्ठिवर्षं सहस्राणि योगाम्पासेन यत्फलम् ।

सौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा हरिं शुचिः ॥४८॥

सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।

तीर्थं राजमहापुण्यं सर्वतीर्थं निषेवितम् ॥४९॥

एक ही बार भगवान् जगन्नाथ जी के दर्शन करके तथा माकं-
ण्डेय हृद में निमज्जन करने वाला पुरुष बिना ही ज्ञान और योग के फिर
दूसरा जन्म ग्रहण कर अपनी माता का स्तन पान नहीं किया करता
है । रोहिणी में उदधि में स्नान करके एवं इन्द्रधम्म हृद में स्नपन
करके तथा भगवान् विष्णु देव के निवेदिन महाप्रसाद का भक्षण करके
मानव वैकुण्ठ में निवास प्राप्त किया करता है ॥४३॥४४॥ दश योजन के
विस्तार वाला क्षेत्र शङ्ख के ऊपर स्थित है । वहाँ पर कीटा भी चतुर्भुज
रूप की प्राप्त हो जाया करते हैं । कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर में
स्नान करके दक्षिणा ॥ युवज धाढ़ करे तथा भक्ति की भावना से द्विजों
को भोजन करावे । फिर यह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है ॥४५॥४६॥
हे द्विजसत्तम ! श्रेष्ठ द्विज एक बार हृद में स्नान करके तथा समाहित
होकर पूष का दर्शन जो करता है वह सब पापों से विनिर्मुक्त हो जाया
करता है ॥४७॥ साठ हजार वर्ष तक योगाम्पास करने से जो पुण्य फल
प्राप्त होता है सौकर में विधि पूर्वक स्नान करके और परम शुचि होकर

श्रीहरि का पूजन करके सात जगों में किया हुआ पाप उगी छल में नष्ट हो जाता है । तीर्थराज महान पुण्यशाली है और समस्त तीर्थों के द्वारा निवेष्टित होता है । ४८—४९।

कामिनां सर्वजन्तूनामोप्सितं कर्मभिर्भवेत् ।
 घेण्यां स्नात्वा शुचिभूत्वा कृत्वा माधवदर्शनम् ।
 भुक्त्वा पुण्यवतां भोगान्ते माधवतां व्रजेत् । ५०।
 ७ माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेण्यां भक्तिभाविनः ।
 बदरीकीर्तनात्पुण्यं तत्समाप्नोति मानवः । ५१।
 दशश्रमेधिकं तीर्थं दशयज्ञफलप्रदम् ।
 संक्षेपात्कथितं पुनः ! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । ५२।
 यदप्यक्षयं हरेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
 क्षेत्रस्य स्मरणादेव महापातकिनो नराः ।
 विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो मरणामुक्तिभागिनः । ५३।
 अन्यतीर्थं कृतं येन तपः परमदाहणम् ।
 तत्समा बदरीयात्रा मनसाऽपि प्रजायते । ५४।
 बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमी रसातले ।
 बदरीसदृशं तीर्थं न भूतं न भविष्यति । ५५।
 अश्वमेधसहस्राणिवायुभोज्येष्वयत्फलम् ।
 क्षेत्रास्तरे विशालायां तत्फलं क्षणमात्रतः । ५६।

वेणी में स्नान करके परम शुचि होकर श्री माधव का दर्शन करे तो कामनायें रखने वाले पुरुषों के कर्मों से समस्त जन्तुओं का समोह सिद्ध हुआ करते हैं । पुण्यवान् पुरुषों के सुखीय भोगों को भोग-कर अन्त में श्रीमाधव के स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं । ५०। माघमास में मनुष्य भक्ति की भावना से त्रिवेणी में स्नान करके मानव बदरी कीर्तन से उग पुण्य को समस्त कर दिया करता है । ५१। यह तीर्थ दश श्रम-

मेधों के दश यज्ञों के फलों का प्रदान करने वाला होता है । हे पुत्र ! हमने यह प्रति सूक्ष्म रीति से आपको बतला दिया है । अब आगे फिर हम क्या श्रवण करना चाहते हो ? श्रीस्कन्द प्रभु ने कहा—श्री हरि का बदरी नाम वाला क्षेत्र तीनों लोकों में परम तुल्य है । इस क्षेत्र के केवल स्मरण करने मात्र से महान पातकों के करने वाले नर भी तुरन्त ही विमुक्त पावों वाले हो जाया करते हैं और अन्न समय में मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं । ५२।५३। अन्य तीर्थ में जिसने परम वाद्य तपश्चर्या की है उसके तुल्य तो मन से भी की हुई वदर्याश्रम की यात्रा हो जाती है । दिवलोक, भूमण्डल और रसातल में बहुत से तीर्थ हैं किन्तु इस बदरी के सहस्र योई भी तीर्थ न तो अब तक हुआ और न होगा अश्वमेध सहस्रों के तथा वायु भोज्य से जो फल होता है और अन्य क्षेत्रों में जो परम विशाल है जो पुण्य का फल होता है वह यहाँ पर एक क्षण मात्र में ही हो जाया करता है । ५४।५५।५६।

कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता ज्ञेया योगसिद्धिदा ।

विशाला ह्यपरे प्रोक्ता कली बदरिकाश्रमः । ५७।

स्थूलसूक्ष्मशरीरं तु जीवस्य वसतिस्थलम् ।

तद्विनाशयति ज्ञानद्विशालातेन कथ्यते । ५८।

अमृतं स्रवते या हि बदरी तस्य योगतः ।

बदरी कथ्यते प्राज्ञैश्च पीणां यत्र सञ्चयः । ५९।

त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे ।

बदरी भगवां विष्णुनं मुञ्चति कदाचन । ६०।

सर्वतीर्थाविगाहेन तपोयोगसमाधित ।

तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदर्शनाद् शुह ! । ६१।

पण्डितैश्च सहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ।

वाराणस्यां दिनकेन तरुत बदरी गतो । ६२।

तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा ।

ऋषीणां वसतिर्यत्र विशालातेनकथ्यते ।६३।

कृतयुग में मुक्ति के प्रदान करने वाली बनाई गई है, चैतायुग में भोगों की सिद्धियों के प्रदान करने वाली कही गई है । द्वापर युग में परम विशाला होती है और इस कलियुग में वह बदरिकाश्रम ही होता है । ५७। जीव का स्थूल, सूक्ष्म शरीर स्थल में वसता है । वह ज्ञान से विनाश को प्राप्त हो जाता है । इसी से विशाला कही जाती है । जो बदरी तट के योग से अमृत का स्रवण किया करती है इसीलिए प्राज्ञ पुरुषों के द्वारा इसको बदरी कहा जाता है जहाँ पर ऋषियों का सन्ध्य होता है । ५८-५९। युग-युग और काल-काल में समस्त तीर्थों का त्याग कर देते हैं किन्तु भगवान् विष्णु बदरी को कभी भी त्याग नहीं किया करते हैं । ६०। हे गृह ! जो अन्य समस्त तीर्थों के अवगाहन करने से तथा तप तथा योग की समाधि से पुण्य-फल होता है वह अच्छी तरह से बदरी के दर्शन मात्र से हो जाया करता है । ६१। साठ हजार वर्ष तक योग के अभ्यास से जो फल होता है वह बाराणसी में एक दिन में और बदरी में गमन मात्र में हो हो जाया करता है । जहाँ पर तीर्थों का निवास है तथा देवों की जी वसति है एवं ऋषियों का जो आवास स्थल है इसी से यह विशाला कही जाती है । ६२-६३।

३०—कार्तिकमासव्रतप्रशंसनवर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरश्चैव नरोत्तमम् ।

देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदोरगेत् ।१।

सूत ! नः कथितम्पुण्य माहात्म्यश्चिनस्य च ।

भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्तिकस्य च वैभवं ।२।

फलो कलुषचित्ताका नराणां पापकर्मणाम् ।

संसारबन्धोनिमग्नाभनायासेनकागतिः ।३।

को धर्मः सर्वधर्माणामधिको मोक्षसाधकः ।
 इहाऽपि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वं कथय प्रभो ! ॥४॥
 भवद्भिर्भयं दहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवान्मुनिः ।
 नारदो ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्माणं तु जगद्गुरुम् ॥५॥
 सत्यैव सत्यभामा च श्रीकृष्णं जगदीश्वरम् ।
 अपृच्छत् कार्तिकस्यैव वैभवं श्रवणोत्सुका ॥६॥
 बालखिल्यश्च ऋषिभिर्यदुक्तमृषिसंसदि ।
 श्रीसूर्यादिनासंवादरूपेणाऽतिमनोहरम् ॥७॥

भगवान् श्री नारायण प्रभु के चरणों से नमस्कार करके तथा शरोत्तम नर को प्रणाम करके एवं देवी सरस्वती को प्रणाम करके इसके अनन्तर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए (मङ्गला चरण श्लोक है) ऋषिगण ने कहा—हे श्री सूनजी ! आपने परम पुण्यमय आश्विन मास का माहात्म्य हमारे सामने वर्णन किया था । अब फिर हम लोग सब कार्तिक मास का वैभव आपके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥२॥ इस महान् घोर कलियुग में कलुषित चित्तों वाले पाप कर्मों में निमग्न मनुष्यों की जो इस सत्तार खूबी सागर डुबकियाँ खा रहे हैं उनकी बिना ही परिश्रम के क्या गति होती है ? ऐसा कौन सा समस्त धर्मों में भी अधिक धर्म है जो मोक्ष का साधक हो ? हे प्रभो ! जो इस लोक में भी मुक्ति प्रदान करने वाला हो उसे ही आप अब तात्त्विक रूप से वर्णन कीजिए बड़ी कृपा होगी ॥३॥४॥ श्रीसूनजी ने कहा—आपने जो मुझसे पूछा है यही ब्रह्माजी के पुत्र देवर्षि श्री नारद जी ने जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी से पूछा था । इसी प्रकार से सत्यभामा देवी ने जगदीश्वर प्रभु श्रीकृष्ण से पूछा था क्योंकि वे इस कार्तिक मास के वैभव के श्रवण करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थी । बालखिल्य ऋषियों की समा में श्री सूर्य और ऋषण के सम्वाद के रूप से जो अत्यन्त मनोहर कहा था ॥५॥६॥७॥

कैलासे शङ्करेणैवकार्तिकस्य च वभवम् ।
 वर्णितं पद्ममुस्याग्रे नानाख्यानसमन्वितम् । ८८।
 पृथम्प्रतिनारदेन कथितं च माहात्म्यकम् ।
 कार्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वा ब्रह्ममुखात्पुरा । ८९।
 एकदा नारदो योगो सत्यलोकमुपागतः ।
 पद्मच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम् । ९०।
 पापेभ्यस्तस्य घोरस्य शुष्काद्रस्य च भूरिशः ।
 को बल्लिदं हते ब्रह्मस्तदभवान्वक्तुमर्हति । ९१।
 नाज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डातर्गतस्य यत् ।
 विद्यते तव देवेश त्रिविधस्य सुनिश्चितम् । ९२।
 मासनाम्प्रवरो मासो देवातामुत्तमोत्तमः ।
 तीर्थानि तद्विरोपेण कथयस्व पितामह ! । ९३।
 मासानां कार्तिकः श्रेष्ठो देवानाम्मधुसूदनः ।
 तीर्थं नारायणार्थं हि त्रितयंदुर्लभं कलौ । ९४।

कैलास पर्वत पर भगवान् पद्ममुख के सामने घनेक आख्यानो से समन्वित कार्तिक मास का वैभव को भगवान् शङ्कर को वर्णित किया है । हे विप्रेन्द्रगण ! ब्रह्माजी के मुख से श्रवण कर सर्वप्रथम श्री नारद जी ने कार्तिक मास का माहात्म्य कहिले कहा है । एक बार योगीराज श्री नारद जी भ्रमण करते हुए सत्यलोक में प्राप्त हो गये थे । उस सत्यलोक में पितामह से उन्होंने परम विषय के भाव पूछा था । ८८। ९०। देवर्षि ने कहा— हे ब्रह्मन् ! प्रविकाश में शुष्क घोर माद्रं (मीमांसा) घोर पाठ छपी ईर्ष्य को कौन सी बल्लि है जो जलाकर भस्म कर सकती है ? इसे भाप कृपा करके हमको बतलाने के योग्य है । हे देवेन्द्र ! तीनों लोकों में ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीन प्रकार के प्रपन्न जो मुनिविद्यत हैं यह प्रज्ञात नहीं हैं अर्थात् सभी जानते हैं । हे पितामह ! सब मासों में जो प्रवट मास हो तथा सब देवों में जो उत्तमोत्तम

देव हो और जो भी श्रेष्ठ तीर्थ हो उन्हें आप बतला दीजिए । ११-१३। श्रीब्रह्माजी ने कहा—समस्त भासों में कार्तिक मास श्रेष्ठ होता है और सब देशों में भगवान् मधुसूदन देव परम श्रेष्ठ देव हैं तथा नारायण नाम वाला तीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है । ये तीनों ही इस लोक में कतिपय में परम ये तीनों दुर्लभ हैं । १४।

भगवस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवत्सलम् ।
 वैष्णवाभ्यूहि मे धर्मासर्वजोऽसि पितामह ! । १५।
 आदौ कार्तिकमाहात्म्यं वक्तुमर्हसि मे प्रभो । ।
 दीपदानस्य माहात्म्यव्रतिनानियमास्तथा । १६।
 गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो । ।
 घात्र्याश्चैव च माहात्म्यं विधि स्नानादिकस्य च ।
 प्रतारम्भः कदा कार्यं उद्यापनविधिं तथा । १७।
 यत्किञ्चिद् वैष्णवधर्मं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।
 येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम् । १८।
 इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हृषंसमन्वितः ।
 राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाच तनुजम् प्रति । १९।
 साधुपुत्र त्वया पुत्र ! लोकोद्धरणहेतवे ।
 कथयामि न सम्देहः कार्तिकस्य च वैभवम् । २०।
 एकतः सप्ततीर्थानि सर्वेयज्ञाः सदाक्षिणा ।
 कार्तिकस्य तु मासस्य कलानाहं ग्निपोडशम् । २१।

श्री नारदजी ने कहा—मैं तो आपका दास हूँ और श्रीहृन् भगवान् का प्रिय यक्त हूँ । हे पितामह ! आप तो सर्वज्ञ हैं । मुझे सब वैष्णव धर्म बतलाइये । १५। हे प्रभो ! सबसे आदि में कार्तिक मास का माहात्म्य आप बतवाने के योग्य होते हैं । दीपदान का माहात्म्य तथा प्रतवारिधियों के निबन्धनों को भी बतवाने को कृपा कीजियेगा । १६।

हे विभो ! गोपी चन्दन का तथा तुलसी का माहात्म्य भी बतलाइये । धात्री (माँवला) का माहात्म्य और स्नान आदि करने का विधान भी बतलाइये । इस व्रत का आरम्भ कब करना चाहिये तथा इसके उद्यापन करने की विधि क्या होती है ? जो कुछ भी वैष्णवों का धर्म हो वह सभी कुछ आप बतलाने के योग्य हैं । जिससे आपके प्रसाद से मैं अनामय पद को प्राप्त कर सूँगा । १७।१८। श्री सूतजी ने कहा — इस तरह के अपने पुत्र नारद के वचन को सुनकर ब्रह्माजी परम हर्ष से सयुक्त हो गये थे । फिर भगवान् श्री राधा दामोदर जो के चरणों का स्मरण करके ब्रह्माजी ने अपने पुत्र से कहना आरम्भ किया था । १९। श्रीब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! तुमने परम सुन्दर प्रश्न किया है । यह तुम्हारा प्रश्न तो समस्त लोगों के उद्धार का हेतु है । मैं इस कार्तिक मास के वैभव को कहूँगा—इसमें तनिक भी सन्देह मत करो । २०। एक और समस्त तीर्थ और दक्षिणा से समन्वित सभी यज्ञ हो और दूमरी और कार्तिक मास का माहात्म्य हो तो वे सब इस मास के वैभव की सोन-हवी पत्ता को भी प्राप्त करके योग्य नहीं होते हैं । २१।

एकतः पुष्करवासः कुरुक्षेत्रे हिमालये ।

एकतः कार्तिकः पुत्र सर्वपुण्याधिको मनः । २२।

स्वर्णानि मेघतुल्यानि सर्वदानानि चैकतः ।

एकतः कार्तिको वत्स ! सर्वदाकेशवप्रियः । २३।

यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्तिके ।

तस्य दायं न पश्यामि मयोवज तव नारद ! । २७।

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यंप्राप्यदुर्लभम् ।

तथाऽऽत्मानं समादद्यान्न भक्ष्येत यथापुनः । २४।

दुष्टाप्यं प्राप्य मानुष्यं कार्तिकोक्तं चरेन्नयः ।

धर्मं धर्मभृतांश्चेष्ट । समातावितृष्णातकः । २६।

कार्तिकः खलु वै मासः सर्वमासेषु चोत्तमः ।

पुण्यानाम्परमं पुण्यं पावनानाञ्चपावनम् ।२७।

अस्मिन्मासेत्रयस्त्रिंशद्देवाः सन्निहिता मुने ।

अन्नस्नानिदानानिभोजनानियतानिच ।२८।

हे पुत्र ! एक ओर तो पुष्कर मे निवास तथा कृष्ण क्षेत्र में श्रीर
हिमालय में निवास ओर दूसरी ओर कार्तिक मास का पुण्य हो तो यह
कार्तिक सबसे अधिक पुण्य वाला होता है । सुमेरु पर्वत के समान
सुवर्ण का राशि (देश) ओर सम्य समस्त प्रकार के दान सब एक
ओर हैं तथा एक ओर हे वरस ! सर्वदा भगवान् केशव का परम प्रिय
कार्तिक मास है । कार्तिक मास मे भगवान् विष्णु का उद्देश्य ग्रहण
करके जो कुछ भी पुण्य किया जाता है हे नारद ! यह मैंने तुमको बतला
दिया है कि यह कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं हुआ करता है ऐसा मैं
बैल रहा हूँ ।२२।२३।२४। इस परम दुर्लभ मनुष्य जीवन को प्राप्त
करके यह स्वर्ग का एक प्रकार का सीपान जैसा ही है । यह आत्मा
को उस प्रकार से दे दिया करता है कि जहाँ से फिर कभी भ्रंश होता
ही नहीं है ।२५। हम अति दुःप्राप्य मनुष्य जीवन को प्राप्त करके कार्तिक
मास मे बनलाये हुए अग्रे एवं नियमों का जो समाचरण नहीं किया
करता है हे धर्म चारित्र्यो मे परम वरिष्ठ ! बड़ मता-पिता का यातक ही
हुआ करता है । यह कार्तिक मास सभी ग्रन्थ भाषों मे धत्युत्तम मास होता
है । यह पुण्यो में परम पुण्य है ओर पावनो मे परम पावन होता है । हे
मुने ! इस मास मे तेतीस करोड देवता सन्निहित हुआ करते हैं । इस
मास मे स्नान, दान, भोजन ओर व्रत सभी परम श्रेष्ठतम हुआ करते
हैं ।२६।२७।२८।

तिलधेनुं हिरण्यश्च रजतं भूमिवाससी ।

गोप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद ! ।२९।

तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः ।
 यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र ! तपश्चैव तथा कृतम् ॥३०॥
 तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविविष्णुना ।
 पापानां मोक्षणञ्चैव कार्तिके मासि शस्यते ॥३१॥
 तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र ! कार्तिके मासि दीयते ।
 यत्किञ्चित् कार्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिष्य मानवैः ॥३२॥
 तद्दत्तं हि स भते अन्नदानं विशेषतः ।
 यथा नदीनां विप्रेन्द्र धौलानाञ्चैव नारद ! ॥३३॥
 उदधीनाञ्च विप्रर्षे ! क्षयोर्न बोधयद्यते ।
 दानं कार्तिकमासे तु यत्किञ्चिद्दीयते मुने ! ॥३४॥
 न तस्याऽस्ति क्षयो विप्र ! पापं यातिसहस्रधा ।
 सम्प्राप्तं कार्तिकं दृष्ट्वा पराश्रमस्तु वर्जयेत् ॥ ३५ ॥

हे नारद इस महान पुण्यमय मास में तिल, धेनु, सुदर्ण, रजत
 (चांदी), मूत्रि, वस्त्र, गौ इनका सर्ग भाव से दान किए जाते हैं ।
 इन किए हुये दानों की विधि के सहित देवगण ग्रहण किया करते हैं ।
 हे विप्रेन्द्र ! जो कुछ भी इस मास में दिया गया है वह उस प्रकार का
 परम तप ही किया हुआ समझना चाहिये ॥३६॥३७॥ इसका प्रम विष्णु
 श्री विष्णु भगवान ने प्रदाय्य फल बतलाया है । समस्त पापों का
 मोक्षण कार्तिक मास में ही प्रवृत्त भवनाया जाता है । हे विप्रेन्द्र !
 इसीलिए यत्न पूर्वक कार्तिक मास में विष्णु का उद्देश्य करके अर्पण
 उग्राहों की समर्पण करने की बुद्धि रखते हुए मनुष्यों को जो कुछ भी हो
 , दान करना चाहिये । यह अन्नय नाम दिया करता है विशेष रूप से
 अन्न का दान परम प्रदाय होता है । हे नारद ! हे विप्रेन्द्र ! जिस
 प्रकार से नदियों का, बेलों का घोर है विप्रर्षे ! सागरों का अभी तप
 नहीं हुआ रहता है । वैसे ही हे मुने ! कार्तिक मास में जो कुछ भी
 दिया जाता है हे विप्र ! उसका अभी तप नहीं होता है और पाप गहरों

डुकटे होकर नष्ट हो जाया करता है। कार्तिक मास को प्राप्त हुआ समझकर जो पराये भ्रष्ट का ग्रहण करना छोड़ देता है वह परम पुण्य किया करता है। ३१-३५।

दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोत्ययत्नतः ।

न कार्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम् । ३६।

न वेदसदृश शास्त्रं न तीर्थं गङ्गाया समम् ।

न चाऽन्नसदृशं दानं न सुखंभार्ययासमम् । ३७।

श्यायेनोत्पाजितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम् ।

दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थं च प्रतिपादनम् । ३८।

कार्तिके मुनिशार्दूल ! शालग्रामशिलाचर्चनम् ।

स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणा । ३९।

एतादृश कार्तिकश्च अकृतेनैव यो नयेत् ।

पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम् । ४०।

अशक्तेन कथं कार्यं कार्तिकव्रतमुत्तमम् ।

येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह ! । ४१।

दिन-दिन में उस दूसरे के भ्रष्ट को त्याग कर देने वाले पुरुष को अतिकृच्छ्र महा व्रत करने का पुण्य-फल प्राप्त हो जाना है और कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। इस कार्तिक के समान पण्य कोई भी मास नहीं है और कृतयुग के तुल्य कोई युग नहीं है। ३६। वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है और गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं है, भ्रष्ट के सदृश कोई अन्न दान नहीं है और माया के सदृश कोई दूसरा सुख नहीं होता है। श्याय से उत्पाजित द्रव्य दान करने वालों को परम दुर्लभ होता है। मर्त्य धर्म वालों को तीर्थ में प्रतिपादन करना भी दुर्लभ है। ३७। ३८। हे मुनिशार्दूल ! कार्तिक मास में शालग्राम शिला का प्रर्चन और भगवान् वासुदेव का स्मरण पाप भीरु मनुष्य को अवश्य ही करना चाहिये। ऐसे कार्तिक मास को जो भक्त से ही व्यतीत करा

हे वह पूर्व में किए हुये पुण्य का बिना संग्रह के क्षय प्राप्त किया करता है । ३६।४००। श्री गारुड जी ने कहा—हे पितामह ! जो अशक्त हो उसे द्वा उत्तम कार्तिक ऋतु प्रत कर्म करना चाहिये जिसमें कि वह उस फल की प्राप्ति कर लेवे, कृपा करके भव भ्राप यही मुझे बतलाए । ४१।

अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत् ।
 अन्यस्मैद्रविणं दत्त्वाकारयेत्कार्तिकव्रतम् । ४१।
 तस्मात्पुण्यं प्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम् ।
 द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवपिसत्तम । ४३।
 तदा तेन प्रकृतं व्यं पानं तीर्थजलस्य च ।
 तत्राऽप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेर्भुंदा । ४४।
 स्मरणं च प्रकृतं व्यं नाम्ना नियमपूर्वकम् ।
 भक्षण्डितं तदा तेन कार्तिकव्रतजं फलम् । ४५।
 विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ।
 शिवविष्ण्वोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि । ४६।
 दुर्गादेव्या स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत् ।
 कुर्यादश्वत्थमूले तु तूलसीनां वनेष्वपि । ४७।
 विष्णुनामप्रसङ्गानां गायनं विष्णुसन्निधौ ।
 गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः । ४८।
 वायुकृतपुरुषश्चाऽपि वाजपेयफलं लभेत् ।
 सर्वसौर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् । ४९।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जब मनुष्य अशक्त एवं सामर्थ्य से हीन हो तो उसको इस व्रत का इस प्रकार से आचरण करना चाहिये कि किसी भग्न को धन देकर इस कार्तिक मास के व्रत करे । ४२। उससे दान और सङ्कल्प पूर्वक इस व्रत पुण्य को स्वयं ग्रहण कर लेवे । हे देवपि सत्तम ! जब अशक्त भी हो तो भी द्रव्य दान से इसको किया जा सकता है यदि द्रव्य देने की भी सामर्थ्य न हो तो उस समय में

उसको केवल तीर्थों के जल का पात्र हो करना चाहिए । यदि यह करने में भी असक्त हो तो उसको प्रसन्नता से नित्य श्रीहरि का स्मरण नियम पूर्वक नाम से करना चाहिए । ४३।४४। उसी यह कार्तिक मास का व्रत का फल उससे अव्यभिचर होता है । भगवान् विष्णु भगवा भगवान् शिव के भालय में हरि जागर करना चाहिये । शिव तथा विष्णु के भालय के प्रभाव होने पर सभी देवों के भालयों में भी यह अवश्य हो करे । ४५।४६। दुर्गादेवों में स्थित यदि वा आपद्गत हो तो किसी भस्त्रेय (पीरय) के मूल में या तुलसी के वनों में इसे कर लेवे । ४७। भगवान् विष्णु की सन्निधि में विष्णु के नाम के प्रबन्धों का वाचन करने से ब्रह्म मानव एक सहस्र गोमों के प्रदान करने का फल प्राप्त किया करता है । बाघों के करने वाला पुरुष भी बाजपेय यज्ञ करने का पुण्य फल प्राप्त करता है । जो नृत्य करने वाला वहाँ पर चर्त्तक होता है वह भी सब तीर्थों के अवगाहन करने के पुण्य-फल की प्राप्ति कर लिया करता है । ४८।४९।

सर्वमेतत्तलभेत्पुण्यमेतेषां ब्रह्मदः पुमान् ।
 श्रवणाद्दर्शनाद्वाऽपि पङ्कशं फलगान्पुयात् । ४०।
 आपद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः ।
 व्याधितो वाऽप्यवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि सार्जनम् । ४१।
 उद्यापनविधिं कर्तुं मसक्तो यो ब्रतस्थितः ।
 ब्राह्मणाभ्योजयेत्पश्चाद्ब्रतसम्पूतिहेतवे । ४२।
 क्षतकी दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ।
 तस्त वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः । ४३।
 श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीवात्रिपूजनम् ।
 सर्वाऽभावे ब्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि ।
 तस्याऽप्यभावे मनसि विष्णोर्नामाऽनुकीर्तनम् । ४४।
 ब्रह्मन् ! गृहि विशेषेण धर्मान् कार्तिकसम्भवान् । ४५।

इन सब कर्मानुष्ठानों की करी बातों को जो द्रव्य देने याया है वह पुण्य इनके सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त कर लिया करता है । इनके दर्शन करने से तथा श्रवण करने से भी छट्ठी भाग फल प्राप्त होता है । प्राप्ति प्राप्त पुण्य कहीं पर भी जिस समय में जल की प्राप्ति नहीं किया करता है यथा वह किसी ध्याधि में युक्त हो तो उसको चाहिये कि भगवान् विष्णु के नामों का उच्चारण कर मार्जन मात्र ही कर लिया करे । १५०।५१ जो कोई मनुष्य यत्र में स्थित होकर उसके उद्यापन की विधि के सम्पादन करने में समर्थ हो तो उसको व्रत की सम्पूर्ति के लिए पीछे ब्राह्मणों का भोजन करा देना चाहिए । यदि दीपदान करने की भी ध्येय व रसना हो तो पराये गीर्षों को ही प्रशोधित कर देना चाहिए । यथा दूसरों के द्वारा जलाये हुए दीपों की घामु प्रादि से प्रपन्न पूर्वक सुरक्षा करनी चाहिए कि वे बुझने न पावें । यदि भगवान् विष्णु के पूजन करने का अभाव हो तो केवल तुलसी यथा पात्री (पादिका) का पूजन करना चाहिये । यदि सभी का अभाव हो तो प्रसी को ब्राह्मणों का एवं गीर्षों का अर्घन करना चाहिये । यदि कोई ऐसा ही रक्षित हो नहीं इन सभी का अभाव हो तो केवल मन में विष्णु के नामों का कीर्तन कर लेवे । देखिये प्रवर मारद जी ने कहा—हे ब्रह्मन् । नियत रूप से कालिदास भाग में होने वाले यज्ञों की वृत्तादि १५२—१५५।

३१—सर्वदागमातप्रदोत्तमं तथा स्नानमाहात्म्यकरणं

नारायण नमस्तस्य नमस्तस्य नरोत्तमम् ।

देवी सरस्वती ध्यातुं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

भूयोऽयं मुनिराजः शशाङ्कः परमेष्ठिनः ।

पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्वपृष्ठद्वयम् ॥२॥

सर्वेभ्योऽपि भगवतो माहात्म्यमग्रम् ।

यत्र तथा गुरोः श्लाघ्यदापोत्तमदायदा ॥३॥

वंशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् ।
 इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माघवस्य च ।३।
 श्रोतुं कोतूहलं ब्रह्मभूयं विष्णुप्रियो ह्यसौ ।
 के च विष्णुप्रियाधर्मा मासे माघवत्सलभे ।४।
 तथाऽप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवत्सलभाः ।
 किं दानं किं फलं तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान् ।५।
 कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माघवो माघवागमे ।
 एतत्प्रारद ! विस्तार्यं मह्यं श्रद्धावतेवद ।६।
 मया पृष्ठः पुरा ब्रह्मा मासधर्मान्पुरातनान् ।
 व्याजहार पुरा प्रोक्तं यच्चिद्वयं परमात्मना ।७।
 ततो मासा विशिष्योक्ताः कार्तिको माघ एव च ।
 माघवस्तेषु वंशाखं मासानामुत्तमं व्यधात् ।८।

भक्तलाचरण — भगवान् नारायण को समस्कार करके तथा
 नरोत्तम नर, देवी सरस्वती एवं व्यास को प्रणाम करके जय घण्ट का
 उच्चारण करने चाहिये । श्री सूतजी ने कहा — राजा ने फिर भी पर-
 मेष्ठी ब्रह्माजी ने भक्तभू (तनय) श्री नारद जी से परम पुण्यमय
 श्री माघ का माहात्म्य पूछा था । राजा धर्मवीर ने कहा — हे ब्रह्म !
 सभी मासों का माहात्म्य बखानक ही पहिले मैंने पापसे मुक्त था । जिस
 समय मैं प्राणने रहा था उस समय मैं कहा था कि इन समस्त मासों
 में वैष्णव मास सबसे प्रबल सर्वान् व्येष्ट है — ऐसा निश्चित है । हे
 ब्रह्म ! यह सुनने का बड़ा भारी हृदय में जोरुहल है कि यह विष्णु
 का प्रिय वंश है ? इस माघ वंश मास में भगवान् विष्णु के प्रिय से
 धर्म जोन से है ? वही पर भी इनकी जोन से विष्णु के बलम धर्म
 करने के योग्य है । क्या दान है और उगना क्या पत्त है और इन
 पत्त का समाचरण जिसका उद्देश्य लेकर करना चाहिये । १ - २। माघ
 के मास में दिन द्रव्यों से यह भगवान् माघ पूजने के योग्य होते हैं ?

हे नारद ! यह सब विस्तार के साथ श्रद्धावान मुझको आप कृपाकर के बतलाइये । ६। देवर्षि प्रवर नारद जी ने कहा — पहिले मेरे द्वारा ब्रह्माजी पुरातन मासो के घर्मों के विषय पूछे गये थे । परमात्मा श्री नारायण ने जो श्री देवों से पहिले बतलाया था वह कहा था । इसके अनन्तर विशेष करके बार्त्तिक श्रीर माघ ये दो मास बताये गये थे । उनमें माघ ने वैशाख को मासो मे उत्तम कहा था । ७। ८।

मासेषु सर्वजीवानां सदैवेष्ट प्रदायकः ।

दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः । ६।

धर्मयज्ञक्रियासारस्तपः सारः सुरार्चितः ।

विद्यानां वेदविद्य व मन्त्राणां प्रणवीयथा । १०।

भूतहाणां सुरतर्ष्यैर्नृणां कामधेनुवत् ।

लोपघरसर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा । ११।

देवानां तु यथाविष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ।

प्रणवत्प्रियवस्तूनां भार्येव सुहृदां यथा । १२।

आपगानां यथा गङ्गा तेजसां तुरविर्यथा ।

आयुधानां यथा चक्रं पातूनां काञ्चनयथा । १३।

वैष्णवानां यथा रुद्रोरत्नानां कीस्तुभो यथा ।

मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा । १४।

जैसे समस्त जीवों की माता दुधा करती है उसी भाँति सर्वदा सभीष्ट वस्तु का प्रदान करने वाला यह वैशाख मास दुधा करता है । इसकी ऐसी महिमा है कि यह दान, व्रत और स्नानों के द्वारा समस्त पापों का विनाश करने वाला है । ६। यह मास धर्म-यज्ञ और क्रियाओं का सार स्वरूप है तथा तपस्या का सार है और सुरों के द्वारा समर्चित है । समस्त विद्यार्थों में वेद विद्या के समान ही है । सम्पूर्ण मन्त्रों में जैसे परम प्रधान प्रणव होता है वैसे ही यह समस्त मासो में प्रमुख है । तर्ष्यों में कल्प वृक्ष के सुत्य तथा धेनुओं में कामधेनु के सदृश यह मास सबमें

श्रेष्ठ माना गया है । सब नागों में शेष शीर पक्षियों में गरुड़ की भांति होता है । सब देवों में जैसे भगवान् विष्णु हैं—समस्त वर्णों में जिस तरह ब्राह्मण हैं वैसे ही यह मास होता है । प्रियतम वस्तुओं में प्राण के समान और हित के चिन्तक सुहृदों में आर्या के ही सदृश यह होता है । नदियों में भागीरथी गङ्गा जैसे सर्वश्रेष्ठ है तथा तेजस्वियों में जिस प्रकार से रवि हंते हैं—वायुओं में सुवर्ण चक्र, वातुओं में सुवर्ण, शैलियों में रुद्रदेव, रत्नों में कौस्तुभ होता है ठीक उसी भांति से धर्म हेतु मासों में वैशाख हुआ करता है । १०-१४।

नास्तेन सदृशो लोके विष्णुप्रोतिविधायकः ।

वैशाखस्नाननिरते मेघे प्रागयमोदयात् । १५।

लक्ष्मीसहायो भगवात्प्रोति तस्मिन्करोत्यलम् ।

जन्तूनांप्रीणनयद्वदन्ने नैवहिजायते । १६।

तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयम् ।

वैशाखस्नाननिरताञ्जनादृष्ट्वाऽनुमोदते । १७।

सायतापिविमुक्तोऽर्धेविष्णुलोकेमहीयते ।

सकृत्स्नात्त्वामेपसंस्थेसूर्यप्रातः कृताह्निकः । १८।

महापार्षद्विमुक्तोऽसौ बिष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।

स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि । १९।

सोऽश्वमेधायुतानाञ्चफलमाप्नोत्यसंशयम् ।

अथवाकूटचिरास्तुकुर्वत्सङ्कल्पमाश्रयम् । २०।

सोऽपि कृतशतपुण्य लभेदेव न संशयः ।

यो गच्छेद्वनुरायामं स्नातुं मेघगते रवी । २१।

सर्ववन्धविनिर्मुक्तो बिष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च । २२।

इसके समान लोक में भगवान् विष्णु की प्रीति का विधायक अन्य कोई भी मास नहीं है । अथवा (सूर्य) उदय होने से पूर्व मेघ

के सूर्य के समय में जो पुरुष वैशाख मास में स्नान में निरत रहा करता है उस पर लक्ष्मी देवी के साथ भगवान् अत्यधिक प्रीति किया करते हैं । जिस तरह से जन्तुओं की प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि भस्त्र से ही हुमा करती है उसी प्रकार से वैशाख मास के स्नान से निःसंशय भगवान् विष्णु प्रसन्न एवं तृप्त हुमा करते हैं । जो वैशाख मास के स्नान में निरत रहने वाले पुरुषों को देखकर अनुमोदित होता है उसने मात्र के करने से भी मनुष्य पापों से विमुक्त हो जाया करता है और अन्त में विष्णु लोक जाकर प्रतिष्ठित होता है । एक बार मेघा राशि पर संस्थित सूर्य के रहने के समय में स्नान करके प्रातःकाल में जो अपना आर्क्षिक कृत्य करने वाला है वह महान् पापों से विमुक्त होकर भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लिया करता है । वैशाख मास में स्नान करने के लिए यदि एक कदम भी चरण करता है तो वह पुरुष अयुत (दस हजार) अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त कर लिया करता है—इसमें शेष मात्र भी संशय नहीं है । भयवा कूट चित्त वाला होकर ऐसा करने का सङ्कल्प-भार कर लेता है वह भी सौ क्रतुओं के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो मेघ राशि पर सूर्य के जाने पर स्नान करने के लिए अनुष्याम को जाता है वह इस आवागमन के सर्ग के बन्धन से विमुक्त होकर विष्णु भगवान् के सायुज्य की प्राप्ति कर लेता है । त्रैलोक्य में जो भी तीर्थ हैं और जो इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीर्थ हैं हे राजेन्द्र ! वे सभी बाह्य छोड़े से जल में होते हैं । ११५—२२।

तानि सर्वाणि राजेन्द्र ! सन्ति बाह्येऽल्पके जले ।

तावल्लिखितपापानि गजन्ति यमशासने । २३।

यावन्न कुर्वते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि ।

तीर्थादिदेवताः सर्वा वैशाखेमासिभूमिषु ! २४।

बहिर्जलं सभाश्रित्य सदा सन्निहितानृप ।
 सूर्योदयं समारभ्य यावत्पङ्कटिकावधि । १२५।
 तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ।
 तावन्नागच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा सुदारुणम् ।
 स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र ! तस्मात्स्नानं समाचरेत् । १२६।

उत्तने समय तक यमराज के शासन में स्थित एवं लिखित पाप
 अपनी गर्जना किया करते हैं जब तक जोव वंशाख मास में जल में
 स्नान नहीं करता है । हे राजन् ! हे भूमिपालक ! शीर्षादि के समस्त
 देवगण वंशाख मास में जल के बाहिर समाश्रय लेकर सदा सन्निहित
 रहा करते हैं और वे सूर्य के उदय से लेकर जब तक त्रै लोको की
 अधिपति होती है तब तक भगवान् विष्णु की आज्ञा से मनुष्यों की हित
 करने की कामना से ही वहाँ पर स्थित रहते हैं । उत्तने समय तक भी
 जो नहीं गमन करते हैं उनकी वे सुदारुण शाप देकर हे राजेन्द्र ! अपने-
 अपने स्थान को प्रस्थान कर जाया करते हैं । इसलिए सूर्योदय से पूर्व ही
 यमराज वंशाख मास में स्नान का समाचरण करना चाहिये । १२५-१२६।

३२-ज्ञानस्वरूपनिरूपण

अथ ज्ञानस्वरूपं तेवञ्चिसाद्वैत्येन निश्चितम् ।
 क्षेत्रादिज्ञापते येन तज्ज्ञानं हि निश्चयते । १।
 वासुदेव परं ब्रह्म बृहत्पक्षरघामनि ।
 सादावेकोऽद्वितीयोऽभूत्त्रिगुणो दिव्यविग्रहः । २।
 सकाशं मूलप्रकृतिः सकलाऽक्षरतेजसि ।
 प्रकाशोऽर्कस्य रात्रीव तिरोभूता तदाऽभवत् । ३।
 सिमृक्षोऽयामवतास्य ब्रह्माऽऽनायदा तदा ।
 सकला विबुधवादी महामाया ततो हि सा । ४।

तां कालशक्तिमादाय वासुदेवोऽक्षरात्मना ।

सिसृक्षयैक्षत यदा सा चुक्षोम तदैवहि ।१।

तस्याः प्रधानपुरुषकोटयोजज्ञिरे मुने ! ।

युज्यन्ते स्म प्रधानैस्ते पुरुषाश्चेच्छयाप्रभोः ।६।

पुमांसोनिदधुर्गर्भास्तेषु तेभ्यश्चजज्ञिरे ।

ब्रह्माण्डानिह्यसङ्ख्यानितत्रैकंतुविचिच्यते ।७।

भगवान् श्री नारायण ने कहा—सङ्ख्य दशम के द्वारा जो निश्चित किया गया है उस ज्ञान के स्वरूप को मैं तुमको बतलाता हूँ । क्षेत्र आदि का जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है वही ज्ञान भव बतलाया जाता है । इस बृहन्नी भक्षर व्याम में वासुदेव परम ब्रह्म है । आदि काल में निर्गुण श्रीर दिव्य विग्रह वाला एक ही अद्वितीय हुआ था ।१।२। वह समस्त कार्यों की मूल प्रकृति सकल भक्षर तेज युक्त सूर्य के प्रकाश में शक्ति के समान उस समय में तिरोभूत हो गई थी ।३। इसके अनन्तर जिस समय में उसकी ब्रह्माण्डों के सृजन करने की इच्छा हुई थी उस समय में आदि में फिर वह महामाया आविर्भूत हो गई थी । ४। भगवान् वासुदेव ने भक्षरात्मा के द्वारा उस काल शक्ति को लेकर जिस समय में सृजन करने की इच्छा से देखा था उसी समय में उसने सोम किया था ।५। हे मुने ! उससे करोड़ों प्रधान पुरुष समुत्पन्न हो गये थे और वे प्रभु की इच्छा से पुरुष प्रधानों के मुक्त हो गये थे ।६। पुमानों ने उनमें गर्भों को धारण किया था और उनसे समुत्पन्न हुए थे । असङ्ख्य ब्रह्माण्ड हुए थे उनमें से भव एक की विशेष विवेचना की गी है ।७।

आदौ जज्ञे महांस्तस्मात्पुंसो वीर्याद्विरण्मयात् ।

अहङ्कारस्ततस्तस्माद्गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः ।८।

तमसः पञ्च तन्मात्रा महामूतानि जज्ञिरे ।

दशेन्द्रियाणि रजसा बुद्ध्यायहमहानसुः ।९।

सत्त्वादिन्द्रियदेवाश्च जायन्ते स्म मनस्तथा ।
 तामान्यतस्तत्त्वसञ्ज्ञा एते देवाः प्रकीर्त्तिताः । १०।
 प्रेरिता वासुदेवेन स्वस्वादीरैश्वरं वपुः ।
 क्षजीजनन्विराट् सञ्ज्ञं ते चराचरसंश्रयम् । ११।
 सच चैराजपुरुषः स्वसृष्टास्वप्स्वशेत यत् ।
 तेन नारायण इति प्रोच्यते निगमादिभिः । १२।
 तन्नाभिपद्माद् ब्रह्माऽऽसीद्वाजसीऽय हृदम्युजात् ।
 जज्ञे विष्णु सत्त्वगुणो ललाटात्तामसी हरः । १३।
 एतेष्मा एव स्थानेभ्यस्ति सत्त्वमासंश्रयशक्तयः ।
 तत्रासीत्तामसीदुर्गा सा वित्री राजसी तथा ।
 सात्त्विकी श्रीश्चेति सर्वा पञ्चाऽलङ्कारलोभिताः । १४।

आदि में उस पुरुष के हिरण्मय बीजों से महान उत्पन्न हुआ था । उससे महद्गुण उत्पन्न हुआ था और फिर उस महद्गुण से सत्त्व, रज और तम के तीन गुण समुत्पन्न हुए थे । तम से पञ्च तन्मात्राएँ पञ्च महाभूत समुत्पन्न हुए थे । रज से दश इन्द्रियाँ और बुद्धि के साथ महान प्रभु उत्पन्न हुए थे । सत्त्व गुण से इन्द्रियों के देवता तथा मन की समुत्पत्ति हुई थी । सामान्य रूप में ये सब देव सत्त्व तथा वाते थे । ऐमा कीर्त्तन किया गया है । १०। भगवान् वासुदेव के द्वारा प्रेरित होकर प्रपन्न-प्रपन्न प्राणों से ईश्वरीय वायु को उत्पन्न किया था और वे चर और अचरों का संश्रय विराट् सत्ता वाते थे । ११। और वह चैराज पुरुष प्रपन्न द्वारा समुत्पन्न किये हुए जब मैं सपन करती थी तब मैं निगम आदि के द्वारा वह नारायण इन नामों से कहे जाये करते हैं । १२। इनके धनन्तर उदरे हृदय के मधुन से रावण प्रताप मधुमत्त हुए थे, गरव गुण विविध विष्णु हुए और तन्मात्र से तमोगुण गुण हर की उत्पत्ति हुई थी । १३। इन्हीं स्थानों से ये तीन शक्तियाँ हुई थी । वही

पर तामनी देवी दुर्गा थी, राजसी भगवती सावित्री थी और सात्विकी महालक्ष्मी हुई थी ये सभी वस्त्र और अलङ्कारों से विभूषित थीं । १४।

सा वैराजाज्ञया श्रीश्च ब्रह्मादीन्प्रतिपेदिरे ।
 दुर्गा रुद्रश्च सावित्री ब्रह्माणं विष्णुमग्निमा । १५।
 चण्डिकाद्याश्च दुर्गाया अंशेनाऽऽसत्सहस्रशः ।
 त्रयीमुख्याश्च सावित्र्याः शक्तयोऽंशेन जज्ञिरे ।
 दुस्सहाप्रमुखाश्चासन्नंशेनैव श्रियो मुने ! । १६।
 तत्रादितो यो ब्रह्माऽऽसीद्वै राजनाभिपद्मतः ।
 एकाण्वेतदब्जस्यः सकश्चिदपि नैक्षत । १७।
 विसर्गबुद्धिमप्राप्तोनात्मानश्चविवेदसः ।
 कोऽहं कुत इति व्यायन्नदिहकत्कमाश्रयम् । १८।
 नाऽल प्रविशन्नाऽघो यातुस्तन्मूलश्चविचिन्वतः ।
 सम्पत्सरशतं यात तस्य नाऽन्तं तु सोऽलभत् । १९।
 ऊर्ध्वं पुनरुपेत्याऽथ श्रान्तश्च निपसाद सः ।
 अदृश्यमूर्तिर्भगवानूचे तपतपेति तम् । २०।
 तच्छ्रुत्वा तत्प्रवक्तारमदृष्ट्वा च स सर्वतः ।
 गुरुपदिष्टवर्त्तपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् । २१।

उन्ने वैराज की आज्ञा से तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनको प्राप्त किया था दुर्गादेवी ने रुद्रदेव को प्राप्त किया था, सावित्री ने ब्रह्मा को प्राप्त किया था और महालक्ष्मी ने भगवान विष्णु का समाश्रय ग्रहण किया था । १५। चण्डिका आदि अन्य सहस्रों स्वरूप दुर्गा देवी के ही अंश से समुत्पन्न हुए थे । त्रयीमुख्य सावित्री के अंश से उत्पन्न हुए थे । हे मुने ! दुस्सहा प्रमुख श्री देवी के अंश से हुए थे । १६। वहाँ पर आदि मे जो ब्रह्मा थे वह वैराज की नाभि देश मे समुत्पन्न कमल से हुए थे । उस समय में यह सम्पूर्ण त्रिश्च एकाण्वं स्वरूप था अर्थात् सर्वत्र एक मात्र समुद्र ही था । उस समय मे कमल में स्थित ब्रह्माजी

ने कुछ भी नहीं देखा था । १७। वह विसर्ग की बुद्धि को प्राप्त नहीं हुए थे अर्थात् उस ब्रह्मा ने विक्षेप का से सगं करने की बुद्धि विस्तृत नहीं की थीर न वे अपने प्रापके स्वरूप का ही कुछ ज्ञान रखते थे । मैं कौन हूं और कहाँ से समुत्पन्न होकर यहाँ प्राप्त हुआ हूँ—ऐसा ध्यान करते हुए उन्होंने कजायम को ही देख पाया था । १८। उस भगवान नारायण के नामि प्रदेश से समुत्पन्न पद्म माल में ब्रह्मा ने अधोभाग में प्रवेश किया था और उस माल के मूल की खोज करने की इच्छा की थी किन्तु इसी खोज के करने में एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे किन्तु फिर भी वे उसका भन्त प्राप्त न कर सके थे । १९। वह ब्रह्मा फिर उसी पद्म के ऊपर आ गये थे और परम श्रान्त होकर उसी पर बैठ गये थे । उनी समय में अत्यन्त थके हुए और थकाये हुए ब्रह्माजी से भट्टप भूति वाले प्रभु की यह आवाज हुई थी कि तपश्चर्या करो । २०। ब्रह्माजी ने 'तप-तप' यह ध्वनि तो सुनी थी किन्तु इसके कहने वाला कौन है यह सभी धीरे देखते हुए भी न देख पाये थे । फिर उस ब्रह्माजी ने गुरु के उप-देश को ही मानकर एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तप किया था । २१।

पथे तपस्यते तस्मै तपः शुद्धात्मने ततः ।

समाधी दक्षांमासाधामवैकुण्ठमच्युतः । २२।

प्राधानिकागुणा यत्र त्रयोपि रजःवादयः ।

न भयमत्यल्पमपि यत्कालमायामयं च । २३।

सहोदिताकार्यायुतवद्भास्वरेतत्र तैजसि ।

वासुदेवंददस्तांती रम्यदिव्यासिताकृतिम् । २४।

चतुर्भुजं गदापद्मशङ्खचक्रधरं विभुम् ।

पीताम्बरं महारत्नकिरीटादिविभूषणम् । २५।

नन्दताक्ष्यादिभिर्जुष्टं पापं देव चतुर्भुजैः ।

सिद्धिभिर्प्राप्तमिह पद्मभिवंदाश्लिपुटं गीतैः । २६।

सिंहासने श्रिया साकमुपविष्टं तमोश्वरम् ।

प्रणम्यप्राञ्जलिस्तथोविरञ्चो हृष्टमानसः । १२७।

तं प्राह भगवान्ब्रह्मास्तुष्टोऽहंतपसा तव ।

वरं वरयमत्तस्त्वंस्वाभीष्टंयत्प्रियोऽसि मे । १२८।

उस पक्ष में स्थित होकर तपश्चर्पा करने वाले धुंदात्मा ब्रह्माजी को समाधि में ही भगवान् अच्युत ने अपना बैकुण्ठ धाम दिखलाया था । १२२। वहाँ पर सत्त्वादि तीनों प्रधान के गुण थे वहाँ पर अल्प भी काल माया के भय नहीं थे । वहाँ ऐसा तेज विद्यमान था जैसे दश सहस्र सूर्य एक साथ उदित हो रहे हों उस तेज में परम रम्य दिव्य प्रसित आकृति वाले भगवान् वासुदेव का ब्रह्मा ने दर्शन प्राप्त किया था । १२३। १२४। भगवान् का चार भुजाग्रो से युक्त, गदा, शङ्ख, पद्म और चक्र इन आयुधों को धारण करने वाला, पीताम्बर धारी और महारत्नों से समन्वित किरीट आदि भूषणों से भूषित स्वरूप था । १२५। चार भुजाग्रो वाले नन्द और ताक्ष्य आदि पापंदो के द्वारा वे । वहाँ पर सेवित थे । आठो अणिमादि सिद्धियाँ और र्ध्व भाग हाथ जोड़े हुए उनकी सेवा में उपस्थित थे । १२६। एक दिव्य सिंहासन पर भगवान् श्री देवी के साथ विराजमान थे । ऐसे ईश्वर का दर्शन प्राप्त करके ब्रह्माजी ने उनको प्राञ्जलि दीधकर प्रणाम किया और इनके आगे परम प्रसन्न मन वाले होकर स्थित हो गये थे । १२७। उस समय में भगवान् ने उन ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मन् ! मैं आपके इस अत्युन्नत तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ । अब आप मुझसे जो भी आपकी अभीष्ट हो वह वरदान प्राप्त कर लो । मैं आपके प्रिय वरदान को देना चाहता हूँ । १२८।

इत्युवतस्तेन तं जानस्तपसि प्रेरकं प्रभुम् ।

स्वञ्चविश्वसृज ब्रह्माययाचेऽभिमतंवरम् । १२९।

प्रजाविसर्गशक्ति मे देहि तुम्यनमः प्रभोः ।

तन्नाविचन वदष्येयं यथा कुरुतथाकृपायाम् । १३०।

ततस्तं भगवानूचे सेत्स्यते ते मनोरथः ।

वैराजेन मयात्मैक्यभावयित्वा समाधिना ।३१।

प्रजाः सृजाऽथ स्वसाध्ये जार्ये स्मर्योऽहमिष्टदः ।३१।

इत्युक्त्वाऽन्तदंधे विष्णुर्ब्रह्माप्येकसमाधिना ।

वैराजेनाऽथ लोकप्राग्लीनासर्वान्स्त ऐक्षत ।३२।

विसर्गशक्तिं सम्प्राप्य स सर्गाय मनोदधे ।

ब्रह्माज्योतिर्ममस्तावदादित्यः प्रासुरास ह ।३३।

स्थायिपिरवाण्डमध्ये तं ततः स मनसाऽसृजत् ।

तपोभक्तिविधुद्धेन मुनोनाद्यांश्चतुः सनान् ।३४।

उन प्रभु के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उनको ही अपनी सपत्नी का प्रेरक प्रभु समझ कर ब्रह्माभी ने अपने आपको इस विश्व की सृष्टि करने वाला अभिमत करदान उनसे माँग लिया था ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभो ! मुझे आप प्रजा के विसर्ग करने की महान दिव्य शक्ति प्रदान कीजिए । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । उसमें भी मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है सो आप ऐसी कृपा करिये कि मैं विसर्ग का ठीक २ ज्ञान भी प्राप्त कर सकूँ । ३१। ३०। इसके अनन्तर भगवान् ने कहा—तुमको प्रजा की सृष्टि करने का ज्ञान प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा मनोरथ सफल होगा । वैराज मेरे साथ आत्मा की एकता की समाधि द्वारा भावना करके प्रजा का सृजन करो । अपने लिए जब भी यह कार्य असाध्य समझो तभी अभीष्ट प्रदाता मेरा तुमको स्वरण कर लेना चाहिए । ३१। इतना कहकर भगवान् वही पर अन्तर्हित हो गये थे और ब्रह्मा ने भी एक समाधि के द्वारा वैराज से प्राकृती सब लोकों को स्वतः ही देख लिया था । ३२। ब्रह्मा ने विसर्ग की शक्ति को प्राप्त करके फिर विश्व की रचना की और अपना लगाया था । तब तक ब्रह्माज्योति से परिपूर्ण आदित्य प्राहुमुत्त हुए थे । ३३। उसको आण्ड के मध्य में स्थापित करके इनके पश्चात् ब्रह्माजी ने मन से ही सृजन का कार्य आरम्भ किया

या । तप से भीर भक्ति से परम विशुद्ध मन के द्वारा ब्रह्माजी ने प्रादि मे होने वाले सनकादि चार मुनियों का सृजन आरम्भ किया था । ३४।

प्रजाः सृजतचेत्यूचेतास्तदातेतुतद्वचः ।

न जगृह्वर्त्तंष्टिकेद्रास्तेभ्यश्च क्रोध विश्वसृष्ट् ॥ ३५ ॥

क्र द्रस्य तस्य भालाच्च रुद्र आसीत्तामोमयः ।

मप्युं नियम्य मनसा प्रजेशान्सोऽसृजत्ततः ॥ ३६ ॥

मरीचिमत्रि पुलहं पुलस्त्यश्च भृगु क्रतुम् ।

वसिष्ठं कदमश्चैव दक्षमङ्गिरस तथा ॥ ३७ ॥

धर्मं ततः सहृदयादधर्मं पृष्ठतस्तथा ।

मनसः काममास्याच्चवाणीक्रोधं भ्रूवोऽसृजन् ॥ ३८ ॥

शौच तपो दया सत्यमिव धर्मपदानि च ।

चतुर्भ्यो वदनेभ्यश्च चत्वारि ससृजेनतः ॥ ३९ ॥

ऋग्वेद वदनात्पूर्वाद्यजुर्वेदं च दक्षिणात् ।

ससर्ज पश्चिमात्साम सोम्याद्वाऽथर्वसञ्ज्ञितम् ॥ ४० ॥

उन सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमाररुन चारों की मन से सृष्टि करके उनसे ब्रह्माजी ने कहा था प्रजापति का मेरे ही समान तुम नाग सृष्टि करो । उस समय मे उन्होंने ब्रह्माजी के वचन को ग्रहण नहीं किया था क्योंकि वे नैष्ठिकों में परम शिरोमणि थे । उन पर विश्व के सृष्टा ब्रह्मा ने बहुत क्रोध किया था । ३५। अत्यन्त क्रोधित हुए उनके भाल से तमोमय रुद्र हुए थे । उस समय में मन में क्रोध को नियमित करके उन्होंने प्रजेशों का सृजन किया था । ३६। उन प्रजापतियों के नाम ये हैं—मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, भृगु, क्रतु, वसिष्ठ, कदम, दक्ष और मङ्गिरा, ये दस प्रजापतियों का सृजन किया था । ३७। इसके अनन्तर उन्होंने हृदय से धर्म का और पृष्ठ भाग से अधर्म का सृजन किया था । मन से काम, मुख से वाणी और मृकुटियों से क्रोध की सृष्टि की थी । ३८। धर्म के चार पद हैं—शौच, तप, दया, और सत्य

ये चार चरण हैं। ब्रह्माजी ने अपने चार मुखों से इन शीवादिक चारों की रचना की थी ॥३६॥ इसके अनन्तर चारों वेदों की सृष्टि की थी। ब्रह्माजी ने अपने पूर्व मुख से ऋग्वेद का उच्चारण कर उसे आविर्भूत किया था। दक्षिण दिशा की ओर जो मुख था उससे यजुर्वेद का सृजन किया था। पश्चिमामुख से सामवेद को प्रकट किया और उत्तर की ओर बाने मुख से अथर्व वेद को प्रकट किया था ॥४०॥

इतिहासपुराणानि यज्ञान्विप्रशतं तथा ।
यस्वादित्यमरुद्विश्वान्साध्याश्च मुखतोऽसृजत् ॥४१॥
बाहुभ्यः क्षत्रियशतमूरुभ्या चविंशशतम् ।
पद्भ्यां शूद्रशतचैमान्ससजसहवृत्तिभिः ॥४२॥
ब्रह्मचर्यं च हृदयाद्वाहस्थं जघनस्थलात् ।
वनाश्रमंतथोरस्तः सन्यासंश्चिरमोऽसृजत् ॥४३॥
वक्षः स्थलात्पितृगणानसुराञ्जघनस्थलात् ।
ससर्गं च गुदान्मृत्युनिर्मुक्तिं निरयाश्रयः ॥४४॥
गन्धर्वाश्चाराणान्सिद्धान्सर्पान्यक्षा राक्षसान् ।
नगान्मेघान्विद्युतश्च समुद्रान्तरितस्तथा ॥४५॥
वृक्षापशून्पक्षिणश्च सर्वान्स्थावरजङ्गमान् ।
स्वाङ्गैश्चैव सोलाक्षीद् ब्रह्मा नारायणात्मकः ॥४६॥
सृष्टिमेता विलोकयाऽपि नाऽतिप्रीतो यदा तदा ।
होतृव्यात्वा स ससृजे तपोविद्यासमाधिभिः ॥४७॥
ऋषोन्स्वायम्भुवादोश्च मनूँश्च मनुजानपि ॥४८॥

इतिहास पुराणों का सृजन, यज्ञों का तथा विप्र शत का प्रोक्त वसु, आदित्य, मरुद्वय और साध्यों की रचना ब्रह्माजी ने अपने मुख से ही की थी ॥४१॥ बाहुओं से शत क्षत्रियों को तथा ऊरुओं से वैश्यशत का एवं चरणों के शत शूद्रों को उनकी वृत्तियों के सहित ही निमित्त

किया था । ४२। अपने हृदय से ब्रह्मचर्य की, जघनस्थल से गार्हस्थ्य की, उरः स्थल से वनाश्रम भयार्ति वाण प्रस्थ की और शिर से संघात की सृष्टि की थी । ४३। ब्रह्माजी ने अपने वक्षः स्थल से विष्णुको का सृजन किया था, जघन स्थल से अमुरो की सृष्टि की थी जो सुरो के शत्रु थे, और उनसे गुदा से मृत्यु, निर्ऋति और नरको की सृष्टि की थी । ४४। नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने अपने भङ्गो से मन्धर्व, चारण, सिद्ध, सर्प पक्ष, राजस, पर्वत, मेघ, विद्युत्, सब समुद्र, सरितायें, वृक्ष, पशुए पक्षी, सभी जगम और स्यावरो का सृजन किया था । ४५। ४६। इतनी सृष्टि की रचना करके जिस समय में उन ब्रह्माजी ने इनका प्रव-सोक्त किया था तो उस समय में उनको अपनी इतनी विद्या रचना से भी कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई थी । उक्त समय श्रीहृरि भगवान का ध्यान करके ब्रह्माजी ने तप-विद्या और समाधि से मुक्त अथवा तप आदि से ऋषियों को, स्वाम्भुव मनु आदि की और मनुष्यों की भी सृष्टि की । ४७।

ततः प्रीतः स सर्वेपानिवासाय यथोचितम् ।

स्थलीं कञ्च भुवलीं कञ्च भूलीं कञ्च समकल्पयत् । ४८।

येषां तु यादृशं कर्म प्राववलीन हि तान् विधिः ।

संस्थाप्य तादृशे स्थाने वृत्तीस्तेषामकल्पयत् । ४९।

देवानाममृतं नृणामृषीणां चास्त्रमोषधोः ।

प्रक्षरक्षोसुरव्याघ्रसर्पादीनां सुरामिषाम् ।

चक्षुषे गोमृगादीनां वृत्तिं स यवसादि च ॥ ५० ॥

देवानां तु विश्वेषां हव्यं वृत्तिमकल्पयत् ।

अमूर्तानां च भूर्तानां पितॄणां कव्यमेव च । ५१।

दुर्गोद्भवानां पक्षीनां तदुपासनतत्परैः ।

दैत्यरक्षः पिशाचाद्यैर्दत्तं मद्यामिषादि च । ५२।

तथा सावित्र्युद्भवानां शक्तिनां तदुपासकैः ।

दत्तमृष्यादिभिर्यज्ञे मुख्यघ्नचाघ्नमोषधी ॥५३॥

श्रीजातानां च शक्तीनां तदुपास्तिपरायणैः ।

दत्तं देवासुरनरैः पायसाज्यसितादिच ॥५४॥

उस समय मे इनको परम प्रसन्नता हुई थी और इन सबके निवास करने के लिए समुचित स्थानों की रचना करने की इच्छा से स्वर्लोह भुवलोक और भूलोक की सृष्टि की थी ॥५८॥ प्राक् काल में यथात् पहिले जन्मों मे जिसका भी जैसा कर्म था विनाश मे उसी के अनुसार उसी प्रकार के स्थान मे उन सबको स्थापित कर दिया था और उनकी वृत्ति की भी रचना कर दी थी ॥५९॥ देवों के आहार के लिए अमृत का सृजन कर दिया था, मनुष्यों और ऋषियों के लिए मद्य मत्त तथा ओषधियों की रचना कर दी थी । यक्ष राक्षस, असुर, व्याघ्र और सर्पादि के लिए मुरा (मदिरा) तथा मांस की सृष्टि कर दी थी तथा गो और मृग आदि और पशुओं के आहार के लिए यवस आदि का सृजन कर दिया था ॥६०॥ ब्रह्माजी ने विश्वे देवताओं के लिए हव्य की वृत्ति निर्मित कर दी थी और अमूर्त तथा मूर्त पितृगण के लिए कव्य का सृजन किया था ॥६१॥ दुर्गा देवी से उद्भूत होने वाली शक्तियों के और उनकी उपासना करने मे परायण दैत्य राक्षस पिशाच आदि के द्वारा दिया हुआ मद्य और मांस आदि का सृजन किया था ॥६२॥ सावित्री से उद्भूत होने वाली शक्तियों के उपासकों के द्वारा दिया हुआ मद्य मे ऋषि आदि के द्वारा मुख्य और ओषधियों की रचना की थी ॥६३॥ श्री से समुत्पन्न शक्तियों के उपासना में परायणों के द्वारा दिया हुआ जोकि देवासुर नर ये, पायस, भाज्य और सित आदि की रचना की थी ॥६४॥

प्रजापतीनामपतिस्ततः प्राहाऽखिलाः प्रजाः ।

इज्यादेवाश्चपितरोहव्यकन्धात्मकमैखैः ॥६५॥

इष्टाः सम्पूरयिष्यन्ति ह्येतेयुष्मन्मनोरथान् ।
 एतान्येनाऽर्चयिष्यन्तितेवैनिरयगामिनः । १५६।
 इत्थं कृता हि मर्यादा तेन नारायणात्मना ।
 देवं पित्र्यमतो नित्यं जनैः कार्यं यथाविधि । १५७।
 ततो ब्रह्मा स सर्वेषां धर्मसेत्वनायकः ।
 तत्तज्जातिपुत्रे मुखपास्तान्मनून्श्चाप्यतिष्ठिषत् । १५८।
 वासुदेवेच्छयैवेत्यं वैराजादब्रह्मरूपिणः ।
 कल्पेकल्पे भवत्येव सृष्टिर्यद्विधा मुने ! । १५९।
 प्राक्कल्पे यादृशी सञ्ज्ञा वेदा शास्त्राणि च क्रियाः ।
 कल्पेऽप्ये तादृशाः सर्वे धर्माः स्युश्चाऽधिकारिणः । १६०।
 विष्णुयुगं कथितः सोऽपि वैराजपुत्रपात्मकः ।
 पोषयत्यखिललोलोकान्मर्यादाः परिपालयन् । १६१।
 मन्वादिभिः पाल्यमानाः सेतवस्त्वसुरैर्यदा ।
 कामरूपैर्विभिद्यन्ते वासुदेवस्तदा स्वयम् ।
 ब्रह्मादिभिः प्रार्थ्यमानः प्रादुर्भवति भूतले । १६२।

प्रजापतिगो के स्वामी उन ब्रह्माजी ने समस्त प्रजागो से कहा था कि यजन किए हुये देव और हव्य कण्ठात्मक मन्त्रों के द्वारा इष्ट वितर ये सब धाप सब लोगों के मनोरथों को पूर्ण करेंगे । जो लोग इनकी धर्चना नहीं करेंगे वे नरक के गमन करने गाले होंगे । १५६। इस प्रकार से उन नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने मर्यादा की रचना कर दी थी । इसलिए मनुष्यों के द्वारा यथाविधि नित्य ही देव कार्य और पित्र्य कार्य करने चाहिए । १५७। इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने धर्म सेतुकी रक्षा के लिये उन-उन जातियों में जो मुख्य थे उन मनुष्यों की प्रतिष्ठा की थी । हे मुनिवर ! भगवान् वासुदेव की इच्छा ही से ब्रह्मरूपी वैराज से इस प्रकार से बहुत प्रकार की सृष्टि प्रत्येक कल्प में हुमा करती है । १५८। १५९। प्रथम कल्प में जैसी गो संज्ञा होनी है तथा वेद, शास्त्र और

जो भी क्रियायें होती हैं मन्त्र कल्प में भी सभी धर्म उसी तरह के होते हैं और अधिकारी भी वैसे ही हुआ करते हैं । ६०। जिसको विष्णु कहा गया है वह भी वराज पुरुष स्वरूप है क्योंकि वह सर्वादायों का पूर्ण रूप से पालन करता हुआ समस्त लोको का पोषण किया करता है । ६१। मनु प्रादि महापुरुषों के द्वारा पालन करने के योग्य भेतुमो का जिस समय में कामरूप असुरों ने विभेदन किया तो उस समय में स्वयं भगवान् वासुदेव ब्रह्मा प्रादि देवों के द्वारा प्रार्थना की जाने पर भूतल में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं । ६१। ६२।

भवतारा भगवतो भूताभाध्याश्च सन्ति ये ।

कस्तुनक्षकपते तेषा सहस्रा सङ्ख्याविशारदः । ६३।

सद्धर्मदेवसाधूना गुप्ये तद्द्रोहिमृत्यवे ।

अप्येते सर्वभूतानामाविर्भावोऽस्ति सत्पतेः । ६४।

स वासुदेवः प्रकृती पुंसि कार्येषु चैतयोः ।

अन्वितश्च पृथक् चाऽऽस्ते सर्वाधोशः स्वधामानि । ६५।

व्याप्य स्वाक्षरिमांस्लोकान्यथाग्निवद्गुणवयः ।

स्वस्त्यासते स्वस्वलोके तथैव भगवान्मुने ! । ६६।

सर्गात्प्राक्सच्चिदानन्दः शुद्ध एकश्च निर्गुणः ।

यथाऽऽसीत्तादृगेवासावग्वितोऽप्यस्ति निर्मलः । ६७।

वायुनेज्जलक्षमासु तत्तत्कार्येषु ख यथा ।

अश्वोपाऽप्यस्ति निलपन्तया पूर्वतथैव हि । ६८।

सर्वपाशयो निमन्ता च व्यापकश्चैव कीर्तितः ।

आत्यन्तिके लयेऽथैवाभवत्येवमचापुरा । ६९।

भगवान् के जो अवतार हो चुके हैं या भविष्य में होंगे सबका हम समय में हैं वे सब बड़े २ सप्ता के करने वाले मनीषियों के द्वारा भी गणना में नहीं लाये जा सकते हैं । ६३। नाथ पुरुषों के स्वामी भग-

वान के आविर्भाव सद्धर्म और माधु पुरुषों की सुरक्षा करने के लिए और इनसे द्रोह करने वाले दुष्टों के सहार करने के लिए एवं समस्त भूतो के कल्याण का सम्पादन करने के लिये ही द्रुमा करता है । ६४। यह प्रभु अपने घाम में सबका आघोश प्रकृति में, पुरुष में और इन दोनों के कार्यों में अन्वित है और इन दोनों से पृथक् भी है । ६५। हे मुने ! अपने अंशों से इन समस्त लोको में व्याप्त होकर जैसे अग्नि और वहण प्रभृति देवगण अपने-अपने लोक में कल्याण पूर्वक हैं वैसे ही यह भगवान भी है । ६६। इस विश्व की रचना के पूर्व सच्चिदानन्द शुद्ध, एक और निर्गुण जिस प्रकार से ये वैसे ही अन्वित होने पर भी निर्मल ही उनका स्वरूप है । ६७। जिस तरह से वायु और तेज के बिह्व वाली में और उनके उन-उन कार्यों में आकाश है । वह अन्वित भी है तथा पूर्व की ही भाँति निर्लेप भी होता है । ६८। यह भगवान सबके उपासना करने योग्य हैं, सबके नियन्ता हैं और सबमें व्यापक भी रहे गए हैं और जब आत्यन्तिक प्रलय होता है उस समय में भी यह जैसे पहिले थे वैसे ही रहा करते हैं । ६९।

चैराजः पुरुषो योऽत्र प्रोक्तोऽमावीश्वराभिधः ।

ज्ञेयः स्वतन्त्रः सर्वज्ञोवश्यमायश्चनारदः । ७०।

एतस्यैव स्वरूपाणि ब्रह्मविष्णुशिवास्त्रयः ।

रजआदिगुणोपेताः स्वगुणानुगुणक्रियाः । ७१।

ब्रह्मणो ये समुत्पन्ना देवासुरनरादयः ।

ते जीवसञ्ज्ञा ह्यल्पज्ञाः परतन्त्रा भवन्ति च । ७२।

जीवानामोश्वराणां च तनवः क्षेत्रसञ्ज्ञकाः ।

महदादितत्त्वमध्यः क्षेत्रज्ञाख्यास्तुतद्विदः । ७३।

क्षेत्राणां च क्षेत्रविदा प्रधानपुरुषस्य च ।

मायायाः कालशक्तेश्चाक्षरस्य च परात्मनः ।

पृथक्पृथक् लक्षणैर्यज्ज्ञानं तज्ज्ञानमुच्यते । ७४।

यही पर जो वैराज ईश्वर नाम वाला पुरुष बड़ा गया है, वे नारद । वह जानने के योग्य, स्वान्त्र सर्वज्ञ और बह्व्यमाय है । ७०। उस एक ही के ग्रहा, विष्णु और शिव में तीन स्वरूप हुआ करते हैं । इनके सत्त्व, रज और तम ये गुण हैं जिनसे वे युक्त होते हैं और उन गुणों के अनुसार उनकी क्रियाएँ भी हुआ करती हैं । ७१। ग्रहा से जो देव, प्रसुर आदि मनुष्य आदि उत्पन्न हुए ये वे सब जीव सत्ता वाले प्राणी हैं—ये प्रत्यक्ष हैं, पराधीन हैं । ७२। जीवों के और ईश्वरों के जो शरीर हैं वे क्षेत्र सत्ता वाले हैं ये महत् आदि तत्त्वों में परिपूर्ण हैं और उनके शाता लोग क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं । ७३। क्षेत्रों का, क्षेत्रों के ज्ञाताओं का, प्रधान का और पुरुष का, माया का, बाल की दक्षिण का, अक्षर परमात्मा का पृथक् २ लक्षणों के द्वारा जो ज्ञान है उसी को ज्ञान कहा जाता है । ७४।

३३—वैराग्यभक्तिनिरूपण

वैराग्यस्याश्रयेव च्छिन्नलक्षणमुनिसत्तम ! ।
क्षयिष्णुस्तु प्रवृत्तिं सर्वयेति न दोरितम् । १।
आरभ्य मायापुरुषात्सर्वा ह्याकृतयस्तु याः ।
बालशक्त्या भगवतो नाशयन्ते ताश्च तद्वशाः । २।
प्रत्यक्षेणाऽनुमानेन शाब्देन च विवेकिभिः ।
असत्यता कृतो नाच निश्चितासत्यतात्मनाम् । ३।
नित्येन प्रत्ययेनैव कालो न नित्तिवेन च ।
प्राप्तिवेन रूपेण चरत्यात्यन्तिवेन च । ४।
देहिदेहा इमे नित्य दीयन्ते परिणामिनाः ।
ममेण दृश्यते यत्र चात्यतात्पर्यार्थकम् । ५।
मूढमत्वाग्ने दृश्यते तत्तु गतिर्दीपाविपो यथ ।
एतदृद्धिर्वाऽनुपद जायमाना द्रुमे यथा । ६।

तस्यांतस्यामवस्थायां दुःखं चमहदीक्ष्यते ।

जाग्रदादिष्ववस्थामुद्रुः खंचैव पुनः पुनः ॥७॥

भगवान् श्री नारायण ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! जब मैं माया की शिराग्य का मक्षण बतलाता हूँ जो क्षय होने के स्वभाव वाली वस्तुएँ हैं उन सबमे ऋषि का न होना ही शिराग्य कहा गया है । माया पुरुष से प्रारम्भ करके जो भी समस्त प्राकृतियाँ हैं वे सब भगवान् की काल-शक्ति के द्वारा विनाश कर दी जाया करती हैं क्योंकि वे सब उनके वश गत होती हैं । १।२। प्रलय के द्वारा, अनुमान से और वाच्य प्रमाण से विवेकियों के द्वारा अमर्य स्वरूप वाली प्राकृतियों की असत्यता निश्चित करती गई है । यह काल नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक रूप से और प्रायान्तिक के द्वारा चरण किया करता है । ३।४। देहधारियों के ये देह परिणामी हैं और नित्य ही खीण हुआ करते हैं जिनमें क्रम से बाल्य (शोभावाय्म्या), तरुणता और बाधक्य दिखलाई दिया करता है । शरीर की अग्नि (लौ) की गति के समान वह सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देता है । यद्यपि जिन प्रकार से वृक्ष में फलों की उत्पन्न होने वाली अनुबद्ध वृद्धि होती है । उस-उस अवस्था में महान् दुःख दिखलाई दिया करता है । जाग्रत् आदि जो तीन अवस्थाएँ हैं उनमें भी बारम्बार दुःख ही होता है । ५।६। ७।

दुःखमाध्यात्मिकं भूरि दृश्यते चाऽऽधिभौतिकम् ।

आधिदैविकमप्यत्र दुःखमेवाऽस्ति देहिनाम् ॥८॥

हाहा ममार मत्पुत्रो हा गतौ म्रियते मम ।

तातं मेऽमक्षयद्वधाघ्नो दष्टा सर्पणमेवधूः ॥९॥

महासीधोऽग्निना दग्धो हाहा सोपस्करोऽद्य मे ।

स्वकुटुम्बं कथं पोष्ये नाऽवर्त्त्याकशासनः ॥१०॥

सस्येः समृद्धं मत्क्षेत्रं हाहा दग्धं हिमाग्निना ।

ह्रियन्ते तत्स्करं गविः सर्वस्वममलुण्ठितम् ॥११॥

नृपेण दण्डितोऽस्यै शत्रूणां हाऽतिताडितः ।

किं करोमि च कं व्रूयां मातां व्याभिचारिणी ॥२॥

विषं पास्यामि हाहाऽद्य मत्पत्नी शत्रुराकृषत् ।

हा स्वसा मे हता म्लेच्छैर्हहाऽरिः प्राप मर्मभित् ॥३॥

अप्ये उवरातिव्ययया यमदूता इमे हाहा ।

इत्थं रोरूपमाणा हि दृश्यन्ते सर्वतो जनाः ॥४॥

देहाधारियों को अत्यधिक आध्यात्मिक दुःख दिखाई देता है—
आधिभौतिक दुःख भी होता है और आधिदैविक दुःख है । यहाँ पर
इन शरीर के धारण करने की दशा में दुःख ही दुःख है । ८। हाय-हाय
मेरा पुत्र मर गया है, मेरी पत्नी मर रही है, मेरे पिता को व्याघ्र ने
सा लिया है और मेरी बधू को सर्प ने काट लिया है । ९। मेरा भवन
आज अग्नि से दग्ध हो गया है जो सभी उपभोग की वस्तुओं से भरा
पूरा था । अब मैं अपने कुटुम्ब का कैसे पोषण करूँगा । इन्द्रदेव ने
भी वर्षा नहीं की है । १०। हिम को अग्नि से अर्पित करने से मेरा
अच्छी फल से भरा पूरा क्षेत्र भी हा हाय ! नष्ट हो गया है अर्पित
मेरा पट्टी फलन को पाला मारा गया है । लुटेरों के द्वारा मेरी गाएँ भी
धुरा ली गई हैं । मेरा सभी दुःख लुट गया है, राजा ने भी मुझे बहुत
अधिक दण्डित किया है और मेरे शत्रु ने भी मुझे अधिक ताड़ित कर
डाला है । मैं अब क्या करूँ, किससे अपनी व्यथा को सुनाऊँ ।
हाय ! मेरी माता भी व्याभिचारिणी हो गई है । ११। १२। हाय-हाय ! मैं
आज विष का पान कर लूँगा, दात्रु ने मेरी पत्नी को बलात् अर्पण
करके छीन लिया है । म्लेच्छों ने मेरी बहिन को भी बलात् कर लिया
ये, हाय ! मर्म से भेदन करने वाले दात्रु मेरे पाम प्राप्त हो गए हैं ।
१३। मैं उवरा की बुराई से मर रहा हूँ और यहाँ पर ये यम के दूत
आ गये हैं—इन मौनि ने सभी ओर साधारण अनृत्य अपनी-अपनी

विभिन्न प्रकार की व्यथाओं से प्रवीण होकर रुदन करते हुए दिखलाई दिया करते हैं । ४।

अवस्थानां शरीरस्यजन्ममृत्यु प्रतिक्षणम् ।
 कालेनप्राप्नुवद्भाभः स्वप्रारब्धदुःखमश्नते । १५।
 प्रारब्धान्ते मृत्युदुःखंभवत्यप्रतिमं हि तत् ।
 मृत्वाऽपि चमद्दुःखं प्राप्यतेयमयातना । १६।
 ततो जरायुजोद्भिज्जस्वेदजाण्डजयोनिषु ।
 भूत्वाभूत्वा यथाकमंभ्रियतेदुःखितः पुनः । १७।
 निश्चयः प्रलय एव ते कीर्तितः सूक्ष्मया दृशा ।
 स ज्ञेयोऽयं मुने ! वच्मि लयं नैमित्तिकाभिधम् । १८।
 निमित्तीकृत्य रजनीं भवेद्विश्वसृजस्तु यः ।
 नैमित्तिकः सकथितोलयोदेनंदिनश्चसः । १९।
 चतुर्यगाणां साहस्रं दिनविश्वसृजो मुने ! ।
 निशा चतावतीतस्यतद्द्वयंकल्पउच्यते । २०।
 एकैकस्मिन्दिने तस्य चतुर्दश चतुर्दश ।
 भवन्ति मनवो ब्रह्मन्धर्मसेत्वभिरक्षका । २१।

शरीर की अवस्थाओं के जन्म और मृत्यु प्रतिक्षण काल के द्वारा प्राप्त करने वाले लोग उस तरह से अपने प्रारब्ध दुःख का भोग किया करते हैं । १५। प्रारब्ध कर्म के भोग करने के अन्त में इस संसार में मृत्यु का भी अनुभव दुःख होता है । मर कर भी दुःख से छुटकारा नहीं होता है फिर भी यमलोक में यम की नारकीय यातनाओं के भोगने का महान् दुःख होता है । १६। इसके भी पश्चात् फिर जरायुज, उद्भिज, स्वेदज और ण्डज इन चार प्रकार की योगियों में अपने २ वर्षों के अनुसार जन्म ग्रहण कर-करके बारम्बार दुःखित होते हुए मृत्यु प्राप्त की जाया करती है । १७। इस प्रकार से यह सूक्ष्म दृष्टि से निश्चय प्रत्यक्ष कहा गया है । हे मुने ! इस प्रलय का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये । एवं मैं

उस नैमित्तिक प्रसव के निषय में तुमको बतगाता हूँ । १८। विश्व के सृजन करने वाले की रजनी को निमित्त बनाकर जो होता है वही नैमित्तिक लय कहा गया है जो दिनों दिन हुआ करता है । १९। हे मुने ! चारों सत्ययुग, ध्रुता, द्वापर, कलियुग, युगों की अब एक सहस्र सख्या पूर्ण हो जाती है तभी विश्व के स्रष्टा ब्रह्मा का एक दिन होता है । वस्तुकी निशा भी उतनी ही होती है । उस बी का एक कल्प होता है । ऐसा कहा जाता है । २०। उसके एक-एक दिन में हे ब्रह्मन् ! धर्म सेतु के प्रति रक्षक बोधह-बोधह मनुष्यल हुआ करते हैं । २१।

माद्यः स्वायम्भुवस्तत्रमनुः स्वारोचिपस्ततः ।

उत्तमस्तामसश्चाऽथरेवतश्चाक्षुपस्ततः । २२।

प्राद्वदेवश्च सर्वाणिभोक्त्यो रीच्यस्ततः परम् ।

ब्रह्मावर्णिनामाच सद्रसावर्णरेवच । २३।

मेरुसर्वाणिसञ्जोऽथदक्षसर्वाणरम्भितः ।

चतुर्दशैते मनवः प्रोक्ता ग्रहणकदासरे । २४।

एकैकस्य मनोः कालो गुणानाचैकसप्ततिः ।

दिग्धर्वादिषसाहस्रं युगकालश्चवत्सरैः । २५।

चतुर्दशस्यैव मनोरन्तरेऽन्तगुणैर्युधि ।

सामंसन्ध्या विश्वसृजो जायते मुनिसत्तम ! । २६।

दिनावसाने वीराजः क्षतीराकर्षति स्थितेः ।

वीराजात्मा तदा रद्राग्लोकीहर्तुमोहते । २७।

बादीमवस्थनावृष्टिरत्युप्राशतवापिरी ।

तदाऽन्तसारसत्त्वानि क्षीयन्ते सर्वेऽनोमुदि । २८।

उन मनुष्यों में सबसे प्रादि ज्ञान में हीने जाया मनु स्वयम्भुव मनु या । इनके वरणात् स्वायिप मनु हुए थे । उनके बाद में उत्तम नामक मनु हुए, फिर तामस, रेवत, चाक्षुष, प्राद्वदेव, सर्वाणि, भीत्य, रीच्य, ब्रह्मा सर्वाणि, दक्षसर्वाणि, मेरु सर्वाणि और अम्भित दक्ष

सार्वणि हुए थे । ये चौदह मनु ब्रह्माजी के एक दिन के समय में होकर
प्रपना काल पूरा कर दिया करते हैं । १२२।२३।२४। एक-एक मनु का
उपजोग काल चारों युगों की इकहत्तर चौरुड़ी का होता है और दिव्य
बारह हजार वर्ष एक युग का होता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! चौदह मनुओं के
आहार में अन्न को प्राप्त होने पर विश्व के स्रष्टा की सायं सन्ध्या हुआ
करती है । दिवस के अवसान (आखीर) होने पर वैराज स्थिति की
शक्तियों का आकर्षण किया करते हैं । उसी समय में वैराजात्मा भग-
वान् रुद्र इस त्रिलोकी का हरण करने की इच्छा किया करते हैं । सब
आदि में अनावृष्टि हुआ करती है अर्थात् सृष्टि के संहार काल का समय
उपस्थित जब होता है तो सर्वप्रथम वृष्टि का अभाव होता है । वह अना-
वृष्टि भी ऐसी अत्यन्त उग्र होती है जो सौ वर्ष तक बराबर रहा करती
है । उस समय में इस भूमण्डल में अल्पसंख्यक सार वाले सत्त्व हैं वे क्षीण
हो जाया करते हैं । १२२-२८।

साम्बर्त्तिकस्य चाऽकंस्य रश्मयोऽगुल्बणा रसम् ।
आपातालात्पिबन्त्याशु धरण्यां सर्वमेव हि । १२९।
सारसं चैव नादेयं सामुद्रं चाऽम्बु सर्वशः ।
शोपयित्वाऽखिलाँल्लोकान्सोऽर्को नर्यात् सङ्क्षयम् । १३०।
ततो भवतिनिः स्नेहा नष्टस्थावरजङ्गमा ।
क्लमपृष्टोपमा भूमिः शुष्कासंकुचिताभृशम् । १३१।
कालाग्निरुद्रः शोपस्य मुखादुत्पद्यते ततः ।
अधोलोकान्सप्तभूमिभुवः स्वश्चदहत्यसौ । १३२।
निर्दग्धलोकदशको ज्वालावर्त्तभयङ्करः ।
उद्भासितमहर्लोकः कालाग्निः परिवर्त्तते । १३३।
गताधिकारास्त्रिदशाभुवः स्वर्गनिर्वासनः ।
महर्लोकाज्जनयान्तिवह्निज्वालाभृशादिताः । १३४।

निवृत्तिधर्मा ऋषयः प्राप्ताः सिद्धदशा तु ये ।

भूतलात्तेष्वितर्ह्यवश्वपिलोकं प्रयान्ति च ।

उत्तिष्ठन्ति ततो घोरो व्योम्नि साम्बत्तं का घनाः । ३५।

फिर साम्बत्तं का सूर्य की किरणों जोकि अत्यन्त उत्तम (तीक्ष्ण) होती हैं वे शीघ्र ही पाताल तक के सब रस का खरगो में पान कर जाया करती हैं । ३५। सूर्य देव ऐसे प्रखर हो जाते हैं कि समस्त नदियों की सरसता को और समुद्र के सम्पूर्ण जल को शोषित करके समस्त लोको का सक्षय कर दिया करते हैं । ३६। इसके अनन्तर यह भूमि स्नेह रहित हो जाया करती है जिसके कारण सभी स्थावरों और जगमो का पूर्णतः विनाश हो जाता है । फिर यह पृथिवी बन्धु की पीठ के सदृश दुष्क मैदान जैसी बिलसाई दिया करती है । यह एक दम दुष्क और अत्यन्त महकुचित हो जाया करती है । उस समय में जङ्गमों की तो बात ही क्या है पहाड़, वृक्ष और नदियाँ वहाँ पर कुछ भी दिखाई नहीं देता है । ३७। तब स्वर्ग के मुख से बालाग्नि उड़ उरपन्न होती है । यह नीचे के लोकों की जो गात भूमि बाल है और भू मुख तथा स्व सबको दाय कर देते हैं । ३८। दश लोकों की निराश करके ज्वालाओं के आवर्त में अत्यन्त मयानक बालाग्नि महलों की उद्घाटित कर देने वाला चारों ओर वर्तमान होता है । अधिकतर दिन जाने वाले देवगण मुख और स्वर्ग के निवास करन वाले बह्म की ज्वाला से अत्यधिक अद्वितीय होते हुए महलों से जग की जाते हैं । ३९। निवृत्ति धर्म वाले ऋषि, गुरु जो निष्ठ दया की प्राप्त हो गये हैं वे भी उस समय में इस भूतल से अपिनीव की चने जाते हैं । इनके परिवार फिर अग्रे में परम और साम्बत्तं का घेप उठते हैं । ४०।

महागजकुत्रप्रगपारतद्विरम्यतोऽतिनादिनः । ४१।

पूगवर्णा, गीतवर्णाः केचिद्विमुदमन्निभाः ।

साधारणनिभाः केचिन्नापगनिभास्तथा । ४२।

शमयित्वा महावह्निशतंवर्षाण्यहर्निशम् ।
 वर्षमाणाः स्थूलधाराः स्तनन्तस्ते घनाघनाः ।
 ब्रह्माण्डस्यान्तरालञ्च पूरयन्ति ध्रुवावधि । ३८।
 एकार्णवजले तस्मिन्वैराजपुरुषः स तु ।
 अनिरुद्धात्मकः शेते नागेन्द्रशयने प्रभुः । ४०।
 तदा देवाश्च ऋषयो रजः सत्त्वतमोघशाः ।
 ये ते सह विरिञ्चनस्वकीयगुणकषिताः ।
 प्रविश्य तस्य जठरे शेरते दीघनिद्रया । ४०।
 ये तु ब्रह्मात्मैक्यभावा वशीकृतगुणत्रयाः ।
 निवृत्तेनैव धर्मेण वासुदेवमुपासते । ४१।
 महर्षादिषु लोकेषु ते चतुर्षु कृतालयाः ।
 त वैराजं संस्तुवन्तो निवसन्ति यथासुखम् । ४२।
 नारायणः स भगवान्स्वरूपं परमात्मनः ।
 चिन्तयन्वासुदेवाख्यं शेते वै योगनिद्रया । ४३।

वे मेघ महान गर्जो के कुन के समान दिखाई देने वाले, बिजली से युक्त और अत्यन्त घोर गर्जन करने वाले होते हैं । ३८। उन मेघों में कुछ तो धूम्र वर्ण वाले हैं, कुछ पीन वर्ण से युक्त हैं, कुछ कुमुद के सदृश हैं—कुछ लाख के रस के तुल्य हैं और कुछ धाम्रपत्र के सदृश हैं । ३९। अहर्निश परम घोर नक्षं करके महान उग्र जो वह्नि यो उसका शमन उन्होंने करके वे निरन्तर घने होते हुए गर्जना करके स्थूल जल की धाराओं से वर्षमाण होते हैं और ब्रह्माण्ड के अन्तराल को ध्रुव की अवधि गर्वन्त पूरित कर दिया करते हैं । ४०। उस समय में गर्वन्त जलमय हो जाना है । उस एकार्णव जल में वह वैराज पुरुष प्रावि द्युद्धात्मक होकर प्रभु शेष की शय्या पर शयन किया करते हैं । ४१। उस समय में देवता और ऋषिवृन्द रजः सत्त्व और तप के वश वर्त्ती होकर जो भी है वे सब स्वकी गुणाय से कषित होते हुए विरिञ्च के साथ

होकर उसके उदर प्रवेश कर दीर्घ निद्रा से क्षयन किया करते हैं । ४०। जो ब्रह्म के साथ आत्मैक्य भाव वाले हैं और जिन्होंने तीनों गुणों को वश में कर लिया है वे निवृत्त धर्म से हो भगवान् वामुदेव की उपासना किया करते हैं । ४१। यह आदि चारों लोकों में वे अपना आश्रय बना कर उसी वराह प्रभु का स्तवन करते हुए सुख पूर्वक वहाँ पर निवास किया करते हैं । ४२। वह भगवान् नारायण परमात्मा के वामुदेव नाम वाले स्वरूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा से क्षयन किया करते हैं । ४३।

निशान्ते ब्रह्मणा साक सर्वे तेतस्य जाठराः ।

उत्पद्यन्तेयथापूर्वयथाकर्मधिकारिणः । ४४।

एव नैमित्तिके नाम त्रिलोकीक्षयलक्षणः ।

प्रलय कथितस्तुभ्यप्राकृतकीर्त्तयाम्यथ । ४५।

य एष कल्प कथितस्तादृशानास्ततनयम् ।

पट्टधाधिकन्धयः कालोर्वधसः सतुवत्सर । ४६।

पञ्चाशता तैः परार्द्धा ब्रह्मायुस्यद्वयमतम् ।

पराग्यनाले सम्पूर्णो महाभ्रवतिसदृक्षयः । ४७।

सहारद्रूपेण सहस्रम् स्व विराड्वयम् ।

स्वपर निर्गुणरूपवराजोयातुमिच्छति । ४८।

तदा भवत्यनावृष्टिः पूर्ववच्छ्रावपिरी ।

सात्पुष्पगन्ध कालाग्निर्दह्यण्डमग्रेपतः । ४९।

उस दिव्य निशा का बिग समय में घटा हो जाता है तो उस समय में वे सब जो उगरे जठर में प्रविष्ट थे वज्रा के ही भाग में पूर्व की भाँति हो उत्पन्न हो जाते हैं और जैसे भी उनके पूर्व तत्विग कर्म होते हैं उन्ही के अनुसार वे अधिवार प्राप्त करा जाने दृष्टा जाती हैं । ४४। इन प्रकार के दस विधोही के सप्त की करने वाला नैमित्तिक मय होता है । जैसे तुमही व प्रलय का अन्त का अन्त करके ब्रह्मा

धामयित्वा महाबल्लिशतं वर्षाण्यहर्निशम् ।
 वर्षमाणाः स्थूलधाराः स्तनन्तस्ते घनाघनाः ।
 ब्रह्माण्डस्यान्तरालञ्च पूरयन्ति ध्रुवावधि । ३८।
 एकाग्रं वजले तस्मिन् वैराजपुरुषः स तु ।
 अनिरुद्धात्मकः शेते नागेन्द्रशयने प्रभुः । ४०।
 तदा देवाश्च ऋषयो रजः सत्त्वतमो घशाः ।
 ये ते सह विरिञ्चनेन स्वकीयगुणकषिताः ।
 प्रविश्य तस्य जठरे शरते दीघनिद्रया । ४०।
 ये तु ब्रह्मात्मैक्यभावा वशो कृत्स्नगुणश्रयाः ।
 निवृत्ते नैव घर्मेण वासुदेवमुपासते । ४१।
 महर्षादिषु लोकेषु ते चतुर्षु कृतालयाः ।
 तं वैराजं संस्तुवन्तो निवसन्ति यथा सुखम् । ४२।
 नारायणः स भगवान्स्वरूपं परमात्मनः ।
 चिन्तयन्वासुदेवाख्यं शेते वै योगनिद्रया । ४३।

वे मेघ महान गजों के कुन के समान दिखाई देने वाले, बिजली से युक्त और अत्यन्त घोर गर्जन करने वाले होते हैं । ३८। उन मेघों में कुछ तो धूम्र वर्ण वाले हैं, कुछ पीन वर्ण से युक्त हैं, कुछ कुमुद के सदृश हैं—कुछ लाख के रस के तुल्य हैं और कुछ धात्रपत्र के सदृश हैं । ३९। अहर्निश परम घोर नक्षं करके महान उग्र जो बल्लिषी उसका शमन उग्होने करके वे निरुत्तर घने होते हुए गर्जना करके स्थूल जल की धाराओं से वर्षमाण होते हैं और ब्रह्माण्ड के अन्तराल को ध्रुव की अवधि पर्यन्त पूरित कर दिया करते हैं । ४०। उस समय में सर्वत्र जलमय हो जाना है । उस एकाग्र वजल में वह वैराज पुरुष भावि शुद्धात्मक होकर प्रभु शेष की शय्या पर शयन किया करते हैं । ४१। उस समय में देवता और ऋषिवृन्द रजः सत्त्व और तप के वश वर्त्ती होकर जो भी है वे सब स्वकी गुणाय से कर्षित होते हुए विरिञ्चि के साथ

होकर उसके उदर प्रवेश कर दीर्घ निद्रा से शयन किया करते हैं ॥४०॥ जो ब्रह्म के साथ आत्मैक्य भाव वाले हैं और जिन्होंने तीनों गुणों को पक्ष में कर लिया है वे निवृत्त धर्म से ही भगवान् वासुदेव की उपासना किया करते हैं ॥४१॥ यह आदि चारों लोकों में वे अपना आश्रय बना कर उसी वंराज प्रभु का स्तवन करते हुए सुख पूर्वक वहाँ पर निवास किया करते हैं ॥४२॥ वह भगवान् नारायण परमात्मा के वासुदेव नाम वाले स्वरूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा से शयन किया करते हैं ॥४३॥

नियान्ते ब्रह्मणा सार्कं सर्वे तेतस्य जाठराः ।

उत्पद्यन्तेमथापूर्वमथाकर्माधिकारिणः ॥४४॥

एवं नैमित्तिको नाम त्रिलोकीक्षयलक्षणः ।

प्रलयः कथितस्तुभ्यंप्राकृतंकीर्तंयाम्यथ ॥४५॥

य एष कल्पः कथितस्तादृशानाशतत्रयम् ।

पट्टपाधिकश्चयः कालोवैषसः सतुवत्सरः ॥४६॥

पञ्चाशता तैः परार्द्धा ब्रह्मायुस्पद्वयंमतम् ।

परारूपकाले सम्पूर्णं महाभवतिसङ्क्षयः ॥४७॥

सहारुद्ररूपेण सहस्रं स्वं विराट्बभूवुः ।

स्वपरं निर्गुणारूपंवेराजोपातुमिच्छति ॥४८॥

तदा भवत्यनावृष्टिः पूर्ववच्छतवापिकी ।

साक्षुर्पुणश्च कालान्निर्दहप्रण्डमशेषतः ॥४९॥

उन दिव्य निद्रा का जिस समय में प्रवृत्त हो जाता है तो उस समय में वे सब जो उसके जठर में प्रविष्ट थे ब्रह्मा के ही साथ में पूर्व की भाँति ही उत्पन्न हो जाते हैं और जैसे भी उनके पूर्व संचित कर्म होते हैं उसी के अनुसार वे अधिकार प्राप्त करने वाले हुए करी हैं । ॥४४॥ इस प्रकार से इस त्रिलोकी के क्षय को करने वाला नैमित्तिक राय होता है । मैंने तुमको यह प्रलय का वर्णन का वर्णन करके मतला

दिया है अब प्राकृत प्रलय बतलाता है ॥४५॥ जो यह कल्प बताया गया है उसी प्रकार के तीन सौ साठ का जो काल होता है वह ब्रह्मा का एक वर्ष हुआ करता है इसको दिव्य वर्ष कहा जाता है । उनसे पञ्चाशत् पराब्धं जो वर्ष होते हैं वह ही ब्रह्मा की आयु होती है । यह दो माने गये हैं । जो पर नामक काल सम्पूर्ण हो जाता है तो उस समय में महान सन्धय हुआ करता है । इसी को महा प्रलय कहा जाता है । संहार रुद्र रूप से घपने विराट वपु का सदृश कर वैराज घपने धूमरे निर्गुण स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा किया करते हैं ॥४६—४८॥ उस समय में पूर्व की भाँति ही सौ वर्ष तक रहने वाली अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होनी है । और साक्षुर्पण कलाम्नि सम्पूर्ण अंध को दाँध कर दिया करता है ॥४९॥

साम्बलंकास्ततो मेघा वर्षन्त्यतिभयानकाः ।
 शतंवर्षाणिधाराभिर्मुसलाकृतिभिर्मुने ॥५०॥
 महादीर्घविकारस्य विधेयान्तस्य सङ्क्षयः ।
 सर्वस्यापि भवत्येव वासुदेवेच्छयाततः ॥५१॥
 आपो असन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।
 आत्मागन्धाततोभूमिः प्रलयत्वाय प्रकल्पते ॥५२॥
 असतेऽम्बु गुणं तेजो रसंतल्लीयते ततः ।
 रूपं तेजो गुणं वायुर्गसतेनीयतेऽयं तत् ॥५३॥
 वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो असते ततः ।
 प्रशाम्यतितदावायुः खन्तुतिष्ठत्यनावृतम् ॥५४॥
 भूतादिस्तद्गुणं सद्यःप्रसतेलीयतेऽक्षयम् ।
 इन्द्रियाणिविलीयन्तेतेजसाहङ्कृतोततः ॥५५॥
 अहङ्कारे विलीयन्तेसार्विके देवता मनः ।
 यद्यथस्मात्समुत्पन्नं तत्तत्तस्मिन्विलीयते ॥५६॥

अहङ्कारो महत्तत्त्वे त्रिविधोऽपि प्रलीयते ।

तत्प्रधाने तत्तत्पुंसि स मूलप्रकृतौ ततः । १५७।

इसके अनन्तर अत्यन्त मयानक साम्बर्त्तिक मेघ घोर वर्षा किया करते हैं । हे मुनिवर ! ये मेघ सौ वर्ष तक निरन्तर मुसल के भाकार जैसी मोटी जल की धाराओं से वर्षा किया करते हैं । १५०। इसके उप-रान्त महद् प्रादि जो विकार होते हैं वहाँ से लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त सम्पूर्ण का भगवान् वासुदेव की इच्छा से सस्रय हो जाता है । १५१। सर्वप्रथम जल भूमि के गन्ध स्वरूप वाले गुण का ग्रसन किया करते हैं । फिर वह गन्ध रक्षित पृथ्वी प्रत्यय के लिए ही हो जाया करती है । १५२। फिर तेज जल का गुण जो रस है उसे ग्रस लेता है और रस बिहीन जनहीन हो जाता है । वायु तेज के गुण रूप को ग्रस लेता है और वह वायु भी गुण हीन होकर लय को प्राप्त हो जाया करता है । वायु का गुण स्पर्श है उसको आकाश ग्रस लेता है । उसी समत में वायु प्रशान्त हो जाया करता है और आकाश अनाकृत होकर स्थित रहता है । १५३। १५४। उस आकाश के गुण शब्द की भूतादि ग्रस लेते हैं और आकाश फिर लय को प्राप्त हो जाता है । इन्द्रियगण तेज के द्वारा अह-रूपाति में विलीन हो जाया करती हैं । १५५। सात्त्विक अहङ्कार में देवता मां विलीन हो जाया करते हैं । जी-को जिस-जिस से समुत्पन्न हुआ है वह-वह उगी-उगी में विलीन हो जाया करता है । १५६। तीन प्रकार का अहङ्कार महत्त्व में प्रलीन हो जाता है । वह महत्तर प्रधान में और प्रधान मूल प्रकृति पुरुष में लीन हो जाता है । १५७।

एष प्राकृतिको नाम प्रलयः परिगीयते ।

तिरोभवन्ति जीवेशाय त्रय्यवन्तेहरीच्छया । १५८।

यदा च मायापुरुषो कालोऽश्रयस्तस्मै जति ।

सदिच्छाया तिरोयाति ह त्वेको वर्तते प्रभुः ।

सदा ग प्रनमो शंभो नारदात्यन्तिवाभिधः । १५९।

इत्थंप्रभोः कालशक्त्यालयैरेतैश्चतुर्विधैः ।
 असद्वदध्वाऽसिलतत्राऽहचिर्वैराग्यमुच्यते । ६०।
 वासुदेवतरान्देवान्कातमायावशीकृतान् ।
 विदित्वा तेषु च प्रीतिं हित्वा तस्यैव नित्यदा ।
 गाढस्नेहेन या सेवा सा भक्तिरिति गीयते । ६१।
 श्रवणं कीर्तनं तस्य स्मृतिश्चरणसेवनम् ।
 पूजाप्रणामोदास्यञ्च सख्यचात्मनिवेदनम् । ६२।
 इत्येतेष्वभिर्भाविष्यः सेवेत तमादरात् ।
 अनन्यया धिषण्या भ हि भक्त इतीयते । ६३।

यही प्राकृतिक प्रलय के नाम से गाया या कहा जाया करता है । जिसमें मय्यवन में हरि की इच्छा से ये जीवेश तिरोभूत होते हैं । १५८। जिस समय में माया और पुरुष ये दोनों और बाह्य अक्षर तेज में वसती इच्छा से तिरोभूत हो जाया करते हैं तो उस समय में केवल एक प्रभु ही वर्त्तमान रहा करते हैं । हे नारद ! उस समय में मात्स्व-
 न्तिक नाम वाला यह प्रलय जान लेना चाहिये अर्थात् यही महा प्रलय कहा जाता है जिसमें कहीं भी कुछ भी शेष नहीं रहा करता है एक-
 मात्र प्रभु ही वर्त्तमान रहा करते हैं । ५९। इस प्रकार से प्रभु की काल
 शक्ति के द्वारा इन चारों प्रकार के लयों से इस सब सृष्टि को असत्
 समझकर उसमें जो अशुचि होती है वही वैराग्य कहा जाया करता है ।
 ६०। वसुदेव भगवान् से इतर जो भी समस्त देवगण हैं वे सभी काल
 की माया के वशीकृत हैं—यह भली-भाँति समझकर और उन देवताओं
 में प्रीति का परित्याग करके सब भगवान् वासुदेव की जो नित्य प्रति
 अत्यन्त गाढ स्नेह से सेवा की जाया करती है वही भक्ति कहा जाया
 करती है । ६१। भगवान् के गुण, नाम आदि का श्रवण करना, भग-
 वान् के गुणों और चरितों का कीर्तन करना, भगवान् के ही नाम और
 गुणों का स्मरण करना, भगवान् के नित्य नियम से चरणों की सेवा

करना, भगवान की प्रतिमा की पूजा प्रथवा ध्यानावस्थित होकर मान-
सिक अर्चना करना, भगवान की प्रणाम करना, भगवन का दास बनने
आपको समझना, भगवान की तेज एव ज्योति का ही अपने आपको एक
छोटा अंश समझकर उनके साथ सत्त्वाभाव का अवबोधन करना, भग-
वान के श्रो वरणों की सेवा में अपने आपको सर्वतोभाव से समर्पित
कर देना, ये नौ प्रकार की भक्ति का रूप रेखा या स्वरूप है जो भी
जिससे धर्म पड़े या सभी प्रकारों की भक्ति करने के लिए अनन्य अन-य
भाव से युक्त रहने वाला पुरुष ही भगवान का भक्त [ब्रह्मा] जाया
करता है । ६२।६३।

निमि स्वधर्मप्रमुरौयुक्तामवितरियंमुने । ।

धर्म एकान्तिकइति प्रोक्तोभागवतश्चसः । ६४।

साक्षाद्भगवतः सङ्गात्तद्गवतानाञ्च वेदशास्त्रम् ।

धर्मो ह्येकान्तिकः पुनश्चि प्राप्य तेनाऽन्यथा ववचित् । ६५।

नैतादृशं पर किञ्चित्साधनहिमुमुक्षताम् ।

निश्चयेगकर पु सा सर्वाभिद्रविनाशनम् । ६६।

एकान्तधर्मसिद्ध्यर्थक्रियायोगपरोभवेत् ।

पुमान्स्याद्येनैकैकर्म्यकर्मणामुनिसत्तम ! । ६७।

एतन्मया वेदपुराणगुह्यं

तत्त्व पर प्रोक्तमघीघताशम् ।

एकाग्रया दृढधियावधार्यं

सच्छ्रद्धया चेतसि ते महर्षे ! । ६८।

न वासुदेवात्परमस्ति पावनं

न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलम् ।

न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं

न वासुदेवात्परमस्ति वाञ्छितम् । ६९।

यन्नामद्येय सकृदप्यबुद्ध्या

देहावसानेऽपि गृणाति योऽत्र ।

स पुष्कसोऽप्याशु भवप्रवाहा-

द्विमुच्यते त भज वामुदेवम् ॥३०॥

हे मुनिवर ! तीन प्रकार के अपने प्रमुख धर्मों से युक्त जो भगवान की यह भक्ति है वही एकान्तिक भागवत धर्म कहा गया है ॥६४॥ भगवान के साक्षात् होने वाले परम सौभाग्य के सङ्ग से अपना उपयुक्त सर्व लक्षण समाप्त परम भक्तों के सङ्ग या समाई के ही पुरुषों के द्वारा इस प्रकार का एकान्तिक भागवत धर्म प्राप्त किया जाया करता है अन्यथा किसी भी प्रकार से कहीं भी यह नहीं मिला करता है ॥६५॥ जो मुनि पाने के इच्छुक हैं उनको इस प्रकार का कोई अन्य साधन है ही नहीं जो परम निःश्रेयस के करने वाला और गान्धो के सम्पूर्ण भगवद् का विनाश करने वाला है ॥६६॥ इस एकान्तिक धर्म की सिद्धि के लिये क्रिया योग में परायण होना चाहिये । हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ ! जिसके करने से मनुष्य कर्मों की निष्कर्मण का स्थिति प्राप्त हो जावे । भगवान की भक्ति के लिए जो क्रिया योग की परायणता है वही निष्काम कर्म की सिद्धि है ॥६७॥ हे महर्षिवर ! यह जो मैंने आपके समक्ष में वर्णन किया है यह तत्त्व की बात है और वेदों तथा पुराणों में भी यह तत्त्व परम गोपनीय होता है । यह परम तत्त्व पापों के समुदाय का विनाश करने वाला होता है अर्थात् इस तत्त्व के ज्ञान प्राप्त करने पर सम्पूर्ण पाप मनुष्य के विनष्ट हो जाया करते हैं । इस तत्त्व को एकाग्र बुद्धि से और भाव अपने वित्त में सद् श्रद्धा से धारण करिये ॥६८॥ भगवान श्री वामुदेव से परम पावन (पवित्र बना देने वाला) अन्य कुछ भी नहीं है और भगवान वामुदेव से अधिक मङ्गल भी कुछ अन्य नहीं होगा है । भगवान वामुदेव सर्वोपरि शिराजमान देव हैं इनसे अन्य कोई श्रेष्ठतम देव नहीं है । भगवान वामुदेव ही सर्वोत्तम से अभीष्ट हुमा करते

है इनसे भग्न कुछ भी वाञ्छित नहीं होता है ।६१। यही संसार में अपने
बेह के त्याग करने के अवसर पर जो कोई भी एक बार भी जिन भग-
वान के परम शुभ नाम को धन बुद्धि से भी ग्रहण या स्मरण कर लेता
है वह चाहे कितना भी पापी और विकृत क्यों न हो शीघ्र ही इस
संसार के बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है अर्थात् बारम्बार जन्म-
मरण ग्रहण करते हुए अनेक क्लेशों से छुटकारा पा जाता है । अतएव
तन्ही श्री वासुदेव श्रुति का भजन करो ।७०।

३४—क्रियायोगाधिकारादिवर्णन

एकान्तधर्मविधृतिं श्रुत्वा भगवतोदिताम् ।
प्रहृष्टमानसो भूयस्तं पप्रच्छ स नारदः ।१।
धर्मं एकान्तिकः स्वामिस्त्वया सम्यगुदीरितः ।
तमाश्रुत्य महाहर्षो जातोऽस्ति भग मानसे ।२।
सिद्धयेतस्य भवता क्रियायोगो यत्कथ्यते ।
तमहोदधुमिच्छामि भगवंस्तव सम्मतम् ।३।
पूजाविधिः क्रियायोगो वासुदेवस्य कीर्त्यते ।
स तु वेदेषु तन्त्रेषु बहुधैवास्ति वर्णितः ।४।
भक्तानां रुचिर्ब्रूयात्तथा बहुविधत्वतः ।
वासुदेवस्य मूर्त्तीनां बहुधा सोऽस्ति विस्तृतः ।५।
साकल्येनोच्यमानस्य पारो नाऽऽयाति तस्य वै ।
अतः सद्ध्ये प्रतन्मुभ्यं वक्षिं भक्तिविवर्द्धनम् ।६।
प्राप्तायेवैर्ब्रूयादोलावर्णाश्रित्वारआश्रमाः ।
चातुर्वर्ण्यं स्त्रियश्च ते प्रोक्ता अपाधिकारिणः ।७।

श्री हरन्द ने कहा—भगवान (पापके) द्वारा वर्णित एकान्त
धर्म की विधृति का ध्यान करके परम प्रमत्त मन वाले देवर्षि श्री
नारदजी ने पुनः उनसे पूछा या ।१। श्री नारद जी ने कहा—हे स्वा-

मिन् ! आपने जो एकान्तिक धम्म का भली-भाँति वर्णन किया है उसको सुनकर मुझे मन में अत्यधिक प्रसन्नता हुई है । २। आपने उसकी सिद्धि के लिए जो क्रिया योग कहा है हे भगवन ! उस आपके सम्मत क्रिया योग को मैं जानने की इच्छा रखता हूँ । ३। श्री नारायण भगवान ने कहा—भगवान् वासुदेव की जो पूजन करने की विधि है वह ही क्रिया योग कीर्तित किया जाता है । वह अर्चन करने का विधान वेदों में तथा ग्रन्थों में जो कि तनज शास्त्र के हैं बहुत से प्रकारों वाला बतलाया गया है । ४। भक्तों की रुचियों की विचित्रता होने से तथा वासुदेव भगवान की प्रतिमाओं के बहुत से प्रकार होने से वह क्रिया योग अर्थात् अर्चन विधान भी अनेक प्रकार वाला विस्तृत बनाया गया है । ५। सम्पूर्ण रूप से कहे जाने का तो उसका कोई पार हो ही नहीं सकता है अर्थात् पूर्णतया उसका बतला देना तो सम्भव ही नहीं हो सकता है अतएव मैं संक्षेप से ही उसके विषय में आपको यहाँ पर उसे बतला देता हूँ जिसके करने से भक्ति का विशेष वर्धन होता है । ६। चारों तरह के वर्णों वाले पुरुष जोकि चारों आधमों का पालन किया करते हैं वह चातुर्वर्ण्य श्रीर स्त्रियों भी उसके करने के अधिकारी हुआ करते हैं जोकि वैष्णवी दीक्षा को प्राप्त कर लेते हैं । ७।

वेदतन्त्रपुराणोक्तेर्मन्त्रैर्मूलेन च द्विजाः ।
 पूजेयुर्दीक्षितायोपाः सच्छूद्रा मूलमन्त्रतः ।
 मूलमन्त्रस्तु विज्ञेयः श्रीकृष्णस्य षडक्षरः । ८।
 स्वस्वधर्मं पालयद्भिः सवरेतयंथाविधि ।
 पूजनोद्योवासुदेवोभक्त्यानिष्कपटान्तरेः । ९।
 आदौ तु वैष्णवो दोक्षां गृह्णीयात्सद्गुरोः पुमान् ।
 सदैकान्तिकधर्मस्याद् ब्रह्माजातेर्दयानिधेः । १०।
 सम्पन्नो ज्ञानभक्तिभ्यां स्वधर्मं रहितस्तु यः ।
 स गुरुरेव कदाचनः स्त्रीहृतात्मा च कश्चित् । ११।

प्राप्ता स्त्रैणाद् गुरोर्दीक्षा ज्ञानं भक्तिश्च कर्हिचित् ।

फलेनैव यथाऽपत्यं युवतिः पण्डमङ्गिनी । १२।

प्राप्याऽनः सदगुरोर्दीक्षा तुलसीमालिका गते ।

ललाटादौ चोद्ध्वं पुण्ड्रं गापीचन्दनतो घरेत् । १३।

विष्णुपूजार्चिभक्तौ गुरोरेवागमोदितम् ।

पूजाविधिं सुविज्ञाय ततः पूजनमारभेत् । १४।

वेद और तन्त्र तथा पुराणों में कहे गए मन्त्रों के द्वारा एवं मूल मन्त्र से दीक्षित द्विज और स्त्रियाँ सबको पूजा करनी चाहिये । जो सब सुद्ध हैं वे भी केवल मूल मन्त्र से पूजा करें । मूल मन्त्र तो श्रीवृष्ण भगवान का छँ घसरो वाला ही होना है । ॥ अपने २ धर्मों का पालन करने वाले इन सबको द्वारा विधि-विधान के साथ निष्काट हृदय वाणी को भगवान वासुदेव का पूजन करना चाहिये । १२। जो पुण्ड्र वासुदेव भगवान के प्रर्चन करने का इच्छुक हो उसे यदि में तो किसी योग्य गुरु से वैष्णवी दीक्षा का ग्रहण करना चाहिये जो गुरु सदा एकात्मिक धर्म में स्थित हो, ब्राह्मण जाति का हो और दया का निधि होना चाहिए ऐसे ही गुरु से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये । १३। गुरु ज्ञान और भक्ति दोनों से सम्पन्न होना चाहिये । जो गुरु अपने धर्म से रहित हो और स्त्रियों के द्वारा जिसका हृदय प्रपन्न हो उसे कभी भी अपना गुरु इन्द्र नहीं बनाना चाहिये त्रयान् स्त्रीरत्न और अपने धर्म का पालन न करने वाले से दीक्षा ग्रहण न करे । १४। जो गुरु स्त्रैणा हो त्रयान् स्त्रियों के साथ विलस करीका करने वाला हो उससे प्राप्त की हुई दीक्षा ज्ञान और भक्ति का फल देने वाली कभी भी नहीं दूपा करती है जिस तरह में सन्तति और नपुंसक पुण्ड्र के साथ संग करने वाली युवती फल सुख होती है । १५। मन्त्र किन्हीं सब्दे मन्त्रपुण्ड्र से दीक्षा प्राप्त करके गये में तुलसी की बण्डी धारण करे और गोपी चन्दन से ललाट में प्रदि दादरा चरीर के घंगो में ऊँच, पुण्ड्र (तिलक) धारण करे । १६। भगवान विष्णु की पूजा में रवि रखने वाले भवन वैष्णव

को घण्टो मुन्देर में ही धामय में वर्णित पूजा के विधान को घण्टो रीति में आठर दशक आठर भगवान के पूजा का आरम्भ करना चाहिये । १४।

राश्याग्निमामउत्पायभक्तोप्राप्तेस्ततोऽपरा ।

मुहूर्ताब्दं हृदि ध्यायेत्तेनावर्तेजाननम् । १५।

र्षोर्होविस्वाजीमघातस्म गदोवाताश्च नादिताम् ।

ततः दीनयिधि कृत्वा दग्धपावनमाचरेत् । १६।

अद्भुतमुद्दिस्नानमादौ कृत्वा स्नायात्तममग्नयम् ।

गृहोत्पायुचिमृत्स्नादोन्तुर्वास्नानाङ्गारं गुम् । १७।

परिघापोऽनुतेघोतद्वयविदयासनेनुवो ।

कृत्वोद्भृष्टं पुष्टं पुर्वीतमग्न्याहोमं जपः पितृ । १८।

यस्तदचन्दनपुष्पादोन्तुत्ताराम्नोऽनितान् ।

अहरेऽर्मागमदिराद्यनुविम्वसं व्रजितान् । १९।

देवेभ्यो वा पितृभ्यश्चाप्यन्येभ्यो न निवेदितान् ।

अनाघ्राताश्च मनुजैः केशकीटादिव्रजिताश्च । २०।

सस्याप्यतान्दशपाश्र्वे पूजोपतरणानिव ।

उद्धत्य दीपमाज्येनपुष्पासीलेन वा ततः । २१।

कीशेयीर्णौ च वस्त्रादौ विषाष्टे शुद्ध आसने ।

उपाविशेद्वागुदेवप्रतिमामग्निघो ततः । २२।

बैष्णव भक्त को रात्रि के अग्निम प्रहर में उठकर ही प्रथवा ब्रह्म मुहूर्त में धामय से उठकर गवर्धन ध्याये मुहूर्त तब (दो घण्टी के समय को मुहूर्त कहा गया है) बनेशों के नाश करने याते भगवान केशव का ध्यान करना चाहिये । १५। भगवान के नामों का कीर्तन करके घोर तक्षीय अर्थात् विष्णु भक्तों की माहि का कीर्तन करने फिर शीव विधि करने दत्त धामय करे । १६। आदि में अद्भुत की शुद्धि लिए स्नान करे घोर मन्त्रों के सहित ही स्नान करना चाहिये ।

फिर शुचि मृत्स्नादि का ग्रहण कर स्नान के भग्न स्वरूप तर्पण को करना चाहिये । १७। इसके उपरान्त घीत वस्त्रों को धारण करके शुचि आसन पर उपविष्ट होवे । ऊर्ध्वं पुण्ड्र करके सन्ध्या की वन्दना, होम और जप आदि जो परमावश्यक नित्य कर्म हैं उसे सर्व प्रथम सम्वाहित करना चाहिए । १८। इसके पश्चात् मौस-मदिरा आदि अशुचि पदार्थों के स्पर्श से रहित वस्त्र, चन्दन और पुष्प आदि पूजन के सम्पूर्ण उपचारों का आहरण करे । १९॥ ये पूजन के उपचार ऐसे ही होने चाहिये जो अन्य देवताओं, पितृगणों को समर्पित न किये हुए हों । ये उपचार ऐसे ही हों कि मनुष्यों के द्वारा भी आघात न होवे तथा केश और कीट आदि से रहित होने चाहिये । २०। इन समस्त पूजा के उपचारों पश्चात् साम-प्रियो के अपने आसन के दाहिनी ओर ही रखना चाहिये । फिर सर्व-प्रथम घृण से अथवा घृताभाव में तैल से दीपक को भरकर जला देवे । बैठने का जो आसन हो वह भी परम शुद्ध होना चाहिए चाहे वह कौशेय (रेशमी) हो, ऊन का हो, बरत आदि का हो अथवा बिकाष्ठ हो उसी पर भगवान् वासुदेव की प्रतिमा के समीप में उपविष्ट होना चाहिये । २१। २२।

शैली धातुमया दार्वी लेख्या मणिमयी च वा ।

प्रतिमा स्यात्सिता रक्ता पीता कृष्णाऽथ वा मुने ! । २३।

कृष्णस्य सा तु कर्तव्या द्विमुजावाचतुर्भुजा ।

मुरली धारयेत्तत्र द्विमुजायाः करद्वये । २४।

अथवा दक्षहस्तेऽस्याश्रकं शङ्ख तथेतरे ।

पदां वा धारयेद्दक्षे पाणावभयमुत्तरे । २५।

द्वितीयायास्तु हस्तेषु दक्षिणाघ. करकमात् ।

गदावज्जदरचक्राणि धारयेन्मुनिसत्तम । २६।

द्विद्विधाऽपि अर्पि हरेभूर्त्तर्जभिश्रश्च न्यसेत् ।

मुरलीधरवामे तु राघांरासेश्वरीन्यसेत् । २७।

अप्येषो द्विविधा मूर्तिररुण्डा शुभलक्षणा ।

सर्वाययवसम्पन्ना भवेदच्चंकसिद्धिदा ॥२८॥

लक्ष्मीस्तु द्विभुजाकार्यावासुदेवस्यसन्निधौ ।

दधतोपङ्कजहस्ते वस्त्रालङ्कारशोभना ॥२९॥

लक्ष्मीवद्राधिकाऽपि स्याद् द्विभुजा चारुहासिनी ।

पङ्कजं पुष्पमाला वा दधती पाणिपङ्कजे ॥३०॥

हे मुनिवर ! भगवान की प्रतिमा पापाण की हो, धातुमयी हो, हो, काष्ठ की हो, लिपी हुई अर्थात् चित्रमयी हो, मणि (रत्न निर्मिता) मयी हो, इन पाँच छँ प्रकार की रचित मूर्तियों में से किसी भी एक प्रकार की मूर्ति होनी चाहिए । उस प्रतिमा का वर्ण सफेद, रक्त, पीत अथवा कृष्ण किसी भी प्रकार का होवे ऐसी ही एक प्रकार की भगवन्मूर्ति होनी चाहिये जिसका अर्चन करना है ॥२३॥२४॥ भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा या तो दो भुजाओं वाली बनवावे अथवा चार भुजाओं से युक्त बनवानी चाहिए । जो दो भुजाओं वाली प्रतिमा हो उसके दोनों हाथों में बशी धारण करानी चाहिये । अथवा जो चार भुजाओं वाली प्रतिमा हो उस प्रतिमा को उसके दाहिने हाथ में चक्र और इतर (बाये) हाथ में शङ्ख और उत्तर दोनों हाथों में पद्म एवं मय धारण कराना चाहिये । ॥२५॥ दूसरी जो चतुर्भुजी मूर्ति है उसके हाथों में वक्षिण और अथ कर क्रम से गदा कमल और चक्र हे मुनि-श्रेष्ठ ? धारण कराने चाहिये ॥२६॥ दोनों ही प्रकार की श्री हरि की मूर्ति के वाम भाग में लक्ष्मी देवी को विराजमान करे । जो मुरलीधर भगवान वासुदेव की मूर्ति के वाम भाग में रासेश्वरी श्री राधादेवी की मूर्ति का न्यास करना चाहिए ॥२७॥ ये दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ अष्टाष्ट और शुभ लक्षण वाली होनी चाहियें । ये मूर्तियाँ समस्त अय-मयों में सम्पन्न और पूजा करने वाले व्यक्ति को सिद्धि प्रदान करने वाली होनी चाहियें । भगवान वासुदेव के समीप में लक्ष्मी देवी की जो प्रतिमा

स्थित होने का नियम नहीं है केवल उस मूर्ति के सम्मुख में ही स्थित होना चाहिये । शाल ग्राम की पूजा के विषय में भी प्रावाहन और विसर्जन आदि नहीं करना चाहिये । अन्यत्र चल भूल वाली प्रतिमाओं में अर्चना करने वाली को प्रावाहनादि करना चाहिये । ३१ — ३३ । उनमें भी जो प्रतिमाएँ काष्ठमयी हों, लक्ष्मी अर्थात् चित्रमयी हों उनमें जल का स्पर्श और अङ्गनादि का अनुलेपन ही करना चाहिए । जो पूजन करने वाला व्यक्ति है उसे उनका केवल परिमार्जन करना चाहिए । उदङ्मुख भयवा प्राङ्मुख भयवा चल मूर्ति के सम्मुख में स्थित होकर यथाशक्ति और जो भी समय पर उपलब्ध हों उन उपकरणों से श्री हरि का यजन करे । ३४ । ३५ । श्रद्धा, कपट का अभाव और भक्ति से अपित केवल जल से भी वह विश्वात्मा प्रसन्न होकर तृप्त हो जाते हैं पूर्ण पूजा की तो बात ही क्या है । ३६ । जो श्रद्धाहीन हो ब्रह्म के रत्नादि के धसङ्करण को और चारों प्रकार के अपित भस्मादि को दह ग्रहण नहीं करते हैं । इससे भक्तितमः होकर अपने धर्म के लिए श्रीकृष्ण का अर्चन करना चाहिए जो सब अभीष्टों के प्रदान करने वाले हैं । ३७ — ३८ ।

॥ वैष्णव खंड समाप्त ॥

स्कन्द-पुराण

३-ब्रह्म खराह

सेतु महात्म्य वरणेन

पुष्कलाम्बरधर विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
 प्रसन्नवदनध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥१॥
 नैमिषारण्यनिलये ऋषयः शौनकादयः ।
 अष्टाङ्गयोगनिरता ब्रह्मज्ञानं कृतपराः ॥२॥
 मुमुक्षवो ह्यमहात्मानो निर्ममा ब्रह्मवादिनः ।
 धर्मज्ञा अनसूयाश्च सत्पन्नतपरायणाः ॥३॥
 जितेन्द्रिया जितक्रोधाः सर्वभूतदयालवः ।
 भक्त्या परमया विष्णुमर्चयन्तः सनातनम् ॥४॥
 तपस्तेषुर्ममहापुण्ये नैमिषे भुक्तिदायिनि ।
 एकदा ते महात्मानः सभाजश्चक्रुस्तमम् ॥५॥
 कथयन्तो महापुण्या कथाः पापप्रणाशिनीः ।
 भुक्तिमुक्तेरुपायश्च जिज्ञासन्तः परस्परम् ॥६॥
 पट्टिविंशतिसहस्राणामृषीणां भावितात्मनाम् ।
 ते तां शिष्यप्रविष्याणां सङ्ख्यां कर्तुं न शक्यते ॥७॥

मङ्गला वरणेन दलोक—समस्त विघ्नों की शांति के लिए
 सतपन्न पुत्र वस्त्रों के धारण करने वाले, चन्द्र के समान वर्णों से सयुक्त
 चार भुजाओं से सम्पन्न, परम प्रसन्न मुख वाले भगवान् विष्णु का
 ध्यान करना चाहिये । नैमिषारण्य के स्थान में शौनक आदि ऋषिगण
 जो अष्टाङ्ग योग से युक्त एक आठ जिसके यम, नियम, ध्यान, धारणा

आदि पाठ पाँच होते हैं ऐसे योग के अध्यात्म में सर्वदा निरत रहने वाले, ब्रह्म के ज्ञाता में ही एतन्मात्र परायण, जो भुवि प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, ममता से रहित, महान आत्माओं वाले ब्रह्मभक्त धर्मों के ज्ञाता, धर्मियों से रहित, सारा ज्ञान में परायण, इन्द्रियों की जीत देने वाले, शीघ्र पर विजय प्राप्त किए हुये, समस्त प्राणियों पर दया करने वाले थे । वे परमोत्तम भविष्य से समाप्त प्रभु विष्णु का भर्त्ता करने हुए उस महान पुण्यमय नैमिष क्षेत्र में जो भुक्ति का प्रदान करने वाला था तपस्वियों किया करते थे । एक बार उन सब महात्माओं ने उत्तम समाज किया था । १-५। उन समाज में वे महान पुण्य से परिपूर्ण आत्माओं को कह रहे थे जोकि महान पापों का विनाश कर देने वाली हैं और वे सब परस्पर में भुवि तथा भुवि के उपायों को भी जानने की इच्छाएं कर रहे थे । वे भावित आत्माओं वाले श्रुतिगण द्वासीस सहस्र थे । उनके कितने सिष्य एवं प्रशिष्य (सिष्यों के भी सिष्य) थे यह संख्या तों की ही नहीं जा सकती । ६। ७।

अत्रान्तरेमहाविद्वान्मासशिष्योमहामुनिः ।

अगमन्तमिपारण्य सूतः पौराणिकोत्तमः । ७।

तमागतमुनिदृष्ट्वा ज्वलन्तमिवपावकम् ।

अर्घ्याद्यैः पूजयामामुमुनयः क्षीनकादयः । ८।

सुखोपविष्टं तं सूतमासने परमेशुभे ।

पप्रच्छ परमगुह्यं लोकानुग्रहकण्डूक्षया । ९।

सूतधर्मार्थतत्त्वज्ञसवागतमुनिपुङ्गव ।

श्रुतवास्त्वपुराणानि व्यासात्सत्यवतीसुतात् । १०।

अतः सर्वपुराणानामर्थज्ञोसिमहामुने ।

कानि क्षेत्राण्यपुण्याण्यकानि तीर्थानि भूतले । ११।

कथं बालं स्य तमुक्तिर्जीवानाम्भवसागरात् ।

कथं हरेहरोवापि नृणामक्तिः प्रजायते । १२।

केन सिद्धयेत्तत्तत्फलं कर्मणश्चिविधात्मनः ।

एतच्च ज्ञेयं तत्तत्सर्वं कृपया वद सूतज । १३।

इस अन्तर में पुराणों के ज्ञाताओं में परम उत्तम—महान् मनीषी—
व्यासदेवजी के शिष्य—महामुनीन्द्र श्री सूतजी वहाँ पर नैमिषारण्य में
समागत हो गये थे ॥ ८ ॥ पावक (अग्नि) की भाँति जाज्वल्यमान
उनको वहाँ पर समागत हुए देखकर समस्त शीनक प्रभृति ऋषियों ने
विधि पूर्वक ग्रन्थ आदि के द्वारा उनका पूजन किया था ॥ ९ ॥ परम
शुभ सुन्दर आसन पर सुख पूर्वक उनके समुपविष्ट हो जाने पर उन सबने
लोको पर अनुग्रह करने की इच्छा से परम गुह्य प्रश्न श्री सूतजी से
पूछा था ॥ १० ॥ हे मुनियो मे परम बरिष्ठ सूतजी ! आपका हादिक
स्वागत हम करते हैं । आप तो घम'र्थ के तत्त्वों के पूर्ण ज्ञान रखने वाले
हैं । आपने समस्त पुराणों को सत्यवती के पुत्र श्री व्यासदेव जी के
मुखादिभन्द से ही श्रवण किया है । अतएव हे महामुनिवर ! आप तो
सभी पुराणों के अर्थों को पूर्णतया जानने वाले हैं । आप अब कृपा करके
हम लोगों को यह बतलाइये कि कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र हैं और इस
भूतल पर कौन-कौन में तीर्थ स्थल हैं ? यह भी बतलाने का आप हम
सब पर अनुग्रह कीजिएगा कि इस भव सागर से जीवों को मुक्ति कैम
प्राप्त की जाया करती है ? ऐसा कौन सा साधन है जिससे इन माया-
मुग्ध मानवों की धी हरि में प्रथवा धी हर में भक्ति समुत्पन्न हो जावे ?
इन तीन प्रकार के कर्म का फल किसके द्वारा सिद्ध होत है—यह सब
तथा अन्य भी जो हम नहीं पूछ सके हैं सभी कुछ हे सूतजी ! आप कृपा
करके हमको बतलाइये ॥ ११-१४ ॥

ब्रूयु प्नि-धायशिष्याय गुरदोगुह्यमप्युत ।

वर्तितृष्टस्तदा सूतो नैमिषारण्यवासिभिः ॥१५॥

चतु प्रचक्रमे नत्वा व्यास स्यगुः भादितः ।

सम्भवपृष्टमिद विप्रा । युष्माकजगतो हितम् ॥१६॥

रहस्यमेतद्यत्मान वक्ष्यामिशृणुः श्वगतिं पूवश्च ॥

मयानोवर्नामदपूवं कस्यार्जप मुनिपुङ्गवा ॥१७॥

मनोनियम्यविप्रेन्द्राः शृणुध्वंभक्तिःपूर्वम् ।
 अस्तिरामेश्वरं नामरामसेतुपवित्रितम् ॥१८॥
 क्षेत्राणामपिसर्वेषां तीर्थानामपिचोत्तमम् ।
 दृष्टमात्रेणतत्सेतुं मुक्तिं ससारसागरात् ॥१९॥
 हरे हरो च भक्तिः स्यात्तथा पुण्यसमृद्धिता ।
 कमणस्त्रिविधस्यापि सिद्धिः स्याद्वाऽत्र सशयः ॥२०॥
 योनरोजन्ममध्येतु सेतु भवत्याऽवलोकयेत् ।

तस्यपुण्यफलवक्ष्येऽशृणुध्वमुनिपुङ्गवाः ॥२१॥

श्री गुरुवृन्द जो स्नेह का परम पात्र शिष्य होता है उसको गोपनीय से भी गोपनीय बात बतला दिया करते हैं । इस तरह से जब सूतजी से पूछा गया तो उन नैमिषारण्य चासणो से आदि में अपने गुरुदेव व्यासजी को प्रणाम करके उन्होंने वर्णन करने का समारम्भ किया था । १५। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! आपने इस जगत् की भलाई को दृष्टि में रखकर अब बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । यह हम लोगो का परम रहस्य है । मैं आप लोगो को इसे बतलाता हूँ । आप समादर पूर्वक हमका श्रवण कीजिए । हे मुनियो मे परम श्रेष्ठो ! इसके पूर्व में अभी तक मैंने इस रहस्य को किसी को भी नहीं बतलाया था । इसलिये आप लोग अपने मन को नियम नियन्त्रित करके हे विप्रन्द्र वृन्द ! इसका भक्तिभाव से परिपूर्ण होने हुए श्रवण करिये । एक श्री रामेश्वर नाम वाला परम पवित्र श्रीराम का सेतु है । यह समस्त दोषो मे और सम्पूर्ण तीर्थो मे परमोत्तम स्थल है । इस सेतु की ऐसी अद्भुत महिमा है कि इसके केवल दशन मात्र से ही हम ससार रूपी सागर से मुक्ति हो जाया करती है तथा श्री हरि और श्री हृन् दोनो मे पुण्यो से समृद्धि वाली सुदृढ भक्ति हो जाया करती है । तनो प्रकाश के कप्तो की मद्धि भी प्राप्त हा जाती है—इस विषय मे कुछ भी सङ्ग्य नही है । हे मुनियो मे परम श्रेष्ठो ! जो मनुष्य अपने इस मानव जीवन के मध्य मे इस

सेतु का भक्ति भाव पूर्वक अवलोकन कर सेता है समका जो महान् पुण्य-फल होता है उसे मैं आपको बतलाता हूँ आप श्रवण करिये !
॥ १६-२१ ॥

मातृतः पितृतश्चैव द्विकोटिकुलसमुतः । -
निर्विंश्यशम्भुनाकल्पं ततोमोक्षत्वमश्नुते ॥२२
गण्यन्ते पांसवोभूमेगण्यन्तेदिवितारकाः ।
सेतुदर्शनजं पुण्यं दोसेणाऽपि न गण्यते ॥२३
समस्तदेवतारूपः सेतुबन्ध प्रकीर्तितः ।
तद्दर्शनवतः पुंसा कःपुण्यंगणितुं क्षमः ॥२४
सेतु दृष्टवानरोविप्राः सर्वयाग हरः स्मृतः ।
स्नानद्वयसवतीर्थेषु तपातप्यतचातिलम् ॥२५
सेतु गच्छेतिप्रोग्रयाद्यकम्बापिनरद्विजाः ।
सोऽपतत्फलमाप्नातिस्मिन्धेवद्विषाणः ॥२६
सेतुस्नानकरोमर्त्यः सप्तकोटिकुलान्वितः ।
सम्प्राप्यविष्णुभवनं तत्रैव परिमुच्यते ॥२७
मेतु रामेदवरलिङ्गं गन्धमादनपर्वतम् ।
चिन्तयन्मनुजः सत्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२८

मातृकुल और पितृकुल दोनों दो कुलों में ही बरोड़ में समुत होकर शम्भु के द्वारा कल्प में निदिष्ट हो जाना है और फिर वह मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है । इस भूमि के धूल के कण भी गिने जा सकते हैं और आकाश में स्थित असीम तारों की गणना की जा सकती है अर्थात् ये दोनों ही अपरिमित हैं तो भी ऐसी सम्भावना हो सकती है कि इनकी गणना हो जावे किन्तु सेतु के दर्शन में मनुष्यन्त पुण्य भगवान् दीप के भी द्वारा नहीं गिना या बलिब दिया या मन्त्र है—यह इनका असीमित होना है । यह सेतुबन्ध सम्पूर्ण देवता के स्वप्न बाना होता है—सुप्ता कीलिन बिजा गया है । उरह दर्शन करने वाले पुण्य के पुण्य को बोन

गिनने में समर्थ हो सकता है ? जिस मनुष्य ने इस सेतु का दर्शन कर लिया है हे विप्रो ! वह तो समस्त यज्ञों के करने वाला कहा गया है । उसको तो फिर यही समझ लेना चाहिए कि सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और सम्पूर्ण तप का तपन भी वह कर चुका है । तार्क्य यह है कि उसको शेष करने का कुछ भी रह ही नहीं जाता है । हे द्विजगण ! जो जिस किसी भी मनुष्य से यह बड़दे कि सेतुद्वय के दर्शन प्राप्त करने के लिये जाइये । वह भी उसी फल को प्राप्त कर लिया करता है फिर इससे अधिक अन्य आगणों के करने से क्या प्रयोजन है । सेतु में स्नान करने वाला मनुष्य सात करोड़ कुलो से मुक्त होकर श्री विष्णु भगवान् के भवन को प्राप्त कर लेता है और वहीं पर वह मुक्त हो जाया करता है । सेतु श्री रामेश्वर तिल्ल—गन्धमादन पर्वत—इनका चिन्तन करने वाला भी पुण्य समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥ २२-२८ ॥

मातृतः पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः ।
 कल्पत्रयशम्भुपदे स्थित्वा तत्रैव मुच्यते ॥ २६
 भूपावस्थावसाकूप तथा वैतरणी नदीम् ।
 एवमक्षमूत्रपानञ्च सेतुस्नायी न पश्यति ॥ ३०
 तप्तशूलन्तप्तशिला पुरीषहृदमेव च ।
 तथा शोणितकूपञ्च सेतुस्नायी न पश्यति ॥ ३१
 शस्मत्यारोहणरक्तभोजनकृमिभोजनम् ।
 स्वमासभोजनञ्चैव वह्निज्वालाप्रवेशनम् ॥ ३२
 शिलावृष्टिवह्निवृष्टि नरक कालसूत्रकम् ।
 सारोदकचाष्णतोय नेयात्सेत्ववलोककम् ॥ ३३
 सेतुस्नायी नरो विप्रा पञ्चपातकवानपि ।
 मातृतः पितृतश्चैव शतकोटिकुलान्वितः ॥ ३४
 कल्पत्रयविष्णुपदे स्थित्वा तत्रैव मुच्यते ।

अधःशिरःशोषणं च नरकंक्षाःसेवनम् ॥३५॥

मातृ कुल तथा पितृ कुल—इन दोनों के एक लक्ष कोटि कुलो से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त भगवान् श्री शम्भु के पद में स्थित रह कर वही पर मुक्त हो जाया करता है । मूषावस्था—वसा कूप—घंटरणी नदी—श्वभक्ष—मूत्रपान इन महान् घोर यातनाएँ देने वाले नरको को सेतुबन्ध क्षेत्र में स्नान करने वाला प्राणी कभी देख ही नहीं सकता है । तप्त घृत—तप्त शिला—पुरीष हृद—शोणित कूप—इन नरको को भी सेतु में स्नान करने वाला नहीं देखा करता है ॥ २६, २७, ३१ ॥ दात्मलारोहण—रक्त भोजन—कृमि भोजन—स्वमास भोजन—वह्नि ज्वाला प्रवेशन—शिला घृष्टि—वह्नि घृष्टि—काल सूत्रक सरक—क्षारों—दक—उष्णतोष—इन नरको में सेतुबन्ध के अवलोकन करने वाला पुरुष कभी भी गमन नहीं किया करता है । हे विप्रगण ! सेतुबन्ध क्षेत्र में स्नान करने वाला पुरुष पाँच पातको वाला भी हो तो भी मातृ एवं पितृ दोनों के दत्तकोटि कुलो से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त श्री विष्णु के पद में समवस्थित रहकर वही पर हो मुक्त हो जाना करता है । अधःशिरः—शोषण—भार सेवन नरक में सेतु में स्नान करने वाला कभी नहीं जाता है ॥ २-३५ ॥

पापाण्यन्त्रपीडाञ्च मरुत्प्रपतन तथा ।

पुगीपलेपनञ्च तथा क्रकचदारणम् । ३६

पुरीषभोजनरेतः पानसन्धिपुदाहनम् ।

अङ्गारशय्याभ्रमण तथा मुसलमर्दनम् ॥ ३७

एतानि नरकाण्यद्वा सेतुस्नायो न पश्यति ।

सेतुस्नान करिष्येऽहमिति बुद्ध्या विचिन्तनम् । ३८

गच्छेच्छतपदं यस्तु समहापानकोऽसिन् ।

चतूनाकाष्ठायन्त्राणां कपण शस्त्रभेदनम् ॥ ३९

पतनोत्पतन चैव गदादण्डनिपीडनम् ।

गजदन्तैश्च हननं नानाभुजगदंशनम् ॥४०
 धूमपानपाशदन्ध नानाशूलनिपीडनम् ।
 मुखेच नासिकायांचक्षादोदकनिषेचनम् ॥४१
 क्षाराम्बुपाननरकं तप्तायः सूचिभक्षणम् ।
 एतानि नरकाण्यष्टा नवाति गतपातकः ॥४२

‘पापाणि यन्त्र पीडा—महत्प्रयतन—पुरीषसेवन—शकच दारण—
 पुरीषभोजन—रेतः पान—सन्धिपुदाहन—अङ्गार धर्म्या भ्रमण मुसलमर्दन—
 इन महायन्त्रणा प्रद नरको में सेतुबन्ध में स्नान करने वाला कभी नहीं
 जाता है तथा इनको कभी भी नहीं देखता है । मैं सेतुबन्ध में स्नान
 करूँगा—यह इतना भर अपनी धुँड से चिन्तन ही परम पुण्य प्राप्त
 करने के लिये पर्याप्त है ॥ ३६, ३७, ३८ ॥ जो एक सौ कदम गमन
 करता है वह चाहे महापातको वाला भी क्यों न हो, मुक्त हो जाता है ।
 बहुत ही काष्ठ यन्त्रों का कर्षण—शस्त्र भेदन—पतमात्पतन—गदादण्ड
 निपीडन—गजदन्तो से हनन—अनक भुजङ्गों के द्वारा दशन—धूमपान—
 पाशदन्ध—न ना शूलों से निपीडन—मुख में और नासिका में क्षारोदक का
 निषेचन—क्षाराम्बुपान नरक सतप्तायः—सूचि भक्षण—इन उपर्युक्त नरको
 को वह सेतुबन्ध में स्नान करने वाला प्राणी समस्त पातको से शुद्ध
 हो जाने के कारण कभी भी गमन नहीं किया करता है ॥ ३६ । ४०
 ४१ । ४२ ॥

सेतुस्नानंमोक्षदं च मन शुद्धिप्रदं तथा ।
 जपाद्धोमास्तियादानाद्यागाच्च तपसोऽपि च ॥४३
 सेतुस्नानंविशिष्टं हि पुराणेपरिपठ्यते ।
 अकमनाकृतस्नानं सेतौ पापविनाशमे ॥४४
 अपुनर्भवदंप्रोक्तं सत्यमुक्तं द्विजोत्तमाः ।
 यः सम्पदं समुद्दिश्य स्नातिसेतौ नरोमुदा ॥४५
 स सम्पदमवाप्नोति विपुला द्विजपुङ्गवाः ।

शुद्धयर्थं स्नाति चेत्सेतौ तदा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥४६

अत्रार्थं यदिचस्नायादप्सरोभिनरादिवि ।

तदारतिमवाप्नोति स्वर्गलोकेपरीजनः ॥ ४७

मुक्त्यर्थं यदिचस्नायात्सेतौ मुक्तिप्रदायिनि ।

तदामुक्तिमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥४८

सेतुस्नानेन घमः स्यात्सेतुस्नानादघक्षयः ।

सेतुस्नानं द्विजश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदम् ॥४९

यह सेतुबन्ध दोन का स्नान मन को शुद्धि करने वाला और मोक्ष प्रदान करने वाला है । जप—होम—दान—याग और तपस्या—इन सबसे भी विशिष्ट सेतुबन्ध का स्नान होता है जिसका कि पुराणों में परिपठन किया जाता है । इस पापों के विनाश करने वाले सेतु में बिना किसी कामना के भी किया हुआ स्नान अयुक्त भव का अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाला कहा गया है । हे द्विजोत्तमो ! यह सर्वथा सत्य ही कहा गया है । जो कोई मनुष्य इस सेतु में प्रगम्यता के साथ सम्पदा की वृद्धि का उद्देश्य लेकर स्नान किया करता है वह सम्पदा को प्राप्त करता है और बहुत बड़ी सम्पत्ति उसे मिलती है । हे द्विजपुङ्गवो ! जो केवल अपनी शुद्धि का उद्देश्य लेकर ही सेतु में स्नान करता है वह शुद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥ ४३, ४४, ४५, ४६ ॥ यदि कोई रति की कामना लेकर ही स्नान करता है तो वह दिवलोक में अप्सराओं के साथ पुनरावृत्ति में रहता उस समय में रति की प्राप्ति किया करता है और स्वर्ग लोक में परिजनो के साथ रहता है । यदि कोई मुक्ति के लिए ही वहाँ पर स्नान करता है जो कि सेतु मुक्ति के प्रदान करने वाला है तो फिर जन्म न ग्रहण करने वाली मुक्ति का प्राप्त कर लेता है ॥४७॥४८॥ इससे तुबन्ध महान् दोन में स्नान करने से घर्म होता है और सेतु-स्नान से अर्थों का भी क्षय होता है । हे द्विज श्रेष्ठो ! यह सेतुबन्ध का स्नान समस्त कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला है ॥४९॥

सर्वव्रताधिकपुण्य सर्वज्ञोत्तरस्मृतम् ।
 सर्वयोगाधिकप्रोक्त सर्वतीर्थाधिकस्मृतम् ॥५०॥
 इन्द्रादिलोकभोगेषु रागोयेषा प्रवर्तते ।
 स्नातव्यतद्विजयेष्ठा. सेतौ रामकृतसकृत् ॥५१॥
 ब्रह्मलोकेचर्वकण्ठे कंन्यासर्मापशिवालये ।
 रन्तुमिच्छाभवेद्येपातेसेतोस्नान्तुसादरम् ॥५२॥
 आयुरारोग्यसम्पत्तिमतिरूपगुणाढ्यताम् ।
 चतुर्णामपिवेदानासाङ्गानाम्पारगाभिनाम् ॥५३॥
 सवशास्त्राधिगतृत्व सर्वमन्त्राव्यभिज्ञताम् ।
 समुद्दिश्य तु य स्नायात्सेतौ सर्वार्थसिद्धिदे ॥५४॥
 तत्तत्सिद्धिमवाप्नोति सत्य स्यान्नात्र सशयः ।
 दारद्रव्यान्नरकाद्ये च विभ्यन्ति मनुजा भुवि ॥५५॥

यह सेतुबन्ध समस्त व्रतो से अधिक पुण्य वासा है और सभी
 ऋषियों से अधिक कहा गया है । उसको समस्त योगों से अधिक ही
 बतलाया गया है तथा यह अन्य सभी तीर्थों से भी अधिक है—ऐसा ही
 माना गया है ॥५०॥ इन्द्र आदि के लोकों के उपभोगों में जिन मानवों
 का राग प्रवृत्त होता है हे द्विजों में श्रेष्ठो ! उनको श्रीराम द्वारा किये
 गये इस सेतुबन्ध में एक बार स्नान करना चाहिए ॥५१॥ ब्रह्मलोक में तथा
 वैकुण्ठलोक में कैलाश में और शिव के निवास स्थान में भी जिनकी रमण
 करने की इच्छा रहती है वे बड़े ही समादर के साथ इस सेतुबन्ध में
 स्नान अवश्य करें । आयु—आरोग्य—सम्पत्ति—भक्ति—रूपलावण्य—गुणगण
 की सम्पन्नता—चारों साङ्गवेदों की पारगामिता—समस्त शास्त्रों का
 अधिगमन—सभी मन्त्रों का अभिज्ञान—इन सबका अथवा इसमें से किन्हीं
 वस्तुओं का जो उद्देश्य ग्रहण करके सब अर्थों की सिद्धियाँ प्रदान करने
 वाले मनु में स्नान करता है वह उन्हीं सिद्धियों को प्राप्त कर लिया
 करता है—यह सोलह आने सत्य है—इसमें किञ्चि ममात्र भी सशय नहीं

है । इस भूमण्डल में मनुष्य दरिद्रता से और नरक आदि से भयभीत रहा करते हैं ॥ ५२-५५ ॥

३६ — ब्रह्मकुण्ड प्रशंसा

स्नात्वा त्वमृतवाप्या वै सेवित्वैकान्तराघवम् ।
 जितेन्द्रियो नरः स्नातु ब्रह्मकुण्ड ततो व्रजेत् ॥१॥
 सेतुमध्ये महातीर्थं गन्धमादनपर्वते ।
 ब्रह्मकुण्डमिति स्यात् सर्वदारिद्र्यभेषजम् ॥२॥
 विद्यते ब्रह्महत्यानामयुतायुतनाशनम् ।
 दर्शनं ब्रह्मकुण्डस्य सर्वपापौघनाशनम् ॥३॥
 किन्तस्य बहुभिस्तीर्थैः किन्तपोभिः किमध्वरैः ।
 महादानैश्च किन्तस्य ब्रह्मकुण्डविलोकिन ॥४॥
 ब्रह्मकुण्डे सकृत्स्नानं वैकुण्ठप्राप्तिकारणम् ।
 ब्रह्मकुण्डसमुद्भूत भस्मयेन धृतं द्विजाः ॥५॥
 तस्यानुगास्त्रया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
 ब्रह्मकुण्डसमुद्भूत भस्मनायस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥६॥
 करोति तस्य केवल्यकरस्थनाऽत्र सशयः ।
 तद्भस्मपरमाणुर्वीथीललाटे धृतोऽभवत् ॥७॥

महा महर्षि श्री सूनजी ने कहा—अमृत वापी में स्नान करके और एकान्त श्री राघव का सेवन करके इन्द्रियो को जीव लेने वाले मनुष्य को स्नान करने के लिये फिर ब्रह्मकुण्ड पर गमन करना चाहिए ॥ १ ॥ तनु के मध्य में गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्मकुण्ड इस नाम से विख्यात स्थल है जो सभी प्रकार की दरिद्रताओं का भेषज (ओषध) है । अयुतायुत ब्रह्महत्याओं के नाश करने वाला श्री ब्रह्मकुण्ड का दर्शन

होता है और यह समस्त पापों के समूह का भी विनाश कर देने वाला है । फिर अन्य बह्वन से तीर्थों के अटन करने से तथा तपश्चर्या करने से और अध्वदो क करने से उस मनुष्य को कोई भी आवश्यकता ही नहीं रहती है । जिसन ब्रह्मकुण्ड का विलोकन कर लिया है उसको महा-दानों के करने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती है ॥ २, ३, ४ ॥ ब्रह्मकुण्ड में एक ही बार स्नान करने का पुण्य एककुण्ड लोक की प्राप्ति का कारण होता है । हे ढिङो ! इस ब्रह्मकुण्ड से समुद्भूत भस्म जिस मानव ने धारण करली है उसके अनुगामी तीनों वध हो जाया करता हैं जो कि ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर नाम धारी है । ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म से जिसने त्रिपुण्ड्र किया है उसके हाथ में ही कैवल्य विद्यमान रहा करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उसकी भस्म का परमाणु वायु के ललाट में धारण किया गया था उसने ही से इसकी मुक्ति होगई थी । अतएव इसमें कोई भी विचारण नहीं करनी चाहिए । उस कुण्ड की भस्म से जो मनुष्य उदधूलन करता है उसका महान् पुण्य फल होता है ॥ ५, ६, ७ ॥

तावर्तवाऽस्य मुक्ति स्यान्नाऽत्र कार्या विचारणा ।

तत्पुण्ड्रभस्मना मर्त्यं कुर्यादुदधूलनन्तु यः ॥८॥

तस्य पुण्यफलवक्तुं शङ्करा वक्ति वा न वा ।

ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मयोनवधारयेत् ॥९॥

रोरवे नरक सोऽप्यपतदाचन्द्रतारकम् ।

उदधूलनं त्रिपुण्ड्रं वा ब्रह्मकुण्डस्य भस्मना ॥१०॥

नराधमो न कुर्याद्यसुखास्य कदाचन ।

ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनिन्दारतस्तु यः ॥११॥

उत्पत्तीतस्य साङ्ख्यमनुमेयं विपश्चिता ।

ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतं भस्म तत्तल्लोकपावनम् ॥१२॥

अन्यभस्मसमं यस्तु नूनं वा वक्ति मानवः ।

उत्पत्ती तस्य साङ्ख्यं मनुमेय विपश्चिता । १३
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतेऽप्यस्मिन् भस्मनि जायते ।
भस्मान्तरेण मनुजो धारयद्यस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ १४

जो मनुष्य ब्रह्मकुण्ड की भस्म से उद्भूतन करता है उसके पुण्ड्र-फल को जानना और उसका वर्णन करना साधारण मानव की तो चर्चा ही क्या की जावे प्रत्युत ऐसा सन्देह होता है कि भगवान् शङ्कर भी उसे कथन करना जानते हैं अथवा नहीं जानते हैं । जो पुरुष ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म को कभी भी धारण नहीं करता है वह रौरव नरक में जाकर जब तक चन्द्र और तारे रहते हैं नारकीय यातनाएँ भोगता है । ब्रह्मकुण्ड में स्थित भस्म में उद्भूतन या त्रिपुण्ड्र का नरो में अधम नहीं करता है उसको कभी भी सुख नहीं मिलता है । जो ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म की बुराई करने में रत रहता है उसकी उत्पत्ति में सङ्कट दोष होने का विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए । ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म इस लोक को पावन करने वाली है । अन्य भस्म के समान ही उसको जो मानव यतलाता है या उससे भी कम कहता है उसकी भी उत्पत्ति में साङ्ख्यं दोष के होने का विद्वान् पुरुष को अवश्य ही अनुमान कर लेना चाहिए । जब ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म वहाँ पर विद्यमान हो और उसमें रहते हुए जो मनुष्य अन्य भस्म से त्रिपुण्ड्र को धारण किया करता है उसको भी उत्पन्न होने में विभिन्न माता-पिता के होने वाला वर्ण सङ्कर दोष समझ लेना चाहिए ।

॥ ६-१४ ॥

उत्पत्ती तस्य साङ्ख्यं मनुमेयं विपश्चिता ।
कदाचिदपियोमर्त्या भस्मैतत्तन् धारयेत् ॥ १५
उत्पत्ती तस्य साङ्ख्यं मनुमेयं विपश्चिता ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्म दद्याद् द्विजाय यः ॥ १६
चतुरण्वप्यन्ता तेन दत्ता वसुधरा ।

सन्देहो नाऽत्र कर्तव्यस्त्रिर्वा शपथयाम्यहम् ॥१७
 सत्यं सत्यंपुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।
 ब्रह्मकुण्डोद्भव भस्मधारयध्वद्विजोत्तमाः ॥१८
 एतद्वि पावनं भस्म ब्रह्माज्ञसमुद्भवम् ।
 पुरा हि भगवान्ब्रह्मा सवलोकयितामहः ॥१९
 सन्निधौ सवदेवाना पद्यते गन्धमादने ।
 ईशशापनिवृत्त्यर्थं कृतून्सर्वान्समातनोत् ॥२०
 विधायविधिवत्सर्वानध्वरान्वहुदक्षिणान् ।
 मुमुचेसहस्राग्रह्याशम्भुशार्पद्विजोत्तमाः ॥२१
 सदेवस्तीर्थमासाद्य स्नानं कुर्वन्ति ये तत्राः
 ते महादेवसायुज्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥२२

ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न भस्म को जो कभी भी धारण नहीं करता है वह मनुष्य भी अपनी उत्पत्ति से वर्णशङ्कर दोष वाला ही होता है—ऐसा विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए । जो ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म को द्विज को देना है उसको यही समझना चाहिए कि उसने चारों सागरी पर्यन्त समग्र समुद्ररा का ही दान दे दिया है । इन विषय में लेश मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए । मैं तीन बार इसके लिए शपथ लेकर कहता हूँ । यह सत्य है—यह पुनः सत्य है और मैं अपनी भुजा उठाकर कहता हूँ कि यह सर्वथा सत्य है । हे द्विजोत्तमो ! आप सभी लोग इस ब्रह्मकुण्ड से रुद्रभूत भस्म को धारण करिये । यह भस्म श्रम पावन है क्योंकि यह ब्रह्माज्ञ से समुत्पन्न हुई है । पहिले भगवान् श्री ब्रह्माजी ने जो इन समस्त लोकों के पितामह हैं गन्धमादन पर्वत पर सब देवगणों की सन्निधि में ईश से प्राप्त शाप की निवृत्ति के लिए सब ऋतुओं को किया था । उन समस्त अध्वरों को विधि-विधान के साथ बहुत-सी दक्षिणाओं से युक्त साङ्ग समाप्त करके हे द्विजोत्तमो ! वे ब्रह्माजी सहसा शम्भु के पाप से मुक्त हो गये थे ।

तीर्थ महान् दरिद्रता का क्षमन करने वाला है—महान् धान्य और समृद्धि का प्रदान करने वाला है—महान् दुःखों के प्रशमन करने वाला है और महती सम्पदा के वर्धन करने वाला है ॥ ३ ॥ इसमें धर्मपुत्र स्नान करके, महान् ऐश्वर्य के प्राप्त करने वाला हो गया था । भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके यह इन्द्रप्रस्थ में पहिले निवास करता था ॥ ४ ॥ ऋषिवृन्द ने कहा—हे महामुने ! जिस प्रकार से श्रीकृष्ण के वचन से प्रेरित होकर घम्भं पुत्र ने लक्ष्मी तीर्थ में निमज्जन करने से ऐश्वर्य को प्राप्त किया था वह सम्पूर्ण ब्राह्मण आप हम लोगो को बतलाइये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी ने कहा—हे विप्रो ! पुरातन समय में धृतराष्ट्र के द्वारा प्रेरित हुए पाँच महाबल पराक्रम वाले पाण्डव इन्द्रप्रस्थ में निवास करते थे । किसी समय में उन पाण्डवों को देखने एवं मिलने के लिए श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में गये थे । उनकी वहाँ पर समागत हुए देखकर पाण्डव अत्यन्त ही उन्मुक्त हुए थे ॥ ६, ७ ॥

स्वगृहं प्रापयामासुमुदापरमयायुताः ।
 काञ्चित्कालमसौकृष्णस्तत्रावात्सीत्पुरोत्तमे ॥८॥
 वदाचित्कृष्णमाहूयपूजयित्वा युधिष्ठिरः ।
 पप्रच्छ पुण्डरीकाक्षं वासुदेवजगत्पतिम् ॥९॥
 कृष्ण ! कृष्ण ! महाप्राज्ञ ! येन घर्मेण मानवाः ।
 लभन्ते महदैश्वर्यं तत्रो ब्रूहि महामते ॥१०॥
 इत्युक्तो धर्मपुत्रेण कृष्णः प्राह युधिष्ठिरम् ।
 धर्मपुत्र ! महाभाग ! गन्धमादनपवते ॥११॥
 लक्ष्मीतीर्थमितिख्यातमस्त्यैश्वर्यककारणम् ।
 तत्र स्नानं कुरुष्वत्वमैश्वर्यं ते भविष्यति ॥१२॥
 तत्र स्नानेन वर्धन्ते धनधान्यसमृद्धयः ।
 रथे सपत्न्या नश्यन्ति क्षेमेर्षाविवर्द्धन्ते ॥१३॥
 तार्थसन्तुः पूरादेवा लक्षमानानि पुण्यदे ।

अलभन्सर्वमैश्वर्यं तेन पुण्येनधर्मज ॥१४

वे सब पाण्डव परम प्रसन्नता से युक्त होते हुए उन भगवान् श्रीकृष्ण को अपने घर में अन्दर ले गये थे । यह श्रीकृष्ण भी पहिले इस उत्तम स्थल में कुछ समय पर्यन्त वहाँ पर रहे थे । किसी समय में धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का समाह्वान कर उनका अर्चन किया था और जगत् के स्वामी पुण्डरीक के तुल्य नैत्री वाले वासुदेव भगवान् से युधिष्ठिर ने पूछा था ॥ ८, ९ ॥ युधिष्ठिर ने कहा — हे श्रीकृष्ण ! हे श्रीकृष्ण ! आप तो महती प्रज्ञा से सम्पन्न हैं और आपकी मति भी परम महती है । आप हमको यह बतनाइये कि वह कौन सा धर्म है जिसके द्वारा मानव महान् ऐश्वर्य का लाभ किया करते हैं ? इस रीति से धर्मपुत्र के द्वारा पूछे गये भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से बोले—श्रीकृष्ण ने कहा — हे धर्मपुत्र ! हे महान् भाग वाले ! इस गन्धमादन पर्वत पर लक्ष्मी तीर्थ—इस नाम से विख्यात एक तीर्थ है जो ऐश्वर्य की प्राप्ति का एक ही कारण है । वहाँ पर आप स्नान कीजिए ! आपको भी महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जायगी । १०, ११, १२ ॥ वहाँ पर स्नान करने से धन-धान्य और समृद्धि का बढ जाया करते हैं । स्नान करने वाले पुरुष के सभी शत्रु स्वतः ही विनष्ट हो जाया करते हैं और फिर इनका क्षेत्र वर्धित हो जाता है ॥ १३ ॥ हे धर्मश ! इस लक्ष्मी नाम वाले तीर्थ में जो परम पुण्य के प्रदान करने वाला है पहिले देव-गणों ने स्नान किया था और उन्होंने उस पुण्य से ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ॥ १४ ॥

अगुरांश्चमहावीर्यान्समरेजध्नुरञ्जसा ।

महानलक्ष्मीश्च धर्मश्चतत्तीर्थंस्नायिनान्पुणाम् ॥१५

भविष्यत्यचिरादेव सशयं मा कथा इह ।

सर्वेभिः कृतुमिर्त्तिराराणीर्वादिशचपाण्डव ॥१६

ऐश्वर्यं प्राप्यते यद्वत्लक्ष्मीतीर्थनिमज्जनात् ।

सर्वपापानि नश्यन्ति विघ्नायान्तिलयंसदा ॥१७
 व्याधयश्च विनश्यन्ति लक्ष्मीतीर्थनिषेवणात् ।
 श्रेयः सुविपुल लोके लभ्यते नात्र सशयः ॥१८
 स्नानमन्त्रेणैव लक्ष्म्यास्तीर्थेस्मिन् धर्मनन्दन ! ।
 रम्भामप्सरसाश्रेष्ठालब्धवान्नल कूबरः ॥१९
 स्नात्वाऽत्र तीर्थे पुण्ये तु कुबेरो नरवाहनः ।
 महापद्ममुख्यानां निधिना भ्रायकोऽभवत् ॥२०
 तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र लक्ष्मीतीर्थे शुभप्रदे ।
 स्नात्वा वृकोदरमुखैरनुजैरपि सवृतः ॥२१
 लप्स्यसे महती लक्ष्मी जेष्यसे च रिपून्पि ।
 सन्देहो नात्र कतं व्यपैतुस्त्वस्त्र्यधर्मज ॥२२

देवो ने रण मे महान् वीर्य वाले असुरो को यो ही बड़ी आसानी से मार डाला था । उस तीर्थ मे स्नान करने वाले मनुष्यो को महा-लक्ष्मी और धर्म दोनो ही प्राप्त होते हैं । ये दोनो भी ही प्राप्त हो जायेंगे—इसमे कुछ भी सशय मत करो । हे पाण्डव ! बड़ी बड़ी तपश्चर्माओ से—ऋतुओ से—दानो से—और आशीर्वादो से जो ऐश्वर्य प्राप्त किया जाता है वह लक्ष्मी तीर्थ के निमज्जन करने से ही प्राप्त हो जाया करता है । समस्त पाप विनष्ट हो जाया करते हैं, और सभी विघ्न सदा, लय को प्राप्त हो जाते हैं । सभी व्याधियाँ नष्ट होनी हैं । इस लक्ष्मी तीर्थ के सेवन करने से लोक मे अत्यधिक श्रेय प्राप्त किया जाता है—इसमे कुछ भी सशय नहीं है ॥ १५, ६, १७, ८ ॥ हे धर्मनन्दन ! लक्ष्मी के इस तीर्थ मे स्नान मात्र से ही नल कूबर ने अप्सराओ मे परम श्रेष्ठ रम्भा को प्राप्त कर लिया था । इस पवित्र पुण्य तीर्थ मे नर वाहन कुबेर स्नान करके वह महापद्म मुख्य निधियो का नायक हो गया था । इसलिये हे राजेन्द्र ! इस शुभप्रद लक्ष्मी तीर्थ मे स्नान करके महती लक्ष्मी को तुम भी वृकोदर प्रमुख भाइयो से युक्त

प्राप्त कर लीगे और अपने शत्रुओं को भी जीव लीगे । हे वैश्वस्व-
स्तेष धर्मज ! इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये ।
॥ १५-२२ ॥

इत्युक्तो धर्मपुत्रोऽयं कृष्णेनाद्भुतदर्शनः ।
सानुजः प्रययौ शीघ्रं गन्धमादनपर्वतम् ॥२३॥
लक्ष्मीतीर्थं ततो गत्वा महदंश्वयंकारणम् ।
सस्नो युधिष्ठिरस्तत्र सानुजो नियमान्वितः ॥२४॥
लक्ष्मीतीर्थस्यतोये ससवंपातकनाशने ।
सानुजोमासकेकन्तुसस्नौनियमपूर्वकम् ॥२५॥
गोभूतिलहरिण्यादीन्ब्राह्मणेभ्योददीवहून् ।
सानुजोधर्मपुत्रोऽसाविन्द्रप्रस्थंययीततः ॥२६॥
राजसूयक्रतुं कर्तुं ततः ऐच्छयुधिष्ठिरः ।
कृष्णं समाह्वयामास शिष्यक्षुर्धर्मनन्दनः ॥२७॥
कृष्णो धर्मजदूतेन समाहूतः ससम्भ्रमः ।
चतुर्भिरर्ध्वः सयुक्त रथमारुह्य वेगिनम् ॥२८॥

इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा कहे गये इस अद्भुत
दर्शन वाले धर्म पुत्र ने अपने छोटे भाइयों के सहित शीघ्र ही गन्धमादन
पर्वत पर प्रस्थान कर दिया था । इसके अनन्तर महान् ऐश्वर्य के कारण
स्वरूप लक्ष्मी तीर्थ पर गये थे । वहाँ पर अपने छोटे भाइयों के सहित
नियमों से अन्वित होकर युधिष्ठिर ने स्नान किया था ॥ २३, २४ ॥
जब लक्ष्मीतीर्थ के जल में जो समस्त पातकों के नाश करने वाला है
अपने छोटे भाइयों के साथ नियम पूर्वक धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने एक मास
तक स्नान किया था और ब्राह्मणों के लिए अत्यधिक मात्रा में जी—
भूमि — तिल और सुवर्ण आदि का दान दिया था । इसके पश्चात् वह
धर्म का पुत्र युधिष्ठिर अपने अनुजों के सहित इन्द्रप्रस्थ की चले गये थे ।
इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ क करने की मनमें इच्छा

की थी । यत्र करने की इच्छा जाने धर्मनन्दन ने भगवान् श्रीकृष्ण का वाह्यान किया था । धर्म पुत्र के दूत के द्वारा समाहूत हुए भगवान् श्री कृष्ण सम्प्रदाय में युक्त होगये थे और चार ऋषियों से युक्त वेग ममन करने वाले रथ पर समासक होगये थे ॥२५-२८॥

सत्यभामासहचर इन्द्रप्रस्थं समाययो ।

तमागतं भमालोक्य प्रमोदाद्धर्मनन्दनः ॥२६॥

न्यवेदयत्सकुण्ठाया राजभूयोद्यमन्तदा ।

अन्यन्नयत् कृष्णापि तर्धव क्रियतामिति ॥३०॥

वाक्यं च युषितसंयुक्तं धर्मपुत्रमभाषत

पैतृस्वस्त्रेय धर्मात्मञ्छृणु पथ्यं वचोमम ॥१॥

दुष्करो राजभूयोऽय सर्वैरपि महीश्वरैः ।

अनेकशतपादातिरथकुञ्जवाजिमान् ॥३२॥

महामातरिम यज्ञं कर्तुं महति नेतरः ।

दिशो दश विजेतव्याः प्रथमं यतिना भव्या ॥३३॥

पराजितेभ्यः शत्रूभ्यो गृहीत्वा करमुत्तमम् ।

तेन काञ्चनजातेन कर्तव्योऽयं व्रतूत्तमः ॥३४॥

रोचयेमुक्तिसदन न हित्वां भीषयामि भोः ।

अतः ऋतुसमारम्भात्पूर्वदिग्बिजयं कुरु ॥३५॥

अपनी परम प्रिय सत्यभामा को माथ में लेकर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में समागत हो गये थे । उनकी वहाँ पर आये हुए देखकर धर्मनन्दन को बड़ा भारी हर्ष हुआ था । फिर युधिष्ठिर अपने किये जाने वाले राजभूय यज्ञ का उद्यम श्रीकृष्ण की सेवा में निवेदित किया था । उस समय में श्रीकृष्ण ने भी उसकी अनुमति दे दी थी कि ऐसा ही करिये । श्रीकृष्ण भगवान् ने युक्ति से मुगधुत वाक्य धर्मपुत्र से कहा था—हे पैतृस्वस्त्रेय ! आप तो धर्मात्मा हैं, मेरे परम पथ्य वचन का श्रवण करिये । यह राजभूय यज्ञ परम दुष्कर हुआ करता है और सभी महीपतियों के लिए

हे महान् बाहुओं वाले ! हे बहुत अधिक वीर्य वाले ! हे घनंजय ! हे शत्रुओं के संहार करने में परम कुशल तथा सन्तुष्ट अङ्गों वाले दोनों नकुल और सहदेव ! मैं सर्वोत्तम राजसूय यज्ञ के करने की इच्छा करता हूँ जो एक महान् यज्ञ होता है । यह राजसूय यज्ञ रणक्षेत्र में समस्त राजाओं को जीतकर ही करने के योग्य हुआ करता है । इस लिये समस्त राजाओं को जीतने के लिए आप चारों भाई अपने २ सैनिकों के सहित चारों दिशाओं में गमन करो । आप सब लोग महान् बलवीर्य शाली हैं । आप लोगों के द्वारा लाये हुए द्रव्यों से ही मैं इस महान् ऋतु को करूँगा ॥ ३९।३७।३८।३९।४० ॥ इस प्रकार से आदर के सहित जब वृकोदर प्रमुख सब भाइयों से कहा गया था तब उस समय में वे धर्मपुत्र के छोटे भाई परम प्रसन्न मुख होतेहुए पुरसे राजा के विजय के लिये सब दिशाओं में पाण्डव निकल कर चले गये थे । वे सब चारों दिशाओं में राजाओं को जीत लिया था जोकि बहुत से स्थित थे ॥४१।४२॥

स्ववशेस्थापयित्वातान्पत्नीन्पाण्डुनन्दनाः ।
 तदंशम्बहुधा द्रव्यमसंख्यातमनुत्तमम् ॥४३
 आदाय स्वपुरं तूर्णमाययुःकृष्णसंभवाः ।
 भीम समाययौ तत्र महाबलपराक्रमः ॥४४
 शतभारसुवर्णानि समादाय पुरोत्तमम् ।
 सहस्रं भागमादाय सुवर्णानां ततोऽर्जुनः ॥४५
 शक्रप्रस्थं समायातो महाबलपराक्रमः ।
 शयभारं सुवर्णानां प्रगृह्य नकुस्तथा ॥४६
 समागतो महातेजाःशक्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ।
 दत्तान्विभीषणेनाय स्वर्णतालाश्चतुर्दश ॥४७
 दाक्षिणात्यमहापाना गृहीत्वा घनसञ्चयम् ।
 सहदवीर्यं सहमा समादाय निजाम्पुरीम् ॥४८

उन पाण्डु नन्दनों ने उन गमन्य नृपों को अपने वश में स्थापित

दृष्ट्वा देव राजसूयेन धर्मपुत्रः सहानुजः ॥५७॥

यादव भगवान् श्री कृष्ण ने एक सट्ख लाख करोड़ तथा एक सौ लाख करोड़ सुवर्ण धर्म पुत्र के लिये दिया था । इस प्रकार से अनुजों के द्वारा समाह्वन असह्यात महान् धनो स तथा श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा प्रदत्त असह्यात् धनो से श्रीकृष्ण का वाधय ग्रहण करने वाले राजा युधिष्ठिर ने हे विप्रगण ! उक्त राजसूय यज्ञ के द्वारा यजन किया था । उस यज्ञ में ब्राह्मणों के लिये यथेष्ट द्रव्य दिया था ॥ ४६, ४७, ४८ ॥ उसमें युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों के लिये अग्नो का भी दान किया था । उसी भाँति वरुण-गोए-भूगि और भूषणों का भी दान दिया गया था । याचक गण जितने भी सुवर्ण आदि से परिपुष्ट होते थे धर्मपुत्र ने उतने से भी दुगुना उनको दिलाया दिया था । अर्धियों के लिये विविध भाँति के इतने धनो का प्रदान किया गया था कि उसकी ह्यता (इतना है- इसको) को करोड़ों ब्रह्मा भी कहने में समर्थ नहीं हुए थे । वहाँ पर अर्धियों के द्वारा दीयमान धनो को देखकर जनगण यही कह रहे थे कि राजा ने अपना सर्वस्व ही दान कर दिया है । जिस समय में लोग उन अनन्त वीरों को तथा अनन्त मणियों और काञ्चनों को देखते थे तो उस समय में यही कहते थे कि अर्धियों के लिये तो बहुत थोड़ा ही दिया गया है क्योंकि वहाँ तो अभी भी अनन्त राशि विद्यमान थी । इस प्रकार के धर्मपुत्र ने अपने छोटे भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ का यजन किया था ॥४९-५७॥

वदुर्वित्तसमृद्धसन् रेमे तत्र दुरोत्तमे ।

लक्ष्मार्तीर्थस्य महारम्पद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५८॥

लेमे सवमिद विप्रा अहोतीर्थस्य वंशवम् ।

इद तीर्थ महापुण्या महाशरिद्रचनाशनम् ॥५९॥

धनधान्यप्रद्र पू सा महापातकनाशनम् ।

महानरकसहर् महादुःखनिवर्तकम् ॥६०॥

मोक्षदं स्वर्गदक्षित्य महाऋणविभाचनम् ।

सुकलत्रप्रद पुंसासुपुत्रप्रदमेव च ॥६१

एतत्तीर्थसमं तीर्थं न भूतस्य भविष्यति ।

एतद्वक्तव्यं विप्रा लक्ष्मीतोथस्य वैभवम् ॥६२

दुस्स्वप्ननाशनं पुण्य सर्वाभीष्टप्रसाधकम् ।

यः पठेदिममध्यायशृणुतेवासमक्तिकम् ॥६३

धनधान्यममृदस्स्यात्स नरो नास्ति सद्यः ।

भुवतवेह सकलान्भोगान्देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥६४

बहुत वित्त मे युक्त होता हुआ समृद्ध होकर वहाँ पर उभ उभ पुर इन्द्रप्रसन्न मे युधिष्ठिर रमण किया करते थे । यह सब उसी लक्ष्मी तीर्थ का ही महा माहात्म्य था ॥ ५८ ॥ हे विप्रगण ! महो उस तीर्थ का वैभव है कि धर्म पुत्र ने यह सब प्राप्त किया था । यह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और महान् दारिद्र्य के विनाश को कर देने वाला है । दुष्टों को धन-धान्य व प्रदान कर देने वाला तथा महापातकों को नष्ट कर देने वाला है । यह वही मे भी वही नरको का मिहगन करने वाला तथा महान् दुष्टों से निवृत्त कर देने वाला है । मोक्ष का देने वाला—स्वर्ग प्रदान करने वाला और निरय ही महान् शृंगी व भाचन करा देने वाला है । सुन्दर स्त्री और परम सुपुत्र का दाता है । यह ऐसा महा महिमा मय तीर्थ है कि इसके समान अन्य नाथ अब तक न तो कोई हुआ और न भविष्य मे ही कोई होना । हे विप्रों ! यह आप लोगों को देने लक्ष्मीतीर्थ का वैभव बहुधा बनना दिया है जो कि दुष्टों का नाश करने वाला—परम पुण्यमय और समस्त अभीष्टों का साधक होता है । जो कोई भी इस अध्यायका पठन करता है अथवा इसका श्रवण ही भक्तिभाव से सहित कर लेता है वह धन-धान्य व समृद्ध मनुष्य हो जाता करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इस लोक मे ॥ ५९ ॥

का उपयोग करके देह के अन्त में वह मुक्ति को प्राप्त कर लिया करता है । ५६-६४॥

३८—गायत्री सरस्वती तीर्थ प्रशंसा

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मुनयो लोकपावनम् ।
 गायत्र्या च सरस्वत्या माहात्म्यं मुक्तिदं नृणाम् ॥१॥
 शृण्वतां पठतां चैव महापातकनाशनम् ।
 महापुण्यप्रदं पुंसां नरकक्षेत्रनाशनम् ॥२॥
 गायत्र्यां च सरस्वत्यां ये स्नान्ति मनुजा मुदा ।
 न तेषां गर्भवासः स्यात्किन्तु मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥३॥
 सरस्वत्याश्च गायत्र्या गन्धमादनपवते ॥४॥
 ब्रह्मपत्न्योः सन्निधानसन्नाम्ना कथिते इमे ॥५॥
 गायत्र्याश्च सरस्वत्या गन्धमादनपवते ।
 किमर्थं सन्निधानं वे सूताभूतद्वयस्व नः ॥६॥

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिगण ! इसके अनन्तर अब मैं लोको को पावन कर देने वाला तथा मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाला गायत्री और सरस्वती तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ ॥ १ ॥ जो इस माहात्म्य को पढ़ते हैं अथवा इसका श्रवण किया ही करते हैं उनके महापातकों का यह नाश कर देने वाला है । महापुरुषों को महान् पुण्य की प्रदान किया करता है तथा नरकों के बलेशो का विनाश कर देने वाला है । गायत्री तीर्थ में और सरस्वती तीर्थ में जो मनुष्य आनन्द के साथ स्नान किया करते हैं उनको फिर गर्भ का वास कभी भी नहीं होता है किन्तु निश्चित रूप से उनकी मुक्ति हो जाया करती है ॥ २, ३ ॥ गन्धमादन पवते नर गायत्री और सरस्वती इन दोनों ब्रह्मा की

पत्नियों के सन्निधान से उन्हीं के नाम से ये प्रसिद्ध हुए हैं । ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! गन्धमादन पर्वत पर गायत्री और सरस्वती इन दोनों का सन्निधान किस लिये हुआ था ? यह आप हमको बता दीजिए ॥ ४, ५, ६ ॥

प्रजापति पुराविप्रा स्वायंदुहितरमुदा ।
वाङ्नाम्नीकामुकोभूत्वास्पृहपामासमोहन ॥७॥
इतिनिन्दन्ति त विप्रा स्रष्टार जगता पतिम् ।
निषिद्धकृत्यनिरतत दृष्टवापरमेष्ठिनम् ॥८॥
हर पिनाकभादाय व्याघ्ररूपधर प्रभु ।
आकण्ठपूणकृष्टेन पिनाकधनुषा शरम् ॥९॥
सयोज्य वेधसन्तेन चिव्याघ्र निशितन स ।
क्षिपुरान्तराव्राणेन विद्धोऽसौ यपद्भुवि ॥१०॥
तस्य दहादयोत्याय महज्ज्योतिर्महाप्रभम् ।
आवाशेमृगशीर्षस्थिनक्षत्रमभवत्तदा ॥११॥
आध्रनिक्षत्ररूपी सन्द्गोऽप्नुजगामतम् ।
पीडयन्मृगशीर्षस्थि नक्षत्र ब्रह्मरूपणम् ॥१२॥
अधुनाऽपि मृगव्याघ्ररूपेण त्रिपुरान्तरु ।
अम्बर दृश्यत स्पष्ट मृगशीर्षान्तिवद्विजा ॥१३॥
एव विनिहितैस्मिञ्छन्मुना परमेष्ठिनि ।
अन्तरन्तुगायत्रीसरस्वतीमुच्चारिते ॥१४॥

श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! यहिल पुरातन समय में प्रजापति अपनी पुत्री जिसका नाम वाङ् है उसी पर कामुक होकर मोहित हो गया था और उसका प्राप्त करने की इच्छा की थी ॥ ७ ॥ विप्रगण जगत् के पति—मूज्ज करने वाले—निषिद्ध कृत्य को करने वाले उन ब्रह्माजी को देखकर परमेष्ठी की सब निंदा करते थे । भगवान् हरि ने व्याघ्र का स्वरूप धारण करने प्रभु ने पिनाक धारण किया था

धीर कानों तक पूरा खींचकर पिनाक धनुष से शर को सयोजित करके उस तीक्ष्ण बाण से उन्होंने ब्रह्माजी को वेत्र दिया था । त्रिपुरान्तक के उस बाण से विद्ध होकर यह ब्रह्माजी भूमि पर गिर गये थे । उस समय मे उनके देह से महती प्रभा वाली एक महान् ज्योति उठकर आकाश मे मृगशीर्ष नाम वाला नक्षत्र हो गया था । ८, ९, १०, ११ । आर्द्रा नक्षत्र के रूप धारित होकर भगवान् हर भी उसके ही पीछे चले गये थे । वहाँ पर आकाश मे भी उस ब्रह्मरूपी मृगशीर्ष नामक नक्षत्र को पीछा दे रहे थे ॥ १२ ॥ इस समय मे भी मृग और व्याघ्ररूप से त्रिपुरान्तक भगवान् अम्बार मे हे दिजो ! मृगशीर्ष के ही समीप मे स्पष्ट दिखलाई दिया करते हैं । इस प्रकार से शम्भु के द्वारा परमेष्ठी के विनिहित होने पर इसके उपरान्त मे गायत्री और सरस्वती दोनों ही चिन्ता से अत्यन्त पीडित होगई थी ॥ १३, १४ ॥

सर्वाभीष्टप्रदं पुंसा तपः कर्तुं समुच्यते ।
जग्मतुनियमोपेतं तपः कर्तुं शिव प्रति ॥१५
स्तानार्थमात्मनाविप्रा गायत्री च सरस्वती ।
तीर्थद्वयस्वनाम्नावचक्रतु पापनाशनम् ॥१६
तस निषवणस्तान प्रत्यह चक्रतुर्मुदा ।
बहुकालमनाहारे कामक्रोधादिव्रजिते ॥१७
अत्युग्रानियमोपेतं शिः ध्यानपरायणे ।
पञ्चाक्षरमहामन्त्रं जपं कनियते शुभे ॥१८
तयोग्य तपस्तुष्टो महादेवो महेश्वरः ।
सन्निधत्ते महामूर्तिस्तपसा फलादित्सया ॥१९
ततः सान्निहितशम्भुपावन्तीरमणशिवम् ।
गणेशकार्तिकेयांशभ्यां राश्वेयोः परिमेवतम् ॥२०
दृष्ट्वा सन्तुष्टचित्ते ते गायत्री च सरस्वती ।
स्तार्त्रस्तुष्टवतुः शम्भु महादेवघृणानिधिम् ॥२१

ये दोनों पुरुषों के समस्त अभीष्टों के प्रदान करने वाले तप को करने के लिये समुद्यत हो गई थी और शिव के प्रति नियमों से समुपेत तपश्चर्या करने के लिये चली गयी ॥ १५ ॥ हे विप्रो ! इन दोनों महा-देवियों ने अपने स्नान करने के लिए गायत्री और सरस्वती इन दो अपने ही नामों से पारों के नाश करने वाले तीर्थ बनाने थे ॥ १६ ॥ वहाँ पर तीनों समयों में प्रतिदिन परम प्रसन्नता से ये स्नान किया करती थीं । बहुत समय पर्यन्त बिना आहार के और काम-क्रोध आदि से रहित होकर अत्यन्त उग्र नियमों में ये दोनों सम्बन्धित रहो थीं । निरन्तर भगवान् शिव के ध्यान में परायण होकर परम शुभ झुलने वज्राक्षर महामन्त्र का आप नियत होकर किया था । इसके अनन्तर उन दोनों के तप से महेश्वर महादेव परम सन्तुष्ट हो गये थे । उन्होंने इन दोनों की तपस्सा का फल देने की इच्छा से उन दोनों के समीप में अपनी महामूर्ति का सन्निधान किया था ॥ १७, १८, १९ ॥ इसके अनन्तर पार्वती रमण शिव शम्भु को अपने सन्निहित उन दोनों ने देखा था । इनके दोनों ओर स्वामि कार्तिकेय और गणेश परिसेवन करने के लिये विद्यमान थे । वहाँ पर भगवान् शम्भु का दर्शन करके वे गायत्री और सरस्वती दोनों परम सन्तुष्ट चित्त वाली हो गई थी । उन दोनों ने वरुणा की निधि महादेव शम्भु का स्तोत्रों के द्वारा स्तवन किया था ॥ २०, २१ ॥

नमोदुर्वारससारध्वान्तध्वसंकहेतवे ।

उबलज्ज्वालावलीभीमकालकूटविषादिने ॥ २२

जगन्मोहनपञ्चास्त्रदेहनाशकहेतवे ।

जगदन्तकरकूर ! यमान्तक ! नमोऽस्तु ते ॥ २३

गङ्गातरङ्गसम्पृक्तजटामण्डलधारिणे ।

नमस्तेऽस्तु त्रिरूपाक्ष ! वानशोतांशुधारिणे ! ॥ २४

पिनाकभीमटङ्कारशक्तित्रिपुरोक्तसे ।

नमस्तेविविधाकार ! जगत्स्रष्टृशिरशिखदे ॥ २५

शान्तामलकृपादृष्टिसंरक्षिमृक्पण्डुज ! ।

नमस्ते गिरिजानाथ ! रक्षाऽऽवा शरणागते ॥२६

महादेव ! जगन्नाथ ! त्रिपुरान्तक ! शङ्कर ! ।

वामदेवमहादेव ! रक्षाऽऽवा शरणागते ॥२७

सहानेनब्रह्मलोक यात मा भूद्विलम्बता ।

इति ताभ्यां स्तुत शम्भुर्देवदेवोमहेश्वर ।

अन्नवीत्प्रातिसयुक्तोगायत्रीचसरस्वतीम् ॥२८

गायत्री और सरस्वती दोनों ने कहा—इस परम दुःख से निवारण किये जाने वाले ससार के अन्धकार के ध्वंस करने के एक मात्र कारण स्वरूप आपके लिये हम दोनों की नमस्कार समर्पित है । जलता हुई ज्वालाओं की पक्षियों वाला महान् भयानक कालकूट विष का भक्षण करने वाले आपके लिये हमारा प्रणाम है ॥ २२ ॥ समस्त जगत् को मोहने वाले कामदेव के देह को भस्मीभूत करने के एक मात्र हेतु आप के लिये नमस्कार है । हे जगत् के अन्त कर देने वाले परम क्रूर ! हे धम के भी अन्त करने वाले देव ! आपकी सेवा में हम दोनों का नमस्कार अर्पित है । २३ ॥ भागीश्वरी देवी गङ्गा की तरङ्गों से सम्पूजित जटाओं के मण्डल को धारण करने वाले । हे विरूपाक्ष ! आप बालचन्द्र को धारण करने वाले हैं आपको हम दोनों का नमस्कार है । विनाक धनुष की टङ्कार में त्रिपुगलय को त्रासित करने वाले—विविध आकार धारी और जगत् के सृष्टा ब्रह्मा के भी शिर का छेदन करने वाले आपको हमारी नमस्कार है ॥ २४, २५ ॥ परम शान्त एवं घमेल कृपा दृष्टि से मृक्पण्डुज का सम्प्राण करने वाले गिरिजा के नाथ आपके लिये हमारा प्रणाम है । हम दोनों ही आपकी शरण में समागत हुई हैं । आप हम दोनों की रक्षा कीजिए । हे महादेव ! हे जगन्नाथ ! हे त्रिपुर के अन्त कर देने वाले । हे शङ्कर ! हे वामदेव महादेव ! शरण में समागत हम दोनों की आप रक्षा कीजिए ॥ २६, २७ ॥ इस भाँति उन दोनों के द्वारा

स्तवन किये जाने पर देवों के भी महेश्वर गम्भू प्रीति से समुत होकर गायत्री और सरस्वती से बोले—॥२८॥

भोःसरस्वति ! गायत्रि ! प्रीतोऽस्मियुयोरहम् ।

वरं वरयत मत्तोयद्वांमनसि वतंत ॥२९॥

इत्युक्ते ते तु गायत्रीसरस्वत्यो हरेण वै ।

अग्रतां पार्वतीकान्त महादेवधृष्टानिधिम् ॥३०॥

त्वमावयोः पितादेव ! तवाप्यावा सुते उभे ।

रक्षावांपतिदानेनतस्मात्सर्वत्रपुरात्तक ॥३१॥

स एव प्रार्थितः गम्भुस्ताम्या ब्राह्मणपुङ्गवाः ।

एवमस्त्विति संप्रोच्य गायत्री च सरस्वतीम् ॥३२॥

सहानेनब्रह्मलाकं यात मा भूद्विलम्बता ।

युयतो.सन्निधानेन सदाकुण्डद्वयेऽक्ष वै । ३३॥

भविष्यति नृणा मुक्ति स्नानात्सायुज्यरूपिणी ।

युष्मान्नाम्ना च गायत्रीसरस्वत्याविति द्वयम् ॥३४॥

इदतीर्थं सर्वलोके स्थाति यास्यतिशावतीम् ।

सर्वपामपितीर्थानामिदतीद्वयसदा ॥३५॥

श्रुद्धिप्रदन्तथा भूयान्महापातकनाशनम् ।

महाशान्तिकरं पूसां सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥३६॥

ममप्रसादजनन विष्णुप्रीतिकरन्तथा ।

एतत्तीर्थंद्वयसम न भूत न भविष्यति ॥३७॥

अत्रस्नानाद्धि सर्वेषां सर्वाभीष्ट भविष्यति ।

इदनुण्डद्वयलोके भवतीम्या कृतमहत् ॥३८॥

श्री महादेवजी ने कहा—भो सरस्वति ! हे गायत्रि ! मैं आप दोनों मे लक्ष्मन् प्रसन्न हो गया हूँ । जो भी आपके मनमें हो आप दोन मुखसे वरदान की याचना करवो । इस तरह से जब वे दोनों गायत्री और सरस्वती भगवान् हर के द्वारा बही यही तो वे दोनों करुणा के सागर पार्वती के स्वामी महादेवजी से बोली—गायत्री और सरस्वती ने कहा—

हे भगवन् ! हे देव ! आप तो सबके ईश हैं और करुणा के आकर हैं । अब आप कृपा करके हमारे अर्त्ता चतुरानन को प्राणो से युक्त कर दें । हे देव ! आप तो हमारे पिता हैं और हम दोनों भी आपकी ही पुत्रियाँ हैं । पति के प्रदान के द्वारा हम दोनों की आप रक्षा कीजिए । आप तो त्रिपुर के अन्त करने वाले हैं ॥ २६, ३०, ३१ ॥ इस प्रकार से उन दोनों के द्वारा प्रार्थना किये गये भगवान् शम्भु—हे ब्राह्मणों ! 'ऐसा ही होगा'—यह वायवी और सरस्वती से कहकर भगवान् शम्भु ने कहा—अब इसके साथ ही आप दोनों ब्रह्मलोक को चली जाओ और यहाँ पर दिलम्ब मत करो । आप दोनों के सन्निधान से ये सदा ही दोनों कुण्ड मनुष्यों को स्नान करने से मुक्ति एवं सायुज्य प्रदान करने वाले होंगे । ये दोनों ही कुण्ड आप दोनों के ही नाम से वायवी कुण्ड और सरस्वती कुण्ड विख्यात होंगे ॥ ३२, ३३, ३४ ॥ यह तीर्थ समस्त लोक में शाश्वती प्रसिद्धि को प्राप्त होंगे और अग्न सब तीर्थों से भी अधिक महत्त्वशाली सदा ये दोनों तीर्थ होंगे ॥ ३५ ॥ ये शुद्धि के प्रदान करने वाले और महान् पातकों के नाश करने वाले होंगे । मनुष्यों के लिये ये अत्यधिक शान्ति प्रदान करने वाले तथा सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं के देने वाले होंगे । ये तीर्थ मेरी प्रसन्नता के करने वाले और भगवान् श्री विष्णु की परम प्रीति उत्पन्न करने वाले होंगे । इन दोनों तीर्थों के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो अब तक इस भूमण्डल में हुआ और न भविष्य में भी होगा । यहाँ पर स्नान करने से सबको समस्त अभीष्टों की प्राप्ति होगी । ये दोनों कुण्ड आप दोनों ने एक महान् वस्तु बना दी ॥ ३६ ३७ ॥ ३८ ॥

३६ — धर्मरिण्य-माहात्म्य

पृथ्वीपुरन्ध्रपास्तिलक ललाटे लक्ष्मीलताया. स्फुटमालवानम् ।
 वाग्देवताया जलनेलिरम्य धर्मटिवी सप्रति यणयामि ॥१॥
 साधु पृष्ट त्वया राजन्वाराणस्यधिवाधिवम् ।
 धर्मरिण्य नृपश्रेष्ठ । शृणुष्वऽवहिता भृशम् ॥२॥
 सवतीर्थानि तदीव ऊपर तेन पश्यते ।
 ग्रहाविष्णुमहेशाद्यग्निद्राद्यं परिसेवितम् ॥३॥
 तीर्थपालैश्च दिवपालैर्मृतुभिः । शवशक्तिभिः ।
 गन्धर्वैश्चाप्सरोगैश्च सवित यज्ञवर्मभिः ॥४॥
 दानिनीभूतवेतालग्रहदेवाधिदवतं ।
 ऋतुभिलासपक्षौच सम्म न सुरासुरं ॥५॥
 तदाद्य च नृप । स्थान सवसौख्यप्रद तथा ।
 यज्ञैश्च बहुभिर्श्चैव सवित मुनिसत्तमैः ॥६॥
 सिंहव्याघ्रं द्विपैश्चैव पक्षिभिर्विविधस्था ।
 गोमहिष्यादिगिश्चैव सारमेमृगशूकरैः ॥७॥

महा महर्षि प्रवर श्री व्यासदेव जी न कहा—अब हम धर्मटिवी
 का वर्णन करते हैं जो पृथ्वी पुर धी व ललाट में तिलक के समान है
 तथा लक्ष्मी रूपिणी लता का आलवान (घबिरा) है और वाग्देवता देवी
 तारम्वती वी रम्य जल बलि है ॥ १ ॥ हे राजर् ! आपन यह बहुत ही
 मच्छा प्रश्न किया है । यह वाराणसी में भी अग्रिम से अग्रिम है । हे
 नृप श्रेष्ठ ! अब आप इस धर्मरिण्य में विषय में अरुण ३ स पद्याएँ एकर
 श्रवण कीजिए ॥ ४ ॥ वहीं पर समस्त तीर्थ विद्यमान रहते हैं इतना
 ऊपर कहा जाता है यह ब्रह्मा—विष्णु और महेश आदि व द्वारा परि-
 सेवित होता है । सब नापाल—दिग्पाल—मृतुपाल—शवशक्तिपद—
 ॥ ५ ॥—यज्ञवर्म और अपराधी व द्वारा भी सेवित रहता है भर्षा य

सभी वहाँ पर रहा करते हैं ॥ ३ । ४ ॥ शाकिनी—भूत—वेताल—ग्रह—
देवाधि—देवत—ऋतु—लासिपक्ष और सुरासुरो के द्वारा यह धर्मारण्य
सेव्यमान होता है ॥ ५ ॥ हे नृप ! वह आद्य स्थान है तथा सब प्रकार
के सीख्योक्त प्रदान करने वाला है । बहुत से यज्ञो और श्रेष्ठ मृनिवृन्दों
द्वारा भी यह सेवित होता है । सिंह—व्याघ्र—हाथी तथा अनेक प्रकार के
पक्षिगण से और गौ—महिषी आदि एवं सारस—मृग दूकरो से भी यह
सेवित होता है ॥ ६, ७ ॥

सेवित नृपशार्दूल श्वापदर्विविधंरपि ।

तत्र ये निधनं प्राप्ता. पक्षिणः कोटकादयः ॥८

पक्षवः श्वापदाश्चैवजलस्थलचराश्च ये ।

खेचरा भूचराश्चैवडाकिन्यो राक्षसास्तथा ॥९

एकोत्तरशत.साद्धं मुक्तिस्तेपाहिशाश्वती ।

तेसर्वेविष्णुलोकाश्चप्रायान्त्येव नसशयः ॥१०

सन्तारयति पूवज्ञान्दश पूर्वाब्दशापरान् ।

यवग्रीहितिलै. सर्पिविल्वपत्नीत्र दूर्वया ॥११

गुडैश्चवोदकैर्नाथ तत्र पिण्ड करोति यः ।

उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तर शतम् ॥१२

वृक्षैरनेकधा युवत लतागुल्मैः सुशोभितम् ।

सदा पुण्यप्रद तच्च सदा फलसमन्वितम् ॥१३

निर्वैर निर्भयं चैव धर्मारण्यं च भूपते ।

गा-याध्रौ. कोड्यते तत्र तथा मार्जारमूपकैः ॥१४

हे नृपशार्दूल ! विविध भाँति के श्वपदों के द्वारा यह सेवित
होता है । वहाँ पर जो भी पक्षी और कीटक प्रभृति निधन को प्राप्त
हुए हैं । पशुगण और श्वापद आदि—जलकर स्थलचर—खेचर—भूचर—
हाकिनी—राक्षस जो भी निधन को प्राप्त होते हैं उनको एकोत्तरशत साद्धं
मुक्ति साश्वती हुआ करती है । वे सभी विष्णुस्तेको को प्रयाण किया

किया करते हैं—इसमे लेशमात्र भी सशय नहीं है ॥८, ९, १०॥ वह अपने दश पहिले पुरखाओ को और दश आगे होने वाली पीढ़ियों को भली भाँति तार दिया करता है । जो कोई जी—ब्रीहि—तिल—घृत—बिल्वपत्र—दूर्वा—गुड और उदक से वहाँ पर पिण्ड प्रदान किया करता है वह एकोत्तरशत कुल को और सात गोत्रों का उद्धार कर दिया करता है । यह धर्मारण्य अनेक प्रकार के वृक्षों और लता गुल्मी से सुशोभित है । यह सदा पुण्य प्रदान करने वाला और फलों से समन्वित रहा करता है । हे भूपते ! वर रहित—भयहीन धर्मारण्य है वहाँ पर गौ और व्याघ्र तथा मूपक और मार्जार मिलकर क्रीड़ा करते हैं ॥११-१४॥

भेकोऽहिना क्रीडते च मानुषा राक्षसां सह ।

निर्भय वसते तत्र धर्मारण्य चभूतले ॥१५

महानन्दमय दिव्य पावनात्पावन परम् ।

कलकण्ठः कलोत्कण्ठमनुगुञ्जति कुञ्जगः ॥१६

ध्यानस्थः श्रोत्रप्रति तदा पारावत्येति वाग्यंते ।

कोकः कोकी परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्भूयात् ॥१७

चकोरश्चद्रिकाभोमनानक्तं वनमिवस्थितः ।

पठन्ति सरिका सारशुकं सम्बोध्यन्त्यहो ॥१८

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ।

अपरवारससारं सिन्धुपारप्रदं शिव ।

आलस्येनापि यो यायाद्गृहाद्धर्मवनं प्रति ॥१९

अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्यान्चपदेपदे ।

शापानुग्रहसंयुक्ता ग्राह्याणास्तत्र सन्ति वै ॥२०

उक्त धर्मारण्य में भेक (भडक) सर्पों के साथ मिलकर क्रीड़ा मैत्री के भाव से किया करता है और मनुष्य गण राक्षसों के साथ मिल-जुलकर आनन्द किया करते हैं । इस भूतल में वह ऐसा धर्मारण्य स्थल है कि जहाँ पर भय का नाम तक नहीं है । सभी निर्भय हाजर

निवास करते हैं । यह महान् आनन्द से परिपूर्ण एव परम दिव्य है तथा पावन से भी परम पावन है । कुञ्ज में गमन करने वाला कलश (कोयल) अपने परम मधुर कण्ठ से सदा अमुगुञ्जन किया करता है । ॥ १५, १६ ॥ घ्याल में स्थित होकर सुभोगे उस समय में पारावती के द्वारा धागण किया जाता है । उसके भय से वोव अपनी प्रिया कोकी का परित्याग करके मोन होकर स्थित रहा करता है ॥ १७ ॥ चन्द्र की किरणों का भोग करने वाला चकार नवत (राशि) ग्रत करने वाले के समान परम शान्त होकर समास्थित रहा करता है । सारिकाएँ सार वचनों का पाठ किया करती हैं और शुव (तोता) की सम्बाधित किया करती है ॥ १८ ॥ बिना पारावार वाला यह ससार रूपी सागर है इसमें सिन्धु के पार का प्रदान करने वाला भगवान् शिव ही हैं । जो कोई आलस्य करके भी अपने घर से इस धर्मारण्य की ओर चला जाया करता है उसका पद-पद में अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक धर्म होता है क्योंकि वहाँ पर शाप देने की तथा परम अनुग्रह करने की सामर्थ्य रखने वाले ब्राह्मण निवास किया करते हैं ॥ १९, २० ॥

अष्टादशसहस्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिता ।
 पटत्रिंशत्तु सहस्राणि भूत्यास्ते वणिजो भुवि ॥ २१
 द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते त्वयोनिजा ।
 पुराणज्ञा सदाचारा धार्मिका शुद्धबुद्धयः ॥
 स्वर्गे देवा प्रशंसन्ति धम्मारण्यनिवासिनः ॥ २२ ॥
 धर्मारण्यति त्रिदशैकदा नामप्रतिष्ठितम् ।
 पावनभूतलेजातकम्मात्तन विनिर्मितम् ॥ २३ ॥
 तीर्थभूतहिवस्मान्चाकारणात्तद्वदस्वमे ।
 ब्राह्मणा कतिसङ्ख्याका ननैस्थापिता पुरा ॥ २४ ॥
 अष्टादशसहस्राणि किमर्थस्थापितानिव ।
 वस्मिन्वशसमुत्पन्ना ब्रह्मणा ब्रह्मसत्तमा ॥ २५ ॥

सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
 ऋग्वेदेषु च निष्णाता यजुर्वेदकुतश्चमाः ॥२६॥
 सामवेदाङ्गपारज्ञास्त्रैविद्या धर्मवित्तमाः ।
 तपोनिष्ठाः शुभाचाराः सत्यव्रतपरायणाः ॥२७॥
 मासोपवासेः कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ।
 सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविनः ॥
 तत्सर्वमादितः कृत्स्नं ब्रूहि मे वदताम्बर ॥२८॥
 दानवास्तत्र वृतेया भूतवेतालसंभवाः ।
 राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथं न तान् ॥२९॥

पुण्य कार्यों में भ्रष्टारह सहस्र निमिन किये हैं । छत्तीस हजार भूमण्डल में भूत वाणिज्य को बनाया है । वे द्विजों की भक्ति से मुक्त ब्राह्मण और अयोनिज हैं । पुराणों के ज्ञाता—सत् आचार वाले—परम धार्मिक और शुद्ध बुद्धि वाले हैं । स्वर्ग में देवगण भी इन धर्मरिण्य के निवासियों की प्रशंसा किया करते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर ने कहा—देवगणों ने 'धर्मरिण्य'—यह नाम किस समय में प्रतिष्ठित किया है जो यह परम पावक भूतल में हुआ था—यह उसने किस कारण से निमित्त किया गया है ? हे भगवन् ! यह तीर्थ का स्वरूप धारण करने वाला किस हेतु से होगया है—यह आप मुझे बतलाने की कृपा कीजिये ? ब्राह्मण दितनी सख्या वाले हैं और पहिले किसके द्वारा ये स्थापित किये गये हैं ? ॥ २३, २४ ॥ अष्टादश सहस्र किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये स्थापित किये गये ? किस वंश में ये ब्रह्मर्षिष्ठ ब्राह्मण समुत्पन्न हुए थे ? ॥ २५ ॥ समस्त विशाखों में परम कुशल—देवों और वेदाङ्गों के अत्यन्त ज्ञाता जो कि पूणतया पारगामी हैं—ऋग्वेदों में निष्णात यजुर्वेदपूर्ण श्रम करने वाले—सामवेदाङ्ग के पारगामी इस तरह से त्रैविद्या वाले—धर्मवेत्ताओं से श्रेष्ठ—अपश्रद्धा में परमनिष्ठ—शुभ आचार वाले—मृत्यु के व्रत में पारदण—मास पर्यन्त उपवास करके कृश शरीर वाले जो वन चान्द्रायण

आदि मास व्यापी हुआ करते हैं । सद्ग्राचार से सुमम्पन्न ब्रह्मण्य ये किससे नित्य उपजीवी हुआ करते हैं—यह सभी आप आरम्भ से ही हे बोलने वालो मे परम वरिष्ठ ! मुझे बतलाइये ! वहाँ पर दानव—दैतेय—भूत—वेताल सम्भव—राक्षस और पिशाच ये सभी उनको उद्विग्न क्यों नहीं किया करते हैं ? ॥२६-२६॥

४०—सदाचार वर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ।
 यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठताः ॥१॥
 धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवशजाः ।
 अष्टादशसहस्राकाजेशैश्च विनिर्मिताः ॥२॥
 सदाचाराः पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ।
 तेषां दर्शनमात्रेण महापार्षद्विमुच्यते ॥३॥
 पाराशर्य ! समाख्यातिसदाचारं च वैप्रभो ! ।
 आचाराद्धर्ममप्नोति आचारात्लभतेफलम् ॥
 आचाराच्छ्रद्धामप्नोति तदाचार वदस्व मे ॥४॥
 स्यादराः कृमयोऽङ्गजाश्च पक्षिणः पशवो नराः ।
 क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ॥५॥
 सहस्रभागात्प्रथमे द्वितीयानुक्रमास्तथा ।
 सर्व एतेमहाभागाः पापान्मुक्तिसमाश्रयाः ॥६॥
 चतुर्णामपि भूतानां प्राणिनोऽस्तीव चोत्तमाः ।
 प्राणिभ्योऽपि मुनि (नृप) श्रेष्ठा सर्वे बुद्धयुपजीवतः ॥ ७ ॥

महामहिम महर्षिं श्री व्यासदेव जी ने कहा—इससे आगे अब हम यह बतलायेंगे कि धर्मारण्य मे निवास करन वाले तथा गार्हस्थ्य आश्रम

मे संस्मृत पुष्प को यहाँ पर जो कुछ करना चाहिए । इस धर्मारण्य में जो शुद्ध वंश में समुत्पन्न ब्राह्मण हुए हैं वे प्रठारह सहस्र हैं और राजेशे के द्वारा निर्मित हुए हैं । ये सत् आचार वाले ब्रह्म के पूर्ण एवं श्रेष्ठ जाता तथा पवित्र ब्राह्मण हैं । उनके केवल दर्शन से ही मनुष्य महापापी से छुटकारा पा जाया करते हैं । युधिष्ठिर ने कहा—हे पाराशर्य देव ! हे प्रभो ! अब आप सदाचार का वर्णन कीजिए क्योंकि आचार एक महान् वस्तु है । इस आचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्ति किया करता है और आचार से फल पाता है । आचार से श्री का लाभ होता है इसलिये आप उस आचार को मुझे बतलाइये ॥ १, २, ३, ४ ॥ श्री व्यासजी ने कहा—स्वाधर-कृमि-अञ्ज-पक्षी-पशु और मानव—ये प्रम स धार्मिक होते हैं और इनसे विशेष धार्मिक सुर हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ प्रथम सहस्र भाग से द्वितीयानुषम वाले हैं । ये सप्त महाभाग हैं जो पाप से मुक्ति के समाश्रय वाले होते हैं । चारों प्रकार के भूतो में जो प्राणो होते हैं वे अतीव उत्तम हुआ करते हैं । इन प्राणियों से भी श्रेष्ठ मुनिपण होते हैं । ये सभी बुद्धि के द्वारा उपजीवी हुआ करते हैं ॥ ६, ७ ॥

मतिमद्भ्यो नरा श्रेष्ठास्तु वाडवाः ।

विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्यः कृतबुद्धयः ॥८॥

कृन्धीभ्योऽपि कर्तारः कर्तृभ्यो ब्रह्मतत्पराः ।

न तेभ्योऽभ्यधिकः कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत ! ॥९॥

अन्योन्य पूजकास्ते वै तपोविद्यावशेषतः ।

ब्राह्मणो ब्रह्मणा सृष्टः सर्वभूतेश्वरोऽयम् ॥१०॥

अतो जगत्स्थितसर्वब्राह्मणोऽहृतिनापरः ।

सदाचारोऽहिसर्वाहिर्नाचागद्विच्युत पुनः ॥११॥

तस्माद्विप्रेण सतत भाव्यमाचाग्शीलिना ।

विद्वेपरागरहिता अनुतिष्ठन्ति य मुने ! ॥१२॥

सिद्धयस्तं सदाचार धममूल विदुर्बुधाः ।

लक्षणैः परिहीनोऽपि सम्यगाचारतत्परः ॥१३

श्रद्धालुरनसूयुश्च नरो जीवेत्समाः क्षतम् ।

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंस्वेपुस्वेपुचकर्मसु ॥१४

मतिमानो से परम श्रेष्ठ नर होते हैं । उनसे भी श्रेष्ठ बाढव हुआ करते हैं । विप्रों से भी श्रेष्ठ विद्वान् जो होते हैं वे हुआ करते हैं और विद्वानों से भी अधिक श्रेष्ठ कृतबुद्धि हुआ करते हैं ॥ ८ ॥ उन बुद्धि वालों से भी श्रेष्ठ कर्त्ता और कर्त्ताओं से अधिक ब्रह्म तत्पर श्रेष्ठ होते हैं । हे भारत ! इनसे अधिक श्रेष्ठ कोई भी इन तीन लोको में नहीं हुआ करता है ॥ ९ ॥ तप और विद्या की विशेषता से ये एक दूसरों के पूजक हुआ करते हैं । ब्रह्मा के द्वारा ही ब्राह्मण सृष्ट हुआ है क्योंकि यह तो सब भूतों का ईश्वर होता है । अतएव यह सब स्थित जगत् है और ब्राह्मण ही इसकी अहंता रखता है अन्य दूसरा कोई भी नहीं है । सदाचार ही सब अहंताओं से पूर्ण होता है जो आचार से विच्युत होता है वह कुछ भी नहीं है । इसीलिए विप्र को सर्वदा आचार के शील (स्वभाव) वाला होना चाहिए । हे मुने ! विद्वेष और राग से रहित होते हुए जिसको अनुष्ठित किया करते है बुधगण उसको ही जो धर्म का मूल सदाचार होता है सिद्धियाँ कहते हैं । लक्षणों से परिहीन भी पुरष भसी भाँति आचार में तत्पर रहने वाला होता है और धृद्धा वाला तथा किसी की भी असूया न करने वाला हो वह सो वर्षों तक जीवित रहा करता है । अपने २ कार्यों में श्रुति और स्मृति इन दोनों के द्वारा जो कहलाया है उसी आचार का सेवन करना चाहिए ॥ १०, ११, १२, १३, १४ ॥

सदाचारं निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः ।

दुराचाररतो लोके गहंणीयः पुमान्भवेत् ॥१५

व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदात्पामुः सुदुःखभाक् ।

त्याज्यं कर्म पराधीनं कार्यमात्मवशं सदा ॥१६

यम दश संख्या वाले होते हैं—सत्य—दामा—आर्जव (सोचापन)—
 ध्यान—आनृशस्य (क्रूरता का अभाव)—अहिंसा—दम—प्रसाद—
 माधुर्य—मृदुता ये दश यम होते हैं। सोच—स्नान—तप—दान—
 मोन—इत्या—अध्ययन—व्रत—उपोषण—उपस्य दण्ड—ये दश नियम
 कहे गये हैं। काम—क्रोध—दम—मोह—मात्सर्य और सोम इन छँ शत्रुओं
 को जीत कर मनुष्य सर्वत्र विजयी हो जाया करता है। धर्म का शनैः—
 शनैः सञ्चयन करना चाहिए जिस तरह से शृङ्गवान् वाल्मीकि को किया
 करता है ॥१७-२२॥

परपीडामकुर्वाणः परलोकसहायिनम् ।

धर्म एव सहायी स्यादमुत्र परिरक्षितः ॥२३॥

पितृमातृमुतभ्रातृयोपिद्वन्द्वजनाधिकः ।

जायते चकलः प्राणी त्रियते च तथोकलः ॥२४॥

एकल. सुकृतभुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः ।

देहे पञ्चत्वमापन्ने स्थक्त्वैककाष्ठलोष्ठवत् ॥२५॥

बान्धवाविमुखायान्तिधर्मोयान्तमनुव्रजेत् ।

अत सञ्चिनुयाद्धर्ममत्राऽमुत्रसहायिनम् ॥२६॥

धर्मसहायिनलब्ध्वा सन्तरेद्दुस्तरं तमः ।

सम्बन्धानाचारेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैः सुधीः ॥२७॥

अधमानधमास्त्यक्त्वा कुलमुत्कर्षता नयेत् ।

उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धीमाश्चव्रजेत् ॥

ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥२८॥

परलोक में सहायता करने वाला एक मात्र धर्म ही हुआ करता
 है। दूसरों की पीडा को न करता हुआ रहे और उस लोक में जिसकी
 भली भाँति सुरक्षा की गई है वह धर्म ही परलोक में सहायक होता है
 क्योंकि मुरक्षित धर्म ही रक्षक होता है। पिता—माता—पुत्र—भ्राता—स्त्री
 और मण्डू जन से अधिक केवल यह प्राणी एक ही समुत्पन्न होता है

और अवेला ही भरता है । उपर्युक्त भोगों में कोई भी साथी नहीं रहता है गिये हुए सुट्टन की भी अवेला ही भोगना है तथा दुष्टन का फन भी अवेले की ही भोगना पड़ता है उन दोनों का भागीदार कोई भी नहीं होता है । इस देह के पञ्चदश प्राप्त हो जान पर इस भयान को ही बाध तथा डेजे के समान त्याग कर सभी प्रियतम वाञ्छित गण भी विमुक्त होकर चले जाया करते हैं । उस परलोक यात्रा में गमन करने वाले प्राणी के साथ एक धर्म हो जाया करता है । इसीलिये धर्म का सन्ध्य करना चाहिए जो इस साग और परलोक में सहायता करने वाला हुआ करता है । सहायक धर्म को प्राप्त करके प्राणी इस परम दुस्तर तम की तरफ जाया करता है । सुखी पुरुष का कर्तव्य है कि उत्तम उत्तमा से सम्बन्धी का समाचरण करे । जो अधम-अधम हो उनका परिश्रम करके कुल की उत्कर्षता को प्राप्त करे । धीमान् पुरुष को चाहिए कि उत्तम से उत्तम जो पुरुष हो उनकी सङ्गति कर और सबको वर्जित कर देना चाहिए । ब्राह्मण सभी परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ करता है तथा प्रत्येक में वही शक्ति को भी प्राप्त हो जाया करता है ॥ २३-२८ ॥

अनध्ययनशील च सदाचारविलङ्घनम् ।

सालस च दुरन्ताद ब्राह्मण बाधतेऽ तव ॥२९॥

अतोऽभ्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचार सदा द्विज ।

तीर्थान्यप्यभिलस्यन्ति सदाचारिसमागमम् ॥३०॥

रजनोप्राप्तयामार्द्धं ब्राह्मण समयजन्यते ।

स्वहितचिन्तयेत्प्राप्तस्तस्मिन्चोत्थाय सर्वदा ॥३१॥

गजास्य सस्मरेदादौ तत ईश सहाम्बया ।

श्रीरङ्ग श्रीसमेत तु ब्रह्माण कमलाद्भवम् ॥ ३२॥

इन्द्रादीन्सकला देवा वसिष्ठादीन्मुनीन्पि ।

गङ्गाद्या सरित सर्वा श्रीशलाचखिलाग्निरीम् ॥३३॥

क्षीरोदादीन्समृद्राश्च मानसादिसरांसि च ।

वनानि नन्दनादीनिधेनू कामदुषादयः ॥३४

कल्पवृक्षादिवृक्षाश्च धातून्काञ्चनमुस्यत ।

दिव्यस्त्रीरुवशीमुस्याः प्रह्लादाद्यान्हरेः प्रियान् ॥३५

जो ब्राह्मण अध्ययनशील नहीं होता है—जो सदाचारो का विलक्षण करने वाला होता है—जो आजसी होता है और दुष्ट अन्न का खाने वाला होता है ऐसे ब्राह्मण को यमराज बाधा दिया करता है । इसलिये प्रयत्न पूर्वक द्विज को सदा ही सदाचार का अभ्यास करना चाहिए । जो सदाचारी होता है उसके समागम प्राप्त करने के लिये तीर्थ की अभिलाषा किया करते हैं । रात्रि के प्रास्तयामाद्वं ब्राह्म समय कहा जाता करता है । उसी समय में शय्या से उठकर प्राश पुरण को अपने हित के विषय में सर्वदा चिन्तन करना चाहिए । सबसे प्रथम उठ कर गजानन (श्री गणेश) का ध्यान करे फिर इसके उपरान्त भगवती अम्बा के सहित विराजमान श्री शम्भु का चिन्तन करना चाहिए । श्री के सहित श्रीरङ्ग प्रभु और कमलोद्भव ब्रह्माजी का ध्यान कर ॥ ३६, ३७, ३८, - २ ॥ इसके अनन्तर इन्द्र प्रभूति समस्त देवगण तथा वसिष्ठ प्रभूति भुविगण-भागी-या गङ्गा आदि सरिताएँ—श्री शैल आदि समस्त शैल-क्षीरोदधि प्रभूति समुद्र-मानस आदि सरोवर-नन्दन आदि वन-कामदुषा आदि धेनू-कल्प वृक्ष आदि वृक्ष-काञ्चन आदि मुख्य धातु उवशी प्रमुख दिव्य स्त्री और प्रह्लाद आदि श्रीहरि के परम प्रिय भक्तों का जपना ध्यान करना चाहिए ॥ ३३, ३४, ३५ ॥

जननीचरणोत्सृत्वासर्वतीर्थोत्तमोत्तमो ।

पितरचगुरुश्चापिहृदिध्यात्वा प्रसन्नधो ॥३६

ततश्चावश्यकं कर्तुं नैष्टुं तीक्ष्णमात्रजेत् ।

ग्रामादनुशतं गच्छेन्नगराञ्चचतुर्गुणम् ॥३७

तृणराज्याद्यवसुधा शिरः प्रावृत्य वाससा ।

कर्णपवीत उदम्बवत्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ॥३८
 विष्मूत्रे विसृजेन्मीनी निष्ठाया दक्षिणामुखः ।
 न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगोवहन्चनिल सम्मुखः ॥३९
 न फालकृष्टे भूभागे न रय्यासेव्यभूतले ।
 नाऽऽलोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभोमलम् ॥४०
 वामेन पाणिना सिद्धं घृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ।
 अथो मृदं समादद्याज्जन्तुकनर्करवर्जिताम् ॥४१

समस्त तीर्थों से भी परमोत्तम अपनी माता के चरणों का स्मरण
 फाँके फिर पिता तथा श्री गुरुदेव का हृदय में ध्यान करके प्रसन्न बुद्धि
 वाला होवे । इसके अनन्तर आवश्यक शारीरिक कृत्य करने के लिये
 वैश्वदेव दिशा में गमन करना चाहिए । ग्राम से सौ धनुष दूर जाना
 चाहिए और यदि नगर हो तो इसमें चौगुने फाँसले तरु गमन करे ।
 भूमि को तूणों से समान्छादित करके तथा वस्त्र से अपने शिर को ढँप
 करके—कानों पर उपवीत को चढ़ा कर उत्तर की ओर मुख करके दिन में
 तथा दोनो सन्ध्या कालों में पुरीय और मूत्र का विसर्जन करना चाहिए ।
 मल त्याग के समय में मौन रखना चाहिए । यदि निशा काल में मल-
 मूत्र का विसर्जन करना हो तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे ।
 कभी भी छड़े होकर मल-मूत्र का त्याग न करे । विप्र—गौ—श्वानि—
 श्रायु—इनके सामने मल-मूत्र का त्याग कभी नहीं करना चाहिए ॥ ३६,
 ३७, ३८, ३९ ॥ जो भूमि का भाग हल से जुता हुआ हो उसमें—
 रय्या (गली या मार्ग) में तथा सेव्य भूतल में कहीं भी मल-मूत्र का
 त्याग नहीं करना चाहिए । मल विसर्जन करने के समय में दिशाओं की
 ओर नहीं देखना चाहिए । उपोनिषद् और नभोमत को भी नहीं देखे ।
 वाम पाणि (हाथ) से दिग्ग (मूत्रेन्द्रिय) को पकड़ कर प्रयत्न वाला
 होता हुआ उठना चाहिए । इसके पश्चात् जोड़ जन्तु और बरकर से
 से सहित मिट्टी ग्रहण करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

विहायमूपकोत्खातांनोच्छिष्टांकेशसंकुलाम् ।
 गुह्ये दद्यान्मृदचंकांप्रक्षालयचांबुनाततः ॥४२॥
 पुनर्वाभिकरेणेति पञ्चघ्रा क्षालयेद्गुदम् ।
 एकैकपादयोदंघ्रातिस्रः पाण्यामृदस्तथा ॥४३॥
 इत्थं शीघ्रं गृहो ऋषाद्गन्धलेपक्षयावधि ।
 क्रमाद्गुण्यतः कुर्याद्ग्रह्याचर्षादिषु त्रिषु ॥४४॥
 दिवाविहितशोचाञ्च रात्रावद्धं समाचरेत् ।
 परग्रामे तदर्थं च पयि तस्याधमेव च ॥४५॥
 तदर्थंरोगिणां चापिमुस्येन्यूनं न संशयेत् ।
 अपि सर्वेनदीतोयेमृत्कूटश्चाप्यगोमयैः ॥४६॥
 आपातमाचरेच्छीघ्रं भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ।
 आर्द्रघात्रोफलोन्माना मृदः शीघ्रे प्रकीर्तिताः ॥४७॥
 सर्वाश्चाहुतयोऽप्येवं ग्रास्ताश्चान्द्रायणेपिच ।
 प्रागास्य उदगास्यो वा सूर्पावष्टः धुवौ भुवि ॥४८॥
 उपस्पृशेद्विहीनाभिस्तुपांगारास्थिभस्मभिः ।
 अतिम्वच्छाभिरदिभश्च यावद्घृद्गामिरत्वरः ॥४९॥

जो मृत्तिका मूपको से उखाड़ी या खोदी हुई हो या जो उच्छिष्ट
 हो एवं केशों से संकुल हो उसका परित्याग कर देवे । एक बार जल से
 प्रक्षालन करके गुह्य भाग से मिट्टी लगावे और जल से प्रक्षालन करे ।
 फिर वाम हस्त से गुदा को पाँच बार प्रक्षालित करना चाहिए । एक-एक
 बार पैरों में मिट्टी लगावे और तीन बार दोनों हाथों में मृत्तिका लगानी
 चाहिए । इस तरह से गृहस्थी मनुष्य को अपनी शुद्धि करनी चाहिए ।
 जब तक गन्धलेप का क्षय न हो तब तक मट्टिवाता आवश्यक है ।
 ग्रहचारि आदि अन्य तीन आश्रमों वालों को क्रम में वैगुण्य भाव से
 अपनी शुद्धि करनी चाहिए । अर्थात् क्रम से एक-एक गुना बढ़ा करके
 करे ॥४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९॥ दिन में जो शीघ्र किया जाता है उससे रात्रि के

समय में आधा ही करना चाहिए ॥४५॥ जो रोगग्रस्त मनुष्य हो उनको भी इससे आधा ही शौच करना पर्याप्त होता है किन्तु जब स्वस्थता हो तो आलस्य या प्रमाद से न्यून नहीं करे । समस्त नदियों के जल से और आप्यगोपम मृत्पूटो से भी आपात शौच करे । जो भाव दुष्ट होता है वह कभी भी शुद्धि वाला नहीं होता है । शौच कर्म में आर्द्र घात्री के कल (कच्चे ओकता) के समान मिट्टी बतसायी गयी है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार से सभी आहुतियाँ तथा चान्द्रायण व्रत में बास भी होने चाहिए । पूर्व की ओर मुख वाला होकर या उत्तर दिशा की ओर मुख वाला होकर किसी जुचि सू भाव में घँठकर बिहीन तुपाङ्गारास्थि भस्म से उपस्पर्श न करना चाहिए । अल्पजल से जब तक पूर्ण शुद्धि हो पथ तक शान्ति पूर्ण करनी चाहिए ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणो ब्रह्मतीर्थेण दृष्टिपूतामिराचयेत् ।

पाण्डगाभिर्नृप शुद्धयेत्तालुगाभिस्तथोरुजः ॥४०॥

स्नोशूद्रावथ सस्पर्शमादोणापि विशुष्यतः ।

क्षिर शब्द सकण्ठ वा जले मुक्तशिखाऽपि वा ॥४१॥

अक्षालितपदद्वन्द्वआचान्तोऽप्यशुचिर्मतः ।

त्रि. पीत्वाऽम्बु विशुद्ध्यर्थं तत खानि विशोधयेत् ॥४२॥

गङ्गा प्लमूलदेसे ह्यधरोष्टी परिमृजेत् ।

स्पृष्ट्वा जलेन हृदयं समस्ताभिः क्षिरःस्पृशेत् ॥४३॥

अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्नन्धौ साम्बु सर्वत्र सस्पृशेत् ।

आचान्त. पुनराचामेत्कृत्वा रथ्यापसर्पणम् ॥४४॥

स्नात्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ।

सुप्त्वा वास. परोधाय दृष्ट्वा तथाऽप्यगङ्गलम् ॥४५॥

प्रमादादशुचि स्मृत्वा द्विराचान्तं शुचिर्मवेत् ।

दन्तधावनं प्रकुर्वीत यथोक्तधर्मशास्त्रतः ॥४६॥

आचान्तोऽप्यशुचिर्ममादृत्वा दन्तधावनम् ॥४६॥

ब्राह्मण को ब्रह्मसीधं दृष्टि पूत जल से आचमन करना चाहिए ।
 नृप. कण्ठगामी जल से शुद्ध होता है । वैश्य तालु पर्यन्त जल से और शूद्र
 तथा स्त्री जल के संस्पर्श मात्र से ही शुद्ध हो जाया करते हैं । शिर
 शब्द सकण्ठ प्रथवा जल में मुक्त शिखा वाला भी बिना दोनों पर धोये
 हुए आचान्त होने पर भी अशुचि ही माना गया है । विशुद्धि के लिये
 तीन बार जल का पान करके इसके पश्चात् छनो का विशोधन करे ॥५०
 ॥५१॥५२॥ अंगूठे के मूल देश से अवरोष्ठों का परिमाजन करे । जल
 से हृदय का स्पर्श करके फिर शेष समस्त से शिरका स्पर्श करना चाहिए ।
 अगुलियों के अग्रभागों से तथा दोनों स्कन्धों को सर्वत्र जल के सहित
 संस्पर्श करे । यदि रथ्या का उपसर्पण किया हो तो भी आचमन करना
 चाहिए ॥५३॥५४॥ स्नान करके-भोजन करके-पय.पान करके-शुभ कर्मों
 के आरम्भ काल में-सोकर उठने पर-वस्त्रों का परिधान करके । किसी
 अमङ्गल को देखकर-प्रमाद से अशुचि होने पर या किसी अशुचि का
 स्मरण करके दो बार आचमन करके ही शुचि होता है । घर्म शास्त्र में
 जिस विधि-विधान से बतलाया गया है उसी भाति दन्तधावन (दँतून)
 करनी चाहिए । क्योंकि आचान्त होने वाला पुरुष भी जब तक दन्त
 धावन नहीं किया करता है अशुचि ही रहा करता है । दँतून करना भी
 पवित्रता का एक प्रधान अङ्ग माना गया है ॥५५॥५६॥

प्रतिपद्दर्शपष्ठीषु नवम्या रविवासरे ।

दन्ताना काष्ठसयोगो दहेदासप्तम कुलम् ॥५७

अलाभे दन्तकाष्ठाना निपिद्धे वाथ वासरे ।

गण्डूपा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये ॥५८

कनिष्ठाग्रपरीमाणसत्वच निर्वणारुजम् ।

द्वादशाङ्गूलमानं च साद्धं स्याद्वृत्तधावनम् ॥५९

एककागुलमानंतन्धर्वयेद्दन्तधावनम् ।

प्रातः स्नानं चरित्वाचशुद्धये तीर्थे विधेयतः ॥६०

प्रातः स्नानाद्यतः शुद्धयेत्कायोऽयं मलिनः सदा ।

यन्मलं नवभिदिच्छेदः श्रवत्येव दिवानिशम् ॥६१॥

उत्साहमेघासीमाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम् ।

प्राजापत्यसमप्राहुस्तन्महाध्विनाशकृत् ॥६२॥

प्रातः स्नानहरेत्पापमलदमोऽग्लानिमेव च ।

अशुचित्वंचदुःस्वप्नतुष्टिपुष्टिप्रयच्छति ॥६३॥

प्रतिपदा—दश—पथी—नवमो तिथियो मे और रविवार मे दर्शो से पाण्ड पा संयोग करना सातधुलो को बहन कर दिया करता है । दन्त काष्ठों के लाम न होने पर अथवा इन उपर्युक्त निवेश किये हुए दिनों मे बारह कुत्ते को मुख की घुट्टि के लिये ग्रहण करने चाहिये । अपनी कनिष्ठिका अङ्गुली के बराबर प्रमाण वाली - छिलके के सहित—विना भ्रण वाली और छज्जहित बारह अशुल मान मे युक्त—आर्द्र (गीली) दन्तधावन (धँसून) ग्रहण करने चाहिए । एक एक अशुल प्रमाण तक चक्का धर्चण करे । प्रातः काल मे घुट्टि के लिए विशेष रूप से तीर्थ मे स्नान करे । क्योंकि यह मलिन शरीर सदा प्रातः काल के स्नान से ही शुद्ध हुआ करता है । रात दिन जो मल शरीर मे रहने वाले इन तीर्थ छिद्रों से स्रवित होता रहा करता है । इस प्रातःकाल के स्नान की उत्साह—मेघा—सीमाग्य—रूपलावण्य—और सम्पत्ति का प्रवर्धक प्राजापत्य क समान ही महान् अधो का विनाश करने वाला कहा गया है । प्रातः काल किया हुआ स्नान पाप—अलक्ष्मी और ग्लानि का हरण करने वाला होता है तथा अशुचिता और दुःस्वप्न का भी विनाशक होता है एवं मत्तातुष्टि और पुष्टि को प्रदान किया करता है ॥१७-६३॥

नोपसर्प्यन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायजने क्वचित् ।

दृष्टादृष्टफल यस्मात्प्रातःस्नान समाचरेत् ॥६४॥

प्रसङ्गतः स्नानविधिः प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ।

विधिस्नान यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ॥६५॥

विशुद्धां मृदमादाय बहिंपस्तिलगोमयम् ।
 शुची देशे परिस्थाप्य ह्याचम्य स्नानमाचरेत् ॥६६॥
 उपग्रहीबद्धशिखोजलमध्येसमाविशेत् ।
 स्वशाखोक्तविधानेनस्नानं कुर्याद्यथाविधि । ६७
 स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्वीतवाससी ।
 आचम्य च ततः कुर्यात्प्रातःसन्ध्यां कुशान्वितः ॥६८॥
 प्राणायामांश्चरन्विष्णो निम्यमनसंदृढम् ।
 आहोरात्रकृतं पापं मुक्तो भवति तत्क्षणम् ॥६९॥
 दश द्वादशसंख्या वा प्राणायामाः कृता यदि ।
 नियम्य मानस तेन तदा तप्तमहत्तपः ॥७०॥

प्रातःकाल में स्नान करने वाले मनुष्य को कभी भी दुष्ट जन
 उपसर्पण नहीं किया करते हैं क्योंकि इस प्रातःकाल के समय में स्नान
 का दृष्टादुष्ट फल हुआ करता है अतएव सर्वदा प्रातःकाल में ही स्नान
 का समाचरण करना चाहिए ॥ ६४ ॥ हे नृपोत्तम ! अब स्नान का
 प्रसंग प्राप्त हो गया है इसलिए मैं अब इस स्नान की विधि आपको
 बतलाता हूँ क्योंकि स्नान से शत-गुण उत्तर विधि स्नान को कहते हैं
 ॥ ६५ ॥ परम विशुद्ध मृत्तिका—बहि—तिल और गोमय लेकर किसी
 शुचि स्थल में प्रतिष्ठापित करके आचमन करे और फिर स्नान करना
 चाहिए ॥ ६६ ॥ उपग्रही—शिखा को बद्ध करने वाला जल के मध्य में
 प्रवेश करे । अपनी वेद की शाखा के अनुसार ही विधि के अनुसार
 शास्त्रोक्त विधान से स्नान करे । इस तरह से स्नान करके वस्त्र को समा-
 पीडित करके धुले हुए अर्थात् शुद्ध वस्त्रों को ग्रहण करना चाहिए । फिर
 आचमन करके कुशाओं को लेकर प्रातःकाल को सन्ध्योपासना करे ।
 ॥ ६७ । ६८ ॥ अपने मन को दृढ़ता के साथ नियमित करके विप्र को
 प्राणायाम करने चाहिए । दिन रात में किये हुए पापों से प्राणायामों के
 करने पर मनुष्य उसी क्षण में मुक्त हो जाया करता है ॥ ६९ ॥ दश

अथवा बारह संख्या वाले यदि प्राणायाम किये गये हैं और मन को भली भाँति से नियमन में कर लिया है तो उस समय में महान् तपस्या करती है ॥ ७० ॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहःकृताः ॥७१
यथा पार्थिवघातूनां दह्यन्ते घमनान्मलाः ।
तथेन्द्रियैः कृता दोषा ज्वालयन्ते प्राणसयमात् ॥७२
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपोत्तम ॥७३
कर्मणा मनसावाचायद्रात्रोकुरुते त्वघम् ।
उत्तिष्ठन्पूर्वंसध्यायांप्राणायामंविशोधयेत् ॥७४
यदहना कुरुतेपापंमनोवाक्कायकपभिः ।
आसीनः पश्चिमांसव्यांप्राणायामंव्यंपोहति ॥
पश्चिमां तु समासीनो मस्त हन्ति दिवाकृतम् ॥७५॥
नोपतिष्ठेत्तु यः पूर्व्वं नोपास्ते यस्तु पश्चिमां ।
स शूद्रवद्वहिष्कार्यः सवस्माद्विजकर्मणः ॥७६
अपां समीपमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत् ।
तत आचमनं कुर्याच्चथाविध्यनुपूर्वधः ॥७७
आपोहिष्ठेतिमृभिर्मार्जनं तु ततश्चरेत् ।
भूमौ क्षिरसिचाकाश आकाशेभुवि मस्तके ॥७८

अष्टाहृतियों के सहित तथा प्रणव से युक्त षोडश (सोलह) प्राणायाम भ्रूण का हनन करने वाले पुरुष को भी प्रति दिन करने पर एक मास में पवित्र कर दिया करते हैं ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार से पार्थिव घातुओं के मन घामन करने से दग्ध हो जाया करते हैं उसी भाँति इन इन्द्रियों के द्वारा किये गये दोष प्राणों के सवय से जला दिये जाया करते हैं ॥ ७२ ॥ एकाक्षर प्रणव परम ब्रह्म होता है और प्राणायाम परम तप

हुआ करता है । हे नृपोत्तम ! इस गायत्री मन्त्र में अधिष्ठ परम पावन अग्न्य कोई भी मन्त्र नहीं होता है ॥ ७३ ॥ 'वम्' के द्वारा—मन के द्वारा तथा सबको के द्वारा जो भी कुछ रात्रि में अथ (पाप) किया करता है उन सबको उठकर पूर्व सन्ध्या की उपासना के समय में किये गये प्राणायामों के द्वारा विमोघिन कर टालना चाहिए ॥ ७४ ॥ जो दिन में मन—बाणी और शरीर के कर्मों के द्वारा पाप मानव किया करता है उन सबको पश्चिम अर्थात् सायंकाल में की गयी मन्ध्योपासना में समासीन होकर किये गये प्राणायामों के द्वारा व्यपोहित कर दिया करता है ॥ ७५ ॥ पश्चिम सन्ध्या में समासीन पुरुष दिन में किये हुए मल का हनन कर दिया करता है । जो मनुष्य पूर्व सन्ध्या की उपासना नहीं करता है और जो पश्चिम सन्ध्या की उपासना नहीं किया करता है वह विप्र एक शत्रु की भाँति बहिष्कृत कर देना चाहिए क्योंकि उसमें एक द्विज का कोई वम् विद्यमान ही नहीं हुआ करता है अतएव एक द्विज कर्मों में उसको कभी भी नहीं लेना चाहिए ॥ ७६ ॥ जल के समीपता को प्राप्त करके नित्य वम् का समाचरण करना चाहिए । इसके पश्चात् यथाविधि आनुपूर्वश आचमन करना चाहिए । इसके अनन्तर 'आपोदिष्ठा भयोभुव' इन तीन मन्त्रों के द्वारा शरीर का मार्जन करना चाहिए । भूमि में—शिर में और आकाश में तथा आकाश में—भूमि में—और मस्तक में मार्जन करे ॥ ७७ । ७८ ॥

मस्तके च तथाकाशे भूमौ च नवधाक्षिपेत् ।

भूमिशब्देन चरणावकाश हृदयस्मृतम् ॥

शिरस्येव शिरशब्दो मार्जनं तैरुदाहृतम् ॥ ७९ ॥

चारुणादपि चाम्नेयाद्वायव्यदपि चेन्द्रत ।

मन्त्रस्नानादपि परब्राह्मस्नानमिदं परम् ॥ ८० ॥

ब्राह्मस्नानेन य स्नात स ब्राह्मन्मन्त्रं शुचि ॥ ८० ॥
सर्वत्र चाहतामेति देवपूजादिकमणि ।

नक्तं दिनं निमज्ज्याप्सु कवर्ता किमुपावना ॥ ८१ ॥

शतशोऽपितथास्नातानशुद्धाभावदूषिताः ।
 अन्तःकरणशुद्धांश्चतान्विभूतिः पवित्रयेत् ॥८२॥
 किम्पावनाः प्रकीर्त्यन्ते रासभा भस्मधूसराः ।
 सस्नातः सर्वतीर्थेषु मलैः सर्वविवर्जितः ॥८३॥
 तेन प्रतुशर्तरिष्टं चेतो यस्येह निर्मलम् ।
 तदेव निर्मलं चेतो यथा स्यात्तन्मुने ! शृणु ॥८४॥

इस रीति से अस्तक-आकाश और भूमि में नी बार जल को सिप्ट करना चाहिए । भूमि शब्द से यहाँ पर चरणा का ग्रहण है और आकाश से हृदय को कहा गया है । इस तरह से उनके द्वारा मार्जन कहा गया है ॥ ७६ ॥ बहग-आग्नेय-वायव्य-इन्द्र-इस दिशाओं से भी और मन्त्र स्नान से भी परम ब्राह्म स्नान कहा गया है । ब्राह्म स्नान जो स्नान किया हुआ पुरुष है वह बाह्य और आन्तर्य दोनों में शुद्ध हो जाया करता है ॥ ८० ॥ देव-पूजा आदि कर्मों में वह ब्रह्म स्नान पुरुष अर्हन्ता को प्राप्त हो जाता है । रात दिन जल में निमज्जन करने वाले कैवर्त्त जाति वाले लोग क्या पावन हो जाया करते हैं ? अर्थात् जल में ही स्नान मात्र से कभी पावनता नहीं हुआ करती है । सैकड़ों बार भी स्नान किये हुए पुरुष यदि भावदूषित होते हैं तो वे शुद्ध नहीं होते हैं । जो अन्तःकरण में शुद्ध होते हैं उन्हीं को विभूति पवित्र किया करती है । अश्विनि भस्म से धूसर रहने वाले रासभ (गधे) क्या पावन कहे जाया करते हैं ? अर्थात् नहीं कहे जाते हैं । वही पुरुष समस्त तीर्थों में स्नान हैं जो सब तरह के मन्त्रों से रहित होता है । यहाँ सत्तर में जिसका चित्त निर्मल है उसने मानो भी श्रुतियों का यजन कर लिया है । हे भुनिवर ! जिस तरह से चित्त निर्मल होता है या जो मल रहित चित्त कहा गया है उसके विषय में आप अब श्रवण करो ॥ ८१-८४ ॥

विश्वेशश्चेत्प्रसन्नः स्यात्तदा स्यान्नान्यथा ववचित् ।

तस्मान्चेतोविशुद्धयर्थं काशीनाथं समाश्रयेत् । ८५
 इदं शरीरमुत्सृज्यपरं ब्रह्माधिगच्छति ।
 द्रुपदान्तं ततो जप्त्वा जलमादाय पाणिना ॥ ८६
 कुर्यादृतैचमन्त्रेण विधिज्ञस्त्वधमर्पणम् ।
 निमज्जात्सुचयोविद्वाञ्जपेत्क्षिरधमर्पणम् ॥ ८७
 जले वापिस्थले वापि य कुर्यादधमर्पणम् ।
 तस्याघोघो विनश्येत यथासूर्योदयेतमः ॥ ८८
 गायत्री शिरसा हीना महाव्याहृतिपूर्विकाम् ।
 प्रणवाद्यां जपस्तिष्ठन्क्षिपेद्भोञ्जलित्रयम् ॥ ८९
 तेन वज्रोदकेनाशु मन्देहानाम राक्षसाः ।
 सूर्यतेजः प्रलोपन्ते शैला इव विवस्वतः ॥ ९०
 सहायार्थंचसूर्यस्योद्विजोनाञ्जलित्रयम् ।
 क्षिपेन्मन्देहनाशायसोऽपि मन्देहतां व्रजेत् ॥ ९१

यह मानव का चित्त तभी निर्मल होता है जब भगवान् विश्व के स्वामी इस पर पूर्ण प्रसन्नता किया करते हैं अन्यथा यह कभी भी निर्मल नहीं होना है । इसीलिये अपने चित्त की विशुद्धि के लिये भगवान् काशीनाथ का समाध्य ग्रहण करना चाहिए ॥ ८५ ॥ इतका समाधित मनुष्य इस शरीर का त्याग करके परम ब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है । हाथ से जल ग्रहण करके द्रुपदान्त का जाप करे और विधि के ज्ञाता पुरुष को " अृतच " इत्यादि मन्त्र से अधमर्पण करना चाहिए । जो विद्वान् पुरुष जल में डुबकी मगाकर तीस बार इस उक्त अधमर्पण मन्त्र का जाप करता है ; जल में या स्थल में जो अधमर्पण किया करता है उन पुरुष के अघो का समुदाय विनष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय के होने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है । शिर से हीन महा व्याहृतियों को पूर्ण में मगाकर जिसके आदि में प्रणव हो ऐसी गायत्री का जाप करते हुए स्थित होकर तीन अष्टप्रतिपां जल की प्रतिपात करे ॥ ८६ ॥

८७ ' ८८ । ८६ ॥ उस बज्जोदक से बहुत ही शीघ्र मन्देहा नाम वाले राक्षस सूर्य तेज को प्रसृज्य किया करते हैं जिस तरह से पर्वत विस्वान् को छिपा लेते हैं ॥ ८७ ॥ सूर्यदेव की सहायता के लिए जो द्विज तीन अञ्जलियाँ जल की प्रक्षिप्त नहीं किया करता है जोकि मन्देहा राक्षस के नाश के लिए हो क्षिप्त की जाया करती हैं तो वह द्विज भी मन्देहा के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥ ८८ ॥

प्रातस्तावज्जपस्मिन्नेद्यावत्सूर्यस्यदर्शनम् ।
 उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविलोकनात् । ८९
 काललोपोन कर्त्तव्यो द्विजेनस्वहितेष्मुना ।
 अर्द्धोदयास्तसमये तस्माद्वज्जोदकंक्षिपेत् ॥ ९०
 विधिनाऽपि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ।
 अपमेव हि दृष्टान्ता वन्द्यास्त्रीर्मथुन यथा ॥ ९१
 जलेवामकरं कृत्वा यासन्ध्याऽऽचरिता द्विजैः ।
 चृधत्तीसापरिज्ञेया रक्षोगणमुदावहा ॥ ९२
 उपस्थानंततः कुर्याच्छास्त्रोक्तविधिनाततः ।
 सहस्रकृत्वोमासत्र्याः शतकृत्वोऽथवापुनः ॥ ९३
 दशकृत्वोऽथदेव्यं च कुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ।
 सहस्रगरमां देवीशतमध्यादशावराम् ॥ ९४
 गायत्री यो जपेद्विप्रो न स पापैः प्रतिप्यते ।
 रक्तचन्दनमिश्राभिरदिभस्व कुसुमैः कुशैः ॥ ९५
 वेदोवर्तरागमोक्तेर्वा मन्त्रैर्घं प्रदापयेत् ।
 अर्चितः सविता येन तेन दौलोवर्चश्चितम् ॥ ९६

प्रातःकाल की बेला में जब तक जाप करता हुआ स्थित रहना चाहिए जब तक भगवान् भास्कर का दर्शन प्राप्त होवे । सायंकाल में उपविष्ट होकर ही नक्षत्रों के देखने के पूर्व तक जाप करना चाहिये । अपने हित की चाह रखने वाले द्विज को काल का लोप नहीं करता

चाहिए । अर्द्ध उदय और अस्त के समय में इसीलिये उस बञ्जोदक का क्षेपण करना चाहिए विधिपूर्वक कमीको गई सन्ध्योपासना यदि कालातीत हो तो वह फलशून्य ही हुआ करती है—इसमें यही दृष्टान्त परम उपयुक्त होता है जोसे किसी बन्ध्या स्त्री के साथ किया हुआ मंथुन निष्फल हुआ करता है ॥ ६२, ६३, ६४ ॥ जल में अपना बाया हाथ बरके जो सन्ध्या द्विजों के द्वारा समाचारित होती है वह राक्षसों के समुदाय को प्रसन्नता प्रदान करने वाली वृषली सन्ध्या समझी जाती है ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर शास्त्र में कहीं हुई विधि से उपस्थान करना चाहिए । एक सहस्र अथवा एक सौ या दश बार ही देवी के लिये सोरी उपस्थिति करे । एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप परम श्रेष्ठ होता है । एक सौ बार जाप मध्यम श्रेणी का होता है । केवल दश हो बार जाप करना निम्न कोटि का जाप है । इस प्रकार इन तीनों प्रकार के जापो में किसी भी एक प्रकार का जाप जो विप्र किया करता है वह कभी भी जापो से प्रलित नहीं हुआ करता है । रक्त चन्दन से मिश्रित जल से—कुश और कुसुमों से विमिश्रित फल से वैदोक्त तथा आगमों में कहे हुए मन्त्रों से जो अर्घ्य सूर्यदेव को देता है और जिसने भगवन् सविता का अर्चन कर लिया है उसने सम्पूर्ण जलौक्य का ही समर्पण कर लिया है—ऐसा ही समझ लेना चाहिए ॥ ६६-६८ ॥

१. अर्चितः सविता दत्तो मृतान्पशुवसूनि च ।

व्याधीन्हरेद्दद्यात्पायुः पूरयेद्वाञ्छितान्यपि ॥१००

अथ हि रुद्र आदित्यो हरिरेव दिवाकरः ।

रविहरिण्यरूपोऽसौ त्रयोरूपोऽयमयमा ॥१०१

ततस्तु तपणं कुर्यात्स्वशास्त्राक्तविधानतः ।

ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मगीच्यादीस्तथा मुनीन् ॥१०२

चन्द्रनागुरुकपर्णरगन्धवत्कुसुमेरपि ।

तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्ति त्वत्ति समुच्चरेत् ॥१०३

सनकादीन्मनुष्यांश्च निवीती तपयेद्यवः ।

अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्मान्जून्दिजः ॥१०४

कव्यवाडनलादीश्च पितृन्दिव्यान्प्रतर्पयेत् ।

प्राचीनावीतिको दर्भोद्विगुणस्तिल मिश्रितः ॥१०५

मली भूमि समचित्त सविता देव सुत-पशु और धनों को प्रदान किया करते हैं । वह व्याधियों का हरण करते हैं—आयु देते हैं और मनोवाञ्छितों को भी पूर्ण कर देते हैं । यह रुद्र-आदित्य-रि-दिवाकर-रवि—हिरण्यरूप—त्रयीरूप—अर्थमा है । इसके अनन्तर अपनी वैदिक शाखा में समाविष्ट विधान के अनुसार तर्पण करना चाहिए । ब्रह्मादि समस्त देवों का तर्पण करे तथा मरीचि आदि सब मुनियों का तर्पण करना चाहिए । चन्दन अगुरु—कर्पूर—सुगन्धित आदि से मिश्रित परम घुब जल 'नृप्यन्त'—इसका समुच्चारण करते हुए तर्पण करे । यशो के द्वारा नवीने होकर सनकादिकों का—मनुष्यों का तर्पण करना चाहिए । द्विज को चाहिए कि दोनों अगुओं के मध्य में मीधोकुशों को रखे । कव्य वाडनल आदि । दिव्य पितृगण की तर्पण करे । प्राचीना वीती होकर तदन मिश्रित दुग्धने कुशाजो में तर्पण करे । १००-१०५॥

रवौ शुक्ले त्रयोदश्या सप्तम्या निशि सन्ध्यायोः ।

अथोर्ध्वं ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतपणम् ॥१०६

यदि कुर्यात्तिलः कुर्यात्-सुनन्तरेव तिलैः कृती ।

चतुर्दश यमान्पश्चात्तपयेन्नामउ-चरन् ॥१०७

ततः स्वर्गोत्रम् चार्यं तपयेत्स्वान्पितृन्मुदा ।

सध्यजानुनिपातेन पितृतोर्ध्वेन वागमतः ॥१०८

एकंकमञ्जलिदेवा द्वौद्वौतुसनकादिकाः ।

पितरस्त्र्योन्प्रवाञ्छन्तिस्त्रियएकंकमञ्जलिम् ॥१०९

मङ्गल्यग्रेण वै देवमार्यमङ्गलिमूलगम् ।

यात्यमङ्गल्यमूले तु पाणिमध्ये प्रजापतेः ॥११०

मध्येङ्गुष्ठप्रदेशिन्यो पित्र्य तीर्थं प्रचक्षते ।
 आब्रह्मस्तम्भपर्यन्त देवपितृमानवा ॥१११
 तृप्पतुस वै पितरोमातृगातामहादयः ।
 अन्येचमन्त्राः प्रोक्तायेवेदोक्तापुराणसम्भवाः ॥११२

मास के शुक्लपक्ष में रविवार त्रयोदशी तिथि में—सप्तमी तिथि में—निशा में और दोनों सन्ध्या कालों में श्रेय के सम्पादन करने की इच्छा वाला पुंस्व (ब्राह्मण) किसी भी दशा में तिलों के द्वारा तर्पण नहीं करे ॥१०६॥ यदि तिलों से तर्पण भी करे तो शुक्ल तिलों से ही कृती ब्राह्मण को तर्पण करना चाहिए । चौदह यमों के नामों का समुच्चारण करते हुए पीछे तर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् अपने गोल का उच्चारण करते हुए अपने पितृगणों को तृप्प करना चाहिए । सभ्या-जानु निपात से पितृतायं से मौनी होकर देवों को एक-एक अञ्जलि देवे और सनकादिकों को दो-दो अञ्जलियाँ देनी चाहिए । पितृगण तीन तीन अञ्जलियों की इच्छा रखते हैं । स्त्रियों को एक-एक ही अञ्जलि देवे । अगुलि के अग्रभाग में दैव को—आर्य अर्थात् ऋषिगण को अगुलि के मूल से—ब्राह्म को अगुष्ठ के मूल से और प्रजापति की पाणि के मध्य में देना चाहिए । अर्थात् ये दो स्थल इनक उपयुक्त होते हैं । अगुष्ठ और प्रादेशिनी के मध्य भग में पित्र्य तीर्थ कहा जाता है । अन्त में ब्रह्म से स्तम्भ पर्यन्त जो भी देव—ऋषि—पितृ एव मानव हो वे सभी पितृ-मातृ और माना महादिक मेरे समपित इस जलाञ्जलि से सन्तुष्ट हो जावे—यह उच्चारण करके ही जलाञ्जलि देनी चाहिए । इस तर्पण के लिये अन्य मन्त्र वेदोक्त कहे गये हैं और पुराणों में उक्त भी कहे गये हैं ॥१०७-११२॥

साङ्ग चतुर्ष्वण कुर्यात्पितृणाचसुखप्रदम् ।
 अग्निकार्यं तत कृत्वावेदाभ्यास ततश्चरेत् ॥११३
 श्रुत्यभ्यासः पञ्चधा स्यात्स्वीकारोऽप्यविचारणम् ।

अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ॥११४
 लब्धस्य प्रतिपालनार्थमलब्धस्यच लब्धये ।
 प्रातःकृत्यमिदमोक्तं द्विजातीनानुत्तम ! ॥११५
 अथवा प्रातरुत्थाय कृत्वावश्यकमेव च ।
 शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥११६
 विशोध्य सर्वगात्राणि प्रा.सन्ध्या समाचरेत् ।
 वेदार्थानाधगच्छेद्देहाशास्त्राणि विविधान्यपि ॥११७
 अध्यापयेच्छुचोऽञ्जितान्निहतामेधामन्विताम् ।
 उपेयादीश्वरं चापि योगक्षेमादिसिद्धये ॥११८
 ततो मध्याह्नसिद्धयर्थं पूर्वोक्तं स्नानमाचरेत् ।
 स्नात्वा माध्याह्निकी सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ॥११९

इस प्रकार से पितृगण के लिये साङ्ग एव सुखप्रद तर्पण करना चाहिये । इसके अनन्तर अग्नि कार्यं यथा हि होम करे और इसके पश्चात् वेदों का अभ्यास करना चाहिए । श्रुति का अभ्यास पाँच प्रकार का होता है—स्वीकार करना—अर्थ का विचार करना—केवल अभ्यास करना—तपश्चर्या करना और अपने शिष्यों के लिये प्रतिपादन करना ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ जो लब्ध है उसके प्रतिपालन करने के लिये तथा जो अलब्ध है उसकी लब्धि के लिये यह प्रातःकाल का कृत्य कहा गया है जो हे नुत्तम ! द्विजातीयो के लिये ही होता है । अथवा प्रातःकाल में साध्या से उठकर आवश्यक शारीरिक कृत्य का सम्पादन करके शौचाचमन लेकर दन्त धावन का भक्षण करे ॥ १५ । ११६ ॥ अपने समस्त अङ्गों का विशोध्यन करके प्रातःकालीन सन्ध्या का समाचरण करे । फिर वेदार्थों का ज्ञान प्राप्त करे और अनेक शास्त्रों का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥ ११७ ॥ जो परम पवित्र एवं हित तथा मेधा से संयुक्त शिष्य हो उनका अभ्यापन करे । और ईश्वर की भी योग दोष आदि की सिद्धि सम्प्राप्त करने के लिये उपासना करनी चाहिये ॥ ११८ ॥ इस

उपरान्त मध्याह्न की सिद्धि के लिये पूर्वोक्त स्नान करे । विलक्षण पुरुष को स्नान करके माध्याह्न की सन्ध्या की उपासना करनी चाहिये ॥११६॥

देवता परिपूज्याथ विधिर्नैमित्तिक चरेत् ।

पवनार्ग्नि समुज्ज्वाह्यवैश्वदेवसमाचरेत् ॥१२०

निष्पावाङ्कोद्रवान्मापान्यलपाश्चणगास्त्यजेत् ।

तैलपक्वमयवाम्न सर्वं लवणयुक्त्यजेत् ॥१२१

आढक्यन्नं मसूराण् वतुर्लघान्यसम्भवम् ।

भुक्तक्षेपयुं पित वंश्वदेवे विवर्जयेत् ॥१२२

दर्भपाणि समाचम्य प्राणायामविधाय च ।

पृषोदिवीति मन्त्रेण पयुक्ष्णमथाचरेत् ॥१२३

प्रदक्षिणचपयुक्ष्य द्वि परिस्तीयवंकुशान् ।

रापोद्धं देवमन्त्रेण कुर्याद्विह्नस्वसन्मुखे ॥१२४

वंश्वानर समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतंस्तथा ।

स्वशास्त्रोक्त प्रकारेण होमकुर्याद्विचक्षणः ॥१२५

अध्वग क्षीणवृत्तिश्च विद्याधी गुरुरोपकः ।

यतिश्च ब्रह्मचारी च पठेतेधमभिक्षुका ॥१२६

देवता का अर्चन करके नैमित्तिक विधि को करे । पवनार्ग्नि को प्रज्वलित करके वैश्वदेव करे । निष्पावा—को द्रव—म प—अन्यलाप और चणक—इनका परित्याग कर देवे । तैल से परिपक्व—अपक्वान और सब लवण से युक्त त्याग देवे ॥ १२० ॥ १२१ ॥ आढक्यन्न—मसूरान्न वतुर्लघान्य समुत्पन्न—भुक्त क्षेप—पयुं पित (बासी) इन सबको वैश्वदेव में वर्जित कर देना चाहिये । हाथ में कुश ग्रहण करके भली भाँति आचमन करे और प्राणायाम करके “पृषोदिवि”—इत्यादि मन्त्र के द्वारा पायुक्ष्ण करे । प्रदक्षिण और पयुक्ष्ण करके दो कुशाग्रे का परिस्तरण करके ‘रापोद्धं देव’—इत्यादि मन्त्र से विह्न को अपने सामने

करे । गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा वैश्वानर की समर्पणा करके विचक्षण पुरुष को अपनी वैदिक शाखा के प्रकार से होम करना चाहिये । घग्वा में गमन करने वाला—क्षीण वृत्ति वाला—विद्यार्थी—गुरु का पोषण करने वाला—यति और ब्रह्मचारी—ये छै, घग्मं प्रियुक्त होते हैं ।
॥१२२-१२६॥

अतिथिः पान्थिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः ।
मान्यावेतो गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥१२७॥
अपिश्रवपाकेषु निषा नैवाप्तं निष्फलं भवेत् ।
अत्रापिनि सभायातेपाप्तापात्रनचिन्तयेत् ॥१२८॥
क्षुर्नाच पतितानाञ्च वपचा पापरोषिणाम् ।
काकानांचकृमोर्णांचवहिरन्नं किरेद्भुवि ॥१२९॥
ऐन्द्रवारुणवायव्याः सोम्यायनेष्टं ताश्चाये ।
प्रतिगृह्णन्ति वमपिडका गभूमौ मया पितम् ॥१३०॥
इत्थं भूतबलिकृत्याकालगोदोहमासकम् ।
प्रतीक्ष्यानिधिमायात विसेद्भोज्यगृहततः ॥१३१॥
अदत्त्वा वायसवलिं नित्यभ्रातृं समाचरेत् ।
नित्यभ्रातृं स्वसामर्थ्यत्त्रीन्द्रावेकमपि वा ॥१३२॥
भोजयेत्पितृपुत्रार्थं दद्याद्दुग्धस्य चारि च ।
नित्यभ्रातृं देवहीननिधमादिविवर्जितम् ॥१३३॥

जो गृहस्थ ब्रह्मलोक की याह रचने वाले हैं उनके लिये अतिथि—पान्थिक—अनूचान—और श्रुति पारगामी ये मान्य हुआ करते हैं ॥१२७॥ । श्रवपाक और व्रतान में भी अन्न निष्फल नहीं हुआ करता है । यद्वा पर धर्मों के समयात होने पर पात्र है वा अपात्र है—इतना ध्यान नहीं करना चाहिए । भुक्तो को—दानियों को—श्रवणों को—वाय रोगियों को—बाहों को तथा वृद्धियों को भी भूमि में बाहर अन्न का विचरण कर देना चाहिए । भूत बलि करने के लिये ऐन्द्र-वारुण-वायव्य-सोम्य—

और जो नैऋत हो वे सभी और काक भूमि में मेरे द्वारा समर्पित इस पिण्ड का प्रतिग्रहण करे—यह कहते हुए भूत बलि गोदोहन मात्र काल पर्यन्त इस प्रकार से भूत बलि करके किसी भी आये हुए अतिथि की प्रतीक्षा करे फिर भोज्य गृह में प्रवेश करना चाहिए। वायस बलि को न देकर नित्य श्राद्ध का समाचरण करना चाहिए। नित्य श्राद्ध में अपनी सामर्थ्य से तीन-दो अथवा एक को ही भाजन करावे। यह पितृ यज्ञ के लिये ही भोजन देवे और जल को उद्धृत करके देना चाहिये। नित्य श्राद्ध वैवर्हीन और नियम आदि से विवर्जित होता है ॥१२८-१३३॥

दक्षिणारहित त्वेतद्वाभोवतृसुतृप्तिकृत् ।

पितृयज्ञ विधायेत्य स्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥१३४

अष्टुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ।

सुगन्धि सुमनाः सखी श्चिवासोद्वयान्वितः ॥१३५

प्रागास्य उदगास्यो वाभुञ्जीतपितृसेवितम् ।

विधायान्नमन-नतदुपरिष्टादधस्तथा ॥१३६

आपोशानविधानेन कृत्वाऽग्नीयात्सुधीद्विजः ।

भूमी बालनय कुर्यादपोदद्यात्तदोपरि ॥१३७

सकृ-चाप उपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ।

दद्याज्जठरकुण्डाग्नौदभपाणि प्रसन्नधौ ॥१३८

दभपाणिस्तुपो भुङ्क्त तस्यदोपो नविद्यते ।

केशकीटादिसभूतस्तदग्नीयात्सदभकः ॥१३९

ततो मोनेन भुञ्जीत न कुर्यादन्तर्धर्पणम् ।

प्रक्षालितव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ॥१४०

यह दक्षिणा से रहित यह दाता और भोक्ता की सुतृप्ति का करने वाला है। इस प्रकार से पितृयज्ञ को करके अनातुर होते हुए स्वस्थ बुद्धि वाला है। दोष रहित असन पर अर्घ्यद्विष्ट होकर शिशुओं के

साथ स्वयं भोजन करे । सुन्दर गन्ध वाला—सुन्दर मन से युक्त—
माला धारण किये हुए और दो शुद्ध वस्त्र धारण करके भोजन करना
चाहिए ॥ १३४ । १३५ ॥ पितृ सेवित पदार्थ को पूर्व की ओर मुख
वाला होकर अवश्या उत्तर की ओर मुख करके खाना चाहिए । अन्न को
ऊपर और धींच अनन्न करके आयोशान विद्यान से सुधी द्विज को भोजन
करना चाहिए । भूमि में तीन बसि करे और उसके ऊपर जल देवे ।
॥ १३६ । १३७ ॥ एक बार जल से उपस्पर्शन करके “प्राणाय स्वाहा”
इत्यादि मन्त्रों से पाँच आहुतियाँ देवे फिर प्रसन्न बुद्धि होकर हाथ
में कुशाग्रहण कर जठर स्वी कुण्ड में देना चाहिए । हाथ में डाम
रोकर जो भोजनाकिया करता है उसका कोई भी दोष नहीं होता है ।
केश कीटादि से सम्भूत दर्भ के सहित अशन करे । इसके अनन्तर मौन
रह कर भोजन करे और दाँतो का चर्पण नहीं करना चाहिए और
प्रक्षालन करन के योग्य हाथ के दक्षिणागुष्ठ मूल से न करे ॥ १३८ ।
१३९ । १४० ॥

रौरवेऽपूज्यनिलये अधोलोकनिवासिनाम् ।
उच्छिष्टोदकमिच्छूनामच्छयमुपतिष्ठताम् ॥१४१
पुनराचम्य मेघावी क्षुचिभ्रूत्वा प्रयत्नतः ।
मुपशुद्धिं ततः कृत्वा पुराणश्रवणादिभिः ॥१४२
अतिवाह्य दिवाशेष ततःमन्थ्यांसमाचरेत् ।
गृहेषुप्रागृतासन्ध्यागोष्ठेऽक्षगुणास्मृता ॥१४३
नशाममुत्तरस्या स्यादमन्ता तिससन्निधौ ।
अनुत्त गद्यगन्धं च दिवामेनूनमेव च ॥
पुनाति वृत्तसंस्थानं सन्ध्या रुहिरपामिता ॥१४४
उद्देष्टतः समारूपातएण निर्यतनोविधिः ।
इत्थं समाचरन्विप्रोनाममोर्क्षत र हिनित् ॥१४५

भगुण्यो वा नियम रौरव नरव मे अधोनोरो के निषामो और

उच्छिष्ट जल की इच्छा रखने वालों का अक्षय्य उपस्थित होये ॥१४१॥
 फिर मेघायो को आचमन करके शुचि होकर प्रय-न पूर्वक मुख की शुद्धि
 करे और इसके उपरान्त दिन के शेष भाग को पुराणो के श्रवण आदि
 के द्वारा व्यतीत करे और इसके अनन्तर फिर सायं सन्ध्या की उपासना
 करनी चाहिए । गृहों में की हुई सन्ध्या की उपासना प्राप्त होती है
 यही उपासना यदि गोष्ठ में की जावे तो दशगुने फल वाली हो जाती है ।
 नदी पर की हुई सन्ध्योपासना दश सहस्र गुनी होती है तथा भगवान्
 की मन्त्रिणि में की गयी सन्ध्या की उपासना अनन्त गुनी बही गयी है ।
 निम्पा भाषण — मदिग की गन्ध — शिवा मयुन और वृषल स्थान इन
 सबको बाहिर की गयी सन्ध्योपासना पवित्र कर देती है ॥ १४२ । १४३
 । १४४ ॥ यह नित्य ही की जाने वाली विधि उद्देश्य से समाप्त की
 गयी है । इस प्रकार से समाचरण करने वाला विप्र किसी भी समय में
 दुःखित नहीं हुआ करता है ॥१४५॥

४१—हयग्रीवाख्यान वर्णन

नपश्यन्तियदाशीर्षब्रह्माद्यास्तुसुरास्तदा ।
 किमुमंइतिहेत्युक्तवाजानिनस्तेव्यचिन्तयन् ॥
 उवाच विश्वकर्माणं तदा ब्रह्मा सुरान्वितः ॥१॥
 विश्वकर्मेस्त्वमेवासि कायंकर्तासदाविभो ।
 शौघ्रमेवकुरु त्वंवैक्वत्रसान्द्रंचघन्विनः ॥२॥
 नमस्कृत्यतदातस्मै स्तुतोऽसीदेववर्द्धकिः ।
 उवाचपरयाभक्त्या ब्रह्माणकमलोद्भवम् ॥३॥
 यज्ञकार्यं (अश्वकार्यं) निवृत्त्याशु ।
 (निवृन्ताऽऽशु) वदन्ति विविधाः सुराः ॥४॥

यज्ञभागविहीनं मां किं पुनर्वन्मि तेऽग्रतः ।
 यज्ञभागमहं देव लभेयैवं सुरैः सह ॥१॥
 दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभागं सुरवर्द्धके ! ।
 सोमे त्व प्रथम वीर पूज्यसेऽश्रुतिकोविदैः ॥६॥
 तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सन्धस्त्वाऽमरवर्द्धके ! ।
 विश्वकर्माऽन्नवीद्देवानानत्यध्वं शिरस्त्विति ॥७॥

महा महर्षि श्री व्यासदेव जी ने कहा—जिस समय मे ब्रह्मादि सुरगणों ने शीघ्र नहीं देखा था तो उस समय मे हम इस समय मे क्या करें—यह कहकर वे सब ज्ञानी गण विशेष रूप से चिन्तन करने लगे थे । उस समय मे समस्त सुरगणों से समन्वित ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा से कहा था—॥ १, २ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! विश्वकर्मा सदा आप ही कामों के करने वाले हैं । अतएव अब आप बहुत ही शीघ्र धन्वी के वक्त्र को सान्द्र बनादो । उस समय मे वह देववर्द्ध कि नमस्कार करके स्तुति के द्वारा स्तुत किया गया था । तब परम भक्ति से वह कमलोद्भव ब्रह्माजी से बोला था । यज्ञ कार्य की शीघ्र ही निवृत्त कर के अनेक सुरगण मुझको यज्ञ के भाग से विहीन कहा करते हैं । फिर मैं इस समय में आपको आगे क्या कहूँ । हे देव ! इस प्रकार से मैं भी सुरों के साथ यज्ञ के भाग को प्राप्त किया करूँ ॥३, ४, ५॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे सुर वर्द्धके ! मैं आपको समस्त यज्ञों मे विभाग दूँगा । हे वीर ! श्रुति के कोविदों (विद्वान्) के द्वारा आप सोम मे सबसे प्रथम पूजे जाओगे । हे अमर वर्द्धके ! सो अब आप तब तक भगवान् विष्णु के शिर का अनुसन्धान करो । विश्वकर्मा ने देवों मे कहा—शिर ले आओ ॥ ६, ७ ॥

तप्तास्तीति सुरा सर्वैर्वर्द्धतनुपसत्तम ।
 मध्याह्नेतुसमुद्भूते रयस्त्रोर्धावचानुमान् ॥८॥
 दृष्ट तटा सुरैः सर्वे रथादस्वमयानयन् ।

छित्त्वा शीर्षं महीपाल कवन्धाद्वाजिनोहरेः ॥६
 कवन्धे योजयामास विश्वकर्मातिचातुरः ।
 दृष्ट्वा तं देवदेवेश सुराः स्तुतिमकुर्वन्त ॥१०
 नमस्तेऽस्तु जगद्वीज ! नमस्तेकमलापते ।
 नमस्तेऽस्तुसुरेशान ! नमस्तेकमलेक्षण ! ॥११
 त्वं स्थितिं सर्वभूतानां त्वमेव शरणं सदा ॥
 त्वं हन्ता सर्वदुष्टानां हयग्रीव ! नमोऽस्तुते ॥१२
 त्वमोङ्कारो वषट्कारः स्वाहास्वधा चतुर्विधा ।
 आद्यस्त्वच्चसुरेशानस्त्वमेवरक्षणं सदा ॥१३
 यज्ञो यज्ञपतिर्पञ्चा द्रव्यं होता हुतस्तथा ।
 त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥१४

हे नृप सत्तम ! समस्त सुरो ने कहा—वह नहीं है । मध्याह्न
 के समुद्रभूत होने पर दिव्यलोक में अशुमान् रथ में सन्स्थित थे । उस
 समय में सुरगणों ने सबने देखा था और उस रथ से अश्व को ले आये
 थे । हे महीपाल ! हरि के घोड़े का कवन्ध से शिर काट करके अत्यन्त
 चतुर विश्वकर्मा ने उसे कवन्ध में योजित कर दिया था । उस देवदेवेश्वर
 को देखकर समस्त सुरो ने उसका स्तवन किया था । देवो ने कहा—
 हे इस जगत् के बीज ! हे कमला के स्वामिन् ! आपको हमारा नमस्कार
 है । हे सुरो के ईशान ! आपकी सेवा में हमारा नमस्कार समर्पित है ।
 हे कमल के समान नेत्रों वाले ! आपको हमारा प्रणाम है । आप तो
 समस्त भूतों की स्थिति हैं और आप ही सबके शरण (रक्षक) हैं ।
 सब दुष्टों के आप ही हनन करने वाले हैं । हे हयग्रीव ! आपकी सन्निधि
 में हम सबका प्रणाम अर्पित है ॥ ८, ९, १०, ११, १२ ॥ आपके चार
 प्रकार के स्वरूप हैं—आप ही ओंकार है—आप ही वषट्कार हैं—आप
 ही स्वाहा हैं और आप ही स्वधा हैं । आप सबके आद्य हैं । हे गुरेशान !
 १४. हो सदा सबके शरण हैं ॥ १३ ॥ आप ही यज्ञ—यज्ञो के पति—

यज्वा — द्रव्य — होता तथा आप ही हुत भी है । हे देव ! आपके ही लिये आहुतियाँ दी जाया करती है और आप ही सखा एवं सबके शरण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं ॥१४॥

कालः करालरूपस्त्वत्स्व वाक् शीतदीप्तिः ।

त्वग्निर्वैरुणश्चैव त्वचकालक्षयङ्कर ॥ ५

गुणत्रय त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि ।

गुणानामालयस्त्व च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषुः ॥१६

स्त्रीषु सोश्चद्विधात्व च पशुपक्ष्यादिमानवैः ।

चतुर्विध कुल त्वहिचतुराशोत्तिष्ठान ॥१७

दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायन युगम् ।

कल्पान्तश्च महान्तश्च कालान्तस्त्व च वै हरे ! ॥१८

एवविधौ महादिव्ये स्तूयमानः सुरैर्नृप ।

सन्तुष्टः प्राह सर्वेषां देवानां पुत्रः प्रभु ॥१९

किमयंमिह सम्प्राप्ता सर्वे देवगणाभुवि ।

किमेतत्कारणं देवा किनु दैत्यप्रपीडिता ॥२०

हे भगवन् ! आप विकरान् स्वरूप वाले काल हैं । आप ही सूर्य तथा शीत किरणों वाले चन्द्र हैं । आप ही अग्नि हैं — वरुण और आप ही काल के क्षय करने वाले हैं ॥ १५ ॥ मत्स्य-वज्र और तम ये तीनों गुण भी आपका ही स्वरूप हैं और आप स्वयं गुणों से हीन भी हैं । आप इन गुणों को आलस्य हैं और समस्त जन्तुओं में आपही गोप्ता रक्षा करने वाले हैं ॥१६॥ आप स्त्री और पुरुष दोनों प्रकार के रूप वाले हैं । पशु-पक्षी आदि मानवों के द्वारा चार प्रकार के कुल आप ही हैं और चौदासी लक्षणों वाले हैं । दिनान्त — पक्षान्त — मासान्त — हायनयुग कल्पान्त — महान्त और हे हरे ! कालान्त भी आप ही हैं । हे नृप ! इस तरह स महादिव्य मुरों के द्वारा स्तवन किये गये प्रभु परम सन्तुष्ट होकर उन समस्त देवों व आगों वाले — ॥१७-१९॥ श्रीभगवान् ने कदा-आप समस्त देवगण वस भगवन्त में निश्चय सम्प्राप्त हुए हैं । हे देवगणों ! इस आपके यहाँ पर समागमन करने

का क्या कारण है ? क्या आप लोग दैत्यो के द्वारा प्रपीडित हुए हैं ? ॥ २० ॥

न दैत्यस्य भयं जातं यज्ञकर्मात्सुका वयम् ।
 स्वदृशनपराः सर्वे पश्यामोर्वदिशेदिश ॥२१
 त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ।
 योगारूढस्वरूप च दृष्ट तेऽस्माभिस्तमम् ॥२२
 वञ्ची च मोदितास्माभिर्जागराय तवेश्वर ।
 ततश्चापूर्वमभवच्छिरश्छिन्न बभूव ते ॥२३
 सूर्याश्वशीपंमानीयविश्वकर्मातिचातुरः ।
 समघ्नन्तशिरोविष्णोह्यग्रीवोऽस्यतःप्रभो ! ॥२४
 तुष्टोऽहनाकिनःसर्वेददामिवरमोप्सितम् ।
 ह्यग्रीवोऽभ्यहं जातोदेवदेवोन्नगत्पतिः ॥२५
 न रोद्र न विरूपं च सुरैरपि च सेवितम् ।
 जातोऽहं वरदो देवा ह्याननेति तोषितः ॥२६
 कृते सग्रे ततो वेधा धीमान्सन्तुष्टचेतसा ।
 यज्ञघागं ततो दत्त्वो वञ्चीभ्यो विश्वकर्माणे ॥२७
 यज्ञान्ते च सुरश्छेष्टनमस्कृत्य दिव ययो ।
 एतच्च कारणं विद्धि ह्यननो यतो हरिः ॥२८

देवो ने कहा—हमको इस समय मे दैत्यो का कोई भी भय नहीं हुआ है । हम सब लोग यज्ञ कर्म करने के लिये समुसुक हैं । हम सब आपके दर्शन करने के लिये परायण हैं और दशो दिशाओ को देखते हैं । आपकी माया से जब मोहित हो जाते हैं तो उसी समय मे हम सब व्यग्रचित्त वाले तथा भय से आतुर हो जाया करते हैं ॥ २१ ॥ हमने आपका अतीव उत्तम योगारूढ स्वरूप देखा है ॥ २२ ॥ हे ईश्वर ! आपके जागरण कराने के लिये वञ्ची से हमने नहीं कहा था । इसके यह अपूर्व घटना हुई कि आपका शिर छिन्न हो गया था । फिर अत्यन्त कुशल विश्वकर्मा

ने भूर्भुवदेव के अवश का मस्तक लाकर विष्णु के कबन्ध पर धर दिया था । इसीलिये हे प्रभो ! आप इस समय मे हृद्यग्रीव हो गये है । २२ । २३ ॥ २४ ॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे स्वर्ग वासियो ! मैं आप सबसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । मैं आपको अभीष्ट वरदान दूँगा । अब मैं देवों का देव जगत्पति हृद्यग्रीव हूँ । न तो यह रौद्र है और न विरूप ही है और सूरों के हाग सेविन भी है । चेवी ! मैं इस हृद्य के मानन से तोषित हो गया हूँ और अब बरद हो गया हूँ ॥ २५, २६ ॥ श्री व्यास-देवजी ने कहा—इसके अनन्तर घीमान वेषा ने कृत युग में सत्र में सन्तुष्ट चित्त से ब्रह्मीश्वरों से विश्वकर्मा के लिए पञ्च का भाग दिलाया था । यज्ञ के अन्त में वह सूर श्रेष्ठ को नमस्कार करके दिवलोक को चले गये थे । जिस कारण से श्री हरि हृद्यानन हुए—उसका यही कारण जान लेना चाहिए ॥ २७— ८ ॥

येनाक्रान्त। मही सर्वा क्रमेणकेन तत्त्वत ।
 विवरे विवरे रोम्णावतन्तेचपृथक्पृथक् ॥२६
 ब्रह्माण्डानिसहस्राणि दृश्यन्तेचमहाद्युते ।
 नवेत्तिवेदोपत्पार शीपघातोहिवैकथम् ॥३०
 शृणु त्व पाण्डवश्रेष्ठ कथा पौराणिकी शुभाम् ।
 ईश्वरस्यचरित्संहितैववेत्तिचरानरे ॥३१
 एकदा ब्रह्मसभायां गता देवाः सवासवाः ।
 भूलोकाद्याश्च सर्वे हि स्थावराणि चराणि च ॥३२
 देवाब्रह्मपयःसर्वे नमस्कृत् पितामहम् ।
 विष्णुरप्यागतस्तत्र सभायामन्यकारणात् ॥३३
 ब्रह्माचार्य विर्गविष्ट उवाचेदवचस्तदा ।
 भोभोदेवाः शृणुध्व कस्त्रयाणां शरणमहत् ॥३४
 सत्यं युवन्तुवं देवा ब्रह्मशविष्णुमध्यतः ।
 तावाच चसमाकण्यदेवा त्रिसमय मागताः ॥३५

ऊचुच्छीव ततो देवा न जानीमो वयं सुराः ।

ब्रह्मपत्नी तदोवाच विष्णुं प्रति सुरेश्वरम् ॥

त्रयाणामपि देवाना महान्तं च वदस्व मे ॥३६

महाराज युधिष्ठिर जी ने कहा—जिससे तात्त्विक रूप से एक ही चरण से क्रम से सम्पूर्ण मही को आक्रान्त कर लिया था और बिबट-बिबट में रोमों के पृथक् २ भाग वर्तमान हैं । हे महाद्युते ! जिसके रोमों के बिबटों में सहस्रो ब्रह्माण्ड दिखलाई दिया करते हैं और जिसके पार को वेद भी नहीं जानते हैं उनके शीर्ष का घात कैसे हो गया था ? श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे पाण्डव श्रेष्ठ ! परम-शुभा एक, पीरणिकी कथा को इस समय में आप श्रवण कीजिए । इस ईश्वर का चरित्र को कोई भी नहीं जानता है । एक समय की बात है कि ब्रह्मा सभा में इन्द्र-देव के सहित समस्त देवगण गये थे । भूलोक आदि सब स्थावर तथा चर सभी थे । देवर्षि और ब्रह्मर्षि सब पितामह को नमस्कार करने के लिए ही वहाँ पर पहुँचे थे । वहाँ पर सभा में मन्त्र के कारण से भगवान् विष्णु की समागत हो गये थे ॥२६॥ ३०॥ ३१॥ - २॥ उस समय में ब्रह्माजी भी विशेष रूप में गर्विष्ठ होने हुए यह वचन बोले थे—हे हे देवगणा ! आप सब मुनि-तीन का जो मैं महत् कारण कौन हूँ ? हे देवबृन्द ! आप इस समय में ब्रह्मा—विष्णु और महेश इनके मध्य में बड़ा कौन है ? यह बिल्कुल सत्य २ आप बतलाइये ! इस ब्रह्माजी की वाणी को सुनकर देवगण परम विस्मित हो गये थे ? इसके पश्चात् समस्त सुरगणों ने कहा—हम यह नहीं जानते हैं । उस समय में ब्रह्माजी की पत्नी ने मुझे ईश्वर श्री विष्णु में बोली—आप ही यह बतलाइये कि इन देवों में मध्य बड़ा देव कौन-सा है ? ॥३३-३६॥

विष्णुमायावनेनैव मोहित भुवनत्रयम्

ततो ब्रह्मोवाच चेद न त्व जानामि भो विभोः ॥३७

नव मुह्यन्ति ते मायावनेन नैवमेव च ।

गर्वहि मापगो देवा जगद्भूता जगत्प्रभु ॥३७

ज्येष्ठं त्वां न विदुः सर्वे विष्णुमायावृत्ताः खिलाः ।
 ततो ब्रह्मा स रोयेण क्रुद्धः प्रस्फुरिताननः ॥३६
 उवाच वचनं कोपाद्धे विष्णो शृणुमेवचः ।
 येन वक्त्रेण सभायां वचनं समुदीरितम् ॥४०
 तच्छीर्षं पततादाशु चाल्पकालेन वै पुनः ।
 ततो हाहाकृत सर्वं सेन्द्राः सर्पिपुरोगमाः ॥४१
 ब्रह्माण क्षमयामासुर्विष्णुं प्रति सुरोत्तमाः ।
 विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्यं सत्यं भाविष्यति ॥४२

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—विष्णु की माया के बल से ही यह त्रिभुवन मोहित हो रहा है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! क्या इसको आप नहीं जानते हैं ? इस प्रकार से वे इस माया के बल से भी कभी मोहित नहीं हुआ करते हैं । आप भगवत् के भर्ता और इस जगत के प्रभु हैं अतएव यह गर्व और हिंसा में परायण हैं ये समस्त विष्णु की माया से समावृत आपको ज्येष्ठ नहीं समझा करते हैं । इसके अनन्तर वह ब्रह्माजी रोप से प्रस्फुरित मुख वाले अत्यन्त क्रुद्ध होकर कोप से यह वचन बोले—हे विष्णो ! आप मेरा वचन श्रवण करिये । जिस मुख से सभा में वचन कहा था वह शीर्ष बहुत ही पीछे अल्पकाल ही में गिर जावेगा । इसके पश्चात् सबने इन्द्र के सहित श्रृपिवृन्द ने उस समय में हाहाकार किया था । सुरोत्तमों ने भगवान् विष्णु की ओर ब्रह्माजी से क्षमा प्रार्थना की थी और विष्णु ने कहा था कि यह सत्य-सत्य होगा ॥३७-४२॥

ततो विष्णुमहातेजस्तीर्यस्योत्पादनेन च ।
 तपस्तेपेतु वै तत्र धर्मारण्ये सुरेश्वरः ॥
 अश्वशीपम्मुख दृष्ट्वा हृदयग्रीवो जनाह्नः ॥४३
 तपस्तेपे महाभाग ! विधिनासह भारत ।
 न शक्यं केनचित्कत्तुं मात्मना तमंवतुष्टवान् ॥४४

ब्रह्मापि तपसा मुक्तस्तेपे वर्षशतत्रयम् ।
 तिष्ठन्नेकपुरोविष्णोर्विष्णुमायाविमोहितः ॥४१॥
 यज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवो जगत्पतिः ।
 ब्रह्मस्ते मुक्तताद्यास्ति मममायाप्यदु सहा ॥४२॥
 ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्तो जनार्दनः ।
 उवाचमधुगं वाच सर्वेषां हितकारणात् ॥४३॥
 अत्राभवन्महाक्षेत्रं पुण्यपापप्रणाशनम् ।
 विधिविष्णुमयं चैतद्भूवत्वेतन्न सशयः ॥४४॥
 तोयंस्य महिमाराजन्ह्यशीपस्तदा हरिः ।
 शुभाननो हि सञ्जातः पूर्वर्णवाननेन तु ॥४५॥

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने जो कि स्वयं ही महान् तेजस्वी थे तीर्थ के उत्पादन से वहाँ धर्मारम्भ में सुरेश्वर तप करने लगे थे । अश्वशीर्षं मुख को देखकर जनार्दन हृषीकेश हों गये ॥४३॥ हे महान् भाग वाले भारत ! विधि के साथ तपश्चर्या का तपन किया था । किसी के द्वारा भी अपनी आत्मा से ही आत्मा को नष्टवान् नहीं किया जा सकता है । ब्रह्माजी ने भी तपस्या से मुक्त तीन सौ वर्ष तक तप किया था । विष्णु की माया से विमोहित होकर विष्णु के आगे स्थित होते हुए तपस्या की थी । देवों के भी देव इस जगत् के स्वामी परम तुष्ट होकर बोले— हे ब्रह्मन् ! आज तुम्हारी मुक्तता है । यह मेरा माया भी अदुसहा है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी वर प्राप्त करने वाले हुए थे और भगवान् जनार्दन भी प्रसन्न चित्त वाले हो गये थे । सबके हित करने के कारण से परम मधुर वाली बोले—यहाँ पर परम पुण्यमय पापों के विनाश करने वाला महाक्षेत्र हो गया है । यह विद्याता और विष्णुमय हो गया है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । हे राजन् ! उस समय में श्री हरि ने स्वयं अश्वशीर्ष ने की थी । पहिले ही इससे वह परम शुभ भानन वाले हो गये थे ॥ ४४-४५ ॥

चन्दर्पकोटिलावण्यो जात कृष्णस्तदा नृप ।
 ब्रह्मापि तपसा युक्तो दिव्य वर्षसत्तत्रयम् ॥ ५० ॥
 साविद्या च कृत यत्र विष्णुमाया न बाधते ।
 मायया तु कृत शीर्षं पञ्चम दादुलस्य वा ॥ ५१ ॥
 धर्मारण्ये कृतं रम्यं हरेण च्छेदित पुरा ।
 तस्मै दत्त्वा यत्र विष्णुजंगामादर्शनं ततः ॥ ५२ ॥
 स्थापयित्वा विधिस्थत्र तीर्थञ्च वनिलोचनम् ।
 मुक्तेदानामदेवस्य मोक्षतीर्थमरिन्दम ॥ ५३ ॥
 गतः सोऽपि मुरधेष्ठः स्वस्थानं मुग्धैर्वितम् ।
 तत्प्रतादिव यागितनपणेन प्रतपिताः ॥ ५४ ॥
 अथ मेघफलभाने पाने गोदानज फलम् ।
 पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सगितमनया ॥ ५५ ॥
 स्नानार्थं मन्त्रागच्छन्नि देवता पितरस्तथा ।
 कार्तिनया तृप्ति का योगे मुक्तेषां पूजयेत् ॥ ५६ ॥
 स्नात्वा देवसरे रम्ये नद्या देव जनाद्जनम् ।
 यः कर्मात् नरो भवत्या गन्धर्वायै प्रमुच्यते ॥ ५७ ॥

हे नृप ! उक्त समय में भगवान् श्रीगणेश को भी कामदेवों के
 तुल्य रूप लावण्य वाले हो गये थे । ब्रह्मा भी तपसा में मुक्त हुए
 जो कि दिग्गज तीन गी वष वर्षान की थी ॥ ५० ॥ जहाँ पर सावित्रीदेवी
 ने तप किया था वहाँ विष्णु की माया बाधा नहीं देती है । माया ने किया
 हुआ शीर्ष या पञ्चम दादुलस्य वा था ॥ ५१ ॥ वहीं हरे के द्वारा छेदित
 धर्मारण्य में मुरधेष्ठ किया था । उनको ब्रह्मान प्रदान करके भगवान्
 विष्णु वहाँ में भद्रार्जन को प्राप्त हो गये थे ॥ ५२ ॥ हे अरिन्दम ! विधि
 ने वहाँ पर त्रिलोचन तीर्थ की स्थापना करके जो नामदेव का मुक्ति
 मोक्ष तीर्थ है ॥ ५३ ॥ वह भी मुरधेष्ठ मुग्ध ने मेखित अपने स्थान को
 पने गये थे । वहाँ पर सर्वत्र के द्वारा गरिष्ठ हुए क्षेत्र भी दिव्यतीर्थ को

प्रयाग किया करते हैं ॥ ५४ ॥ वहीं पर स्नान करने से एक अधमेघ
 यज्ञ के करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है । वहीं के जल का पान करने
 से मोक्षान्न में समुत्पन्न फल मिलता करता है । गुल्फर आदि तीर्थ तथा
 भागौरथी गङ्गा आदि सरिताएँ स्वयं स्नान करने के लिए वही पर
 आया करती हैं और सब देवता तथा वितर भी समागत होते हैं ।
 वातिक भाग में कृतिका नक्षत्र के योग में जो कोई मुक्तेन भगवान्
 की पूजा किया करता है और उस मुख्य देवसर में स्नान करके
 जनार्दन देव की नमस्कार करता है । ऐसा जो नर भक्ति की भावना
 में करता है वह सब प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥
 ५६ ॥ ५७ ॥

मुपत्वा भोगान्ययात्रामं विष्णुचोक्तं स गच्छति ।
 अपृथा काकवध्या च मृतमत्मा मृतप्रजा ॥ ५८ ॥
 ए३।१२२रेण मुम्नातो पतिगत्स्यो यथाविधि ।
 तद्दोषनाशयेन्नूनप्रजामिप्रनिबन्धम् ॥ ५९ ॥
 मोक्षोपपन्नगादेन गङ्गादीनां द वर्द्धयेत् ।
 दश द्वयेन चित्तान् पत्नानि मत्स्यगमुता ॥ ६० ॥
 निधाः संशपादोर्जि नार्गदापाहममुच्यते ।
 प्राप्नुवन्ति च देवाश्च भूमिष्टोमपल नृप ॥ ६१ ॥
 वेदादिहिंसायैव तप्यन्ते परम तपः ।
 धर्माग्ने त्रिमन्त्र च स्नात्वादेवमस्त्यय ॥ ६२ ॥
 तत्र मोक्षोदरः शम्भुः स्थापितो यं ततः गुरुः ।
 नन मातु जप कृत्वा न भयः स्नानपो भवम् ॥ ६३ ॥

सन्तान की प्राप्ति का प्रनिबन्धक दोष सनमे है वह निश्चय ही नष्ट हो जाया करता है । मोक्षेश्वर के प्रसाद से उसके पुत्र पौत्रादि की वृद्धि हो जाती है । अथवा एकवित्त होकर सत्य से सयुता - होकर फलो का दान करे और उन्हें वश पात्र मे रखकर देवे तो वह नारी दोष से विमुक्त हो जाती है । हे नृप ! वहाँ देवगण अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त किया करते हैं ॥ ५८, ५९, ६०, ६१ ॥ वेद्या (ब्रह्मा)—श्रीहरि—भगवान् शम्भु भी परम तप किया करते हैं । तीनों मन्त्र्याओं मे देवसरोवर मे धर्मारण्य में स्नान करके सुरो ने मोक्षेश्वर भगवान् शम्भु की स्थापना की है । वहाँ अङ्ग सहित जाप करके फिर यह प्राणी जन्म ग्रहण करके स्नान का पान नहीं किया करता है ॥ ६२, ६३ ॥

एवं श्रेष्ठं महाराज प्रसिद्धं भुवनत्रये ।
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पितृणां श्रद्धयान्वितः ॥ ६४
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ।
देवसरो महारम्यं नानापूर्यः समन्वितम् ॥
श्याम सकलकल्हारेविधंजलजन्तुभिः ॥ ६५
ब्रह्माविष्णुमहेशाक्षी सेवित सुरमानुषैः ।
सिद्धैर्यक्षैश्च मुनिभिः सेवित सर्वतः शुभम् ॥ ६६
कीदृशं तत्सरः ख्यातं तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम ।
तस्य रूपं प्रकारञ्च कथयस्व यथातथम् ॥ ६७
साधुसाधु महाप्राज्ञ ! धर्मपुत्र ! युधिष्ठिर ! ।
यस्य सङ्कीर्तनान्नूनं सर्वपापं प्रमुच्यते ॥ ६८
अतिस्वच्छतरं शीतं गङ्गोदकसमप्रभम् ।
पवित्रं मधुरं स्वादु जलं तस्य नृपोत्तमः ॥ ६९
महाविशालं गम्भीरं देवखातं मनोरमम् ।
सहस्रादिभिर्गम्भीरैः फेनावृतं समाकुलम् ॥ ७०
भूपमण्डूककमठैर्मकरैश्च समाकुलम् ।

सहस्रशुक्त्यादिभिर्युक्तं राजहंसं सुशोभिवम् ॥७१॥

हे महाराज ! इस प्रकार से यह क्षेत्र तीनों भुवनो में प्रसिद्ध है । जो कोई वहाँ पर श्राद्ध किया करता है और पितृगण को यज्ञा से युक्त तृप्त करता है वह अपने सान गोत्रों का उद्धार कर दिया करता है और एकोत्तर शत वर्षों एक सौ एक कुल का उद्धार कर देता है । यह देवसर महान् सुगम्य है और अनेक प्रकार के पुष्पों से समन्वित है । सब तरह के कलहारों से श्याम तथा अनेक जल के जन्तुओं से युक्त है ॥६४॥ ६५॥ ब्रह्मा—विष्णु और महेश आदि के द्वारा तथा सूरों एवं मनुष्यों के द्वारा यह सेवित है । सभी ओर यह परम शुभ सर सिद्ध—यक्ष और मुनिवृन्दों के द्वारा सेवित है ॥६६॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! उस स्थान में वह सर किस प्रकार का विख्यात है ? उसका स्वरूप कैसा है और किस प्रकार का है ? आप कृपया ठीक ठीक यह बतलाइये । ६७॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—हे धर्मपुत्र ! आप तो अत्यधिक प्रज्ञा वाले हैं । हे युधिष्ठिर ! यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है—यह अत्युत्तम है । इसका तो सङ्कीर्तन मात्र से ही मनुष्य निश्चित रूप से समस्त पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥ ६८॥ हे नृपोत्तम ! क्या वर्णन किया जावे, उसका जल अत्यन्त ही स्वच्छ है—अधिक ठण्डा है—और गङ्गा के जल के समान प्रभायुक्त है—परम पवित्र—महामधुर तथा स्वादयुक्त है ॥ ६९॥ यह देवध्यात सरोवर) महान् विशाल है—अत्यन्त गम्भीर है और परम मनोरम है । गम्भीर लहरियों के आने के कारण केनो के आवर्त्तों से समाकुल रहता है । इसमें झप-मण्डूक कमठ और मकर निवास किया करने हैं और उनसे समाकुल है । यह सरोवर शङ्ख और घुंकिन आदि से भी संयुक्त रहता है तथा राज-हंस इसके समीप में निवास किया करते हैं उनसे इसकी विनेय शोभा रहा करती है ॥७०, ७१॥

वटप्लक्षः समायुक्तमश्वत्थार्द्रश्च वेष्टितम् ।

भक्तवाकसमोपेतं वकसारसटिहृभः ॥७२
 कमनीयप्रगन्धाच्छत्रपत्नीः सुशोभितम् ।
 सेव्यमानं द्विजैः सर्वैः सारसाद्यैः सुशोभितम् ॥७३
 सदेवेमुनिभिश्चैव विप्रमंत्यैश्च भूमिप ।
 सेवितं दुःखह चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥७४
 वनादिनिधनोपेतं सेवितं सद्धमण्डलैः ।
 स्नानादिभिः सर्वदेवतत्सरोनृपसत्तम ! ॥७५
 विधिना कुरुते यस्तु नीलोत्सर्गञ्च तत्तटे ।
 प्रेता नैव कुले तस्य यावद्विन्द्वाश्चतुर्वंश ! ॥७६
 कन्यादानं च ये कुर्युर्विधिना तत्रभूपते ! ।
 ते तिष्ठन्ति प्रह्मलोके यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७७
 महिषी गृहदासी च सुरभी सुतसंयुताम् ।
 हेमविद्या तथा भूमि रणाश्च गजवाससी ॥७८
 ददाति भद्रया तत्र सोऽक्षय स्वर्गमश्नुते ।
 देवत्वात्स्यमाहात्म्ययः पठेच्छिवसन्निधौ ॥
 दीर्घमायुः तथा सौख्यं लभते नात्र सशयः ॥७९
 यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा त्रिवदमद्भुतम् ।
 कुले तस्य भवेच्छ्रेयः कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर ! ॥८०
 एतत्सर्वं मयाख्यातं हयग्रीवस्य कारणम् ।
 प्रभावस्तस्य तीर्थस्य सर्वपापानुत्तये ॥८१

हमके चारों ओर बट वृक्ष—प्लव (पाखर) अश्वत्ता और आम्र
 के वृक्ष समे हुए हैं इनसे वेष्टित—सा रहा करता है । चक्का—चक्—
 सारस और टिट्ठमि आदि अनेक पक्षीमण से यह सर समोपेत है ॥७२॥
 परम रम्य प्रकृष्ट गन्ध से युक्त अतीव स्वच्छ शतपत्रों से सुन्दर शोभा
 वाला है । सारंग आदि पक्षियों के द्वारा यह निरन्तर सेव्यमान रहा
 करता है ॥७३॥ हे राजन् ! देवगण-मुनिवृन्द—शिव वरुण और मानवो

के द्वारा सेवित है । यह परम दुःखों के हनन करने वाला और सभी तरह के पापों का नाशक है ॥ ७४ ॥ अनादि निघ्न से उपेत तथा शिष्टों के मण्डलों के द्वारा सेवित है । हे नृपश्रेष्ठ ! सर्वदा ही वहां पर स्नानादि करने वाले बने ही रहा करते हैं ऐसा वह देवसर है । जो कोई उसके तट पर विधि के सहित भीषोत्सर्ग किया करता है उसके कुल में जब तक बौद्ध इन्द्र होते हैं प्रेत कभी भी नहीं रहते हैं । हे राजन् ! वहां पर जो विधि विधान के साथ कन्या का दान किया करते हैं वे मनुष्य जब भूत संप्लव होता है तब तक ब्रह्मलोक में नियास प्राप्त करते हैं । जो कोई वह महिषी-गृहदासी-सुरभी जो सुत से समन्वित हो—हेमविद्या—भूमि-रथ-गज—वस्त्र आदि का श्रद्धा से दान दिया करता है वह अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त किया करता है । इस देवराज (सरोवर) का माहात्म्य भगवान् शम्भु के सभीप में बैठकर पढ़ा करता है उसकी आयु दीर्घ हो जाती है और वह परम सौख्य प्राप्त करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ७५, ७६, ७७, ७८, ७९ ॥ जो नर या नारी भक्ति भाव से इस अद्भुत माहात्म्य का श्रवण किया करता है । उसके कुल में परम श्रेय वरूपान्त तक हे युधिष्ठिर होता है । यह इसमें सम्पूर्ण भगवान् हृदयीक का कारण वर्णित कर दिया है । इस तीर्थ का ऐसा ही प्रभाव होता है कि उससे समस्त पापों का अपनोदन हो जाया करता है ॥ ८०, ८१ ॥

४२—कलि धर्म वर्णन

अतः परं किमभवत्तन्मे कथय सुव्रत ! ।

पूर्वं च तदक्षेपेण शंस मे वदताम्वर ! ॥१॥

स्थिरीभूतं च तत्स्थानं कियत्कालं वदस्व मे ।

केन वै रक्ष्यमाणं च कस्याऽऽज्ञा वसन्ते प्रभो ! ॥२॥

ओतानो द्वापरान्तं च यावत्कलिसमागमः ।

तावत्संक्षणेचैको हनुमान्पवनात्मजः ॥३॥

समर्थो नान्यथा कोपि विनाहनुमतासुतः ।

लकाविध्वसितायेनराक्षसाःप्रबलपताः ॥४॥

स एव रक्षतेतत्र रामादेशेन पुत्रक ।

द्विजस्याज्ञा प्रवर्तत श्रीमातायास्तथैव च ॥५॥

दिनेदिनेप्रहर्षोऽभूज्जनानातत्रवासिनः ।

पठन्तिस्मद्विजास्तत्रऋष्यजुःसामलक्षणान् ॥६॥

अथवंगङ्गापि तत्र पठन्ति स्म दिवानिशम् ।

वेदनिर्घोषज शब्दस्त्रौलोक्येसचराचरे ॥७॥

उरसवास्तत्र जायन्तेग्रामे ग्रामे पुरेपुरे ।

नाना यज्ञाःप्रवर्तन्तेनानाधर्मसमाश्रिताः ॥८॥

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे सुवत ! इससे अगे कथा हुआ था उसने भव प्राप मेरे सामने वर्णन कीजिए । हे सोसने वालो मे परम श्रेष्ठ ! और इसके पूर्व मे क्या हुआ था वह सभी - कृपा कर बतलाइये । वह स्थान कितने समय तक स्थिरीभूत रहा—यह मुझे बतलाइये । हे प्रभो ! उसी रक्षा किसके द्वारा की गयी थी और वहाँ पर किसकी आज्ञा है ? ॥ १ । २ ॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जीन से द्वापर युग के अन्त पर्यन्त जब तक कालयुग का समागम हुआ था उसने बाल तक उसके संरक्षण करने मे कबन एक पवन के पुत्र श्री हनुमान रहे थे । हे सुत ! हनुमान के बिना अन्य कोई दूसरा इस संरक्षण के कार्य को करने मे समर्थ भी नहीं था । जिसने लङ्कापुर का विध्वंस कर दिया और जहाँ २ बलवान् राक्षसों का हनन कर दिया था, हे पुत्र ! भगवान् श्रीराम के आदेश से वहीं वहाँ पर इसका संरक्षण किया गय है । द्विज की आज्ञा प्रवृत्त रहा कभी भी और श्री माता की भी आज्ञा रहती थी । वहाँ पर जनों को बड़ा ही हर्ष हुआ था और वहाँ के निवासी द्विजगण ऋक्-यजु-

और साम लगणों वाने वेदों का पाठ किया करते थे । अथर्ववेद का भी रात्रि दिन पाठ किया करते थे । वेदों के उच्चारण की ध्वनि चराचर दौलोक्य में फैलती रहा करती थी । वहाँ पर ग्राम-ग्राम में और नगर २ में अनेक उत्सव हुआ करते थे । अनेक यज्ञ भी नाना प्रकार के धर्मों के समाश्रित होते ही रहा करते थे ॥ ३-८ ॥

‘कदापि तस्यस्थानस्यमङ्गलोजातोय वा नवा ।
 दैत्यैर्जितकदास्थानमथवादुष्टराक्षसैः ॥६
 साधुपृष्टं त्वया राजन्धर्मज्ञस्त्वं सदा शुचिः ।
 आदौ कलियुगे प्राप्ते यद्वृत्तं तच्छृणुष्व भोः ॥१०
 लोकानां च हितार्थाय कामाय च सुखाय च ।
 यदहं कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणुभूपते ! ॥११
 इदानीं चकलोप्राप्तोऽमोनाम्ना बभूवह ।
 काङ्क्षुकुब्जाधिपःश्रीम न्धर्मज्ञोनीतितत्परः ॥१२
 शान्तो दान्तः सुशीलश्च सत्यधर्मपरायणः ।
 द्वापरान्तेनृपश्चेष्ट अनागते कलौ युगे ॥१३
 भयात्कलिविशेषेण अधमस्य भयादिभिः ।
 सर्वेदेवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिताः ॥१४
 रामोऽपि सेतुबन्ध हि ससहायो गतो नृप ! ॥१५

महाहाज युधिष्ठिर ने कहा—विभी भी समय में उस स्थान का भङ्ग भी हुआ था अथवा नहीं हुआ था ? उस स्थान को दैत्यो ने अथवा दुष्ट राक्षसो ने कब जीत लिया था ? श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे राजन् ! आपने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न पूछा है । आप तो परम धर्म के ज्ञाता हैं और सदा ही शुचि रहा करते हैं । हे राजन् ! आदि में कलियुग के प्राप्त होने पर जो भी कुछ हुआ था उसका आप श्रव श्रवण कीजिए । ॥ ६ । १० ॥ ममस्त न्को के हित के लिये—कामनाएँ पूर्ण होने के लिये और सुख के लिये जो भी मैं कुछ कहूँगा हे भूपते ! उस सबको

आप सुनिये ॥ ११ ॥ इस समय में कलियुग की प्राप्ति होने पर आम—
इस नाम वाला कान्यकुब्ज देश का स्वामी हुआ था । वह परम श्रीमान्
धर्म का ज्ञाता और नीति में परम परायण था ॥ १२ ॥ अत्यन्त शान्त
स्वभाव वाला—दमनशील सुशील और सत्य तथा धर्म में परायण था ।
हे नृप द्वापर-युग के अन्त में और कलियुग के न आगत होने पर इस
कलियुग के विशेष भय से और अधर्म के भय आदि से सब देवता
इस क्षिति का परित्याग करके नैमिषारण्य में समाधित हो गये थे ।
हे नृप ! श्रीराम भी सब सहायकों के सहित सेतुबन्ध पर चले गये थे ।
॥ १३-१५ ॥

कीदृश हि कालौ प्राप्ते भयंलोकेमुदुस्तरम् ।
पस्मिन्सुरैः परित्यक्तास्तनगर्भावसुन्धरा । १६
शृणुष्व कलिधमस्त्वि भविष्यन्ति यथा नृप ! ।
असत्यवादिनो लोकाः साधुनिन्दापरायणाः ॥ १७
दस्युकर्मरताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः ।
स्वगोत्रदाराभिरता लील्यध्यानपरायणाः ॥ १८
ब्रह्मविद्वेषिणः सर्वे परस्परविरोधिनाः ।
क्षरणागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ १९
वैश्याचारता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ।
भावप्राप्त कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोपकरा द्विजाः ॥ २०
शान्ती शूरा भयेदीनाः श्राद्धतपणवर्जिताः ।
अमुराचारनिरता विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥ २१

मुधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! इस कलियुग के प्राप्त हो जाने
पर किस प्रकार का मुदुस्तर भय लोक में व्याप्त हो गया था जिसमें कि
सुरगणों ने यह रत्नों को गर्भ धारण करने वाली बसुन्धरा का भी परि-
त्याग कर दिया था ? श्री व्यामदेव जी ने कहा—हे नृप ! अब आप इस
कलियुग के धर्मों का श्रवण कीजिए जिस प्रकार से ये भविष्य में होंगे ।

सभी लोक असत्य बोलने वाले और साधुओं की निन्दा में परायेण रहा करेगे ॥ १६ । १७ ॥ सब लोग दस्युओं (दूहरों के घन का हरण करने वाले) के कर्म में रति रखने वाले और माता—पिता की भक्ति में निरत न रहने वाले तथा अपने ही गोत्र की दारा (स्त्रियों) में रति रखने वाले और लोभ्य (चञ्चलता) के ध्यान में परायण—ब्राह्मणों से विद्वेष रखने वाले—परस्पर में विद्वेष रखने वाले और क्षरण में समागत लोगों का हनन करने वाले कलियुग में होंगे ॥ १८, १९ ॥ इस कलियुग में विप्रलोक वैश्यो का आचार बाने हो जायेगे । वेदों से भ्रष्ट—मानी और सन्ध्योपासना के विलोप करने वाले विप्र कलियुग में होंगे ॥ २० ॥ शान्ति के समय में शूरता दिखाने वाले—भय प्राप्त होने पर दीन हो जाने वाले तथा श्राद्ध और तर्पण से शङ्क—असुरों के समान आचार में निरत एवं भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित हुआ करेगे ॥ २१ ॥

परविस्ताभिलाषाश्च उत्कोचगहणे रताः ।

अस्नातभोजिनो विप्राः क्षत्रियारणवर्जिताः ॥ २२

भविष्यन्ति कलीप्राप्ते मलिना दुष्टवृत्तयः ।

मद्यपानरताः सर्त्रेऽप्ययाज्यानां हियाजकाः ॥ २३

भर्तृद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकराः भूताः ।

आतृद्वेषकरा क्षुद्रा भविष्यन्ति कली युगे ॥ २४

गव्यविक्रयिणस्ते च ब्राह्मणा वित्ततत्पराः ।

गावो दुग्धं न दुह्यन्ते सम्प्राप्ते हि कली युगे ॥ २५

फलन्ते नैव वृक्षाश्च कदाचिदभि भारत ।

कन्याविक्रयकर्तारो गजाविक्रयकारकाः ॥ २६

विपविक्रयकर्तारो ग्सविक्रयकारकाः ।

वेदविक्रयकर्तारो भविष्यन्ति कली युगे ॥ २७

नारोगर्भं समाधत्ते हायने वादशेन हि ।

एकादशयुपयामस्य विरताः सर्वतो जना ॥ २८

सब लोग इस कलियुग में पराये धन के पाने की अभिलाषा रखने वाले होंगे । सभी उत्कोच (रिश्वत) के ग्रहण करने में सलग्न - बिना ही स्नान किये हुए भोजन करने वाले विप्र होंगे । जो क्षत्रिय इस युग में होंगे वे युद्ध करने से रहित हुआ करेंगे ॥ २२ ॥ इस कलियुग के प्राप्त होने पर सभी महामतिन और दुष्ट वृत्ति वाले हो जायेंगे । सब लोग मदिरा के पान करने में रति रखने वाले और जो याजन करने के योग्य नहीं है उनको भी याजन कराने वाले होंगे ॥ २३ ॥ स्त्रियाँ अपने स्वामी से द्वेष करने वाली हो जायेंगी तथा सुत अपने माता-पिता से विद्वेष रखने वाले होंगे । इस कलियुग में क्षुद्र मनुष्य अपने ही सगे भाइयों से द्वेष रखने वाले होंगे ॥ २४ ॥ ग्राह्यण लोग दूध-घृत आदि बेचने वाले कैवल धन प्राप्ति करने ही में उत्पन्न हुआ करेंगे । कलियुग के प्राप्त होने पर गौएँ दूध नहीं दिया करेंगी ॥ २५ ॥ हे भारत ! वृक्ष भी अच्छी तरह से फल नहीं देंगे । कन्याओं का विप्रव करने वाले अर्थात् कन्याओं पर धन लेने वाले तथा गौ और वकरियों के बेचने वाले हो जायेंगे । विप्रों को बेचने वाले—रसों का विप्रव करने वाले—वेदों की पुस्तक तथा वेदों का ज्ञान का विप्रव करने वाले लोग इस कलियुग में हो जायेंगे । एकादश वर्ष की अवस्था ही में नारियाँ गर्भ धारण कर लिया करेंगी । सभी मनुष्य इस युग में एकादशी तिथि के उपवास से विरत हो जाया करेंगे अर्थात् कोई भी एकादशी का व्रत नहीं किया करेंगे ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥

न तीर्थसेवरनरता भविष्यन्ति च वाडवाः ।
 बह्वहाराभविष्यन्ति बहुनिद्राममाकुलाः ॥ २६
 जिह्मवृत्तिपरा सर्वे वेदानन्दापरायणाः ।
 यतिनिन्दापरादर्चनं च्छन्नकाराः परस्परम् ॥ २७
 स्पृशन्तोपमय नैव भविष्यन्ति लोभुषे ।
 क्षत्रियाराज्यहोनादनम्ने-छोराजाभविष्यति ॥ २८

विश्वासघातिनः सर्वे गुरुद्रोहस्तास्तथा ।

मित्रद्रोहस्ता राजञ्छिनोदरपरायणाः ॥३२

एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ।

बली प्राप्ते महाराज ! नान्यथा वचन मम ॥३३

प्रायः लोग तीर्थों के सेवन करने से रत नहीं रहेंगे—अ
आहार करने वाले और अत्यधिक निद्रा में समाकुल रहने वाले ।
कुटिल वृत्ति में परायण तथा वेदों की निन्दा करने में तत्पर एवं या
की बुराईयाँ करने वाले—छल छिद्र से भरे हुए परस्पर में रहने
होगे । इस कलियुग में स्पर्श करने के दोष का भय विलुप्त ही न हो
जो सत्रिय होंगे वे राज्यों में होन हो जायेंगे तथा कलियुग में रहे
लोग ही शासन करने वाले होंगे । २६ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ प्रायः सभी ।
विश्वास के घात करने वाले होंगे तथा अपने गुरु से ही द्रोह करने
रत रखने वाले होंगे । मित्रों से द्रोह करने वाले और हे राजा
सब शिष्य (जननेन्द्रिय) के द्वारा आत्माव धाने तथा अपना ही
भरने में परायण रहने वाले हो जायेंगे । कलियुग में चारों वर्णों
एकदम विलोप होकर सभी एक ही वर्ण वाले हो जायेंगे । हे महाराज
इस कलियुग में ये ही सब बातें होगी—इसमें भेग कहा हुआ व
विलुप्त भी अग्यथा नहीं है अर्थात् जो भी कहा है यह प्रसरण, सत्य
है ॥३२ ॥३३॥

४३—चातुर्मास्य स्नान महत्त्वं वर्णन

देवदेव महाभाग व्रतानि मुक्ताङ्गयणि ।

श्रुतानि त्वन्मुखाद् प्रह्लादतृप्तिर्माध्वगच्छति ॥१

अधुना श्रोतुमिच्छामि चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ॥२

शृणु देवमुने ! मत्तश्चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ।

यच्छ्रुत्वाभारते तपष्टे नृणां मुक्तिर्न दुर्लभा ॥३॥

मुक्तिप्रदोऽयं भगवान् ससारोत्तारकारणम् ।

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥

मानुष्य दुर्लभं लोके तन्नाऽपि च कुलीनता ।

तत्रापि सदयस्त्वञ्च तत्र सत्सङ्गमः शुभः ॥५॥

सत्सङ्गमो न यत्राऽस्ति विष्णुभक्तिर्न श्रुतानि च ।

चातुर्मास्ये विज्ञेयेन विष्णुव्रतं हरः शुभः ॥६॥

चातुर्मास्येऽव्रती यस्तु तस्य पुण्य निरर्थकम् ।

सर्वतोऽर्थानि दानानि पुण्यान्यायतनानि च ॥७॥

विष्णुमाश्रित्य तिष्ठन्ति चातुर्मास्ये समागते ।

मुपगच्छेनापि देहेन जीवितन्तस्य शोभनम् ॥८॥

देवोपि श्री नारदजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! हे महाभाग !

आपके मुखारविन्द से बहुत सारी वस्तुओं के विषय में श्रवण करने का सोभाव
सम्प्राप्त हुआ है किन्तु हे प्रह्लाद ! मुझे अभी तक तृप्ति नहीं हुई है ।
जब मैं चातुर्मास्य के परम शुभ व्रत के विषय में मुन्ने की इच्छा करता
हूँ ॥ १, २ ॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे देव मुने ! प्रथम आप मुझसे
अन्यथा शुभ चातुर्मास्य व्रत की श्रवण कीजिए जिसका श्रवण मात्र करने
ही से इस भारत खण्ड में मनुष्यों की मुक्ति दुर्लभ नहीं रहा करती है ।
इस ससार में उद्धार करने का कारण स्वरूप भगवान् ही तो इस मुक्ति
का प्रदान करने वाले हैं । जिन भगवान् के स्मरण मात्र से ही मनुष्य सब
पापों में प्रमुक्त हो जाया करता है । इस लोक में मनुष्य का जीवन
रात कर लेना ही परम दुर्लभ होता है फिर उस मनुष्य जीवन में कुली-
नता अर्थात् किसी अच्छे कुल में जन्म ग्रहण कर लेना और भी अधिक
दुर्लभ होता है । उसमें भी दया से युक्त होना और उसमें ना परम शुभ
सत्पुरुषों का सङ्ग प्राप्त कर लेना अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥ ३, ४, ५ ॥
जहाँ इस मनुष्य जीवन में सत्पुरुषों का सङ्ग नहीं है—श्री भगवान्

विश्वासघातिनः सर्वे गुरुद्रोहरतास्तथा ।

मित्रद्रोहरता राजञ्छिन्नोदरपरायणाः ॥३२

एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ।

कलौ प्राप्ते महाराज ! नान्यथा वचन मम ॥३३

प्रायः लोग तीर्थों के सेवन करने में रत नहीं रहेंगे—अभि
आहार करने वाले और अत्यधिक निद्रा में समाकुल रहने वाले ल
कुटिल वृत्ति में परायण तथा वेदों की निन्दा करने में तत्पर एवं यति
की दुरादृष्टि करने वाले—छान छिद्र से भरे हुए परस्पर में रहने प
होगे । इस कलियुग में स्पर्श करने के दोष का भय विलुप्त ही न होग
जो क्षत्रिय होंगे वे राज्यों से हीन हो जायेंगे तथा कलियुग में ग्ले
लोग ही शासन करने वाले होंगे । २६ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ प्रायः सभी
विश्वास के घात करने वाले होंगे तथा अपने गुरु से ही द्रोह कर
रति रखने वाले होंगे । मित्रों से द्रोह करने वाले और हे राज
सब शिष्य (जननेन्द्रिय) के द्वारा आस्वाद पाने तथा अपना ही
भरने में परायण रहने वाले हो जायेंगे । कलियुग में चारों वर्णों
एकदम विलोप होकर सभी एक ही वर्ण वाले हो जायेंगे । हे महारा
इस कलियुग में ये ही सब बातें होगी—इसमें भेग कहा हुआ
विलुप्त भी अन्यथा नहीं है अर्थात् जो भी कहा है यह अक्षरशः सत
है ॥३२ ॥३३॥

४३—चातुर्मास्य स्नान महत्त्वं वर्णन

देवदेव महाभाग व्रतानि सुबहूयपि ।

श्रुतानि त्वन्मुखाद् प्रह्लादतृप्तिर्माघिगच्छति ॥१

अधुना श्रोतुमिच्छामि चातुर्मास्यव्रत शुभम् ॥२

शृणु देवमुने ! मत्तश्चातुर्मास्यव्रत शुभम् ।

यच्छु त्वाभारते खण्डे नू णामुक्तिर्नदुर्लभा ॥३॥

मुक्तिप्रदोऽयं भगवान् ससारोत्तारकारणम् ।

यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥

मानुष्य दुर्लभ लोके तस्मादपिच कुलीनता ।

तथापि सदयत्वञ्च तत्र सत्सङ्गमःशुभः ॥५॥

सत्सङ्गमो न यत्रास्ति विष्णुभक्तिव्रतानि च ।

चातुर्मास्ये विशेषेण विष्णुव्रतकरः शुभः ॥६॥

चातुर्मास्येऽवती यस्तु तस्य पुण्य निरर्थकम् ।

सर्वतोर्थानि दानानि पुण्यान्यायतनानि च ॥७॥

विष्णुमाश्रित्यतिष्ठन्तिचातुर्मास्येसमागते ।

सुपुष्टेनापिदेहेन जीवितन्तस्यशोभनम् ॥८॥

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! हे महाभाग ! आपके मुखारविन्द से बहुत से श्रमों के विषय में श्रवण करने का सौभाग्य सम्प्राप्त हुआ है किन्तु हे प्रह्वान् ! मुझे अभी तक तृप्ति नहीं हुई है । अब मैं चातुर्मास्य के परम शुभ व्रत के विषय में सुनने की इच्छा करता हूँ ॥ १, २ ॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे देव मुने ! यदि आप मुझसे यही शुभ चातुर्मास्य व्रत को श्रवण कीजिए जिसका श्रवण मात्र करने ही से इस भारत खण्ड में मनुष्यों की मुक्ति दुर्लभ नहीं रहा करता है । इस समार मे उद्धार करने का कारण स्वरूप भगवान् ही तो इस मुक्ति प्रदान करने वाले हैं । जिन भगवान् के स्मरण मात्र से ही मनुष्य सब पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है । इस लोक में मनुष्य का जीवन त्याग कर लेना ही परम दुर्लभ होता है फिर उस मनुष्य जीवन में कुलीनता अर्थात् किसी अच्छे कुल में जन्म ग्रहण कर लेना और भी अधिक दुर्लभ होता है । उसमें भी दान से युक्त होना और उसमें ना परम शुभ सत्सङ्गों का सहस्र प्राप्त कर लेना अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥ ३, ४, ५ ॥ अतः इस मनुष्य जीवन में संपूर्ण का सङ्गम नहीं है—श्री भगवान्

विष्णु की भक्ति नहीं है और शुभ व्रत नहीं है वह मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ होता है इस चातुर्मास्य में विशेष रूप से भगवान् विष्णु का व्रत करना परम शुभ होता है ॥ ६॥ जो चातुर्मास्य व्रत नहीं करने वाला है उसका पुण्य सब निष्फल ही होता है । सभी तीर्थ—दान—पुण्य और आयतन इस चातुर्मास्य के समागत होने पर भगवान् विष्णु का समाधि करके ही स्थित रहा करते हैं । इस सुपुष्ट देह से उसका ही जीवित शोभ भी हुआ करता है ॥ ६, ७, ८ ॥

चातुर्मास्ये समायातेहरियः प्रणमेद् ब्रुधः ।

कृतार्थास्तस्यविबुधायाचञ्जीवम्बरप्रदाः ॥६॥

सम्प्राप्यमानुष जन्म चातुर्मास्यपराङ्मुखः ।

तस्य पापशताभ्याष्टुर्देहस्यानितरांशयः ॥७॥

मानुष्यं दुर्लभं लोके हर्गिभक्तिश्च दुर्लभा ।

चातुर्मास्ये विशेषेण भुङ्क्ते देवे जनादने ॥८॥

चातुर्मास्ये नरः स्नानं प्रातरेव समाचरेत् ।

सर्वशुभफलम्प्राप्य देववदिर्दाव मोदते ॥९॥

चातुर्मास्ये नदीस्नानं कुर्यात्सिद्धिमवाप्नुयात् ।

तथा निर्भङ्गे स्नाति तडागे कूपिकासु च ॥१०॥

तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ।

पुष्करेचप्रयागेवायत्रक्वापिमहाजले ॥

चातुर्मास्येषु यः स्नाति पुण्यसङ्ख्या न विद्यते ॥११॥

इस चातुर्मास्य के समायात होने पर जो कुछ मनुष्य श्री हरि का प्रणाम किया करता है उसके देवगण कृतार्थ हो जाया करते हैं और तब तक वह जीवित रहा करता है उसको वरदान देने वाले होते हैं । मनुष्य जीवन ही प्राप्त करके जो अतीव दुर्लभ है यदि मनुष्य चातुर्मास्य व्रतों का पराङ्मुख रहता है तो उसका देह में रहने वाले सैकड़ों ही दुःखी बनते हैं—इसमें लेश मात्र भी संशय करने का कोई अवसर नहीं

। इस लोक में यह मनुष्य का जीवन प्राप्त करना अत्यन्त ही दुर्लभ होता है और उसमें भी श्री हरि की भक्ति का प्राप्ति कर लेना तो परम दुर्लभ है । चातुर्मास्य में जब कि विशेष रूप से देव जन्मादन प्रभु शयन किया करते हैं उस समय में श्री हरि की भक्ति अवश्य ही करनी चाहिए । चातुर्मास्य में मनुष्य को प्रातः काल ही के समय पर स्नान करना चाहिए ऐसा प्रातः स्नान करने वाला मनुष्य समस्त ऋतुओं के करने का पुण्य-फल प्राप्त करके दिवलोक में देवों की तरह आनन्द का लाभ लिया करता है । चातुर्मास्य में नदी में स्नान करना चाहिए । इस स्नान से वह सिद्धि को प्राप्त कर लेता है । नदी का अभाव हो तो किसी निम्नर में—तलाव में अथवा कुपिका में जो स्नान किया करता है उसके सहस्रो पाप तो उसी क्षण में विध्वन हो जाया करते हैं । पुष्कर-प्रयाग में—अथवा किसी भी अन्य महाजल में जो चातुर्मास्यो में स्नान किया करता है उसके इतने अधिक पुण्य होते हैं कि उनको कोई सख्या ही नहीं होती है ॥ ६-१४ ॥

रेवाया भास्करक्षेत्रे प्राच्यासागरसङ्गमे ।
एकाहमपि यः स्नातश्चातुर्मास्येन दोषभाक् ॥१५॥
दिनत्रयञ्च यः स्नाति नमदायाममाहितः ।
सुप्ते देवे जगन्नाथे पापं याति सहस्रधा ॥१६॥
पक्षमेकं तु यः स्नाति गोदावर्या दिनादये ।
स भित्त्वा कमजं देहं याति विष्णोः सलोकताम् ॥१७॥
तिलोदकेन यः स्नाति तथा चंचामनोदकैः ।
वित्त्वपत्रोदकैश्चंचातुर्मास्येन दोषभाक् ॥१८॥
गङ्गा स्मरन्ति यो नित्यमुदपानसमीपतः ।
तद्गङ्गाङ्गो यजलजात तेन स्नानं समाचरेत् ॥१९॥
गङ्गाङ्गो देवदेवस्य चरणाद्गुष्ठवाहिनी ।
पापघ्नी सा सदा प्रोक्ता चातुर्मास्ये विशेषतः ॥२०॥

यतः पापसहस्राणि विष्णुदंहति संस्मृतः ।

तस्मात्पादोदकं शीर्षे चतुर्मास्ते धृतं शिवम् ॥२१॥

रेवा नदी में—भास्कर क्षेत्र में—प्राची में सागर सङ्गम में जो चातुर्मास्य में एक भी दिन स्नान कर लेता है उसमें फिर कोई भी दोष शेष ही नहीं रहा करता है । तीन दिन तक जो नर्मदा नदी में परम समाहित होकर स्नान कर लेता है जब कि जगत् के नाथ भगवान् शगन किया करते हैं उसके समस्त पाप सहस्रों टुकड़े हो-होकर क्षीण हो जाया करते हैं । दिन के उदय होने के समय में जो कोई एक पक्ष तक अर्थात् पन्द्रह दिन गोदावरी नदी में स्नान कर लेता है यह इस कर्मा से समुत्पन्न देह का भेदन करके सीधा भगवान् विष्णु की सलोकता को चला जाया करता है ॥ १५ । १६ । १७ ॥ चातुर्मास्य में जो तिल मिश्रित जल से तथा आँवलों में मिश्रित जल से या विल्व पत्र मिश्रित जल से स्नान किया करता है उसमें कुछ भी दोष शेष नहीं रहा करते हैं । जो किसी उदकाशय के समीप में पहुँच कर भागीरथी गङ्गा का स्मरण मात्र ही नित्य कर लेता है वह जल भी गङ्गा का ही जब हो जाया करता है । उससे ही फिर स्नान करना चाहिए । यह गङ्गा भी देवों के देव भगवान् के चरण के अगुष्ठ से ही बहन होने वाली है । वह सदा ही पापों का विनाश करने वाली बतलाई गई है । क्योंकि भगवान् श्री विष्णु संस्मरण किये जाने पर ही सहस्रों पापों को दाय कर दिया करते हैं । इसीलिए तो इस चरणोदक को भगवान् शम्भु ने चातुर्मास्य में अपने मस्तक में धारण किया था ॥ १८—२१ ॥

चातुर्मास्ये जलगतो देवो नारायणो भवेत् ।

सर्वतीर्थाधिकं स्नानं विष्णुतेजोशसङ्गतम् ॥२॥

स्नानं दशविधकार्यं विष्णुनाममहाफलम् ।

सुप्ते देवे विशेषेण नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥२३॥

विनास्नानं तु यत्कर्म पुण्यकार्यं मयं शुभम् ।
 क्रियते निष्फलं ब्रह्म स्तत्प्रगृह्णन्ति राक्षसाः ॥२४॥
 स्नानेन सत्कृमाप्नोति स्नानं धर्मः समातनः ।
 धर्मान्मोक्षफलमप्राप्य पुनर्नैवाऽवसीदति ॥२५॥
 ये चाध्यात्मविद् पुण्या ये च वेदाङ्गपारगाः ।
 सर्वदानप्रदा ये च तेषां स्नाने शुद्धता ॥२६॥
 कृतस्नानस्य च हरिर्देहमाश्रित्य तिष्ठति ।
 सर्वक्रियाकलापेषु सम्पूर्णफलदो भवेत् ॥२७॥
 सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च ।
 चतुर्मास्ये त्रस्तस्नानं सर्वपापक्षयवाहम् ॥२८॥

चतुर्मास्य में भगवान् नारायण देव जल में ही निवास किया करते हैं । इसीलिए भगवान् विष्णु के तेज के अंश से सज्जित स्नान समस्त तीर्थों से भी अधिक हुआ करता है ॥ २२ ॥ दस प्रकार का स्नान करना चाहिए । भगवान् विष्णु के नाम का महान् फल होता है । देव के सृष्ट होने पर विशेष रूप से मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो जाता है । स्नान के बिना कोई भी शुभ एवं पुण्यमय कर्म किया जाना है तो वह है बहान् ! बिल्कुल ही निष्फल हो जाया करता है और उसकी राक्षस गण ग्रहण कर लिया करते हैं । स्नान से ही महत्त्व का प्राप्त किया करता है । यह स्नान समातन (सर्वदा से बले आने वाला) धर्म से मोक्ष के फल को प्राप्त करके फिर वह प्राणी कभी भी अवसन्न अर्थात् दुःखित नहीं हुआ करता है ॥ २३, २४, २५ ॥ जो अध्यात्म ज्ञान के ज्ञाता—पुण्यात्मा हैं और जो वेद-वेदाङ्गों के पारगामी विद्वान् हैं तथा जो सब प्रकार के दानों के प्रदान करने वाले हैं उन सबकी स्नान करने से ही शुद्धता हुआ करती है । जो स्नान किये हुए मनुष्य होता है उसके देह का ममायय ग्रहण वरके साक्षात् भगवान् श्री हरि रिपय ग्राह करत हैं और समस्त किया कलापों में वे सम्पूर्ण फलों के प्रदान करने वाले हात हैं । सभी प्रकार के

पापों के विनाश के लिए और देवों के तोषण करने के लिए चातुर्मास्य में सब पापों के क्षय को करने वाला जल का स्नान करना चाहिए ॥२६॥ २७ । २८ ॥

निशायाञ्चैव न स्नायात्सन्ध्यायां ग्रहणम्बिना ।
 उष्णोदकेन न स्नानं रात्रौ शुद्धिर्न जायते ॥२६॥
 भानुसन्दर्शनाच्छुद्धिर्विहिता सर्वकमसु ।
 चातुर्मास्ये विशेषेण जलशुद्धिस्तु भाविनी ॥३०॥
 अशक्त्या तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुध्यति ।
 मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र ! विष्णुपादोदकेन वा ॥३१॥
 नारायणप्रतःस्नानं क्षेत्रतीर्थनदीषु च ।
 यः करोति विशुद्धात्मा चातुर्मास्ये विशेषतः ॥३२॥

निशाकाल में और सन्ध्या के समय में कभी भी ग्रहण के अवसर को छोड़कर स्नान नहीं करना चाहिए । उष्ण जल से रात्रि में स्नान नहीं करे । इससे कभी शुद्धि नहीं हुआ करती है ॥ २६ ॥ समस्त कर्मों में भानुदेव के दर्शन मात्र से ही शुद्धि कही गयी है । चातुर्मास्य में विशेष रूप से जल के द्वारा होने वाली शुद्धि होती है । यदि जल से शुद्धि करने की शरीर में शक्ति ही न हो तो भस्म द्वारा स्नान करने से भी शुद्धि हो जाती है । हे विप्रेन्द्र ! मन्त्रों के द्वारा स्नान से शुद्ध होता है और केवल भगवान् के चरणामृत से भी शुद्धि होती है । जो विशुद्ध आत्मा वाला विशेष करके चातुर्मास्य में नारायण के आगे क्षेत्र—तीर्थ और नदियों में स्नान करता है वह परम शुद्ध हो जाता है ॥ ३०—३२ ॥

॥ स्कन्ध पराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ॥